हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों
में
इतिहास-प्रयोग

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल्॰ उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध]

प्रस्तुतकर्त्ता

गोविन्दजी प्रसाद, एम॰ ए॰, बी॰ एस-सी॰

निर्देशक

डॉ॰ जगदीश गुप्त, एम॰ ए॰, डी॰ फिल्॰

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
फरवरी, १९६८
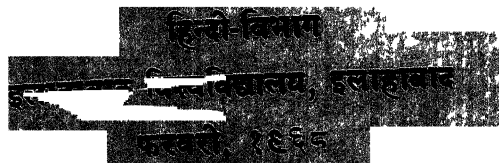
"कथा" और "इतिहास" की प्रकृति एक-दूसरे से इतनी सम्बद्ध है कि दोनों का एक-दूसरे में अन्तर्भुक्त हो जाना स्वाभाविक है । "कथा" मनुष्य-जीवन के अनुभवों का जीता-जागता चित्र है और "इतिहास" इस पृथ्वी पर मनुष्यता की धारावाहिक कहानी है । अतः दोनों का संबंध सहज है । इसी कारण प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक काव्य, ऐतिहासिक नाटक और ऐतिहासिक आख्यायिकाएं प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं । "कथा" के नवीन रूप "उपन्यास" में "इतिहास" का प्रयोग उसके जन्म काल से ही होने लगा । अंग्रेजी साहित्य में, यद्यपि १८वीं सदी के अन्त में ही उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग होने लगा था, किन्तु सही अर्थों में इतिहास का आधार लेकर उपन्यास लिखने का कार्य सर वाल्टर स्काट द्वारा प्रारंभ हुआ । स्काट का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "वेवर्ली" सन् १८१४ में जब प्रकाशित हुआ तो अंग्रेजी साहित्य में तहलका मच गया । फिर तो उसके अनेक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए । स्काट अंग्रेजी का प्रथम और सर्वाधिक लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है ।

अपने देश पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने तथा अंग्रेजी के व्यापक प्रचार-प्रसार के कारण भारतीय साहित्य पर भी अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा और प्रादेशिक भाषाओं में ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जाने लगे । बंगला और मराठी में सबसे पहले ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये और हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भ काल से ही उपन्यास में इतिहास का प्रयोग होने लगा । किशोरीलाल गोस्वामी

में प्रकाशित हुआ और तब से ऐतिहासिक उपन्यासों की एक अबाध परम्परा हिन्दी में गतिशील है ।

श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास किसी भी देश, भाषा और साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है । मात्र इसलिये नहीं कि उनसे हमारा मनोरंजन होता है अथवा कथा-रस प्राप्त होता है, वरन् इसलिये भी कि उनके माध्यम से हम किसी देश के इतिहास, उसके विगत राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन से परिचित होते हैं और देश के हृदय की धड़कनों तथा आत्मा की आवाज़ों के सम्पर्क में आते हैं । किन्तु वह संकुचित देश अथवा राष्ट्र के अतीत का प्रतिबिम्ब मात्र ही नहीं है, विस्तृत संदर्भों में वह मनुष्य के जीवन का महाकाव्य है जिसमें मनुष्य का जीवन अतीत के सन्दर्भ में अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं-राग, विराग, प्रेम, घृणा, क्रोध, करुणा, वीरता आदि- सहित अभिव्यक्त हो उठता है । ऐतिहासिक उपन्यास, वस्तुतः मनुष्य-जीवन का ही अतीतकालीन महाकाव्य है ।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन तथा विवेचन विरल है । हिन्दी उपन्यासों के अध्ययन तथा विवेचन के सन्दर्भ में यद्यपि हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की चर्चा यत्र-तत्र मिल जाती है, किन्तु उसे मात्र परिचयात्मक ही कहा जा सकता है, ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प तथा इतिहास प्रयोग की दृष्टि से उन पर कोई विचार नहीं हुआ है । इस विषय पर स्वतंत्र रूप से लिखी गई प्रकाशित दो ही पुस्तकें - १- ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार (लेखक - डा० गोपी नाथ तिवारी) तथा २- ऐतिहासिक उपन्यास में तथ्य और कल्पना (लेखक - डी०एम० चिन्तामणि) अभी तक प्रकाशित हैं जो अत्यन्त साधारण कोटि की हैं और जिनमें विषय का विवेचन अत्यन्त सामान्य दृष्टि से किया गया है । दूसरी पुस्तक तो निहायत बचकाना प्रयास है जिसमें न तो [illegible] का स्पष्टीकरण सही ढंग से किया गया है और न उसके विवेचन में [illegible] से काम लिया गया है । डा० गोविन्द प्रसाद श ने "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन" शीर्षक

विषय पर शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर नागपुर विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की है । यह प्रबंध अभी तक अप्रकाशित है । इसमें भी ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प और इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से उपन्यासों का विवेचन नहीं किया गया है और एक बंधी-बंधाई परिपाटी जैसे, कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, वातावरण आदि को आधार बनाकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चूंकि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और उपन्यास तत्व ही प्रधान होते हैं, अतः इन्हीं को आधार बनाकर ऐतिहासिक उपन्यास का मूल्यांकन होना चाहिए और ऐतिहासिक उपन्यास के मूल्यांकन की यही सही दृष्टि है । प्रस्तुत प्रबंध "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों (प्रारंभ से लेकर १९६० ई० तक) में इतिहास-प्रयोग" में इसी दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प पर मौलिक ढंग से विचार किया गया है और हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों को परखा गया है ।

प्रस्तुत प्रबंध में सात अध्याय हैं । प्रथम अध्याय इतिहास और उसके स्वरूप-विवेचन से संबंधित है । इसमें "इतिहास" शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ पर विचार किया गया है तथा प्राचीन एवं आधुनिक काल में इतिहास के स्वरूप, उपकरण, रचना-पद्धति आदि का विस्तृत विवेचन है । इतिहास कला है या विज्ञान-यह प्रश्न [illegible] में बड़ा विवादास्पद रहा है और इसने इतिहास-लेखन पर पर्याप्त प्रभाव भी डाला है ।प्रस्तुत अध्याय में इस प्रश्न पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है और समस्या का तर्कपूर्ण ढंग से समाधान प्रस्तुत किया गया है । इतिहास की व्याख्या का प्रयत्न दार्शनिक स्तर पर भी अनेक विचारशील देशों में किया गया है और अनेक चिन्तकों एवं विचारकों ने तत्संबंधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । इस अध्याय के अंतिम अंश में इतिहास की भूमिका संबंधी विभिन्न विचारकों के मतों का [illegible] संक्षेप में दे दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय [illegible] - शिल्प-विधान तथा ऐतिहासिक [illegible]वस्तु के विवेचन से संबंधित है । [illegible] के [illegible] एवं नवीन दृष्टि-कोण तथा, [illegible]

पौराणिक तथा धार्मिक कथा, प्रबंध काव्य, नाटक, प्राचीन कथा-आख्यायिका, आधुनिक कहानी तथा उपन्यास- का विवेचन करते हुए उनकी प्रकृतिगत भेदों को स्पष्ट किया गया है और उपन्यास की परिभाषा, उसके स्वरूप एवं तत्व तथा साहित्य में उसकी स्थिति पर विस्तृत ढंग से विचार किया गया है । उपन्यास का मुख्य तत्व कथावस्तु है और ऐतिहासिक कथावस्तु का व्यवहार विभिन्न कथा-रूपों में अत्यन्त प्राचीनकाल से होता रहा है । कथा के प्राचीन एवं नवीन रूपों में ऐतिहासिक कथावस्तु किस प्रकार व्यवहृत हुआ है और उनमें इतिहास और कल्पना की क्या स्थिति रही है, इस पर सम्यक् प्रकार से विचार किया गया है ।

तृतीय अध्याय में इतिहास और उपन्यास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा, प्रकृति एवं शिल्पविधान तथा स्वरूप-भेद पर अत्यन्त विस्तृत और मौलिक ढंग से पहली बार विचार किया गया है। हिन्दी में अभी तक इतने विस्तार तथा मौलिक ढंग से ऐतिहासिक उपन्यास पर विचार नहीं किया गया था । यह अध्याय एक प्रकार से ऐतिहासिक उपन्यासों की आलोचना एवं मूल्यांकन का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है। इसी संदर्भ में उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास तथा इतिहास के प्रकृति-गत अंतरों को स्पष्ट किया है और उनकी रचना-पद्धति पर एवं प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है ।

चतुर्थ अध्याय इतिहास मूलक कल्पना और इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याओं से संबंधित है । अध्याय के पूर्वार्द्ध में कल्पना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त उसके स्वरूप-भेद पर प्रकाश डाला गया है और इतिहास-रचना के सन्दर्भ में प्रयुक्त कल्पना अथवा इतिहास मूलक कल्पना पर विस्तृत ढंग से विचार किया गया है । उत्तरार्द्ध में इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याओं, जैसे ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन-चयन तथा [illegible] [illegible] रचना एवं कथा में उनकी परिणति, घटनाओं तथा तथ्यों के पीछे मानवीय भावों की परिकल्पना, देशकाल का चित्रण, काल तथा संस्कृति-बोध आदि का मौलिक ढंग से [illegible] विचार किया गया है । यह शोध इतिहास

को उपस्थित करने का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है ।

पाँचवें अध्याय में हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य के प्रारंभ और विकास का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से परिचय है । हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास - साहित्य को तीन कालों में विभाजित कर प्रत्येक काल के ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय दे दिया गया है तथा आधृत ऐतिहासिक घटनाओं तथा चरित्रों का भी संकेत कर दिया गया है । इसी सन्दर्भ में प्रत्येक काल की विशेषताओं तथा प्रसिद्ध उपन्यासकारों की रचनागत विशिष्टताओं एवं उपलब्धियों का भी उल्लेख है ।

छठे अध्याय में हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का ऐतिहासिक घटनाकालक्रम के अनुसार वर्गीकरण है तथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का इतिहास-प्रयोग एवं रचना-शिल्प की दृष्टि से विवेचन है । वर्गीकरण के अन्तर्गत एक इतिहास-काल की घटनाओं पर आधारित उपन्यासों को एक वर्ग में रखा गया है और प्रत्येक उपन्यास के घटना काल, घटना आदि का संकेत में उल्लेख कर दिया गया है । इस विभाजन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय इतिहास के किस काल और किस घटना ने हिन्दी उपन्यासकारों को अधिक प्रेरित किया है । विवेचन के अन्तर्गत हिन्दी के ऐसे १५ ऐतिहासिक उपन्यासों को लिया गया है जिन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास-रचना के क्षेत्र में एक मोड़ उपस्थित किया है और लोकप्रियता अर्जित की है । इसी सन्दर्भ में उन ऐतिहासिक घटनाओं और स्रोतों पर भी प्रकाश डाला गया है जो संबंधित उपन्यास के कथा-संगठन के आधार रहे हैं ।

सातवें अध्याय में ऐतिहासिक उपन्यास में कालदोष के कारणों तथा उसके स्वरूपों पर प्रकाश डाला गया है तथा हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में आये कालदोष के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं ।

और, अन्त में "उपसंहार" में हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासकारों की रचना [illegible] तथा [illegible]-चेतना के परिप्रेक्ष्य में उनके योगदान पर [illegible] संक्षेप में प्रकाश डाला गया है ।
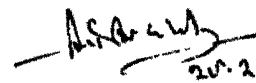
प्रस्तुत प्रबंध की अपनी सीमाएँ हैं । इसमें उन्हीं ऐतिहासिक उपन्यासों को विवेचन का आधार बनाया गया है, जिनकी रचना सन् १९६० ई० के पूर्व हुई है और जो सन् १८५७ तथा उसके पूर्व की घटनाओं, चरित्रों तथा वातावरण पर आधारित हैं । सन् १८५७ तथा उसके पूर्व की घटनाओं पर आधारित उपन्यासों को ही प्रबंध की सीमा में लेने का कारण यह है कि इतिहासकार अथवा ऐतिहासिक उपन्यासकार उन्हीं घटनाओं के प्रति तटस्थ रह सकता है जो उसकी समसामयिक नहीं हैं और जिसका उसने तथा उसकी पीढ़ी ने प्रत्यक्षतः अनुभव नहीं किया है । इस दृष्टि से सन् १८५७ तथा उसके पूर्व की घटनाएँ ही ऐतिहासिक उपन्यास रचना के लिए उपयुक्त हो सकती हैं । फिर, हिन्दी में ऐसा कोई उपन्यास देखने में नहीं आया जो सन् १८५७ के बाद की किसी ऐतिहासिक घटना या चरित्र को लेकर लिखा गया है ।

प्रबंध के लेखन में मेरे अनेक गुरुजनों, मित्रों एवं स्नेहियों का सहयोग रहा है । यदि उनका यह सहयोग न मिला होता तो प्रबंध का पूरा होना शायद कठिन होता । आदरणीय डा० जगदीश गुप्त ने निर्देशक के रूप में जो मार्ग-दर्शन किया है और इस प्रबंध के संशोधन में अपने अमूल्य समय का जो एक भाग दिया है, उसके लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । उनका सौहार्द [illegible] स्नेह निरन्तर मेरे कार्य को गतिशील बनाता रहा है । मेरे मित्र डा० मोहन अवस्थी ने न केवल विषय के चुनाव में परामर्श दिया है, वरन् प्रबंध के कतिपय स्थलों को देखकर उनका संशोधन भी किया है । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ । भाई डा० [illegible] ने प्रबंध की टंकित प्रति को भूल से बचाने में अपना बहुत सा समय दिया है । मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ । विभागाध्यक्ष व आदरणीय डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने प्रबंध जमा करने की अनुमति प्रदान कर अपना जो स्नेह प्रदर्शित किया है, उसके लिए मैं उनके सम्मुख विनयावनत हूँ । [illegible] डा० [illegible] प्रसाद [illegible] मेरे जीवन के [illegible] रहे हैं और उनके स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व तथा कृतित्व से निरन्तर

मुझे प्रेरणा मिलती रही है । इस अवसर पर श्रद्धाविनत होकर उन्हें मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूं ।

प्रबंध की सामग्री संकलित करने में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी तथा भारती भवन के पुस्तकालयों से बहुत सहायता मिली है । उक्त संस्थाओं के मंत्रियों तथा पुस्तकालयाध्यक्षों, विशेषकर भाई मोहन जी [illegible] ने अध्ययनार्थ जो सुविधा प्रदान की, उसके लिये मैं उनका आभारी हूं ।

20.2.52

(गोविन्द जी प्रसाद)

विषय-सूची

अध्याय ३

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा, प्रकृति, स्वरूप एवं भेद

अध्याय ४

इतिहासमूलक कल्पना और इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याएं

अध्याय ५

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का प्रारंभ और विकास-क्रम

(क) हिन्दी उपन्यास का जन्म तथा उसमें ऐतिहासिक उपन्यास की स्थिति । [पृ० २६९-२८२]

(ख) हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास-"हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी"। [पृ० २८२-२८६]

(ग) हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का काल-विभाजन- प्रथम उत्थान काल(सन् १८९० से १९१५),द्वितीय उत्थान काल (सन् १९१६ से १९२८) तथा तृतीय उत्थान काल(सन् १९२९ से १९६०) । [पृ० २८६-२९१]

(घ) प्रथमोत्थान कालीन (सन् १८९० - १९१५) ऐतिहासिक उपन्यासकार और उनके ऐतिहासिक उपन्यास- किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त, तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार । [पृ० २९१-३०६]

(ङ०)द्वितीय उत्थानकालीन(सन् १९१६ -२८) ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यास-वृजनंदन सहाय, मिश्रबंधु, तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार । [पृ० ३०६-३०९]

(च) तृतीय उत्थानकालीन(सन् १९२९-६०) ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यास - वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, अमृतलाल नागर तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार । [पृ० ३०९-३४३]

अध्याय ७

हिंदी ऐतिहासिक उपन्यासों में कालक्रम-दोष

अध्याय : एक

इतिहास की व्याख्या, उसका स्वरूप तथा दार्शनिक आधार

(क) "इतिहास" शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ ।

(ख) इतिहास का स्वरूप और उसकी व्याख्या ।

(ग) इतिहास के उपकरण और उसकी रचना-पद्धति ।

(घ) इतिहास – विज्ञान अथवा कला ।

(ङ०) इतिहास की तात्विक व्याख्या और उसका दार्शनिक आधार ।

अर्थात् जिसमें धार्म चरितों, कथाओं आदि की व्याख्या हो, जो देव और ऋषियों के चरित पर आधारित तथा भविष्य एवं भूत के वर्ण से युक्त हो, वही इतिहास है ।

आजकल "इतिहास" शब्द का प्रयोग प्रायः तीन अर्थों में किया जाता है । प्रथम, इसके अंग्रेजी पर्याय "हिस्टरी" के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में, जिसका तात्पर्य है गवेषणा" या "[illegible] से प्राप्त जानकारी" अथवा "गवेषणा की किसी प्रक्रिया से उपलब्ध ज्ञान" । इसका अन्तर्निहित भाव है तथ्य का अन्वेषण, अनुसंधान, अनवरत अनुसरण । तथ्य का यह अन्वेषण मानव या विश्व के किसी भी ऐसे अन्य वस्तु से संबंधित हो सकता है जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया होती है । द्वितीय, घटनाओं के वास्तविक क्रम को द्योतित करने के लिये "इतिहास" शब्द का प्रयोग होता है । जब हम अशोक, अकबर अथवा नेपोलियन को "इतिहास का निर्माता" कहते हैं तो हमारा आशय यह नहीं होता कि वे इतिहास के लेखक थे, वरन् यह कि उन्होंने विश्व के घटना-प्रवाह को मोड़ा है और उसे एक गति दी है । इसी प्रकार जब हम "इतिहास" के प्रभाव की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य इतिहास ग्रंथों का प्रभाव न होकर परिस्थितियों का प्रभाव है । यहाँ "इतिहास" का अर्थ स्पष्ट ही घटित का आलेखन न होकर स्वयं आलेख्य घटनाएं हैं, चाहे वे किसी से संबंधित हों[1] ।

जिस तीसरे और महत्वपूर्ण अर्थ में "इतिहास" शब्द का प्रयोग होता है, वह है विश्व की या उसके कुछ अंशों के घटना-प्रवाह का आलेखन । यह उचित और सर्वाधिक प्रचलित प्रयोग है और इसी अर्थ में हम भारत, इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों तथा कला, [illegible]न, साहित्य, [illegible] आदि विषयों अथवा किसी भी ऐसी वस्तु के इतिहास की बात करते हैं जो काल क्रम में विकसित हुई है और अपने क्रमानुसार विकास के पद चिन्ह छोड़ती चली गयी है ।

(ख) इतिहास का स्वरूप एवं उसकी [illegible]

जैसा ऊपर इंगित किया गया है कि इ[illegible]स एक परिवर्तनशील संसार का

1. Kings and St[illegible] are [illegible] 'the makers of History' and [illegible] it is said that the historian only records the history which they make. History, in this connection is obviously, not [illegible] but the thing to be recorded.

उसके कुछ अंशों के घटना-प्रवाह का आलेखन है, अतीत की कहानी है; किंतु जब कोई व्यक्ति चाहे वह सामान्य ही क्यों न हो, बिना किसी व्याख्यात्मक संदर्भ के इतिहास की चर्चा करता है तो ऐसा मान लिया जाता है कि उसका संकेत अपने व्यतीत जीवन की कथा की ओर है । इस दृष्टि से इतिहास का संबंध प्रधान रूप से मनुष्य एवं उसके क्रिया-कलापों से है और वह अतीत कालीन घटनाओं तथा उन घटनाओं से संबंधित व्यक्तियों के चरित्र का लिखित स्वरूप है । अतीत की घटनाओं तथा व्यक्तियों से संबंधित होने के कारण ही इतिहास का संबंध प्रायः नाम, घटना और तिथियों से जोड़ा जाता है ।

अत्यन्त प्राचीन काल से "इतिहास" शब्द अपने इसी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होता चला आ रहा है किन्तु मूल रूप में उक्त अर्थ देने पर भी इतिहास-रचना के स्वरूपों और उनकी व्याख्या में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं और इसके परिणाम स्वरूप उनकी अभिव्यक्ति के स्वरूपों तथा रचना-पद्धतियों में अन्तर होता रहा है । प्राचीन इतिहास लेखकों के सम्मुख, इतिहास प्रधानतः व्यक्ति परक होता था और [illegible]टा, राजनीतिज्ञों, सेनापतियों एवं महत्वपूर्ण तेजस्वी [illegible] के विविध क्रिया-कलापों का लेखा-जोखा मात्र था । इसमें युद्धों, [illegible] षड्यंत्रों, धार्मिक विद्रोहों आदि की केवल सूचना भर होती थी इसी कारण ऐसे इतिहास को कार्लाइल ने "[illegible] महान [illegible] का इतिहास"[1] तथा जान रिचार्ड ग्रीन ने "ढोल और तुरही का इतिहास"[2] कहा है । उक्त प्रकार का इतिहास व्यक्ति [illegible] घटनाओं का इतिहास होता था, इसमें [illegible] इरादों की चर्चा के साथ प्रेम, घृणा, युद्ध, महत्वाकांक्षा, विरोध, पतन, लोभ आदि की [illegible]ना होती थी ।

१- ---The history what man has accomplished in this world is at bottom the history of the great Men who have worked here--- Thomas Carlyle (Reproduced from 'Varieties of History, edited by Fritz Stern, page 101).

२- "History of Drum and [illegible]' as J.R. [illegible] derisively called it. - Varieties of History, page.27.

परन्तु कालान्तर में इतिहास संबंधी दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और इतिहास का संबंध केवल विशिष्ट एवं प्रभावशाली व्यक्तियों से ही नहीं रह गया। व्यक्ति से आगे बढ़कर इसने देश और समाज, सामान्य जन की जीवन-दशा, उनमें होने वाले विविध परिवर्तनों, समाज को परिचालित करने वाली विचार-पद्धतियों एवं उनसे उत्पन्न शासन तंत्रों तथा उनमें परिवर्तन से आने वाली भौतिक परिस्थितियों को भी अपने में अन्तर्भुक्त कर लिया[1] और अपनी [illegible]ता एवं विविधता में मनुष्य जीवन की [illegible] को भी अपना प्रतिपाद्य विषय बना लिया। इसी कारण आज के इतिहासकार का उद्देश्य व्यामोहित कर देने वाले अव्यवस्थित ऐतिहासिक रूपों की विविधता—जैसे, जाति, देश, संस्कृति, रीति-रिवाज, संस्था, धर्म विचार-पद्धति—को उनकी [illegible] विशेषताओं तथा परिवर्तन एवं विकास की प्रक्रिया सहित चित्रित करना ही गया है[2]। आज का इतिहास वास्तव में, मानव समाज की कहानी है, उसकी विविधता एवं सम्पूर्णता की विकासशील धारा है।

इतिहास के [illegible] ने इतिहास को दर्शन का रूप दे दिया। साथ ही साथ इसने उन नियमों का भी अनुसंधान किया जो सामाजिक परिस्थितियों एवं मनुष्य की जीवन-दशाओं को परिचालित तथा नियंत्रित करते हैं तथा ऐसे

---

१. Sir Chalres Firth gives us something to begin on "History is not easy to define: But to me it seems to the re[illegible] of the life of societies of men, of changes which these societies have gone through, of the ideas which have determined the actions of those societies and of the material conditions which have helped or hindered their develo[illegible].

A.L.Rowse: The use of History, page 59-60.

२. The subject matter of history is human life in its totality and multiplicity. It is the historians aim to portray the bewildering unsystematic variety of historical [illegible] people, nations, cultures, customs, institutions, [illegible], myths, and thoughts- in their unique living [illegible] and in the [illegible]es of continuous growth and [illegible]ion.

परिवर्तन लाते हैं जिन्हें उत्कर्ष एवं अपकर्ष, अथवा विकास और ह्रास कहते हैं । आधुनिक इतिहासकार के लिए नये इतिहास का भी अपना एक दर्शन है जो एक ओर तो विश्लेषणात्मक एवं तर्कपूर्ण विवेचना की सीमाओं का स्पर्श करता है तथा दूसरी ओर संश्लिष्ट प्रभाव की व्यंजना भी । मानव-समाज के असंख्य घात-प्रतिघात तथा जीवन की अनंत क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के बीच से आधुनिक इतिहासकार ऐसे शाश्वत नियमों का अनुसंधान करता है जिसका संबंध काल विशेष से न होकर मानव सभ्यता के स्थायी मूल्यों से है । आज का इतिहासकार, इतिहास को काल खण्डों में विभाजित करके नहीं देखता वरन् एक अविच्छिन्न गतिशील धारा के रूप में देखता है और उसकी दृष्टि में प्रत्येक महत्वपूर्ण परिवर्तन या क्रांति की लहर किसी एक विशिष्ट युग की उपज न होकर उसके पूर्ववर्ती समस्त युगों के सम्मिलित प्रभाव से उत्पन्न होती है । इसीलिए वह एक वैज्ञानिक की तरह कार्य-कारण संबंध के आधार पर प्रत्येक देश और काल के ऐतिहासिक स्वरूपों एवं परिवर्तनों पर विचार करता है ।

इतिहास संबंधी उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रथम प्रकार का ऐतिहासिक [illegible] जहाँ 'व्यक्ति-काल-सापेक्ष' है वहाँ दूसरे प्रकार का 'व्यक्ति-काल-निरपेक्ष' है । ऊपर-ऊपर से देखने पर, यद्यपि दोनों एक दूसरे के विपरीत से जान पड़ते हैं किन्तु तत्वतः उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है । यह सत्य है कि किसी विशिष्ट युग में ऐसे विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न [illegible] हो जाते हैं जो अपने असाधारण कृत्यों से युग की धारा को बदल देते हैं, किन्तु साथ ही साथ यह भी सत्य है कि उनकी असाधारणता के पीछे उनसे पूर्ववर्ती समस्त युगों की शक्ति [illegible] रहती है । ऐसे लोग युगों के अखण्ड प्रवाह की एक [illegible] लहर की तरह होते हैं जो काल की [illegible] धारा में एक बार ऊपर उठकर विलीन हो जाते हैं । वस्तुतः उक्त दोनों धारणाएं एक दूसरे की पूरक हैं और [illegible]कार एक के आधार पर दूसरे को समझने का प्रयत्न करता है सामान्य रूप से [illegible] के प्रथम रूप को [illegible]त्मक [illegible] तथा दूसरे को [illegible] [illegible] कह सकते हैं । [illegible] का [illegible] विशेष व्यक्तियों एवं [illegible] से होकर [illegible] किसी भी [illegible] की [illegible] का

अविच्छिन्न प्रवाह है जो अ... और ... निरपेक्ष है[१] ।

(ग) इतिहास के उपकरण एवं उसकी रचना-पद्धति

कोई भी इतिहास चाहे वह इतिवृत्तात्मक हो अथवा सांस्कृतिक, अपने प्राप्तव्य साधन स्रोतों तथा ऐतिहासिक ...णों से ...मित होता है और इन्हीं के आधार पर इतिहासकार इतिहास लिखने का प्रयत्न करता है । इतिहास की संरचना में एक नहीं अनेक वस्तुओं का योग रहता है जो कालभेदानुसार बदलते रहते हैं । इतिहास के विकास के साथ उसके साधनों का भी विकास होता रहता है । मानव का प्रारम्भिक इतिहास उसके द्वारा प्रयुक्त हथियारों, गृह-अवशेषों तथा समाधि-स्थानों, गुफा-चित्रों, उत्कीर्ण चित्रों, तथा मूर्तियों आदि द्वारा ही जाना जा सकता है, क्योंकि उस काल की प्रायः यही वस्तुएं हमें उपलब्ध होती हैं । सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के युग में भौतिक अवशेषों, स्मारकों तथा चित्रों के अतिरिक्त लिखित प्रमाण-सामग्री भी ... होती है । मानव-इतिहास में लेखन-कला और साहित्य का प्रादुर्भाव बहुत बाद में हुआ । भारतवर्ष में,लेखन-कला का प्रादुर्भाव ईसा से लगभग ३५०० वर्ष पूर्व सिन्धु-उपत्यका के मनुष्यों द्वारा ही हुआ था जिसका प्रमाण उनके द्वारा प्रयुक्त चित्रात्मक लिपि से मिलता है । दुख है कि अभी तक उस चित्रात्मक लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है[२] । साहित्य-सृजन का कार्य भी भारतवर्ष में मानव-इतिहास में सबसे प्रथम हुआ, किन्तु बहुत दिनों तक वह लिपिबद्ध न होकर मौखिक परम्परा द्वारा ही सुरक्षित रहा । ऋग्वेद को मानव-जाति की प्रथम साहित्यिक उपलब्धि माना जाता है, किन्तु सैकड़ों वर्षों तक वह अलिखित ही रहा और गुरु-शिष्य की पीढ़ी-दर पीढ़ी मौखिक ...म्परा के द्वारा ही उसकी रक्षा होती रही । अतएव वैदिक सा...त्य इसी प्रकार अब तक सुरक्षित है ।

१- डा० ... चन्द्र चौबेः प्रकार के ... ऐतिहासिक ... , पृष्ठ २

२- देखिये, लेखक का ... (वर्ष १९६२) में प्रकाशित ... भारत में

चूंकि, इतिहास जटिलता एवं विविधता में विकसित होता है, अतः मानवीय इतिहास की साक्ष्य सामग्री भी विविध तथा बहुल हो जाती है। ऐतिहासिक युगों में इतिहास के उपकरण न केवल साहित्य (चाहे वह किसी भी प्रकार का हो), परम्परा, लोकगाथाएं, किम्वदंती एवं लोक विश्वास, अनुश्रुति आदि के रूप में मिलते हैं वरन् विविध प्रकार के भौतिक अवशेषों के रूप- जैसे, वास्तु, शिल्प, चित्र, शिलालेख, ताम्रपट्ट, मुद्रा, अभिलेख आदि- में भी मिलते हैं जिनके प्रतीकों, चिन्हों, मुद्रा-लेखों, तौल, माप, बनावट और धातु के द्वारा इतिहास विषयक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार, इतिहास की संरचना में साहित्य,अभिलेख, मुद्रा, कला, शिल्प, स्मारक, दानपत्र आदि अनेक सामग्रियों का सहयोग रहता है।

इतिहासकार, इतिहास की संरचना के लिए प्रथमतः वर्तमान सामग्री का आधार लेता है। "वर्तमान सामग्री" का सम्बंध उन घटनाओं एवं व्यक्तियों से होता है जो एक विशेष वातावरण और देश-काल की सीमा में रहते हुए भविष्य के लिए अपने जीवन एवं युग के कुछ न कुछ चिन्ह छोड़ जाते हैं। उनके ये स्मारक तथा अवशेष ही प्रायः इतिहास के प्रधान उपकरण होते हैं। इतिहास के ये उपकरण इतिहास के "स्थिर रूप" की संरचना करते हैं, क्योंकि ये स्वतः प्रमाण रूप होते हैं और कालान्तर में उनके परिवर्तन की कोई सम्भावना नहीं रहती। "अस्थिर" इतिहास का संबंध प्रायः इतिहास के उस रूप से है जिसके लिए समकालीन प्रामाणिक स्मारक अथवा साक्ष्य अवशेष नहीं हैं, किन्तु आनुमानिक होते हुए भी उनमें इतिहास की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। इतिहास का यह स्वरूप स्थिर नहीं रहता और कालान्तर में अन्य प्रमाणों के प्राप्त होने पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। "स्थिर [illegible]" के आधार उन कालों के लिए सत्य हैं और उनके संबंध में निश्चित प्रमाणों का अभाव नहीं होता। अतीतकालीन प्रमाण प्रायः उनका समर्थन ही करते हैं। "[illegible] साक्ष्य" के आधार पौराणिक कथाएं, [illegible]दन्तियां, लोक गाथाएं, एवं लोक विश्वास होते हैं किन्तु [illegible] और ऐतिहासिक [illegible] से [illegible] तथा [illegible] करने के पश्चात् [illegible] द्वारा [illegible] के [illegible] किया जाता है। वस्तुतः ये वस्तुएं एक [illegible] से चली आती हैं और उनमें कहीं न कहीं [illegible] का

छिपा रहता है । लोक-कथाओं और किम्वदंतियों का इतिहास से कितना गहरा सम्बन्ध है, उसका अनुमान भारतीय इतिहास की विक्रमादित्य एवं कालिदास सम्बंधी समस्या से लगाया जा सकता है। उज्जयिनी के शकारि वि[illegible]दित्य के नवरत्नों में महाकवि कालिदास भी थे, इस [illegible] ने ५७ ई० पूर्व मालव[illegible]पति विक्रमादित्य की खोज के लिए इतिहासकारों को एक नयी दिशा प्रदान की । उक्त लोक कथा लिपिबद्ध रूप सिंहासन बत्तीसी, और बैताल पचीसी की कथाओं में उपलब्ध होता है । आज इतिहास की खोजों के बावजूद भी कालिदास और विक्रम के सम्बंध में इतिहासकारों के निर्णयों का एक बहुत बड़ा भाग किम्वदंतियों, [illegible]यों और लोककथाओं पर ही आधारित है[1]।

इतिहासकार के पास इतिहास संरचना के लिए मूर्त [illegible]णाओं, पौराणिक कथाओं, [illegible]वदंतियों, लोक विश्वासों आदि के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपकरण होते हैं जो कभी तो प्रत्यक्ष रूप से तथा कभी अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास की संरचना में योग देते हैं । ये उपकरण महान पुरुषों के धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवचन एवं उपदेश, समाज के नियामकों के आदेश, कुशल एवं प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञों के राजनीति संबंधी विचार तथा प्राचीन कवियों और नाटककारों की कृतियों के रूप में उपलब्ध हैं । साहित्य कृतियों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों का संबंध व्यक्ति और घटनाओं से प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता । इनके आधार पर इतिह[illegible]र तत्कालीन इतिहास को राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवेश प्रदान करता है । ये उपकरण वास्तव में सांस्कृतिक इतिहास के आधार हैं । भारत के सुदूर ऐतिहासिक काल के सां[illegible]तिक इतिहास के ज्ञान के लिए हमारे पास वेद, उपनिषद तथा प्रा[illegible]न ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं । कालान्तर में समाज एवं राजनीति के आदर्शों को जानने के लिए सबसे महत्व का ग्रंथ [illegible]तियां, सूत्र तथा निर[illegible] शास्त्र है[1]। प्राचीन भारतीय अर्थ व्यवस्था के अनुपालन के सबसे

1- श्री विमल चन्द्र मित्र- इतिहास, [illegible] और साहित्य में [illegible]दित्य का स्थान ([illegible], [illegible], मार्च, १९६३ ई० पृ० १०-११) ।

महत्वपूर्ण साधन कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन कामसूत्र हैं । इसी प्रकार यूनान के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के उद्घाटन में प्लेटो, अरस्तू तथा सुकरात के ग्रंथों का अपना विशिष्ट महत्व है ।

इतिहास रचना के आधारभूत उपकरणों में साहित्यिक कृतियों का अपना एक विशिष्ट स्थान है । यद्यपि इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐतिहासिक कहे जाने वाले ग्रन्थों की रचना तथ्य एवं कल्पना दोनों के सम्मिलित योग से हुई है और दोनों एक दूसरे से कुछ इस प्रकार घुलमिल गये हैं कि उन्हें अलग-अलग करके पहचान लेना सहज काम नहीं है, फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि उनके द्वारा प्रस्तुत कथानकों तथा प्रतिपाद्य विषयों में इतिहास की यथेष्ठ सामग्री छिपी है । प्राचीन भारत की सांस्कृतिक रूप-रेखा प्रस्तुत करने में वाल्मीकि[1], भास, कालिदास[2], शूद्रक, हर्ष, भवभूति, बाण[3] आदि कवियों एवं नाटककारों की कृतियां अपने कालों की सांस्कृतिक परम्पराओं एवं जन-मानस की विचार धारा का स्पष्ट रूप से संकेत करती हैं । कभी कभी तो इनसे "स्थिर शासन" की महत्वपूर्ण सामग्री भी उपलब्ध हो जाती है । विशाखदत्त के "मुद्राराक्षस" और "देवी चन्द्रगुप्तम्" के कथानकों के आधार पर ही इतिहासकारों ने मौर्यकाल एवं गुप्तकाल विषयक विवेचनाएं प्रस्तुत की और गुप्तकालीन इतिहास में रामगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी संबंधी एक नवीन अध्याय जोड़ा । बाद में रामगुप्त की मुद्रा मिलने से इसको समर्थन प्राप्त हुआ । इसी प्रकार बाणभट्ट कृत "हर्षचरित" का हर्षकालीन इतिहास की रूप-रेखा प्रस्तुत करने में महत्व का योग है ।

इतिहासकार की सामान्य रचना-पद्धति के दो प्रधान अंग होते हैं- प्रथम, उपलब्ध सामग्री का संकलन, परीक्षण एवं विश्लेषण तथा द्वितीय इस

1- वाल्मीकि रामायण के आधार पर डॉ० शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने-रामायणकालीन भारत, एक ग्रंथ लिखा है ।

2- डॉ० भगवत शरण उपाध्याय का "कालिदास और उनका युग" ।

3- डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का "हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन" ।

उपलब्ध सामग्री की व्याख्या एवं उसके आधार पर स्थापित घटनाओं का धारावाहिक विवरण प्रस्तुत करना । पहली प्रक्रिया एक सीमा तक यांत्रिक होती है और विज्ञान की कोटि में आती है, किन्तु दूसरी में संगति एवं सम्भावना सिद्ध कल्पना का स्थान प्रधान होता है । प्रस्तुत सामग्री का [illegible] एवं परीक्षण करते समय इतिहासकार की दृष्टि एक विशुद्ध वैज्ञानिक की होती है- प्रस्तुत सामग्री विश्वसनीय है या नहीं, जिन आधारभूत तथ्यों की स्थापना की गयी है वे न्यायसंगत हैं या नहीं, निकाले हुए निष्कर्ष सत्य हैं या नहीं, आदि बातों को वह एक वैज्ञानिक की दृष्टि से जांचता है, किन्तु इतिहास के इन प्राप्त उपकरणों एवं सामग्रियों से तथ्यों और [illegible] का संग्रह स्वयं में इतिहास नहीं होता । इतिहास तब बनता है जब इतिहासकार इन उपकरणों से प्राप्त तथ्यों के बीच की अज्ञात [illegible] को जोड़ देता है । इसके लिए इतिहासकार के पास मौलिक प्रतिभा एवं संतुलित कल्पना शक्ति का होना आवश्यक है । तथ्यों के बीच की शृंखला को सम्बद्ध करने के लिये उसे ऐसी उद्भावना करनी पड़ती है जो कार्य-कारण-परम्परा से बाधित तथा संगति एवं सम्भावना के अनुकूल हो । थोड़े से ज्ञात तथ्यों से [illegible] इतिहास का सृजन करना संश्लेषण शक्ति द्वारा सम्भव है और यह संश्लेषण बिना [illegible] के सम्भव नहीं । विश्लेषण-संश्लेषण की यह क्रिया अज्ञात तथ्यों में सम्भाव्य [illegible] का आरोप करती है[1] । इतिहासकार की यह "संश्लिष्ट सम्भाव्यता" साहित्यकार की "यथार्थ कल्पना" से अत्यन्त निकट होती है । अन्तर दोनों में केवल यह होता है कि इतिहासकार की "संश्लिष्ट सम्भाव्यता" ज्ञात तथ्यों तथा निकाले गये [illegible] से इतनी बाधक होती है कि उसे मौलिक उद्भावना करने का अवकाश ही नहीं होता, जब कि साहित्यकार मौलिक उद्भावना करने में स्वतंत्र होता है । [illegible]कार की इस "संश्लिष्ट सम्भाव्यता" को दूसरे शब्दों में हम "[illegible]नुकूल-कल्पना" कह सकते हैं । यह "संश्लिष्ट सम्भाव्यता" या "[illegible]" ही [illegible] में भिन्न भिन्न [illegible]ओं को जन्म देती है और [illegible] के स्व[illegible] का [illegible] करती है ।

१- [illegible] बन्धु [illegible]: प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ४

(घ) इतिहास- विज्ञान अथवा कला

इतिहास विषयक तात्त्विक चर्चा का मुख्य केन्द्र योरोप ही रहा है । २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैंड में इस विषय पर कि इतिहास विज्ञान है अथवा कला, बहुत ज़ोरों से तर्क-वितर्क हुए । धीरे-धीरे इस समस्या ने [illegible] योरोप में विशेष रूप से जर्मनी में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया और वहाँ इतिहासकारों तथा दार्शनिकों के बीच वाद-विवाद का प्रमुख विषय बन गया । सन् १९०२ में जान बैगनेल बरी (१८६१-१९२७) ने कैम्ब्रिज में उद्घाटन भाषण देते हुए बड़ी दृढ़ता के साथ यह उद्घोषणा की कि "इतिहास एक विज्ञान है, उससे न कुछ कम, न कुछ अधिक[1]।" अपने इसी भाषण में उसने यह विचार भी व्यक्त किया कि "जब तक इतिहास कला के रूप में मान्य रहा, [illegible] तथा शुद्धता के सिद्धान्त खरे नहीं उतर सके । ———— मैं आपको स्मरण दिला सकता हूँ कि इतिहास साहित्य की एक शाखा नहीं है[2]।" आक्सफोर्ड के प्रोफेसर यार्क पावेल ने भी इतिहास के संबंध में ऐसी ही धारणा व्यक्त की और कहा कि "नवीन इतिहास ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखा गया है जो यह विश्वास करते हैं कि इतिहास शुद्ध साहित्य का अंग नहीं है और न सर्वथा ललित, शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक विवरण है, वरन् विज्ञान की एक शाखा है और अन्य विज्ञानों की भाँति १९वीं शताब्दी की देन है[3]।"

---

1. It has not yet become superfluous to insist that history is science, no less and no more.
-J.B.Bury: The Science of History (varieties of history, edited by Stern) p.210.
2. Moreover, so long as history was regarded as an art. The sanctions of truth and accuracy could not be sever....
I may remind you that history is not a branch of literature
Ibid. page. 212.
3. "Modern history today, then, shall mean what might perhaps be called the New History, as distinct from the Old History. The New History is history written by those who believe that history is not a d[illegible] of 'belles-lettres.' and just an elegant, instructive and amusing narrative, but a branch of science. This science, like many other sci[illegible] is largely the creation of the nineteenth century. - York Powell ([illegible] from 'The use of History' by A.L.Rowse, page 26).

इतिहास संबंधी इस दृष्टिकोण ने इस शताब्दी के विश्वविद्यालयों में एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया और इतिहास-लेखन में इसका शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा ।

इस आग्रह ने कि इतिहास कठोर वैज्ञानिक मापदण्डों और पद्धतियों से समन्वित एक विज्ञान है, सत्य के निर्णय तथा कथन में अधिक सतर्कता और सावधानी को प्रश्रय दिया एवं प्रत्येक घटना तथा प्रमाण के परीक्षण-निरीक्षण तथा निष्कर्षों तक पहुंचने में अधिक शुद्धता पर जोर दिया । निःसंदेह इन सबने इतिहास-लेखन के कार्य को [illegible] कठिन तथा इतिहास-पठन को कम रोचक बना दिया । दूसरी ओर, चूंकि इस दृष्टिकोण ने साहित्यिक प्रतिष्ठा को बहुत कम महत्व दिया, अतः इतिहास - पुस्तकों की एक बहुत बड़ी संख्या की रचना उन व्यक्तियों द्वारा हुई जिनको इतिहास की लेखन-शैली का [illegible] ज्ञान ही नहीं था । उन्होंने इतिहास के नाम पर केवल तथ्यों का संकलन कर दिया था । फलस्वरूप मुद्रणालयों द्वारा इतिहास की अनेक अनगढ़, विकृत एवं अव्यवस्थित रचनाएं प्रकाशित हुई और इतिहास लेखन का कार्य एक अत्यन्त साधारण कोटि का कार्य बन गया ।

किंतु इतिहास संबंधी इस कठोर [illegible] एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध एक तीव्र [illegible] प्रतिक्रिया भी दो दिशाओं में हुई । मुख्यतया के अधिकांश प्राकृतिक दार्शनिकों का उत्तर था कि इतिहास विज्ञान से बहुत कम है और साहित्यिक इति[illegible]कारों का कथन था कि यह विज्ञान से बहुत अधिक है ।

पहले वर्ग के [illegible] का यह तर्क था कि विज्ञान की आधारभूत सामग्री के [illegible] की [illegible] अनिश्चित और अनिर्धारणीय होती है, इतिहास के [illegible] तथ्य का प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं हो सकता है, क्योंकि [illegible] है, प्रत्येक ऐतिहासिक घटना अपने ढंग की अकेली होती है और किसी भी स्थिति में उसकी [illegible] नहीं [illegible] जा सकता, अतः उसके बारे स्पष्ट [illegible] का न तो निर[illegible] सामान्यीकरण किया जा सकता है और न इतिहास के [illegible] की [illegible] की जा सकती है। [illegible] की

सामग्री अपेक्षतया जटिलतर होती है, इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतवैभिन्न्य है कि क्या गौण है और क्या महत्वपूर्ण है, इतिहास में आकस्मिकता का तत्व ऐसा है जो उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया को असत्य सिद्ध कर देता और भविष्य-कथन असम्भव हो जाता है, और इन सबसे महत्वपूर्ण है व्यक्ति का अस्तित्व और उसके स्वेच्छाकृत प्रयास, जिनके कारण इतिहास को वैज्ञानिक भित्ति पर स्थापित करने की चेष्टा विफल सिद्ध होती है[1]।

दूसरे वर्ग के साहित्यिक इतिहासकारों का कथन था कि इतिहास विज्ञान हो या न हो, वह कला अवश्य है। विज्ञान, अन्वेषण तथा अनुसंधान द्वारा अधिक से अधिक इतिहास का कंकाल ही प्रस्तुत कर सकता है, उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने तथा सजीव बनाने के लिए साहित्यकार की कल्पना आवश्यक है। और जब कंकाल एक बार सजीव हो जाता है तो उसे सुरुचिपूर्ण [illegible] देने एवं प्रभावशाली बनाने के लिए कुशल लेखक की निपुणता आवश्यक होती है। वैज्ञानिक की मनोराग-रहित निस्पृहता इतिहास के लिए अपर्याप्त और अवांछनीय है क्योंकि उसका विषय है चेतन्य व्यक्तियों का क्रिया कलाप। प्रसिद्ध इतिहासकार जी० एम० ट्रेवेल्यन के अनुसार "जो व्यक्ति स्वयं ही मनोराग अथवा उत्साह से रहित है, वह दूसरे के मनोरागों पर शायद ही कभी विश्वास कर सकेगा और उन्हें समझ तो कभी नहीं सकेगा[2]।"

प्रश्न उठता है कि वे कौन से प्रमुख प्रभाव थे जिन्होंने वैज्ञानिक इतिहासकारों को इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या पर आग्रह के लिए बाध्य किया। वैज्ञानिक युग की प्रवृत्ति को देखते हुए इस प्रश्न का उत्तर सहज ही

१- [illegible] शर्मा: साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ० ५

2. The man who is himself devoid of emotion or enthusiasm can seldom credit and can never understand, the emotions of others, which have none the less played a principal part in cause and effect.

—G.M. Trevelyan: Clio Rediscovered (Varieties of History by Fritz Stern, page 234).

दिया जा सकता है । प्रथमतः तो इस वैज्ञानिक युग की यथार्थता, शुद्धता, एवं वस्तुपरकता पर बल देनेवाली प्रवृत्ति ने इतिहास की वैज्ञानिक विशेषता पर बल देने के लिए प्रेरित किया, फिर जर्मन चिन्तकों का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा । किन्तु जो सबसे महत्वपूर्ण बात थी और जिसका प्रभाव सर्वाधिक, एवं अतिव्यापक रूप से पड़ा, वह थी भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ । जैसा कि ट्रेवेल्यन ने लिखा है कि "विज्ञान ने मानव जाति की आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की कायापलट दी थी और शिक्षित व्यक्तियों के धार्मिक तथा विश्व-विज्ञान संबंधी दृष्टिकोण में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था । भौतिक विज्ञान की इन आश्चर्यजनक उपलब्धियों ने, पचास वर्ष पहले तक, बहुत से इतिहासकारों को इस बात को मानने के लिए प्रेरित किया कि यदि इतिहास को विज्ञान मानकर वैज्ञानिक पद्धतियों एवं आदर्शों से कार्य किया जाय तो इतिहास के महत्व तथा मूल्य में अभिवृद्धि हो जायेगी[1] ।" इसी सन्दर्भ में ट्रेवेल्यन ने प्रतिक्रिया स्वरूप अपना दृष्टिकोण भी व्यक्त करते हुए लिखा है- "मेरा विश्वास है कि यह अनुरूपता (इतिहास और विज्ञान की) अठीक है । क्योंकि मानव जाति का अध्ययन, परमाणु के भौतिक गुणों के अध्ययन अथवा, जीव-जन्तुओं के जीवन इतिहास के अध्ययन के अनुरूप नहीं होता । यदि आपने किसी एक परमाणु के विषय में ज्ञान लिया तो सभी परमाणुओं के विषय में ज्ञान लिया, और एक तितली के स्वभाव के विषय में जो कुछ सत्य है वही लगभग सभी तितलियों के स्वभाव के विषय में भी सत्य है । किन्तु एक व्यक्ति का जीवन इतिहास अथवा बहुत से अलग-अलग व्यक्तियों के जीवन इतिहास भी अन्य व्यक्तियों के जीवन इतिहास को नहीं बता सकते । इसके अतिरिक्त, आप किसी एक व्यक्ति के जीवन चरित्र का पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं

---

1. Science had transmuted the economic and social life of mankind, and had revolutionised the religious and cosmological outlook of educated world. These astonishing achievements of physical science led many historians, fifty years ago, to suppose that value and importance of history would be greatly enhanced if history was called a science, and if it is adopted scientific methods and ideals and none others.

कर सकते । वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए मनुष्य बहुत ही जटिल, आध्यात्मिक और भिन्न विविध है और एक व्यक्ति के जीवन-इतिहास से हजारों लाखों व्यक्तियों के जीवन-इतिहास का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । इतिहास वस्तुतः प्राप्तव्य तथ्यों के आधार पर अधिकांशतः अपूर्ण अनुमान का विषय है । और यह उन बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का वर्णन करता है जिन्हें किसी विश्लेषण के अधीनस्थ नहीं किया जा सकता और न उस विश्लेषण को उचित अर्थ में विज्ञान ही कहा जा सकता है[1]।

हमारे सम्मुख, अब, इतिहास संबंधी दो विरोधी धारणाएं प्रस्तुत हैं- प्रथम, इतिहास एक विज्ञान है, न इससे कम, और न इससे अधिक (Bury) दूसरी, इतिहास, ज्ञान की व्यवस्थित शाखा नहीं है (एडवर्ड मेयर) । अब हमें देखना है कि इन दोनों धारणाओं में वस्तुतः कौन सत्य है ?

यहाँ यह निर्देश कर देना उचित होगा कि आजकल "विज्ञान" शब्द का प्रयोग विशेषकर ऐसे विशुद्ध विज्ञानों के लिए होता है जो प्रदर्शनीय अथवा परीक्षित तथ्यों तथा उनके व्यवस्थित ढंग से वर्गीकरण के आधार पर खोजे गये ऐसे सामान्य नियमों के प्रति [illegible] होते हैं जिनसे अज्ञात तथ्यों के आधार पर विश्वसनीय निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । इस प्रकार के व्यवस्थित

1- I believe that this analogy was faulty. For the study of mankind does not resemble the study of the physical properties of atoms, or the life history of animals. If you find out about one atom, you have found out about all atoms, and what is true of the habits of one robin is roughly true of the habits of all robins: But the life history of one man or even of the many individual men, will not tell you the life history of other men. Moreover you cannot make a full scientific analysis of the life history of one man. Men are too complicated, too spiritual, too various, for scientific analysis, and the life history of millions cannot be inferred from the history of one man. History, in fact, is more a matter of rough guessing from all the available facts. And it deals with intellectual and spiritual forces which cannot be subjected to any analysis that can properly be called scientific.

विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है भौतिक विज्ञान । "विज्ञान" (Science)
शब्द का मूलतः अर्थ है ज्ञान का व्यवस्थित समुदाय[1]। और इसी अर्थ में "नीति-
विज्ञान"(नैतिक शास्त्र), धर्मशास्त्र विज्ञान (Theological Science)
में "विज्ञान" शब्द का प्रयोग होता है । किन्तु ऐसे विज्ञानों से निकाले गये
"निष्कर्ष" शायद ही ऐसे हों जिन पर पूर्ण रूप से विश्वास किया जा सके ।
लेकिन जिसे निश्चित, शुद्ध विज्ञान कहा जाता है वह भी एक अर्थ में उतना निश्चित
नहीं होता । नवीन घटना-व्यापारों की खोज या नवीन शोध, पूर्व सिद्धांतों
में हमेशा परिवर्तन लाते रहते हैं । तब फिर, सामाजिक विज्ञानों तथा अन्य अनु-
शील -विषयों जैसे अर्थशास्त्र, नृविज्ञान, मनोविज्ञान के सम्बन्ध में ही क्या कहा
जाय ? यहां केवल यही कहा जा सकता है कि इतने संकुचित अर्थ में "विज्ञान"
को सीमित कर देना, स्पृहणीय नहीं है । सामाजिक विज्ञानों में न तो १९वीं
शताब्दी के भौतिक विज्ञान की कठोर नियमितता रहती है और न तो, इसी
कारण, २०वीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान में ही कोई कठोर नियमितता है ।
तब फिर वह क्या है जो इतिहासकार के मस्तिष्क में पैठकर उसे इतिहास को
विज्ञान मानने अथवा न मानने के लिये बाध्य करती है ? ए०एल० राउज़ (A.L.
Rowse) के अनुसार वह वस्तु है इतिहासकार के मस्तिष्क में स्थित स्पष्टता
की भावना, निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठता, (यद्यपि कि मूलभूत अर्थ में भौतिक विज्ञान
में ही कौन सी वस्तु बच जाती है), ज्ञान के रूप में व्यवस्थित होने की एक निश्चित
क्षमता[2]।

---

1. R.G.Collingwood: The Idea of History, page 249.
2. I think they have at the back of their minds an idea of exactness, dependable objectivity (though in an ultimate sense what objectivity is there in Physics?) a certain capacity for being systematised as knowledge.

   - A.L.Rowse: Use of History page. 93.

इतिहास रचना की पद्धतियों के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों की यह दृढ़ धारणा है कि इतिहास - रचना में भौतिक विज्ञानों की पद्धति का अनुसरण करना चाहिये, जब कि कुछ चिन्तकों का विश्वास है कि इसको अपनी विशिष्ट विषय-वस्तु के कारण अपनी निजी पद्धति का अनुगमन करना चाहिये। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐतिहासिक अनुसंधान और अध्ययन के लिये वे पद्धतियां अधिक हितकर हैं जो यथासम्भव वैज्ञानिक अर्थात् निश्चित, कठोर एवं व्यवस्थित हैं। इतिहास संबंधी आधुनिक अध्ययन में ऐतिहासिक [illegible] के अधिक ठीक ढंग से परीक्षण-निरीक्षण करने की विधियों का बहुत अधिक विकास हो चुका है। एक समय जो इतिहासकार के कार्य-व्यापार के उपकरण मात्र थे वे अब अपने आप में एक विषय हो गये हैं; उदाहरणार्थ जैसे लिपि विज्ञान, कूटनीति, हस्तलेखों का अध्ययन, मुहरों के रूप आदि। पुरातत्व अपने आप में ज्ञान का भण्डार हो गया है और अपनी वैज्ञानिक पद्धतियों एवं अभिनव सूचनाओं द्वारा इतिहास-संरचना में योग दे रहा है। सांख्यिकी, अर्थशास्त्र, भूगोल, आदि अनेक ऐसे विषय हैं जो प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से इतिहासकार की सहायता करते हैं।

एच०पी०रिकमैन (H.P. Rickman) के अनुसार इतिहास भौतिक विज्ञानों की भांति एक अनुभूत(empirical) अनुशासन-विधा है और अन्वेषण की विविध पद्धतियों जैसे निरीक्षण, वर्गीकरण, और कल्पना के परिकल्पना और परीक्षण में उन्हीं के समान भाग लेता है[1]। इतिहासकार इन पद्धतियों का प्रयोग कर सकता है जो [illegible] शरीररचना-शास्त्र की पद्धतियों के समान होती है। जैसे शरीर-रचना विशेषज्ञ कुछ अस्थियों के आधार पर एक प्राणी के शरीर का पुनर्निर्माण करता है, उसी प्रकार इतिहासकार भी किसी मानव के [illegible], डायरी, टूटे-फूटे बर्तनों तथा [illegible] द्वारा उसके जीवन को पुन-

1. History, like the physical science, is an empirical discipline and shares with them many methods of inquiry such as observation, classification and the fr[illegible] and testing of hypotheses.
   - H.P.Ri[illegible]; [illegible] in [illegible] (Introductory part) Page 13.

निर्मित कर सकता है । अथवा इतिहासकार किसी संस्था को एक विकास-क्रम में रखकर वैसे ही प्रकाश डाल सकता है जैसे एक जीव-शास्त्री प्राणी की एक नस्ल पर डालता है । इतिहासकार विभिन्न वर्गों की उन्नति-अवनति अथवा आर्थिक परिवर्तनों का परीक्षण करते समय अनुमान अथवा सांख्यकीय पद्धतियों का भी प्रयोग कर सकता है । इस प्रकार इतिहास की पद्धतियों में वैज्ञानिक पद्धतियों की बहुत सी सम्भावनाएं निहित हैं ।

निसन्देह, इतिहास और विज्ञान के इस बीच में विभिन्नताएं भी हैं । मानव के क्रिया-कलाप, भौतिक कार्यावस्थाओं की अपेक्षा अधिक जटिल, कठिनता से वि[illegible] तथा निश्चित प्रदर्शन के लिये कम अभिगम्य होते हैं । इस कारण [illegible]क्षण बहुधा असम्भव हो जाता है तथा प्रामाणिकता के परीक्षण और प्रत्यक्षता के सत्याभास के लिये वे केवल [illegible] रूप में ही प्रयुक्त किये जा सकते हैं । किन्तु कुछ [illegible] से अन्तर, एक सापेक्ष स्थिति के विषय हैं और सिद्धान्त के प्रश्नों को नहीं उठाते । फिर, भी इतिहास और विज्ञान में एक महत्व[illegible] भेद लक्षित किया जा सकता है । इतिहास का संबंध घटनाक्रम से होता है जि[illegible] प्रत्येक घटना अपूर्व होती है, जबकि [illegible]न का संबंध निश्चित क्रम, घ[illegible] की प्रत्यक्षता, तथा [illegible]न्य नियमों के [illegible]रचना तथा नियमों द्वारा निर्धा[illegible] नि[illegible]ओं के उत्पादन से होता है ।(यह भी, मूलभूत अन्तर की अपेक्षा [illegible]न्यास का विषय तथा अभिरुचि का केन्द्र अधिक जान पड़ता है) वैज्ञानिक को अपने कार्य के [illegible] विशि[illegible] प्रयोगों को स्पष्ट करना और कभी विशिष्ट [illegible] - जैसे सौर-प्रणाली का उद्भव अथवा मानव का विकास-के [illegible] का विस्तृत रूप से वर्णन करना आवश्यक है, यद्यपि कि उसका मुख्य [illegible] उसी [illegible] नियम से ही होता है । दूसरी ओर, [illegible]कार के लिये बार-बार घटित होने वाली [illegible] के प्रवृत्तों, युद्धों, क्रान्तियों, [illegible] के [illegible], अथवा क्रान्ति वि[illegible] संस्थाओं का वर्णन करना आवश्यक है, यद्यपि भी उसका [illegible] घट[illegible] के अपूर्व गुणों से उसका ही होना चाहि-[illegible] इसके बीच भी [illegible] है । अतएव यदि हम ऐतिहासिक पद्धति-

अप्रतिरूप घटनाओं की शृंखला का प्रस्तुतीकरण - तथा वैज्ञानिक पद्धति- जिसकी की व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ग्राह्यता - के बीच मूल दृष्टि से अन्तर करें और फिर इन पर थोड़ा सा संयत ढंग से विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इतिहास और विज्ञान की वास्तविक नियमानुशीलताएं (Discipline) दोनों पद्धतियों के सा[illegible] रूप में परस्पर उपयोगी होंगी ।

ऐतिहासिक पद्धति तथा वैज्ञानिक पद्धति में ऊपर जो अन्तर स्पष्ट किया गया है वह बहुत कुछ ऊपर-ऊपर का है । दोनों में एक आन्तरिक अंतर भी है जो ऐतिहासिक पद्धति के संदर्भ में एक ऐसा अवैज्ञानिक तत्व है जो उतना ही महत्वपूर्ण है जितना वैज्ञानिक तत्व । वह तत्व है इतिहासकार का अपने विषय एवं उपकरणों से सहानुभूति । जैसे एक कुशल शिल्पी को अपने निमित से, [illegible]ार को मि[illegible]टी से, संगतराश को पत्थर से सहानुभूति एवं राग रहता है, वैसे ही इतिहासकार को भी अपने विषय एवं उपकरणों से राग होता है । इस [illegible] की [illegible] की ताकत इस बात की ओर इंगित करती है कि वह किन बातों से सतर्क रहे और किन बातों का [illegible]न्वेषण करे । कोई व्यक्ति अपनी ही कला या शिल्प के [illegible] एवं अभ्यास द्वारा अनेक अचेतन सहायताओं का मूल बीज [illegible] है । और अन्त में उसके भीतर एक ऐसी उदात्त कल्पना, आन्तरिक दृष्टि (Intuition) उत्पन्न हो जाती है जो [illegible] किसी [illegible] का स्प[illegible]करण कर देती है । यहां कोई उसकी मनोवैज्ञानिक व्या[illegible] नहीं कर सकता, यद्यपि उसकी [illegible] व्याख्या सम्भव हो सकती है, किन्तु वह आगे के लिये बाध्य है, वह किस तरफ जायेगी, इसकी भविष्यवाणी कोई नहीं कर सकता[1] ।

---

1. Even so, even in the realm of historical method, there is non-scientific element that is just as important. There is the feeling for material such as any good craftsman mus[t] have for the medium he is working in, the potter for the clay, the mason for the stone..... There is sympathy of mind, love of the subject in and for itself, that kind of understanding that tells you what to beware of and what to look for; one derived all sorts of unconscious aids from the practice of one's craft...There is in the end, intuition: that leaps of the mind, that suddenly [illegible] the explanation. One [illegible] [illegible] it

इतिहास के विषय-वस्तु के संबंध में,(यह बात अपने आप में), यह परिस्थिति और भी जटिल है । जैसा कि ए०एल० रौज़ का मत है कि न तो बरी(Bury) के और न ट्रैवेल्यन(Trevelyan) के ही पृथग्भाव(exclusiveness) को स्वीकार किया जा सकता है[1]। इतिहास में विज्ञान का तत्व अवश्य है, परन्तु प्रश्न है उसके पृथक करने का और यह कहने का कि वह क्या है और क्या नहीं है । इतिहास, किसी भी हालत में असंबद्ध, वैयक्तिक तथ्यों अथवा अस्त-व्यस्त अक्रमिक घटनाओं का समवाय नहीं है । सभी इतिहासकारों ने, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के रहे हों, कोई न कोई निष्कर्ष निकाला है और अपने वर्ण्य - विषय से सामान्य नियमों का निर्धारण किया है । यह बात हमें इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि विषय की प्रकृति क्या होनी चाहिये । अन्य सामाजिक विज्ञानों – जैसे भूविज्ञान, मनोविज्ञान की भांति इतिहास भी विवरणात्मक है, किंतु उसके कुछ सामान्य नियम भी होते हैं जो क्रमिक रूप से घटित होने वाली घटनाओं में देखे जा सकते हैं । इतिहास के तथ्य, अस्त-व्यस्त कंकड़ों की तरह, पृथक्कृत नहीं होते, वे प्रत्येक दिशा में विकास की श्रृंखलाओं से संबंधित होते हैं कार्य-व्यापार की एक अवस्था, दूसरी अवस्था को जन्म देती है तथा अपने पूर्व की अवस्था से उत्पन्न होती है, वे कारणतः परस्पर जुड़ी रहती हैं । इस बात का कि कारण साधारण अथवा एकपक्षीय नहीं है, यह अर्थ नहीं होता कि वह (कारण) वहां नहीं है, इसका केवल यही अर्थ है कि वह अवस्थाओं को सुलझाने अथवा उनका स्पष्टीकरण करने के लिये अधिक दुर्बोध एवं जटिल है । यही कारण इतिहास में बोधगम्य-हीनता एवं अगम्यता दिखाई देती है ।

जीवन में जो व्यवस्था है, इतिहास अपने आप में उससे भेद्य कोई विषय, कोई व्यवस्था नहीं रखता, इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें कोई व्यवस्थित तत्व है

---

1. And again, with regard to content of history, the matter in itself, the situation is complex. I do not accept the the exclusiveness of either Bury on one side or Trevelyan on other side.

– Use of History, page 95.

ही नहीं । उसमें कुछ ऐसे तत्व अवश्य हैं जो वैज्ञानिक विश्लेषण के योग्य हैं । किसी देश की जनता, उसकी जनसंख्या एवं सामाजिक विशेषता उस देश के इतिहास में तथा इतिहासकार के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है । प्रश्न उठता है कि इतिहास-लेखन में इतिहासकार व्यवस्थित-अव्यवस्थित तत्वों को एक साथ कैसे संजोये ? इसका उत्तर है इन दोनों पद्धतियों द्वारा जो परस्पर गुम्फित रहती हैं । एक पद्धति बौद्धिक और वैज्ञानिक है तथा दूसरी अन्तर्दृष्टीय एवं सौन्दर्यात्मक है । उनमें परस्पर विरोध नहीं वरन् वे एक दूसरे की पूरक हैं, एक दूसरे को प्रदीप्त करने वाली हैं । इतिहास का अथवा ऐतिहासिक रचना एवं अध्ययन का [illegible] रहस्य, इतिहासकार की दृष्टि की द्वैतावस्था में सन्निहित रहता है। वह सर्वदा अपने विषय को दो दृष्टियों से देखता है - एक दृष्टि है विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक तथा दूसरी है वर्णनात्मक एवं सौन्दर्यात्मक । गिबन के पास अपने आंकड़े तथा अपने सामान्य नियम थे, किन्तु उसके पास एक कला भी थी, एक सौन्दर्यबोध भी था जिसके कारण वह जीवन का चित्र प्रस्तुत करने तथा सहानुभूति पैदा करने में सक्षम हो सका ।

इतिहास में विज्ञान का तत्व प्रधान रहे या कला का -यह विषय-वस्तु तथा इतिहासकार की रुचि पर निर्भर करता है । प्रारम्भिक मानव-इतिहास अथवा प्राग् इतिहास के विश्लेषण में [illegible] तथा वैज्ञानिक तत्व का सर्वाधिक योग है । वैयक्तिक कार्य-व्यापारों के विश्लेषण की अपेक्षा जन-समूह के कार्य-व्यापारों के विश्लेषण में इस तत्व का अधिक महत्व है । यद्यपि व्यक्ति के [illegible] में भी एक सीमा तक विज्ञान का तत्व है-अन्यथा मनोविज्ञान क्यों होता? और इसके वि[illegible] जन-समूह के अध्ययन में भी एक मूल्य-तत्व है - नहीं तो देशभक्ति, रा[illegible] और आत्म-बलिदान का अस्तित्व कहां रहता ? ये पीछे जटिल हैं और उनको [illegible]ना सहज कार्य नहीं है, फिर भी इतिहास की [illegible]ना को समझने के लिये दोनों तत्वों को मस्तिष्क में रखना आवश्यक है ।

ही उचित पद्धति है । किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहाँ आंकड़े संगृहीत करना, सामान्य नियम निर्धारित करना, नियमों से आबद्ध प्रवृत्तियों का निरीक्षण-परीक्षण करना ही उचित एवं संगत बात है । इतिहास के सामान्य क्षेत्र में भी कुछ सामान्य नियम सम्भव हैं । किसी समाज की आर्थिक परिस्थितियों अथवा विभिन्न वर्गों के सामाजिक सम्बंधों पर मुद्रास्फीति अथवा अपस्फीति के प्रभाव की ही बात लीजिये । इतिहास में कुछ अंशतक यह नियमितता के साथ देखा जा सकता है कि मुद्रास्फीति का क्या प्रभाव है । साथ ही हम यह अनुमान अथवा भविष्यवाणी भी कर सकते हैं कि वे क्या होंगे । मुद्रास्फीति एक वर्ग से दूसरे वर्ग तक अभ्यस्त दामों में एक हलचल पैदा कर देता है। जो नौकरी-पेशा वाले हैं और जिनकी आमदनी निर्धारित है वे घाटे में रहते हैं तथा आर्थिक दृष्टि से नीचे गिर जाते हैं, किंतु जिनकी सम्पत्ति वास्तविक अधिकार में है, जैसे भूमि, मकान आदि, उनको ऐसे समय में भारी लाभ होता है । यह नियम सभी प्रदेशों तथा कालों के लिए सत्य है । अपस्फीति का प्रभाव ठीक इसके विपरीत पड़ता है ।

केवल आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं इतिहास के अन्य क्षेत्रों में भी अन्य सामान्य प्रवृत्तियाँ दृष्टव्य हैं । जैसा कि बरी का विचार है, ये प्रवृत्तियाँ नियमित हैं और नियमों से भिन्न नहीं हैं । जब किसी देश की जनता सहयोग शक्ति और [illegible] की एक निश्चित सीमापर पहुंच जाती है तो अन्य देश के लिए वहाँ की जनता की उपेक्षा के लिए अभिभूत कर देना असम्भव सा हो जाता है । यह राष्ट्रीयता एक अवरोध्य शक्ति होती है जो इतिहास से निकाले गये नि[illegible] के रूप में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । अपने देश "भारतवर्ष" की राष्ट्रीयता इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

अब [illegible]त्मकता एवं कलात्मक [illegible] के विपरीत इतिहास में वैज्ञानिक तत्व-[illegible]त्मकता तथा यौक्तिकता- किस सीमा तक है, इस पर विचार निर्णय करने के लिए समूह और व्यक्ति का विशेष महत्व [illegible] है । जन समूह के [illegible]आधार ही वे [illegible] हैं जिन पर [illegible] विश्लेषण पद्धति अधिक [illegible] है । व्यक्ति अधिकांशतः अज्ञात, [illegible] होता है, किन्तु वह भी अब

पूर्णरूप से अज्ञात नहीं रह गया । अन्यथा मनोविज्ञान की स्थिति ही कहां रहती अथवा सार्वजनीन रूप से "मानवप्रकृति के ज्ञान" का प्रश्न कहां से उठता ? यदि हम व्यक्ति की इच्छाओं, उसकी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं से कुछ अंशों को जान जांय, इससे भी अधिक यदि हम उसकी कुछ मानसिक ग्रंथियों का ज्ञान प्राप्त कर लें - क्योंकि वे उसके अवचेतन मन की प्रक्रियाओं को उद्घाटित करती हैं - तो हम उसकी व्यव[illegible]र - पद्धति के संबंध में बहुत कुछ जान जायेंगे । समूह के संबंध में हमारा ज्ञान अधिक निश्चित है, क्योंकि अधिकांश मनुष्यों के संबंध में वैयक्तिक भेद तथा स्वभावगत वि[illegible]ताएं समान समझ ली जाती हैं और वे बहुत कुछ उन शक्तियों के अनुरूप कार्य करते हैं जो उन्हें प्रभावित करती हैं । किसी भी आगंतुक देश के जीवन अस्तित्व को कोई धमकी दें तो समूचा देश एक बनकर उससे लोहा लेने के लिये कटिबद्ध हो जायेगा । इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे । किसी भी देश अथवा जाति के दमन का प्रयत्न करने पर एक निश्चि[illegible] प्रक्रिया होगी । इसी प्रकार किसी मजदूर वर्ग की मजदूरी कम करने पर अथवा किसी सामाजिक वर्ग विशेष की सम्पत्ति ले लेने का प्रयत्न करने पर, मेरा अनुमान है, एक निश्चित विश्वसनीय प्रतिक्रिया होगी, यद्यपि कि उस प्रतिक्रिया की प्रकृति एवं प्रभावशालिता, उस जन-समूह की शक्ति, उसकी आन्तरिक एवं बाह्य अवस्थाओं , उसकी अवरोध-शक्ति आदि पर निर्भर करेगी ।

इतिहास में सामूहिक - कार्य - व्यापारों के सम्बन्ध में जिस बात की चर्चा करना मेरा यहां लक्ष्य है और जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और संवैधानिक [illegible] तथा [illegible] के संबंधों में भी प्राप्य है, वह है जन-समूह के व्यवहार का अ[illegible]मानित पक्ष । यहां उनके व्यक्ति[illegible] रूपों- जैसे पिता का रूप, या कलाकार का रूप या प्रेमी का रूप आदि - से कोई मतलब नहीं है । वे सब उनके चरित्र के व्यक्[illegible] पहलुओं से सम्बन्धित हैं और सम्भवतः सामाजिक इतिहास के अतिरि[illegible] अन्य किसी इतिहास से उनका [illegible] कड़ी [illegible] से जोड़ा जा सकता है । किन्तु [illegible] के [illegible] व्यव[illegible]र के इस क्षेत्र में यह स्वीकृ[illegible] है कि कोई [illegible] [illegible] सिद्धान्त बना सकता है और एक सीमा तक भविष्यवाणी की जा सकती है । [illegible]

विशिष्ट गुण रखकर भी उसके अंग ही रहेंगे, वे उस जन-समुदाय के विशिष्ट गुणों की सीमा से बाहर नहीं किये जा सकते । वे सब अपने भौतिक एवं सामाजिक परिवेश द्वारा सीमित तथा परिबद्ध रहते हैं । मनुष्य, वास्तव में, एक सामाजिक निर्मिति है । जाति और देश, धर्म और परिवार, मित्र और शिक्षालय जैसा उसे बनाते हैं वैसा वह बनता है और उसी रूप में, वह विश्लेषण के योग्य है । इतिहास में वैयक्तिक कार्यों के निरीक्षण के लिये यही व्यावहारिक एवं समुचित दृष्टिकोण है । व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को विशिष्टता रखते हुए भी इनसे परे नहीं हो सकता ।

किन्तु, इतिहास के सम्बन्ध में सर्वाकालीन रूप से सिद्धान्त स्थिर करना भी अधिक खतरे की चीज है । समस्या उस समय खड़ी होती है जब कि मानवीय घटनाओं की विविधता किसी [illegible]र के प्रतिबन्धात्मक ढाँचे में बलात्पूर्वक बिठाई जाती है । ऐसा करना इतिहास की वास्तविक प्रकृति के विपरीत जाना है । क्यों[illegible] हर घटना नियम से नहीं बाँधी जा सकती और यदि किसी नियम से बाँधी भी जा सकती है तो उस नियम तक हमारी पहुँच नहीं है और न हमें उसका ज्ञान है । ऐसी घ[illegible]नाओं को मात्र आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित कह कर ही संतोष कर लेना पड़ता है ।

जैसा ऊपर संकेत किया गया है कि इतिहास में एक महत्व[illegible]ण बौद्धिक व्यवस्था है और जन-आन्दोलनों का निरीक्षण करते समय यह व्यवस्था अपने वैज्ञानिक रूप में देखी जा सकती है । अत्यन्त संशयवादी डा[illegible] ह्यूम भी बहुत कुछ ऐसा ही सोचता है । यहाँ उसका मन्तव्य दृष्टव्य है - "जो निर्णय कुछ व्यक्तियों पर आधारित होता है वह प्रायः आकस्मिक अथवा र[illegible]स्यमय, अज्ञात कारणों के अधीन है और जो [illegible] व अधिकांश व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है उसे उत्तरदायी प्रायः निश्चि[illegible] एवं ज्ञात कारण हो सकते हैं ।[1] इस [illegible] से [illegible] से [illegible] [illegible] सिद्धांत

1. What depends upon few persons, is in a great measure to be ascribed to chance, or secret and unknown causes; what arises from a great number may often be accounted for by determinate and known causes.

(की प्रकृति) के सदृश होते हैं । एक व्यक्ति के विश्लेषण के आधार पर किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालना असम्भव है, किन्तु अधिक व्यक्तियों के विश्लेषण द्वारा सामान्य नियम निर्धारित किया जा सकता है ।

इतिहास-दर्शन के प्रमुख [illegible] डिल्थे ने प्राकृतिक विज्ञानों तथा मानव-अध्ययनों के बीच एक विशिष्ट अन्तर दिखाया है । उसका मन्तव्य है कि १९वीं शताब्दी के अनुभववादियों तथा प्रत्यक्षवादियों - जैसे मिल, स्पेंसर, तथा काम्टे - की यह धारणा गलत है कि प्राकृतिक विज्ञान के पूर्व-गृहीत सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ मानव-अध्ययनों के लिये बिना बदले वास्तविक रूप में हस्तान्तरित की जा सकती हैं । डिल्थे के अनुसार मानव-अध्ययन उस अर्थ में ज्ञान है जिस अर्थ में प्राकृतिक विज्ञान नहीं है, क्योंकि भौतिक वस्तुएं, जैसा कि हम जानते हैं, केवल बाहरी दिखावे हैं, जबकि मानव[illegible] वास्तविक यथार्थता है । यह न तो बाह् संसार की [illegible]वास्तविकता को अस्वीकार करने का प्रयत्न है और न प्राकृतिक विज्ञान की [illegible] को न मानने की बात है । ऐसी अनेक प्रमुख पद्धतियाँ हैं जिनसे हम भौतिक प्रकृति को अच्छी तरह जानते हैं अपेक्षाकृत मनुष्य अथवा समाज के जानने के मनुष्य अथवा समाज के अध्ययन की अपेक्षा भौतिक प्रकृति के [illegible]ध्ययन में हम वर्णन और विश्लेषण, [illegible] और भविष्य कथन अधिक निश्चितता से कर सकते हैं । दूसरी ओर, हम भौतिक वस्तुओं की प्रकृति और प्रक्रियाओं में [illegible] नहीं कर सकते जैसा कि मानवप्राणियों एवं [illegible] के संबंध में कर सकते हैं, जहाँ हमारे और अध्ययन-विषय के मध्य स्वरूपगत अथवा [illegible] तादात्म्य पर आधारित सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि हमें केवल बाह्य [illegible] तथा [illegible] के ही [illegible] के सम्मुख नहीं [illegible] वरन् उनके [illegible] [illegible] तथा सम्बद्ध व्यक्तियों के प्रति उनके अभिप्रायों एवं अर्थों की व्याख्या के सम्मुख भी [illegible] है । यही वह बात है जिसने डिल्थे को यह कहने के लिये प्रेरित किया कि [illegible] [illegible] एक अर्थ में [illegible]वास्तविकता का ज्ञान है जिस अर्थ में प्राकृतिक [illegible] नहीं है ।

डिल्थे का कथन है कि [illegible] की आधार [illegible] । केवल मस्तिष्क की [illegible] ही नहीं है वरन् इसी रूप में अनुभूत भी है, और यही इतिहास विज्ञा [illegible] और प्राकृतिक [illegible] में अन्तर स्पष्ट करता है । क्योंकि,

वस्तुओं एवं प्रक्रिया का निरीक्षण तो करता है किन्तु उनके भीतर की क्रिया-शीलता अथवा चेतनता तथा गत्यात्मक सम्बंधों का अनुभव नहीं करता । उनके कार्य-कारण सम्बन्धों का जो भी ज्ञान वह प्राप्त करता है वह केवल परिकल्पन तथा प्रयोग पर आधारित होता है और परोक्ष सिद्धान्त के रूप में रहता है । किंतु मस्तिष्क की घटनाएं ऐसी प्राणमय अन्तःप्रेरणाएं हैं जिनसे वे निःसृत होती हैं और जिन पर वे निरन्तर प्रत्याघात करती हैं । उन्हें एक गत्यात्मक प्रक्रियाओं के रूप में देखे बिना हम उनका बिल्कुल निरीक्षण नहीं कर सकते । उनको ऐतिहासिक कहने का, वस्तुतः यही अभिप्राय है । मस्तिष्क उसी को समझ सकता है जिसका उसने सृजन किया है । प्रकृति अथवा प्राकृतिक विज्ञान की अविज्ञात विषयवस्तु इस वास्तविकता को अंगीकार करती है जो मस्तिष्क की क्रियाशीलता में से स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होती है । प्रत्येक घटना जिस पर मनुष्य ने अपने कार्यों से मुहर लगा दी है, मानव-अध्ययन का विषय बन जाती है[1] ।"

जैसा कि उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है डिल्थे ने प्राकृतिक विज्ञानों एवं मानव-अध्ययनों की पद्धतियों के बीच अति कठोर अन्तर बना रखा है । वस्तुतः कुछ और मूलरूप में, ऐतिहासिक पद्धति और वैज्ञानिक पद्धति में एक सीमा तक कोई अंतर नहीं है । दोनों में विभिन्न तथ्यों के संग्रह से सामान्य नियमों का निर्धारण किया जाता है और फिर नियमों के आधार पर सामा[illegible] तथ्यों का नि[illegible] किया जाता है । इतिहास और [illegible] दोनों शून्य से नहीं, वरन् [illegible]न्य ज्ञान तथा वाह्य [illegible]ान से प्रारम्भ होते हैं । और जैसे - जैसे [illegible] ज्ञान आगे बढ़ता है, वैसे - वैसे ज्ञान के अनुसार हमें अपनी धार[illegible] एवं [illegible]ान में संशो[illegible] करना पड़ता है । सामान्य नियम इसी प्रकार बनाये जाते हैं और वे [illegible] जो तथ्यों की व्याख्या करते हैं, बहुधा महत्व प्राप्त कर लेते हैं । किंतु विज्ञान और इतिहास दोनों में नवीन [illegible] [illegible]णा के प्रकाश में सामान्य नियम सदैव संशोधित भी होते हैं और तथ्यों के सामंजस्य में निरंतर सुधारे भी जाते हैं ।

---

1. A.L.Rowse: The use of History, page 107-108.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास के अध्ययन में प्राकृतिक विज्ञानों के तत्व हैं अर्थात् इतिहास की सीमा में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ वैज्ञानिक पद्धति अधिक संगत एवं उपयुक्त होती है । भौतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों तथा मानव-जीवन पर उनके प्रभाव के अध्ययन में, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों और समाज में जन-समूह के व्यवहारों एवं सापेक्षिक व्यवस्था पर उनके प्रभाव के विश्लेषण में, सामूहिक कार्यों के विभिन्न पक्षों के समझने में, यहाँ तक कि एक सीमा तक व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विवेचन में भी वैज्ञानिक पद्धति उपयुक्त एवं संगत है ।

किन्तु अन्ततोगत्वा इतिहास विश्लेषण के ये बौद्धिक प्रयास केवल बाह्य हैं । इतिहास की अन्तरात्मा, उसकी अनुभूति कहाँ है इसका ज्ञान इनके द्वारा बहुत कम सम्भव है । इतिहास की यह अन्तरात्मा मनुष्य की आत्मा में स्थित रहती है, यह स्वयं जीवन का प्रकाश है और इसका चित्रण केवल कला द्वारा ही सम्भव है । किसी भी देश के अतीत कालीन विचारों, भावनाओं एवं जीवन पद्धतियों की पुनर्प्राप्ति अत्यंत ही कठिन, दुर्बोध एवं शैक्षणिक कार्य है । यह अनुमान पर आधारित सिद्धांतों के धागे और गढ़न करने से अधिक महत्वपूर्ण एवं कठिन है । किसी भी देश के अतीत के जीवन, व्यक्ति अथवा जन-समुदाय का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने के लिये ज्ञान और कार्यनिष्ठता की आवश्यकता पड़ती है । ऐतिहासिक प्रमाण सत्य की जानकारी कराते हैं, किंतु इसके लिये अत्यंत सूक्ष्म अन्तर्भेदी दृष्टि, व्यापक सहानुभूति, सत्कल्पना और अन्त में वर्णन विधि में अतीत के जीवन को सजीव बनाने की कला अत्यन्त आवश्यक है, जिसके अभाव में इतिहास मात्र एक संवाद रह जाता है[1] । इतिहासकार का कार्य एक

---

1. To recover some of our ancestor's real thoughts and feelings is the hardest, subtlest, and most educative function that the historian can perform. It is much more difficult than to spin guesswork of generalisations. To give the true piccture of any country, or men or group of men in the past requires industry and knowledge, for only the document can tell us the truth, but it requires also insight, [illegible]y and [illegible]ination of the finest and the last but not least the art of making our ancestors live [illegible]n in modern narrative— G.M.Trevelyan: Clio [illegible] (Varieties of History, Page 235.)

दर्शन" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्तेयर ने १८वीं शताब्दी में किया । इस शब्द से उसका अभिप्राय केवल आलोचनात्मक अथवा वैज्ञानिक इतिहास से था। इस शताब्दी के अन्त में हीगेल तथा अन्य लेखकों ने भी इस शब्द का प्रयोग "विश्व-इतिहास" के अर्थ में किया । १९वीं शताब्दी में परीक्षणात्मक यथार्थवाद के प्रचलन के फलस्वरूप इतिहास को परीक्षणात्मक विज्ञानों की सूची में सम्मिलित कर लिया गया । इस दृष्टिकोण से "इतिहास-दर्शन" ऐतिहासिक घटनाक्रम में पुनरावृत्त सामान्य नियमों का अनुसंधान समझा जाने लगा । २०वीं शताब्दी के कुछ चिन्तकों ने इस परीक्षणात्मक दृष्टिकोण का विरोध किया और प्राकृतिक विज्ञानों की [illegible] पद्धति की तुलना में इतिहास के अध्ययन को भ्रांति मूलक समझा ।

इतिहास-दर्शन के संबंध में हम कोई भी [illegible]ष्टिकोण ग्रहण करें, यह तो मानना ही पड़ेगा कि मानवता के अतीत के अनुभव[illegible] के अपरिमित [illegible] को किसी नियमित आधार पर प्रतिष्ठित करके मानव-कार्य-कलाप के [illegible] स्थिति को एक समन्वयात्मक दृष्टि से देखना आवश्यक है । इस विचारधारा के अनुसार ऐतिहासिक अध्ययन की दिशा वैयक्तिक तथ्यों, एवं घटनाओं, के स्थान पर सार्वजनिक प्रवृत्तियों की ओर बढ़ जाती है और घटना[illegible], [illegible]-करणों की [illegible] की कड़ियों का महत्व ग्रहण कर लेती हैं । वस्तुतः मानव के क्रिया-कलाप में [illegible] सहित [illegible] सम्बंध - भावनाएं सन्नि[illegible] रहती हैं । अतः इन पर आधारित ऐतिहासिक घटनाएं सूक्ष्म तथा [illegible] संबंध-परम्पराओं से परिचित होती हैं । जैसे - जैसे उनके विकास में [illegible] ज्ञान बढ़ता जाता है और उनका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होता जाता है वैसे - वैसे उनके सम्बंध - सूत्र [illegible] पर आने लगते हैं । [illegible]तिहासिक गवेषणा के [illegible] [illegible] और गम्भीरता के साथ - साथ घटना[illegible] जीवन के जटिल, दुरूह और अक्षुण्ण प्रवाह में [illegible] हो जाती हैं ।"काल का [illegible] ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम और क्रम की अर्थहीन [illegible] और परस्पराश्रित [illegible] से इतना [illegible] है कि इसके लिए उसका स्वतंत्र अस्तित्व कोई महत्व नहीं रखता ।

यह मानव विकास की मुख्य प्रवृत्तियों और दिशाओं के निर्धारण में दत्तचित्त है । उसका दृष्टिकोण निबन्धात्म , समन्वय प्रधान और व्याख्यापरक है और उसका ध्यान घटनाओं की प्रक्रिया, प्रवृत्ति तथा परम्परा पर केन्द्रित है[२] ।"

मानव-मस्तिष्क की चिन्तन पद्धति समानताओं, आवर्तनों, पारस्परिक सम्बंधों, नियमों और स्तरों पर आधारित है । यह घटनाओं अथवा तथ्यों को नियमों से परिसिद्ध कर तथा उनमें संतुलन स्थापित कर जितनी सुगमता से ग्रहण कर सकता है उतना स्वतंत्र रूप से नहीं । अतः इतिहास का अध्ययन करते समय अप्रत्यक्ष रूप से इतिहासकार के मन में उसके युग की प्रवृत्ति के अनुसार एक दर्शन समाविष्ट हो जाता है । डॉ० बुद्ध प्रकाश के अनुसार वस्तुतः यही इतिहास-दर्शन है[१]। इतिहास को देखने की इतिहास के दार्शनिक की दृष्टि वैज्ञानिक इतिहासकार से बिल्कुल भिन्न होती है । वह इतिहास की [illegible] प्रक्रिया-धारा के सम्पूर्ण मानवीय घटनाओं के अभिप्रायों के भीतर एक अन्तर्दृष्टि विकसित करने का प्रयास करता है । वह विशिष्ट घटनाओं का अध्ययन नहीं करता वरन् ऐसे सामान्य नियमों अथवा आदर्शों का परिकल्पन करता है जिसके अनुसार इतिहास अपने लक्ष्य की ओर गतिशील होता है । स्थूल दृष्टि में, ऐसा सम्भव है, कि ये [illegible] असार, निरर्थक एवं कपोल-कल्पना जैसे लगे किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर इनमें ऐसे तत्व अवश्य मिलेंगे जो इतिहास को गतिशील बनाते हैं । सच बात तो यह है कि सम्पदाओं की अपेक्षा इन परिकल्पनाओं एवं विचारों ने [illegible] को अधिक [illegible] किया है, यह कहना असंगत न होगा कि सम्पदा तथा युद्ध-कथायें इन आदर्शों एवं विचारों के साधन रहे हैं और इन्हीं के द्वारा प्रकाश में आये हैं ।

अब हम कुछ विशिष्ट देशों और कालों में प्रमुख [illegible]-दर्शनों की चर्चा करेंगे जो इस संदर्भ में [illegible] लक्ष्य है ।

१- डॉ० बुद्ध प्रकाश: [illegible]-दर्शन, प्रस्तावना, भाग, पृष्ठ १० ।
२- वही, [illegible] भाग, पृ० १२ ।

भारतीय इतिहास-दर्शन:

यद्यपि प्राचीन भारतीय चिन्तकों तथा दार्शनिकों ने स्वतंत्र रूप से इतिहास-दर्शन के संबंध में अपना कोई मंतव्य नहीं प्रकट किया है और न किसी व्यवस्थित इतिहास परम्परा को ही जन्म दिया है, फिर भी धर्म और दर्शन के संदर्भ में इतिहास की तात्त्विक चर्चा यत्र-तत्र मिल जाती है ।

संक्षेप में भारतीय इतिहास-दर्शन को निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं:-

(१) प्रकृति और सृष्टि का अवयवित्व: समष्टि और व्यष्टि का एकीकरण:

हिन्दू-दर्शन के अनुसार सृष्टि और प्रकृति एक प्रकार के अवयवी भाव से सम्बंधित हैं । उनके सम्पूर्ण क्रिया-कलाप परस्पर इस प्रकार आश्रित हैं कि उनका प्रत्येक पक्ष उनके समस्त विधान की क्रिया पर निर्भर रहता है । उदाहरणार्थ जब एक बीज वृक्ष बनता है तो उसमें प्रकृति का समस्त तंत्र सक्रिय हो जाता है । उसका [illegible] जलवायु, भूमि तथा वातावरण की अनुकूलता पर निर्भर करता है । उसके विकास के वे कारण उतने ही प्रबल हैं जितनी बीज की शक्ति । [illegible] में इस विचार धारा की स्पष्ट व्याख्या की गयी है । इसके अनुसार कार्य-कारण की प्रक्रिया अवयवित्वमय [illegible] का प्रत्यक्षीकरण है । [illegible] का प्रत्यक्षीकरण अवयवों का भी प्रत्यक्ष[illegible] है । किसी वस्तु के विकास और निर्माण की प्रवृत्ति एक ओर उसकी अन्तर्निहित शक्ति का प्रत्यक्षीकरण है और दूसरी ओर अन्य [illegible] के विकास और [illegible] के [illegible] की कड़ी है[1] ।

[illegible] और [illegible] का [illegible] अन्योन्याश्रित एवं [illegible] है । वेदान्त के अनुसार हेतुत्व का अर्थ माया और [illegible] द्वारा ब्रह्म के विविध रूपों का [illegible] है[2] । बौद्ध दर्शन के अनुसार किसी भी

१- S.N.Das Gupta: 'Yog Theory of the relation of mind and Body' Cultural Heritage of India, part I, page, 3[illegible].

२- [illegible]: इतिहास दर्शन, पृ० १० ।

वस्तु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है । आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है । जो कुछभी इस सृष्टि में वर्तमान है अथवा दृष्टिगोचर होता है वह अक्षुण्ण प्रगति का स्वरूप है, अर्थात् सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अन्य सृष्टि के संविधान की परस्पराश्रितता को प्रतिपादित करती है[1]।

(२) "आदि पुरुष" और "विराट रूप":

भारतीय दर्शन में वर्णित प्रकृति के इस अवयवी दृष्टिकोण के प्रतीक ऋग्वेद(१०,९०) का आदि पुरुष और भगवद्गीता(११,१२-३४) का विराट रूप है।इसमें समस्त चराचर जगत की अभिन्नता प्रतिपादित की गयी है । एक [illegible] की अवयवी के माध्यम से प्राकृतिक शक्तियों और सामाजिक तत्वों का समन्वय किया गया है । जिस आदि पुरुष के चार अंगों से चारों वर्णों की उत्पत्ति होती है उसी के अन्य अंगों से प्राकृतिक शक्तियों की भी सृष्टि होती है[2]। इसीप्रकार गीता का विराट रूप सूर्य, मेघ, समीर आदि में सन्निहित है । वह जन्म,मृत्यु और काल है । उसके इंगित पर योद्धा युद्ध करते हैं और एक दूसरे का संहार करते हैं । व्यक्ति मात्र उसकी इच्छा का दास है, निमित्त मात्र है[3]।

(३) काल-चक्र:

पाणिनि के एक सूत्र (३,२,१२३) "वर्तमाने लट्" की व्याख्या करते हुए [illegible] ने काल-[illegible] अथवा महत्वपूर्ण एवं रोचक मत व्यक्त किया है । पतंजलि के व्याख्या के अनुसार भूत, वर्तमान और भविष्य सापेक्ष व्यवहार हैं। [illegible] का कोई अर्थ ही नहीं है, क्योंकि जिन पदार्थ का अस्तित्व हम स्वीकार करते हैं वे सदैव से ही वर्तमान रहे हैं । वर्तमान का अस्तित्व इसलिये भी

१- डॉ० बुद्ध प्रकाश: भारतीय दर्शन, पृ० ११ ।

२- ऋग्वेद, १०।९०।१२-१४ ।

३- भगवद्गीता ७।८-१०, ११।१२-३४ ।

है[1]। अतः युगों के परिवर्तन में मनुष्य की क्रियाशीलता प्रच्छन्न रूप से कार्य करती है ।

(५) नियतिवाद और परिणामवाद:

कुछ भारतीय दर्शन ऐसे हैं जिनमें प्रकृति की प्रक्रिया को यंत्र तुल्य मान लिया गया है । सांख्य के अनुसार विकास की प्रक्रिया एक निश्चित नियम के अधीन है जिसका उल्लंघन असम्भव है । यह परिणाम-क्रम का नियम है। अतः विकास की प्रक्रिया को नियमानुसार ही गतिशील होना पड़ता है[2]। आजीविक दर्शन में इस परिणामवाद को पूर्णरूप से यांत्रिक और दैवी माना गया है । इसके अनुसार समस्त प्रकृति नियति, संगति और भाव के नियंत्रण में अग्रसर होती है । नियति जीवन की अटलगति है, संगति [illegible] की क्रिया है और भाव प्रकृति का स्वरूप है[3]।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त कतिपय भारतीय दर्शनों के विवेचन से हम एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं।जैसा कि डॉ० बुद्ध प्रकाश का मत है कि यद्यपि कुछ दर्शन पूर्णतः नियतिवादी तथा ऐतिहासिक क्रम को यांत्रिक मानते हैं, कुछ व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसकी सृजनशीलता को भी महत्व देते हैं, किन्तु इस बात पर लगभग सभी दार्शनिक मत एक राय हैं कि व्यक्ति, समष्टि के अधीन है । इतिहास में व्यक्तियों का उतना महत्व नहीं है जितना प्रवृत्तियों का है । घटनाएं उतनी सारगर्भित नहीं हैं जितने आन्दोलन । यहां तक ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के एक निश्चित चक्र होते हैं[4]। इतिहास का विकास मानवता के दृष्टिकोण से

१- कालस्वभावान् भवति संविधा[illegible] दापर: ।
[illegible] सर्वेषां भवति पूर्वं [illegible] ॥
(ऐतरेय ब्रा० ३३।३,)

२- S.N.Dasgupta; History of Indian Philosophy, Part I, p.256.

३- [illegible] विचार धारा [illegible]), भाग १, पृ० ४३ ।

धर्म का उत्थान-पतन है[1]।

यूनानी-रोमन इतिहास - दर्शन:

इतिहास-लेखन के क्षेत्र में प्राचीन युग में यूनान और रोम का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है। हिरोडोटस (४८४ई०पू०), थ्यूसीडाइडीज (४५४ ई०पू०), पोलीबियस(२०५ ई०पू०), लिवी (५९ ई०पू०) और टेसीटस (५५ ई०पू०) इस युग के महान इतिहास-लेखकों में गिने जाते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक चेतना का मूल उद्गम इन महान् इतिहासकारों की कृतियों को माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। किन्तु लक्ष्य करने की बात है कि इन इतिहासकारों ने इतिहास लेखन की जिस प्रौढ़ एवं वैज्ञानिक पद्धति को जन्म दिया, उसमें इतिहास-दर्शन की दृष्टि का अभाव है। फिर भी यत्र-तत्र प्रयत्न करने पर इतिहास - दर्शन सम्बन्धी कुछ विचारकों की दृष्टि मिल जाती है।

यूनानी - रोमन- इतिहास -दर्शन की प्रमुख विशेषता मानववाद थी। इसका लक्ष्य मनुष्य के क्रिया-कलाप, सफलता - असफलता, उन्नति - अवनति आदि का सर्वांगीण अध्ययन था। इसमें सन्देह नहीं कि इस इतिहास-दर्शन ने दैवी तत्वों को स्वीकार किया है, किन्तु उनके कार्य कठोरता से सीमित है। इसके अनुसार दैवी सत्ता की इच्छाओं की [illegible] इतिहास में शायद ही कभी होती है और न मानव - कार्यों के विकास के लिये उनके पास कोई अपनी योजना ही होती है। वे केवल मानव-योजनाओं की सफलता-असफलता की स्वीकृति भर देते हैं[2]। यही कारण है, यूनानी इतिहास लेखकों ने अपनी इतिहास रचना में इन दैवी सत्ताओं के अंक में बैठे हुए मनुष्यों का नहीं वरन् अपनी सफलता-असफलता का बोझ ढोने वाले मनुष्यों तथा उनके मानवीय कार्य कलापों का वर्णन किया है।

१- डॉ० बुद्ध प्रकाश: इतिहास-दर्शन, पृ० १६-१७।

२- R.G.Collingwood : Idea of History, page 41.

ग्रीको-रोमन इतिहास-दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का मूल कारण मानव के व्यक्तित्व-चाहे वह वैयक्तिक हो अथवा समूहगत- में सन्निहित रहता है । मनुष्य स्वतंत्र है और अपने भाग्य का विधायक वह स्वयं ही है । वह चाहे तो अपनी बौद्धिक शक्ति एवं सामर्थ्य द्वारा सफलताएं प्राप्त कर सकता है और चाहे तो क्षणिक आघात से टूट सकता है । इस दर्शन के अनुसार इतिहास में जो कुछ भी घटित होता है वह मनुष्य की इच्छाओं का प्रत्यक्ष परिणाम है[1] ।

ईसाई इतिहास-दर्शन:

इतिहास-दर्शन का व्यवस्थित एवं स्पष्ट रूप हमें ईसाई विचारकों की चिन्तन पद्धति में उपलब्ध होता है । वस्तुतः,ईसाई विचारकों का इतिहास विषयक चिन्तन सही अर्थों में इतिहास-दर्शन नहीं है, वरन् धार्मिक इतिहास है। क्योंकि वह दैवी शक्ति अथवा ईश्वरीय ज्ञान पर आधारित है । आधुनिक योरोपीय इतिहास-दर्शन पर ईसाई-इतिहास-दर्शन का अत्यधिक प्रभाव है ।

ईसाई विचारकों एवं दार्शनिकों में सन्त आगस्टाइन(३५४-४३०ई०) का महत्वपूर्ण स्थान है । उनकी चिन्तनाओं का प्रभाव ईसाईमत के इतिहास विषयक दृष्टिकोण के निर्माण पर ही केवल नहीं पड़ा, वरन् कान्ट और हीगेल हाल तक-बैडल की परम्परा को भी उसने प्रभावित किया । अपने 'द सिटी आफ गाड' नामक पुस्तक में आगस्टाइन ने अपने इतिहास-विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है । आगस्टाइन के अनुसार विश्व का इतिहास सर्वशक्तिमान ईश्वर की लीलाओं का प्रदर्शन है, वह अपने मनुष्यों के वृत्तान्त ऐतिहासिक नाटकों में भाग लेता है और उनके माध्यम से अपने कार्यों की पूर्ति करता है । विश्व-इतिहास की धारा दो आध्यात्मिक शक्तियों के संघर्षों से [illegible] है - एक सिद्धान्त है ईश्वरीय सत्य और न्याय का तथा दूसरा है मनुष्य के पापाचार का । सत्य और पाप के द्वन्द्व के ही कारण सभ्यताओं का उत्थान-

1. R.G.Collingwood; The Idea of History, page 41.

पतन होता है तथा संस्कृतियों का आगमन और विनाश होता है ।

ईसाई चिन्तकों के अनुसार यह विश्व सर्वशक्तिमान ईश्वर की लीला का परिणाम है । मनुष्य के क्रिया-कलाप अपने आप में महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । इनकी वास्तविक महत्ता इसी में है कि वे ईश्वर की इच्छा को प्रतिबिम्बित करते हैं । अतः ऐतिहासिक प्रक्रिया मानवीय प्रयोजनों का परिणाम नहीं, बल्कि मनुष्य के लिये ईश्वरीय प्रयोजन है । इस दृष्टि से इतिहास विशिष्ट व्यक्तियों के विचारों और कृत्यों का वृत्तान्त नहीं है या विशिष्ट संस्थाओं के विकास और प्रसार का आख्यान नहीं है अपितु दैवी-इच्छाशक्ति की क्रीड़ा है । दूसरे शब्दों में इतिहास की प्रक्रिया की अपनी निजी प्रवृत्ति है जो इसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों से स्वतंत्र है[1] ।

प्रबोधन का युग और आधुनिक इतिहास-दर्शन:

(१) १८वीं शताब्दी का यौरोपीय इतिहास-दर्शन:

जैसे ही इतिहास का विद्यार्थी १७वीं से १८वीं शताब्दी में प्रवेश करता है उसे विचारों के जगत तथा चिन्तन के आयाम में एक अद्भुत नवीनता दृष्टिगोचर होती है और एक अतीव बौद्धिक उत्कर्ष से समन्वित यह युग उसके सम्मुख आ खड़ा होता है । १७०० ई० के लगभग देकार्त के दर्शन ने सम्पूर्ण यौरोप को अभिभूत कर लिया था । श्रद्धा के स्थान पर [illegible] और [illegible] के स्थान पर आलोचना की प्रधानता हो रही थी । इस विश्लेषणात्मक पद्धति ने आधुनिक विज्ञान का प्रवर्तन किया । १७वीं शताब्दी के वैज्ञानिक अनुसंधान ने इस बौद्धिक परिवर्तन की रूपरेखा निर्धारित की । गैलिलियो और न्यूटन ने विचारों की क्रान्ति को गति प्रदान की । भौतिक शास्त्र, रसायन [illegible] और [illegible] के अन्वेषणात्मक [illegible] पर बल दिया गया । इस युग में [illegible] को ही भौतिक शास्त्र का [illegible] हुए [illegible] गया । अतएव, रसायन, [illegible] और

1. R.G.Collingwood: The Idea of History, page 49.

पारदर्शन है[1] ।

(२) रोमांटिक युग और हीगेल का इतिहास दर्शन

उद्बोधन युग के शुष्क आदर्शवाद और नीरस बौद्धिकता की प्रतिक्रिया एक नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में प्रकट हुई जो भावना और कल्पना पर आधारित थी । जीवन में केवल बुद्धिगम्य स्थिरता, स्पष्टता, व्यवस्था तथा सामंजस्य ही नहीं है, वरन् एक भावना परक-तरलता, स्वप्निलता और विद्रोह भी है । विश्व में आश्चर्य, उत्सुकता तथा उत्तेजना के भाव स्थिरता, निश्चय तथा ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर हैं । जीवन और जगत के भीतरी रहस्यों को हम बुद्धि और युक्ति की अपेक्षा भावना और कल्पना से अधिक स्पष्टता से जान सकते हैं[2] । यही रोमांटिक दृष्टिकोण है जो रोमांटिक युग के इतिहास-दर्शन का आधार है ।

रोमांटिक युग का प्रवर्तक फ्रेंच विचारक ज्याँ जाक रूसो था । हेरडर, शीलर, फिक्टे, शेलिंग तथा हीगेल इस परम्परा के श्रेष्ठ इतिहास दार्शनिक हैं । हेरडर ने १७८४ में जिस नवीन इतिहास-दर्शन का सूत्रपात किया उसकी चरम परिणति हीगेल (१७७०-१८३१) के विचारों में हुई ।

हीगेल ने अपने इतिहास विषयक विचारों को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "फिलॉसफी आफ हिस्ट्री" में व्यक्त किया है । हीगेल के अनुसार केवल विचार तत्व ही सत्य और सारतत्व है तथा इतिहास केवल विचारों के विकास से संबंध रखता है । इतिहास की प्रक्रिया के प्रारम्भ में यह विचार तत्व आत्मचेतना नहीं रखता । इतिहास एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जिसका मुख्य

१- R. G. Collingwood : The Idea of History, Page 103.

२- डॉ० एच० बोरचर्ड, "रोमांटिसिज्म": इनसाइक्लोपीडिया आफ दि सोशल साइंसेज, भाग १३, पृ० ४२६-४३४ ।

ऐसा बुद्धि है और जिसके माध्यम से विचारतत्व पूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है । अपने मूलभूत रूप में यह विश्व विचार तत्व की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं । इतिहास की सम्पूर्ण विकास-प्रक्रिया आत्मज्ञान पथ पर विचरण करने वाले मनुष्य के विचारों का परिणाम है, इतिहास में जो कुछ होता है मनुष्य की इच्छा से होता है । मनुष्य की इच्छा कर्म के रूप में उसके विचारों की अभिव्यक्ति करती है । वस्तुतः सम्पूर्ण इतिहास आत्मज्ञान और पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के हेतु मनुष्य के विचारों का ऊर्ध्वगामी संघर्ष है ।

हिगेल के मतानुसार, चूंकि इतिहास विचारों का क्रम और बुद्धि की प्रगति है, अतः इसका स्वरूप मूलतः तार्किक है । ऐतिहासिक क्रान्तियाँ काल दण्ड पर फैलाया हुआ तार्किक विकास है । इतिहास एक तर्क है जिसमें सामंजस्यता रहती है । तार्किक-प्रक्रिया के द्वन्द्वात्मक और विरोधात्मक होने के कारण अर्थात् वाद, विवाद, और संवाद के क्रम पर आश्रित होने के फलस्वरूप इतिहास की प्रक्रिया भी इसी प्रकार द्वन्द्वात्मक और विरोधात्मक होती है । इसमें एक स्थिति, विरोधी स्थिति को जन्म देती है और इन दोनों के संघर्ष से एक नवीन समन्वित स्थिति का प्रादुर्भाव होता है । दो विरोधी स्थितियों के संघर्ष का द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त ही इतिहास की गति है ।

(१) मार्क्स का इतिहास-दर्शन और [illegible] भौतिकवाद:

आधुनिक यौरोपीय [illegible]-पद्धति में भौतिकवाद का विकास सोलहवीं, [illegible] शताब्दियों में परीक्षणात्मक [illegible] और यांत्रिक-परमाणुवाद के प्रचार-प्रसार के फल स्वरूप हुआ । [illegible] डी ला मित्री, गैसेंडी ने प्रकृति के परीक्षणात्मक [illegible] का आरम्भ किया और देकार्त तथा बेकन ने चिन्तन जगत में उसका औचित्य सिद्ध किया । हाब्स ने भौतिक दर्शन को आधार बनाकर अपने राजनीतिक दर्शन के सिद्धांत का [illegible] किया

किया। इन विचारों का प्रभाव लॉक, लामेत्री, दिदेरो और होलबाख पर पड़ा। दिदेरो के अनुसार चेतना अथवा अनुभूति भौतिक तत्वों का स्वरूप है और इनके [illegible] की उपज है। अतः पुण्य और पाप, ज्ञान और अज्ञान आदि वातावरण और परिस्थितियों के भेद के अनुसार बदलते रहते हैं। मौलिक पाप और परित्राण का सिद्धान्त नितान्त भ्रामक है[1]।

उन्नीसवीं शती में योरोप के चिन्तन-जगत में आर्थिक तत्वों के अध्ययन की प्रधानता थी। अनेक विद्वानों ने आर्थिक परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत कर इनके द्वारा सामाजिक जीवन की व्याख्या की। सन् १८३७ में राउमर ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की जो मार्क्स की विचार धारा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। उसका विचार था कि राजनीतिक परिवर्तन, उत्पादन की परिस्थिति के परिवर्तनों की छाया मात्र होते हैं तथा धर्म, संस्कृति, आचार-विचार, रहन सहन आदि के परिवर्तन भी इन मौलिक आर्थिक प्रवृत्तियों के सहगामी होते हैं।

भौतिकवाद को सर्वोत्तम और सर्वोन्नत रूप देने का श्रेय कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) को है। मार्क्स की भौतिकवादी दृष्टि ने चिन्तन की परम्परा को एक ऐतिहासिक मोड़ प्रदान किया। इतिहास की व्याख्या भी उसने इसी भौतिकवादी दृष्टि से की। यदि हीगेल का इतिहास-दर्शन इतिहास का आदर्शीकरण है तो मार्क्स का इतिहास दर्शन उसकी भौतिकवादी व्याख्या।

फ्यूरबाख ने अपनी रचनाओं में हीगेल के निरपेक्ष, अनुभवातीत विचारतत्व का बहिष्कार किया था और उसके स्थान पर मनुष्य को प्रतिष्ठित किया। इसने स्पष्ट [illegible] की कि [illegible] विचारों का नहीं

१- डॉ० बुद्ध प्रकाश: इतिहास दर्शन, पृ० २६६।

वरन् ज्ञान और स्वतंत्रता की ओर बढ़ते हुए मनुष्य का उत्कर्ष है जो समाज की भौतिक परिस्थितियों से आबद्ध है ।

मार्क्स और उसके सहयोगी एंजिल्स ने फ्यूरबाख के भौतिकवाद तथा हीगेल के "ऐतिहासिक आदर्शवाद" को मिलाकर इतिहास के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो ऐतिहासिक भौतिकवाद नाम से अभिहित किया जाता है ।

मार्क्स के इतिहास-दर्शन के संबंध में तीन बातें महत्वपूर्ण है-

(१) भौतिकवाद संबंधी उसकी धारणा ।

(२) इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या ।

(३) वर्ग संघर्ष की द्वन्द्वात्मकता ।

(१) मार्क्स शुद्ध अर्थ में भौतिकवादी था । जहाँ हीगेल ने सम्पूर्ण ऐतिहासिक वास्तविकताओं, वस्तुओं, प्रणालियों आदि को, केवल मस्तिष्क में आये हुए विचारों के रूप में विवेचित किया, वहाँ मार्क्स ने मात्र प्रकृति की वास्तविकता पर जोर दिया । उसके लिये यह विश्व ही सत्य है और पूर्ण सत्य है । इसके पार देखना निरी मूर्खता है । यह वस्तुनिष्ठ वास्तविकता जिसे मार्क्स भौतिक कहता है- स्थिर नहीं वरन गतिशील है और अपने आभ्यान्तरिक नियमों के अनुसार विकसित होती है ।

(२) मार्क्स का विचार है कि विश्व का [illegible], वस्तुतः आर्थिक प्रक्रिया का इतिहास है । किसी दिये हुए काल में आर्थिक उत्पादन का विशिष्ट रूप ही उस काल के समाज की प्रकृति का [illegible] करती है । मार्क्स के सहयोगी एंजिल्स की धारणा है कि [illegible] [illegible], [illegible]तिक, और बौद्धिक संबंध [illegible] धार्मिक तथा न्यायिक व्यवस्था, [illegible] सैद्धान्तिक दृष्टिकोण, जो इतिहास के बीच दिखाई पड़ते हैं, वे जीवन की भौतिक अवस्थाओं से

उत्पन्न होते हैं[1] । जैसे जैसे उत्पादन की पद्धति बदलती जाती है सम्पूर्ण समाज भी (अपने सभी पक्षों सहित) बदलने लगता है । इस विषय में मार्क्स का निम्न-लिखित उद्धरण दृष्टव्य है-

"मनुष्य जब उत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं तो उनके कुछ निश्चित संबंध बन जाते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं । ये उत्पादन के संबंध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास के स्तर के अनुरूप होते हैं । इन उत्पादन के संबंधों के समूह से समाज का आर्थिक ढांचा बनता है । यही वह आधार शिला है जिस पर वैधानिक और राजनीतिक प्रासाद खड़े होते हैं और जिसके अनुरूप सामाजिक चेतना का विकास होता है । भौतिक जीवन में उत्पादन की विधि, जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं की निर्णायक होती है । अपने विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुंचकर उत्पादन की भौतिक शक्तियां उत्पादन के संबंधों से टकराने लगती हैं अर्थात् कानूनी शब्दावली में वे सम्पत्ति के संबंधों के विपरीत हो जाती हैं । ये संबंध उत्पादन की शक्तियों के विपरीत न रहकर उनके बंधन बन जाते हैं । तब सामाजिक क्रान्ति का युग आता है । आर्थिक [illegible] के साथ साथ समस्त [illegible] जल्दी से बदल जाता है ।"[2]

मार्क्स के अनुसार धर्म उत्पादन की दूषित प्रणाली का केवल [illegible] है । क्योंकि जब मनुष्य अपनी आर्थिक [illegible] की पूर्ति नहीं कर पाते तो वे एक ऐसे स्वप्निल संसार की कल्पना करते हैं जिसमें उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति हो सकेगी । इस अर्थ में मार्क्स के लिए "धर्म, मनुष्य जाति के लिए अफीम है ।"

---

1. All social, political and intelectual relations, all religious and legal systems, all the theoretical outlooks which emerge in the course of History- are derived from the material conditions of life.

   -Engles: Duhring [illegible]. page 93.

२- डॉ० युग प्रकाश की पुस्तक "[illegible] दर्शन", पृष्ठ १६१ से उद्धृत ।

(१) वर्ग संघर्ष सम्बन्धी विचार कोई नया नहीं था । मार्क्स की मौलिकता यही है कि उसने इस विचार को हिगेल के आध्यात्मिक "द्वन्द्ववाद" का आलोक उसे भौतिकवादी बनाकर प्रदान किया । परिणामस्वरूप इतिहास सम्बंधी एक नवीन क्रान्तिकारी दृष्टिकोण सम्मुख आ गया । समाज की प्रत्येक अवस्था में एक विशेष वर्ग उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण कर लेता है और अपनी सुविधा हेतु शेष व्यक्तियों का शोषण करता है । यह केवल भाग्य की बात नहीं है, वरन् इतिहास के द्वन्द्ववाद का परिणाम है । इन दो वर्गों - शोषक और शोषित - के बीच का संघर्ष और तनाव ही इतिहास की गति है । प्रत्येक प्रभुत्व-सम्पन्न वर्ग निश्चित रूप से दूसरे वर्ग को जन्म देता है । और फिर यह दूसरा वर्ग शासनाधिकार प्राप्त कर अपनी उन्नति करने लगता है । मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष की अन्तिम अवस्था अब समीप है । वर्ग संघर्ष अब अपनी अन्तिम विकासावस्था को पहुंच गया है, क्योंकि पूंजीवादी वर्ग, सर्वहारा वर्ग के सम्मुख है । सर्वहारा वर्ग की क्रांति के साथ ही, वर्ग- हीन समाज की स्थापना प्रारम्भ हो गयी है और इतिहास अपने उद्देश्यों की ओर पहुंच रहा है ।

मार्क्स के सिद्धान्त के निरूपण से यह प्रकट होता है कि आर्थिक उत्पादन और उपयोग के विधान से मानव-[illegible] का स्वरूप निश्चित होता है । जब कोई आर्थिक विधान अपनी उपयोगिता से आगे निकल जाता है तो उसका स्थान दूसरा विधान ग्रहण कर लेता है । इस [illegible]वर्तन में सामाजिक वर्गों का विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है । [illegible] और शोषित एक दूसरे के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं । प्रथम वर्ग सदैव प्रायः आर्थिक ढांचे को बनाए रखने का प्रयत्न करता है और दूसरा वर्ग उसे उखाड़ फेंकने की [illegible] करता है । अतः वर्ग युद्ध भड़क उठता है । इस युद्ध, विरोध और संघर्ष से एक नयी व्यवस्था का जन्म होता है । मानव-इतिहास, वस्तुतः, वर्ग-युद्धों का वृत्तान्त है ।

(४) स्पेंगलर का इतिहास-दर्शन और इतिहास की वृत्तात्मक गति:

स्पेंगलर (१८८०-१९३६) के अनुसार इतिहास आत्म-अन्तर्विष्ट वैयक्तिक इकाइयों का एक विकास क्रम है । स्पेंगलर ने इसे "संस्कृति" की संज्ञा दी है[1] । एक "संस्कृति" में किसी विशिष्ट जाति अथवा समूह के सभी मानवीय कार्य, विश्वास, दर्शन, मूल्य एवं रीति-रिवाज आ जाते हैं । प्रत्येक संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट प्रकृति होती है जो अपने आप में बंधी हुई और पूर्ण होती है । एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं होता ।

स्पेंगलर के मतानुसार "संस्कृति" एक जीव सदृश है और जैसे जीव जन्म लेता है, प्रौढ़ता प्राप्त करता है और अन्त में मर जाता है वैसे ही संस्कृति का जीवन भी जन्म - जरा- मरण के क्रम से चलता है । इस प्रकार इतिहास की गति रेखात्मक न होकर वृत्तात्मक अथवा चक्रात्मक है । स्पेंगलर के शब्दों में "विश्व - इतिहास अनंत निर्माणों और पुनर्निर्माणों का और जीवित आकृतियों के अद्भुत उत्थान और पतन का चित्र है[2]।" संस्कृति की उत्पत्ति तब होती है जब एक महान आत्मा मानवता की आदिम आध्यात्मिकता से जागृत होकर अपने पृथक रूप में प्रकट होती है । यह एक निश्चित भूमि और क्षितिज में वनस्पति की तरह घिरी रहती है । जब यह आत्मा जातियों, धर्मों, भाषाओं, विचारों, कला, विज्ञानों और राष्ट्रों के रूप में अपने जीवन की सब सम्भावनाओं को फलित और प्रत्यक्ष कर चुकी है तो उसका अन्त हो जाता है और वह पुनः आदिम आध्यात्मिकता में विलीन हो जाती है । संस्कृति का जीवन मनुष्य के जीवन के सदृश है ।

स्पेंगलर ने संस्कृति के जीवन क्रम को वनस्पति की जीवन-लीला सदृश

---

1. According to Spengler, history is a successive of self-contained individual units which he calls cultures.
   - R.G.Collingwood : The Idea of History, page 181.

2. Spengler; The decline of the West, part I, page 22.

माना है जो इन ऋतुओं के परिवर्तन के अनुरूप बदलती रहती है । विकास की प्रथम तीन अवस्थाओं को स्पेंगलर ने "संस्कृति" का नाम दिया है और पश्चात् की तीन अवस्थाओं को "सभ्यता" की संज्ञा दी है । उसके मतानुसार सभ्यता का विशेष अभिप्राय पतन, ह्रास, शाप, जड़ता की उस अवस्था से है – जिसमें संस्कृति विकास एवं प्रौढ़ता प्राप्त करने के बाद प्रवेश करती है । दूसरे शब्दों में सभ्यता संस्कृति का वार्धक्य काल है और उसके इतिहास का उपसंहार है[1] ।

(५) <u>टायनबी का इतिहास-दर्शन:</u>

स्पेंगलर के विचारों ने वर्तमान इतिहास-दर्शन को अत्यधिक प्रभावित किया है । वर्तमान महान् विचारक टायनबी के सिद्धान्तों पर उसकी स्पष्ट छाप है ।

टायनबी ने भी इतिहास को स्पेंगलर की तरह "संस्कृति" के रूप में देखा है किन्तु सभ्यता शब्द की परिभाषा के विषय में इन लेखकों में अवश्य मतभेद है । टायनबी की धारणा है कि किसी युग की चुनौती की "प्रतिक्रिया" के फलस्वरूप समाज स्थिरता और जड़ता को छोड़कर गतिशीलता और चेतनता की प्रवृत्ति ग्रहण करता है । कठोर दुर्गम भूमि, नये देश, आघात, दण्ड और दबाव की यातना के कारण मनुष्य में चुनौतियों की प्रतिक्रिया की शक्ति उत्पन्न होती है । इस शक्ति के द्वारा वह चुनौतियों का प्रत्युत्तर तो देता ही है, साथ ही साथ एक नवीन चुनौती को अपने सम्मुख खड़ा कर लेता है । जिस प्रतिक्रिया और उत्तर से एक चुनौती समाप्त होती है उसी से दूसरी चुनौती पैदा हो जाती है । मनुष्य को फिर दूसरी चुनौती का उत्तर देना पड़ता है । चुनौतियों के इस प्रकार सफल उत्तर देने की प्रवृत्ति का नाम "विकास"(ग्रोथ) है । चुनौती का सफल उत्तर देने के लिये मनुष्य को आन्तरिक सन्तुलन स्थापित करना पड़ता है । वास्तव में इस आन्तरिक सन्तुलन को "आत्म [illegible]"

---

1. Spengler: The decline of the West, Part I, page 31.

को संज्ञा दी है[1]। इस आत्म नियमन की प्रवृत्ति का बाहरी रूप एक कम जटिल और अधिक समुन्नत जीवन-पद्धति का आविर्भाव होता है । इस प्रवृत्ति को सूक्ष्मीकरण कहते हैं[2]। सभ्यता का विकास सृजनशील व्यक्तित्वों और वर्गों का कार्य है जो जनता के स्तरों को अपनी प्रतिभा और क्षमता के द्वारा अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेते हैं । ये "सृजनशील व्यक्तित्व और वर्ग" "निर्गमन" और "प्रत्यागमन" की प्रक्रिया द्वारा कार्य करते हैं । ये कुछ समय के लिये संसार से अलग हो जाते हैं और शक्ति का संचय करते हैं, तथा फिर संसार में वापस आकर अपूर्व वेग से सर्जन कार्य में संलग्न हो जाते हैं ।

टॉयनबी का "सृजनशील व्यक्तित्व" का सिद्धान्त कार्लाइल, विलियम जेम्स, डब्लू० एच०डेविस आदि के "वीरपूजा" के सिद्धान्त की प्रति-ध्वनि मात्र है और व्यापक अर्थ में हर सृजनशील व्यक्तित्व पर लागू नहीं होता।

टॉयनबी के मतानुसार जब"सृजनशील "व्यक्तियों" तथा वर्गों की प्रतिभा जनता को आकृष्ट करने में असफल होने लगती है तो सभ्यता का विकास रुक जाता है, जनता उनसे अपना सहयोग हटा लेती है और समाज की एकता नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है । "[illegible] व्यक्तित्वों" और सामान्य जन के सम्बंध की प्रक्रिया में आकर्षण के बजाय [illegible] तथा, प्रेरणा की अपेक्षा शक्ति अधिक कार्य करती है । अतः आरम्भ से ही सभ्यता के विकास में ह्रास की [illegible] रहती है । टॉयनबी के शब्दों में "विकास शील सभ्यता का क्रम एक [illegible] है । यह संकट [illegible] और गंभीर है, क्योंकि यह उस मार्ग की वास्तविक प्रकृति में [illegible] है जिस पर प्रत्येक सभ्यता को चलना है[3]। " इस प्रकार प्रत्येक सभ्यता क्षीण और नष्ट होने

---

1. A.Toynbee: A Study of History, Part III page 216.
2. Ibid, part 3 page 174.
3. Ibid, part 4, page 122.

के लिये ही उत्पन्न होता है और लगभग ८०० वर्षों के ह्रास और पतन के जीवन के उपरान्त निश्चित रूप से अतीत के अंधकार में लय हो जाती है । टायनबी का यह "सृजनशील व्यक्तियों का सिद्धान्त" उन्हें एक अटल नियतिवाद और उच्छेदवाद की ओर ले जाता है ।

टायनबी की दृष्टि में इतिहास की गति एकता की ओर है और सभ्यताएं उच्च धर्म और दर्शन का सूत्रपात करती हैं । इस प्रकार इतिहास की गति वृत्तात्मक न होकर रेखात्मक है । इस दृष्टि से टायनबी ने विश्व-इतिहास को चार स्तरों में विभाजित किया है - १- आदिम समाज, २- प्रारम्भिक सभ्यता, ३- मध्य[illegible] सभ्यता तथा ४- उच्च धर्म । उच्च धर्म की स्थिति में इतिहास एकीकृत समाज के भीतर अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा ।

टायनबी के इतिहास-दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि उसने इतिहास में राजनीति को प्रधानता न देकर संस्कृति और धर्म को प्रधानता दी है और सामाजिक आन्दोलनों एवं [illegible]नों को विशेष महत्व दिया है । उसकी यह मान्यता, कि किसी समाज का विकास अथवा विनाश उसकी आन्तरिक शक्ति अथवा दुर्बलता के कारण होता है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उसका यह विचार भी महत्वपूर्ण है कि विश्व-इतिहास की रूप-रेखा विभिन्न सभ्यताओं एवं [illegible]ओं के सम्पर्क से बनी है ।

(६) <u>सोरोकिन का इतिहास-विषयक दृष्टिकोण:</u>

सोरोकिन(१८८९-) के इतिहास-दर्शन सम्बन्धी विचार अन्-सामयिक इतिहास-चिन्तकों के दर्शन से अलग कुछ अनुभवपरक [illegible] पर आधारित हैं । स्पेंगलर और टायनबी की तरह उसकी भी मान्यता है कि इतिहास का विकास राजनीतिक और सामरिक घटनाओं का [illegible] नहीं है, प्रत्युत सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया का [illegible] है ।

[illegible] के "[illegible]" उन मूल्यों, आदर्शों और [illegible]ओं का समवाय है जिसके [illegible] मनुष्य अपनी जीवन-पद्धति का निर्माण करते हैं । मनुष्य अपने जीवन में तीन तत्वों को सत्य, शिव और सुन्दर मानते

हैं उन्हीं से संस्कृति का स्वरूप निर्मित होता है । अतः यह एक मानसिक विकास की प्रक्रिया है । चूंकि समाज में रह कर ही मनुष्य इस विकास में अग्रसर होता है, अतः संस्कृति सामाजिकता में गुम्फित जाती है । सोरोकिन ने इसके लिये "सामाजिक-सांस्कृतिक" शब्दावली का प्रयोग किया है । मनुष्यों के विशिष्ट समूहों के कुछ अपने आदर्श एवं मूल्य होते हैं जिनकी छाप उनकी कला, साहित्य, धर्म, नीति, अर्थव्यवस्था, न्याय और दैनिक जीवन-पद्धति को एक वैयक्तिक स्वरूप प्रदान करती है । प्रत्येक संस्कृति में एक आन्तरिक एकता है और इसके समस्त अंग परस्पर समन्वित रहते हैं ।

सोरोकिन के अनुसार संस्कृतियां अनेक सामाजिक -सांस्कृतिक-व्यवस्थाओं की समूह हैं । इन व्यवस्थाओं में भी विविध और विभिन्न सांस्कृतिक सूत्र जुड़े रहते हैं, जो उनको एक सामंजिक समन्वय प्रदान करते हैं । ये सामाजिक - [illegible] व्यवस्थाएं तीन प्रकार की होती हैं -(१) भाव प्रधान, (२) गोचरता-प्रधान तथा (३) आदर्श-समन्वय - प्रधान । ये व्यवस्थाएं हर देश और जाति के इतिहास में समय-समय पर प्रकट होती हैं और [illegible] सूत्रों को समन्वित एवं संगठित कर एकता की शृंखला में संग्रथित कर देती हैं । इनके विकास में स्पेंगलर और टायनबी द्वारा प्रतिपादित जन्म-जरा-मरण का क्रम लागू नहीं होता । ये तो सांस्कृतिक - सामाजिक धाराओं के मिलन -बिन्दु हैं जो प्रवाह की गतिशीलता - अगतिशीलता आदि के कारण बदलते रहते हैं । इनकी अवधि निश्चित करना असम्भव है ।

सोरोकिन की धारणा है कि भावना-प्रधान-सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था श्रद्धा पर आधारित होती है और इसमें जीवन का प्रत्येक पक्ष और रूप इन्द्रियातीत परम सत्य और परम सत्य की आध्यात्मिक भावधारा में निमग्न और [illegible] होता है । गोचरता प्रधान सामाजिक-सां[illegible]तिक व्यवस्था का आधार तर्क, ज्ञान और परीक्षण है और इसकी [illegible] में जीवन का प्रत्येक पक्ष और रूप इन्द्रियजन्य दैहिक और भौतिक तत्वों के [illegible] में व्यक्त रहता है । आदर्श-[illegible] प्रधान सामाजिक-सां[illegible]तिक व्यवस्था में उक्त दोनों व्यवस्थाओं का समन्वय रहता है और दोनों के प्रमुख तत्व

इसमें सम्मिलित रहते हैं। इसमें मानव मस्तिष्क तर्क और दर्शन के बीच में अपनी सर्जन शक्ति के चरम उत्कर्ष की अभिव्यक्ति करता है और साथ ही साथ कला और साहित्य में अभूतपूर्व चैतन्य और स्पन्दन का परिचय देता है । यद्यपि इस युग में आध्यात्मिक और भौतिक मूल्यों का सुन्दर सामंजस्य हो जाता है, फिर भी आध्यात्मिक प्रेरणा प्रबल रहती है ।

सोरोकिन के मतानुसार सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाएं अपने आन्तरिक स्वभाव के कारण बदलती हैं । वे इस परिवर्तन को आन्तरिक और स्वभावगत मानते हैं । बाह्य तत्व उसकी प्रेरणा अवश्य देते हैं किन्तु परिवर्तन के मूलकारण नहीं हैं । प्रत्येक व्यवस्था की उपयोगिता सीमित होती है । जब कोई व्यवस्था अपनी उपयोगिता की सीमा का अतिक्रमण करती है तो अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से वह परिवर्तन की ओर बढ़ने लगती है । सोरोकिन ने इसे सीमा-नियम कहा है । वे यह भी मानते हैं कि उक्त सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के परिवर्तन किसी सहज और कठोर नियम के अधीन नहीं होते । इसमें आकस्मिक विविधता व्याप्त रहती है ।

अन्तिम निष्कर्ष :

ऊपर इतिहास-दर्शन सम्बन्धी जितने भारतीय अथवा अभारतीय विचार व्यक्त किये गये हैं, उनमें विभिन्नता होते हुए भी परस्पर कोई मौलिक भेद नहीं है । वस्तुतः वे एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं और इतिहास-दर्शन के विभिन्न पक्षों की ओर संकेत करते हैं । सभी में सत्य का कुछ न कुछ अंश निहित है । एक बात यह लक्ष्य करने की है कि भारतीय इतिहास दर्शन के सभी पक्ष कहीं न कहीं आकर एक बिन्दु पर मिल जाते हैं, जबकि योरोपीय इतिहास-दर्शन एक दूसरे को स्पर्श न कर समानान्तर चलते हैं । इतिहास की रचना, वस्तुतः मनुष्य के भौतिक और भावनात्मक रचनाओं का परिणाम है और उसकी प्रवृत्ति अथवा चेतना के प्रवाह के रूप में ही देखना उचित है । अतः, इतिहास का विवेचन व्याख्या से किया जा सकता है ।

अध्याय : दो

उपन्यास - शिल्प - विधान और ऐतिहासिक कथावस्तु

(क) कथा के विभिन्न रूप- लोककथा, लोकगाथा, पौराणिक एवं धार्मिक कथाएं, प्रबन्ध काव्य, नाटक, प्राचीन कथा-आख्यायिका, आधुनिक कहानी तथा उपन्यास- और उनकी प्रकृति ।

(ख) उपन्यास की परिभाषा एवं स्वरूप तथा साहित्य में उसका स्थान ।

(ग) उपन्यास के तत्व - कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा, शैली तथा उद्देश्य ।

(घ) कथावस्तु के उपकरण, तत्व तथा गुण ।

(ङ०) ऐतिहासिक कथावस्तु की विशेषताएं तथा विभिन्न कथा-रूपों में उसका व्यवहार ।

(क) कथा के विभिन्न रूप एवं उनकी प्रकृति

"कथा" शब्द संस्कृत के "कथ्" धातु से निकला है [illegible] सामान्य अर्थ है वह सब कुछ जो कहा जाय और इसी अर्थ में इसका प्रयोग बंगला में पाया जाता है । किंतु यह सभी कुछ जो कहा जाय "कथा" नहीं कहलाता । "कथा" का एक विशिष्ट अर्थ हो गया है "कहानी" (यहाँ "कहानी" से तात्पर्य "कहानी" विधा से नहीं है) । "कथा" की परिभाषा करते हुए प्रसिद्ध पाश्चात्य [illegible] ई०एम०फार्स्टर ने लिखा है कि कथा समय की शृंखला में बंधा हुआ घटनाओं का पूर्ण पर विवरण है[1]। एडविन म्योर ने भी बहुत कुछ इससे मिलती जुलती परिभाषा प्रस्तुत की है[2]। "हिन्दी साहित्य कोश" में कथा की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है - "किसी ऐसी कथित घटना का कहना या वर्णन करना जिसका कोई निश्चित परिणाम हो । घटना के वर्णन में कालानुक्रम भी आवश्यक है जैसे सोमवार के पश्चात् मंगलवार, दिन के बाद रात, बचपन के बाद यौवन आदि । मनुष्य, पशु-पक्षी, नदी-पहाड़ आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से कथा की घटना का सम्बंध हो सकता है । जिस किसी से संबंधित घटना हो उसकी किसी [illegible] परिस्थिति या परिस्थितियों का आदि और अंत से युक्त वर्णन ही कथा है[3]।"

"हिन्दी-साहित्य-कोश" में दी हुई "कथा" की परिभाषा में ऐसे कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनके संबंध में शंकाएं उठाई जा सकती हैं । सबसे पहले तो

---

1. It is narrative of events arranged in their time sequence-- E.M.Forster: Aspects of Novel, page. 47.
2. The most simple form of prose-fiction is the story which records a succession of events, generally marvellous- Edwin Muir: The Structure of Novel, page 17.

३- हिन्दी साहित्य कोश: (सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा) पृ० [illegible] ।

"कथित घटना" के संबंध में शंका उठती है । "कथित घटना के कहने" से यदि किसी अन्य द्वारा कही हुई घटना का वर्णन करने से तात्पर्य है तो "कथा" की उक्त परिभाषा निश्चित रूप से अपूर्ण है । मनुष्य का जीवन क्षेत्र अत्यंत ही विस्तृत है । वह अन्य व्यक्तियों द्वारा कथित बातों या घटनाओं से ही केवल "कथा" नहीं बनाता, बल्कि स्वयं के अनुभव एवं अनुभूत घटनाओं के [illegible] से भी कथा की रचना करता है । वस्तुस्थिति तो यह है कि अनुभूत घटनाओं के वर्णन द्वारा जितनी कथाएं आज लिखी जा रही हैं उतनी अन्य द्वारा कथित घटना के वर्णन द्वारा नहीं । एक अन्य शंका उठती है "आदि और अंत से युक्त वर्णन" शब्दावली से। कई ऐसी कहानियां लिखी गयी हैं [illegible] अन्त ही नहीं ज्ञात होता और न [illegible] कोई निश्चित परिणाम ही होता है । ऐसी अनेक कथाएं हैं जो केवल एक वातावरण उपस्थित करके ही अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेती हैं, न उनमें कोई घटना होती है, न [illegible] न होता है और न कोई अंत ही इस ढंग से होता है कि हम उसे निश्चित रूप से अन्त मान लें । फिर भी ये कथाएं अपने में पूर्ण हैं ।

कथा के रूप:

जब लिखने की प्रथा नहीं थी तो कथा-कहानियां केवल कही ही जाती थीं और वे मौखिक परम्परा से स्थान और काल का [illegible] करती हुई लोक में व्याप्त हो जाती थीं । अब भी अशिक्षित ग्रामीण जनता के बीच कथा-कहानियों के कहने की मौखिक परम्परा [illegible] है । कालान्तर में जब लिखने-पढ़ने तथा लिपि का आविष्कार हुआ तो ये कथा-कहानियां भी लिखी जाने लगीं और उनका रूप स्थिर होने लगा । इस प्रकार माध्यम-भेद से कथा के दो मुख्य रूप हो गये:- १- मौखिक रूप । २- लिखित रूप ।

(१) मौखिक कथाएं:

मौखिक कथाओं की परम्परा आदि काल से ही चली आ रही है । और अशिक्षित ग्रामीण जनता के बीच अब भी सुरक्षित है । जन-जीवन से

परिष्कारित एवं लोक-हृदय से संश्लिष्ट यह मौखिक कथा साहित्य भारतीय कथा का आदिम रूप है । मौखिक कथा साहित्य भी दो रूपों में पाया जाता है:-

(क) लोककाव्य कथा या लोकगाथा (पद्य रूप)

(ख) लोककथा (गद्य रूप)

लोक-काव्य कथा को हिन्दी की शास्त्रीय शब्दावली में लोकगाथा कहा गया है । लोकगाथा की कई परिभाषाएं विद्वानों ने प्रस्तुत की हैं । प्रोफेसर फ्रिटरिच के मतानुसार लोकगाथा वह गीत है जो किसी कथा को कहता है । हैलीट महोदय ने लोकगाथा की परिभाषा देते हुए इसे मात्र [illegible] कथात्मक कहा है । "न्यू ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी" के प्रधान संपादक डा० मरे ने लोकगाथा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि लोकगाथा वह साधारण स्फूर्तिदायक कविता है जिसमें कोई जन-प्रिय घटना रोचक ढंग से वर्णित हो[1] ।

उपर्युक्त विद्वानों की लोकगाथा की दी हुई परिभाषाओं में कोई मूलभूत अंतर नहीं है । सभी ने स्वीकार किया है कि लोकगाथा में गेयता तथा कथा या कथानक का होना नितांत आवश्यक है । अतः लोकगाथा या लोक काव्य कथा से तात्पर्य ऐसी कथा से है जो काव्य रूप में लोक में प्रचलित रही हो ।

लोककथा का तात्पर्य उस कथा से है जो लोक में गद्य रूप में प्रचलित रही हो । लोककथा, कथा का सबसे प्राचीन रूप कहा जा सकता है और इसकी परम्परा अत्यंत ही प्राचीन रही है । भारतीय लोककथाओं की परम्परा तो अन्य देशों की लोककथाओं की परम्परा से बहुत प्राचीन कही जाती है ।

भारतीय कथा साहित्य (लोकगाथा एवं लोककथा) की प्रकृति कुछ ऐसी रही है जो उसे अन्य कथा-रूपों से अलग करती है । इसके प्रमुख कारण जो

१- [illegible] लोक [illegible] की [illegible], पृ० ६६ ।

इस मौखिक कथा रूप के संबंध में यह है कि इसका निर्माण समूचे समाज द्वारा युग - युग में होता रहा है । इस कारण इसके भीतर लोक-मानस की प्रधानता पाई जाती है । वस्तुतः प्रारंभ में इन गाथाओं एवं कथाओं का रचयिता कोई व्यक्ति अवश्य होता है किंतु वह लोकगाथा या लोककथा कहते समय लोक-मानस में इतना डूबा रहता है कि लोक-मानस ही उसका हृदय बन जाता है और उसका स्वयं का व्यक्तित्व एवं हृदय लोक-मानस में ही डूब जाता है । धीरे - धीरे एक युग से दूसरे युग एक स्थान से दूसरे स्थान, एक समाज से दूसरे समाज में बहती हुई ये गाथाएं एवं आख्यान विशेष से साधारणीकृत रूप ग्रहण कर लेते हैं और इनमें लोक तत्व प्रधान हो उठता है ।

समूचे समाज द्वारा निर्मित होने के कारण मौखिक-कथा साहित्य आध्यात्मिक तत्वों से रहित होता है और जीवन के व्यावहारिक पक्षों की ही इसमें प्रधानता पाई जाती है । क्योंकि समाज के अधिकांश साधारण जन आध्यात्मिक तत्वों से अनभिज्ञ होते हैं और जीवन का व्यावहारिक पक्ष ही उनमें अधिक उभरा हुआ रहता है जिसका प्रभाव उनके द्वारा निर्मित साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही है । यद्यपि मौखिक कथा-साहित्य के सृजन के मूल में मनोरंजन की प्रवृत्ति ही प्रधान रहती है लेकिन वह निरुद्देश्य नहीं होता । मनोरंजन के साथ साथ उसमें उपदेशात्मकता एवं नैतिकता की प्रवृत्ति भी पाई जाती है । लोकगाथाओं में इस प्रवृत्ति का अभाव सा पाया जाता है । समूचे समाज द्वारा निर्मित होने के कारण ही मौखिक कथा-साहित्य में [illegible] तत्व भी किंचित रूप में पाए जाते हैं - विशेष रूप में लोककथाओं में ।

मौखिक कथाओं के पात्रों की सीमाएं अत्यन्त ही विस्तृत हैं । केवल मनुष्य ही कथाओं के पात्र नहीं होते, मनुष्य के साथ साथ पशु-पक्षी, नदी-पर्वत, पेड़-पौधे आदि भी होते हैं । पशु-पक्षी तो मनोवांछित व्यवहार करते पाए जाते हैं, वे मानव-भाषा में बात करते हैं और अपने प्रिय व्यक्ति की सहायता बड़ी तत्परता से करते हैं । ये पशु-पक्षी कभी - कभी शाप-ग्रस्त देवता, गंधर्व आदि के शापित रूप होते हैं तो कभी पशु-पक्षियों के रूप में

राक्षस, दानव या जादूगर आदि होते हैं[1]। उपदेशात्मक कथाओं में प्रायः पशु-पक्षी ही पात्र रूप में आते हैं। (जैसे "पंचतंत्र" में "करटक" तथा "दमनक" नामक सियार एवं "पिंगलक" नामक शेर तथा "संजीवक" नामक बैल की कथा)। मौखिक [illegible] में एक बात ध्यान देने की है कि यह कथा-साहित्य वर्णनात्मक न होकर संवादात्मक है। संभव है कहने-सुनने की [illegible] के कारण ही इनमें संवाद तत्व प्रमुख हो गया हो। (पंचतंत्र, शुकसप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका में संवादात्मक कथाएं ही संगृहीत हैं।) सर्वदा लोक में प्रवाहित रहने के कारण ही इनमें सरलता होती है और उनके स्थान, काल एवं नाम में परिवर्तन कर देने पर भी उनके मूल उद्देश्य में कोई अंतर नहीं पड़ता।

मौखिक कथा - साहित्य में इतिहास और वास्तव में दोनों का अतिक्रमण करते हुए भावानुरंजन तथा कल्पना की निर्बन्धता पाई जाती है। कल्पना-तत्व की प्रधानता के कारण ही इनमें अलौकिक, अतिप्राकृतिक तथा अ[illegible]ीय तत्व आ गये हैं। मौखिक कथाएं लोक-कल्पना की एक सामूहिक कृति हैं।

(२) <u>लिखित कथाएं</u>:

जब लिखने-पढ़ने एवं लिपि का आ[illegible] नहीं हुआ था तो प्राचीन आख्यानों, [illegible]ाओं तथा [illegible]ाओं को मौखिक रूप से ही गाया या सुनाया जाता था। पश्चात् में लिपि का आविष्कार हो जाने तथा समाज के सर्व-विकसित हो जाने पर इन्हें लिपिबद्ध कर लिया गया और उनका रूप बदल कर धार्मिक एवं शिष्ट साहित्य के रूप में ले लिया गया। लिख लेने से इन [illegible]ाओं एवं आख्या[illegible]ों का रूप स्थिर हो गया। [illegible]ाओं की तरह इन [illegible] परिवर्तन की यद्यपि सम्भावना नहीं रही लेकिन समय समय पर इनमें भी अनेक [illegible] एवं [illegible] आकर जुड़ती गयी और लिखित कथा-साहित्य का एक [illegible] भण्डार अपने देश में सुरक्षित हो गया। लिखित कथा-[illegible]

१- डा० [illegible] सिंह: हिन्दी [illegible] का स्वरूप और [illegible],

के अन्तर्गत प्रकृति - भेद से हमें कथा के दो रूप मिलते हैं: (क) पौराणिक एवं धार्मिक कथाएं (ख) साहित्यिक कथाएं ।

(क) <u>पौराणिक एवं धार्मिक कथाएं:</u>

पौराणिक कथाएं अपने देश की सबसे प्राचीन लिखित कथाएं हैं । पुराणों का अर्थ ही है पुरानी कहानियां अथवा पुराने इतिहास के ग्रन्थ[1]। पुराणों के लक्षण बताते हुए महाकवि वेदव्यास ने लिखा है —

सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च, वंशोमन्वन्तराणि च ।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।

अर्थात् पुराणों में सृष्टि, प्रलय, वंश-परंपरा, मन्वन्तर तथा विशिष्ट वंशों में होने वाले महान् पुरुषों की कथाएं रहती हैं । किन्तु पौराणिक कथाओं का जो रूप हमारे सामने है उनमें अनेक धार्मिक, अलौकिक एवं निजंधरी कथाओं का भी संचार है । ये कथाएं एक विशिष्ट युग की उपज हैं और एक व्यक्ति द्वारा न रची जाकर एक विशिष्ट समूह द्वारा रची गयी हैं । इसी कारण, इन पौराणिक कथाओं में सामूहिक कल्पना का प्राधान्य है ।

पौराणिक कथाओं के मुख्य रूप में दो भेद किये जा सकते हैं:- (१) चरित कथाएं तथा (२) उपदेश कथाएं । कुछ ऐसी भी कथाएं हैं जिनमें चरित का भी महत्त्व है और उपदेश के भी तत्त्व हैं । चरित कथाओं में वीर पुरुषों, उनके माता-पिता और वंश, उनके पूर्वजन्म एवं वर्तमान की शौर्य तथा वीरतापूर्ण घटनाओं आदि का वर्णन पाया जाता है और कथा के माध्यम से उनके जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण रहता है । उपदेशात्मक कथाओं में अन्त में कोई न कोई उपदेश रहता है और उसका मुख्य उद्देश्य जन-साधारण को कथा के बहाने उपदेश देना होता है ।

१- (क) [illegible] [illegible]([illegible])- [illegible] के रूप का [illegible],कोश, (१९६१),पृ० १६० ।

(ख) [illegible] पुराणों की सार कहानियां,भाग १ (भूमिका)।

पौराणिक कथाओं की कुछ अपनी विशेषताएं हैं । अधिकांश पौराणिक कथाएं आध्यात्मिकता से पूर्ण हैं । धार्मिक तथा उपदेशात्मक दृष्टि से रचे होने के कारण उनमें सर्वत्र भक्ति, ज्ञान, साधना, जप-तप आदि आध्यात्मिक तत्वों की ही प्रधानता है । मनुष्य के सात्विक गुणों-दया, क्षमा, [illegible], परोपकार, मैत्री, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सरलता, त्याग, संयम- नियम आदि से सम्बद्ध कहानियां [illegible] में संगृहीत हैं । इन [illegible] में पशु-पक्षियों तथा कीट-पतंगों तक को ही नहीं, लताओं तथा वृक्षों को भी वाणी दी गयी है तथा उनके माध्यम से जीवन-दर्शन की जटिल समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है । पौराणिक कथाओं के मुख्य विषय ईश्वर, ईश्वर की उत्पत्ति, ईश्वर के भिन्न-भिन्न अवतार(रूपभेद), सुर और असुर तथा उनके परस्पर युद्ध, शाप और वरदान, सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, मनुष्य और पशुओं की उत्पत्ति, आत्मा के आवागमन, स्वर्ग-नरक, रूप-परिवर्तन आदि तथा प्राकृतिक शक्तियां हैं[1] । लौकिक तथा धार्मिक [illegible] एवं तंत्र-मंत्र का भी संबंध इन कथाओं से है । इन काल्पनिक [illegible] के कारण ही पौराणिक कथाओं में अनेक लौकिक-अलौकिक तत्व आ गये हैं । ध्यान देने की बात है कि पौराणिक कथाओं के समानान्तर चलने वाली जैन एवं बौद्ध कथाधारा(जातक कथाएं तथा जैन कथाएं) में भी इस प्रकार के अनेक तत्व पाए जाते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इन कथाओं का मूल-स्रोत प्रायः एक - सा रहा है और अपने [illegible] में इन्होंने एक दूसरे को प्रभावित भी किया है ।

"पुराण" और "महाभारत" शब्द प्रायः [illegible] माने गए हैं और दोनों शब्दों का प्रयोग भी प्रायः साथ-साथ हुआ है । अतएव [illegible] में कहीं स्थल

१- डा० [illegible] सिंह: महाकाव्य का स्वरूप [illegible], पृ० ९० ।

पर "इतिहास" और "पुराण" शब्द साथ - साथ आए हैं[1]। प्राचीन काल में पौराणिक तथा निजंधरी कथाओं को भी कालान्तर में ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाता था और उनको सत्य माना जाता था । वस्तुतः भारतीय साहित्य में "इतिहास" शब्द का प्रयोग ही बहुत व्यापक अर्थ में हुआ है और अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले पूर्ववृत्त और कथा को ही "इतिहास" कहा गया है[2]। इस दृष्टि से पुराण, इतिहास भी है । रामायण तथा महाभारत भी अपने को इतिहास घोषित करते हैं:-

भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रंथार्थ [illegible] (महाभारत, आदि०१-१७)

पूर्ववृत्त [illegible] इतिहास पुरातनम्(रामायण, युद्ध १२८-१२१)

किन्तु इन्हें सांस्कृतिक इतिहास कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि इनमें भाव ही सत्य है, घटना सत्य नहीं है । पुराणों में ऐसी अनेक कथाएं हैं जो घटनात्मक सत्य के आधार पर निर्मित हैं । इनमें अनेक ऐतिहासिक वंशों की वंशावली का वर्णन है तथा अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध कथाएं हैं । किन्तु अन्य प्रामाणिक सामग्री के अभाव के कारण तथा अलौकिक तत्वों के कारण उनके सम्बंध में कोई निश्चित निर्णय लेना अत्यंत कठिन है ।

पौराणिक साहित्य एवं कथाओं के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इनमें जो कुछ है सब इतिहास नहीं है । इनमें कुछ ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव है । इतिहास का जो स्वरूप आज के वैज्ञानिक युग में है, वह प्राचीन काल में नहीं था । वस्तुतः प्राचीन भारतीय जीवन-दर्शन में ही इतिहास के पाश्चात्य स्वरूप का अभाव है । अपने देश में इतिहास की

१-शतपथ ब्राह्मण-काण्ड ११, अध्याय ५ । ब्राह्मण ६-खण्ड १-८ श्लोक ९
स य एवंविद्वान् वाकोवाक्यमितिहासपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते स
[illegible] [illegible] सम कामैः सर्वं भोगैः ।।

२- धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ।। (महाभारत) ।

देखने की नवीन वैज्ञानिक दृष्टि देने का श्रेय योरोपवासियों को है । आधुनिक काल में जब भारतवासी अंग्रेजों तथा अन्य योरोपीय जातियों के सम्पर्क में आये और अंग्रेजी के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान का प्रचार देश में होने लगा तो इतिहास सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ और इतिहास तथा पुराणों का भिन्न भिन्न अर्थ लिया जाने लगा । फिर भी पुराणों में सब कुछ अनैतिहासिक और काल्पनिक ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । उनमें कुछ ऐसे तत्व अवश्य हैं जो उन्हें इतिहास की प्रकृति के निकट ले जाते हैं । वास्तव में पौराणिक कथाएं अर्ध ऐतिहासिक हैं ।

(ग) <u>साहित्यिक कथाएं:</u>

प्राचीन काल से लेकर अब तक की साहित्यिक कथाएं हमें पांच रूपों में मिलती हैं - (१) प्रबन्ध काव्य के रूप में (२) नाटक के रूप में (३) प्राचीन कथा-आख्यायिका के रूप में (४) आधुनिक कहानी के रूप में तथा (५) उपन्यास रूप में । कथा के प्रबन्ध काव्य रूप, नाटक रूप तथा प्राचीन कथा आख्यायिका रूप तो प्राचीन हैं किंतु आधुनिक कहानी एवं उपन्यास रूप बिल्कुल नवीन हैं एवं आधुनिक काल की देन है । इन कथा-रूपों की भी अपनी अलग-अलग प्रकृति है और उनमें पर्याप्त अन्तर मिलता है । जहां लौकिक कथाओं का आधार लोक-कल्पना तथा पौराणिक कथाओं का आधार सामूहिक-कल्पना है, वहां ये साहित्यिक कथाएं पूर्णरूप से व्यक्ति की कल्पनाएं हैं । इसी कारण इनमें व्यक्तिगत तत्वों की प्रधानता है ।

(१) <u>प्रबन्ध काव्य:</u>

प्रबंध-काव्य, कथा का एक ऐसा रूप है जिसमें समग्र जीवन अथवा जीवन के किसी अंश विशेष का वर्णन उसकी विभिन्नताओं सहित पद्य के माध्यम से किया जाता है । जिस प्रबंध काव्य में समग्र जीवन की घटना का वर्णन रहता है उसे महाकाव्य तथा जिस पद्य-कथा में एक ही घटना की प्रधानता रहती है उसे खण्डकाव्य कहते हैं । काव्य-शैली की दृष्टि से महाकाव्य एवं

खण्ड काव्य में कोई मौलिक भेद नहीं है । महाकाव्य, खण्डकाव्य का ही एक विस्तृत रूप कहा जा सकता है । कथा के महाकाव्य रूप का विकास अनेक कालों में तथा अनेक तत्वों द्वारा हुआ है । महाकाव्य की सामग्री पौराणिक चिरगाथाओं, निजंधरी आख्यानों, ऐतिह्य और वंशानुक्रम, समसामयिक घटनाओं, प्राचीन ज्ञान-भंडार, लोक-कथाओं एवं गाथाओं आदि स्रोतों से आती हैं। इसके निर्माण में कवि की मौलिक उद्भावनाओं का भी योग रहता है । अनेक स्रोतों से उपलब्ध सामग्री के कारण महाकाव्यों की प्रकृति में पर्याप्त विभिन्नता पाई जाती है ।

महाकाव्य में जीवन का व्यावहारिक पक्ष अधिक उभरा हुआ पाया जाता है । वैसे कई महाकाव्यों में आध्यात्मिक पक्ष भी एक सीमित रूप में परिलक्षित किया जा सकता है । महाकाव्य की कथा-शैली वर्णनात्मक होती है और कथा में पर्याप्त विस्तार होता है,जो किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के चित्रण के कारण अथवा उसके जीवन से सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों की जीवन-कथा के समावेश के कारण अपने आप हो जाता है । महाकाव्य की कथा का नायक महान्, लोक - प्रसिद्ध एवं इतिहास प्रसिद्ध होता है । कथा में चमत्कार पूर्ण, आश्चर्यजनक तथा अति प्राकृत तत्वों का भी समावेश रहता है, लेकिन वह कथा की मूल प्रकृति नहीं होती । आधुनिक महाकाव्यों में अलौकिक तथा आश्चर्य-तत्वों का प्रायः अभाव सा पाया जाता है और इसकी प्रकृति यथार्थ के अधिक निकट होती जा रही है ।

कथा के प्रबन्धकाव्य-रूप के अतिरिक्त काव्यात्मक शैली में कुछ ऐसे और अन्य कथा-रूप भी मिलते हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । वे रूप हैं गीत कथा(गीतिकाव्य) तथा मुक्तक कथा(मुक्तक प्रबंध) । यों तो प्रबन्धकाव्य में भी गीति काव्य के कई तत्व पाये जाते हैं किन्तु गीतकथा में गीत के लगभग सभी तत्व प्रधान रूप से पाए जाते हैं । [illegible] रासो एक ऐसी प्रकार की गीतकथा है जिसमें गीतों के माध्यम से [illegible] तथा [illegible] की प्रेम-कथा

को वर्णित किया गया है । मुक्तक कथा में कथा मुक्तकों के माध्यम से कही जाती है । सूरदास का "सूरसागर", तुलसीदास का "बरवै रामायण" नरोत्तम दास का "सुदामा चरित" तथा रत्नाकर का "उद्धव शतक" मुक्तक कथा-शैली में ही लिखे गये हैं ।

(२)नाटक(पूर्ण तथा एकांकी):

नाटक भी कथा का एक रूप ही है । यद्यपि इसमें कथा की एक शृंखला नहीं होती, फिर भी टूटी हुई कड़ियों को कल्पना के सहारे जोड़कर कथा की रूप-रेखा बनाई जा सकती है । दृश्य-काव्य होने से नाटक में वर्णनात्मकता का अभाव रहता है और संवाद तत्व की प्रधानता होती है । इस संवाद तत्व, अभिनेताओं की भावभंगी तथा क्रिया-कलापों से ही नाटक की कथा को ग्रहण किया जाता है ।

नाटक में पूर्णकथा धारावाहिक रूप से नहीं होती, बल्कि कथा के रोचक भाग ही छोटे छोटे दृश्यों (या अंकों) में रहते हैं । इन दृश्यों के सम्मिलित प्रभाव द्वारा ही दर्शक या पाठक कथा-रस का बोध करता है । नाटक की कथा में रोचकता एवं प्रभावात्मकता उत्पन्न करने के लिए इसमें [illegible], कुतूहल एवं [illegible] का संयोजन किया जाता है और इन तत्वों की इसमें प्रधानता रहती है । रसात्मकता तथा कुछ अन्य बातों में नाटक की प्रकृति महाकाव्य की प्रकृति से मिलती - जुलती है ।

(३) प्राचीन कथा-[illegible] विविध रूप:

[illegible]चीन साहित्य में "कथा" शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से दो अर्थों में हुआ है । एक तो साधारण [illegible] के अर्थ में तथा दूसरा अलंकृत काव्यरूप के अर्थ में । साधारण [illegible] के अर्थ में तो पंचतंत्र एवं कथा-सरित्सागर की कथाएं भी कथा हैं, महाभारत एवं पुराणों के आख्यान भी कथा हैं और सुबन्धु की वासवदत्ता, बाण की कादम्बरी, [illegible] की बृहत्कथा आदि भी कथा है । प्रायः चरित काव्यों ने भी अपने को "कथा" कहा है । [illegible] की

कथा कहने की परम्परा बहुत बाद तक चलती रही । विद्यापति ने अपनी छोटी सी पुस्तक "कीर्तिलता" को "काहाणी" या "कहानी" कहा है । तुलसीदास का रामचरितमानस"चरित" तो है ही, कथा भी है । उन्होंने कई बार इसे कथा कहा है ।

संस्कृत के आलंकारिकों ने "कथा" शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्य-रूप के लिए किया है और वह निश्चित काव्यरूप है "अलंकृत गद्य काव्य" । संस्कृत की कथा गद्य में लिखी जाती थी । "कथा" की ही जाति की एक गद्यबद्ध रचना और भी होती थी जिसे "आख्यायिका" कहते थे । भामह् ने "कथा" एवं "आख्यायिका" के भेद को स्पष्ट करते हुए अपने ग्रन्थ "काव्यालंकार" (१।२५-२८) में लिखा है कि "आख्यायिका" सुन्दर गद्य में लिखी सरस कहानी वाली ऐसी रचना है । [illegible] कहने वाला और कोई नहीं, स्वयं नायक होता है और इसमें कन्याहरण, युद्ध, विरोध और अन्त में नायक की विजय का उल्लेख भी होता है । "कथा" की कहानी स्वयं नायक नहीं कहता बल्कि दो व्यक्तियों के बातचीत के रूप में कही जाती है । इसके लिए भाषा का कोई बंधन नहीं है तथा वह गद्य तथा पद्य दोनों में लिखी जा सकती है । हेमचन्द्र ने भी इसी से मिलती जुलती बात कही है[1]। दण्डी ने भामह् के कथन को सामने रख कर अपने ग्रन्थ "[illegible]" (१।२३-२८) में लिखा है कि कथा और आख्यायिका में कोई मौलिक भेद नहीं है और दोनों वस्तुतः एक ही श्रेणी की रचना है । [illegible] कहानी नायक कहे या कोई और कहे, इससे कहानी में

१- नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता
[illegible] गद्ययुक्ताख्यायिका ।।७।।

धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।।८।।

— [illegible] काव्या-[illegible], अध्याय ८ ।

कथा और आख्यायिका में कुछ सूक्ष्म भेदों के होते हुए भी यह निःसंकोच रूप से स्वीकार किया जा सकता है वे एक ही श्रेणी की कहानियां हैं और इनमें कोई मौलिक भेद नहीं है । हितोपदेश, कथासरित्सागर, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, कादम्बरी, हर्षचरित, वासवदत्ता, दशकुमारचरित आदि कथा-आख्यायिकाओं की प्रकृति बहुत कुछ एक दूसरे से मिलती जुलती है । आचार्यों ने कथा-आख्यायिकाओं की जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसके आधार पर कथा (कहानी) की दृष्टि से उसकी प्रकृति एवं लक्षणों की एक रूप-रेखा बनाई जा सकती है । इस सम्बंध में डा० शम्भू नाथ सिंह का विवेचन महत्वपूर्ण है -

(क) कथा-आख्यायिका में रोमांचक तत्वों और साहसिक कार्यों जैसे युद्ध, बलपूर्वक विवाह, कन्याहरण, भयंकर यात्रा, मार्ग की दुरूह कठिनाइयां, देव असुर, गंधर्व, यक्ष आदि के [illegible] कार्य आदि का बहुत अधिक विस्तार होता है ।

(ख) कथा-आख्यायिका का कथानक अधिक प्रवाह युक्त, इतिवृत्तात्मक और आकर्षक होता है, किन्तु उसका मूलाधार यथार्थ जीवन नहीं होता । (बाण का "हर्षचरित" सदृश कुछ रचनाएं इसके लिए अपवाद स्वरूप हैं) इनमें कल्पना-जन्य अलौकिक, अतिमानवीय एवं आश्चर्य[illegible] तत्वों, कार्यों तथा असम्भव घटनाओं की अधिकता होती है । प[illegible]म स्वरूप इनमें काल्पनिक कथा का चमत्कार और असम्भव या अविश्वसनीय घटनाओं की भरमार होती है ।

(ग) कथा-आख्यायिका का उद्देश्य प्रायः विशुद्ध मनोरंजन और कभी-कभी नीति या धर्म का उपदेश देना या उदाहरण उपस्थित करना होता है । नीतिकथाएं और धर्मकथाएं इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक होती हैं । उनमें यथार्थ जीवन की परिस्थितियों और मनोभावों के चित्रण द्वारा उच्च रस-स्थिति तक पहुंचाने की क्षमता नहीं होती ।

(घ) कथा-आख्यायिका में [illegible] की कोई सुगठित योजना नहीं होती । इनका कथानक [illegible], [illegible] हुआ और जटिल होता है । प्रायः इनका प्रारम्भ ही कथान्तर से होता है और फिर उसी कथा के भीतर कथा और उस [illegible] कथा में से भी [illegible] कथाएं चलती रहती हैं । कुछ कथाएं ऐसी

भी होती है जिनमें अनेक कथाएं किसी एक सूत्र से परस्पर बांध दी गयी रहती हैं, यद्यपि इन सबका अस्तित्व अलग-अलग ही रहता है ।

(ड०) कथा-आख्यायिका में विवाह और उसके लिए युद्ध तथा प्रेम के संयोग एवं वियोग पक्ष के वर्णन पर अधिक ध्यान दिया जाता है । परिणाम स्वरूप उसके नायक प्रायः धीर-ललित होते हैं और उनका जीवन अयथार्थ पर आधारित होता है । वे प्रायः निजंधरी होते हैं या कथाकार द्वारा निजंधरी ऊंचाई तक पहुंचा दिये जाते हैं । भारतीय कथाओं में विक्रमादित्य, सातवाहन, उदयन, दुष्यन्त, नल आदि ऐसे ही चरित्र हैं जो ऐतिहासिक होते हुए भी निजंधरी व्यक्तित्व द्वारा गढ़े गये हैं । युद्ध, साहस और वीरता के कार्यों का वर्णन कथा-आख्यायिका में भी होता है, पर वैसा नहीं जैसा अलंकृत काव्यों में होता है । कथाकार युद्ध और वीरता को प्रेम और शृंगार का साधन मात्र समझता है, जिससे उसका मन इन बातों में नहीं रमता[1] ।

(४) आधुनिक कहानी :

"आधुनिक कहानी", कथा की एक विकसित नवीन विधा है जो रूप की दृष्टि से प्राचीन कथा-आख्यायिका की परम्परा में होने पर भी विषय-वस्तु, भावभूमि, शिल्प और कला की दृष्टि से उससे नितान्त भिन्न है । इसका आज का विकसित रूप बहुत कुछ पश्चिम की देन है ।

प्राचीन कथा-आख्यायिका एवं आधुनिक कहानी के शैली-शिल्प, रूप तथा कला-विधान का यह भेद स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है । प्राचीन कहानियों एवं कथा-आख्यायिकाओं की शैली इतिवृत्तात्मक एवं वर्णनात्मक होती थी । उसमें आरम्भ, मध्य, चरमोत्कर्ष और अन्त का ऐसा कोई विधान नहीं था जैसा आधुनिक कहानी में पाया जाता है । उसमें कहानी का आरम्भ सीधे सादे रूप में "एक राजा था और उसकी दो रानियां थीं" से

१- डा० [illegible] सिंह : हिन्दी कहानी का स्वरूप और विकास, पृष्ठ ८ से १०७ ।

आरम्भ होता था और एक ही गति से "फिर क्या हुआ" की जिज्ञासा एवं कुतूहल को साथ लेकर अग्रसर होता था और "जैसी उनकी हुई वैसी सबकी हो" के अन्त के साथ वह समाप्त हो जाता था ।

कथानक के विकास की जैसी नाटकीय योजना आधुनिक कहानियों में मिलती है वैसी प्राचीन कथाओं में नहीं थी । कथानक के उतार-चढ़ाव में भी जैसी कलात्मकता आज के कहानियों में पाई जाती है वैसी प्राचीन कहानी में नहीं मिलती । कथानक को प्रस्तुत करने की शैलीगत विविधता जितनी आधुनिक कहानियों में देखी जाती है उसका प्राचीन कथा-आख्यायिकाओं में अभाव है ।

विषय-वस्तु की दृष्टि से प्राचीन कथाएं विशेषतः वीरता, प्रेम एवं [illegible] हुआ करती थी, किन्तु आधुनिक कहानी में वीरता, प्रेम एवं उपदेश के अतिरिक्त अन्य मानवीय मनोवेगों तथा भावनाओं का भी समावेश पाया जाता है । पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति के सम्पर्क से तथा आधुनिक मनोविज्ञान के प्रभाव से जीवन मूल्यों में परिवर्तन तथा परिविस्तार के साथ साथ [illegible] में भी परिवर्तन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप कहानी की विषयवस्तु की सीमा में पर्याप्त परिविस्तार एवं परिवर्तन लक्षित किया जा सकता है ।

आधुनिक कहानी का मुख्य केन्द्र मानव है जबकि प्राचीन कथा-आख्यायिकाओं का सम्बंध मनुष्य तथा मनुष्येतर प्रकृति, जड़-चेतन, पशु-पक्षी आदि से भी होता था । [illegible] प्रकृति ही क्यों, देव, दानव, राक्षस, भूत-प्रेत आदि [illegible] एवं काल्पनिक जगत के पात्र भी कथा-[illegible] के पात्र हुआ करते थे । किन्तु आधुनिक कहानी में इन अलौकिक एवं काल्पनिक पात्रों की कोई सत्ता नहीं । आज के वैज्ञानिक युग में पढ़ा मानव इतना [illegible] एवं यथार्थवादी हो गया है कि अकारण ही वह किसी बात पर विश्वास नहीं करता ।

प्राचीन कहानी का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक [illegible] पूर्ण, अलौकिक एवं [illegible] घटनाओं का भी समावेश

प्रस्तुत किया जाता था । किन्तु आधुनिक कहानी में घटनाओं का बाहुल्य नहीं होता । उसका कथानक जीवन के किसी अत्यन्त छोटे से अंश से संबंधित होता है । उस कथानक के आधार पर ही कहानी लेखक अपने सामान्य कथनों द्वारा जीवन की एक झलक मात्र प्रस्तुत कर देता है । आधुनिक कहानी का कथानक एक स्थिति मात्र होता है जिसमें चरित्र-चित्रण, भावों के उतार-चढ़ाव और विचारों के विश्लेषण और समस्याओं के उद्घाटन का प्रयत्न रहता है । आधुनिक कहानी में मनोरंजन -विधान के लिए मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण का सहारा लिया जाता है । विशेष परिपार्श्व और वातावरण में विशेष परिस्थितियों एवं स्थितियों में पड़े हुए व्यक्तित्व के मन-मस्तिष्क के विश्लेषण एवं उद्घाटन में कलाकार की ऐसी सृष्टि आधुनिक [illegible]कार करता है कि कहानी-पाठक विभोर हो उठता है । उसे ऐसा लगता है जैसे यह उसे अपने मस्तिष्क का चित्र हो । उसका साधारणीकरण हो जाता है और मनोरंजन ही नहीं गम्भीर रस की अनुभूति करता है[१] ।

निष्कर्ष रूप में, प्रेमचन्द के शब्दों में कहा जा सकता है कि "जहाँ [illegible] कथा-आख्यायिकाएं कुतूहल एवं घटना-प्रधान, इतिवृत्तात्मक, उपदेशपरक एवं अनेक लौकिक-अलौकिक तथा निर्जरी काल्पनिक तत्वों से युक्त होती थी वहाँ आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक [illegible] और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । इसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं[२] ।"

(५) उपन्यास :

उपन्यास "कथा" का सबसे नवीनतम रूप है । यह आधुनिक युग की देन है और गद्य के प्रचार के साथ साथ ही इसका भी प्रचार हुआ । इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि शैली, शिल्प-विधान और विचार -

---

१- रामकुमार [illegible]: [illegible], पृ० १०४ ।

२- प्रेमचन्द: कुछ विचार(द्वितीय [illegible] १९३९), पृ० ३६ ।

वस्तु की दृष्टि से यह पश्चिम की देन है[1]। हालांकि कुछ लोग उपन्यास के रूप का विकास संस्कृत के प्राचीन कथा-ग्रन्थों "दशकुमार चरित" "वासवदत्ता"

१-(क)"हिन्दी उपन्यास की स्थिति हिन्दी काव्य से सर्वथा भिन्न है । संस्कृत के प्राचीनतम काव्य से लेकर आधुनिकतम हिन्दी काव्य की परंपरा अविच्छिन्न है किन्तु हिन्दी का उपन्यास-साहित्य वह पौधा है जिसे अगर सीधे पश्चिम से नहीं लाया गया तो उसका बंगला कलम तो लिया ही गया, न कि सुबंधु,दण्डी और बाण की लुप्त परम्परा पुनरुज्जीवित की गयी"

-नलिन विलोचन शर्मा- "आलोचना",वर्ष २ अंक १,पृ०१११।

(ख) इंग्रेजीर साहित्येर प्रभाव आमादेर देशे जे सब नूतन धारणेर साहित्य गोड़िया उठिया छे ताहार मध्ये उपन्यासई प्रधानतम । एइ उपन्यासेर अनुरूप कोन वस्तु आमादेर पुरातन साहित्ये ढूंढिया पाओया जायना ——उपन्यासेर प्रधान विशेषत्वइ एइजे इहा सम्पूर्ण आधुनिक सामग्री । पुरातन युगेर आकाश वातासेर मध्ये इहार जन्म सम्भव पर नौबे । आधुनिक युगेर क्रमाविक परिवर्तनेर सी इहार एक आरे घनिष्ट अन्तरंग सम्पर्क ।

(अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हमारे देश के साहित्य में जो सब नूतन प्रकार की धारणा लिए हुए साहित्य उठ खड़े हुए उन सब में [illegible]स ही प्रधानतम है । इस न्यास के अनुरूप कोई भी साहित्यिक विधा हमारे प्राचीन साहित्य में खोजने से भी नहीं मिलती । — उपन्यास की प्रधान विशेषता यही है कि इसकी सभी सामग्री आधुनिक है । पुरातन युग के वातावरण में इसका जन्म सम्भव नहीं हो सका था । आधुनिक युग के रिवर्तन के साथ इसका [illegible] एवं घनिष्ट सम्पर्क है)

-कुमार बंदोपाध्याय, बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा,पृ०१।

"हर्षचरित" "कादम्बरी" आदि से मानते हैं[1], किन्तु इन कथा-ग्रन्थों में उपन्यास कला का अभाव है और उनकी प्रकृति तथा उपन्यास की प्रकृति में पर्याप्त अंतर है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि "यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियां संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी सन्तान हैं। कथा और आख्यायिका नाम मात्र के गद्य हैं। उनमें वह अलंकार है जो छन्द का प्राण है। उपन्यास वस्तु जगत से बहुत अधिक सम्पृक्त है। वह विशुद्ध गद्य-युग की उपज है। उसकी प्रकृति में गद्य का सहज स्वच्छन्द प्रवाह है। [illegible] में दुनिया जैसी है उसे वैसी ही चित्रित करने का प्रयास प्रधान होता है। कथा-आख्यायिका का लेखक पुराने कवि की भांति कल्पना द्वारा एक रसमय लोक का निर्माण करता है। वस्तुतः कथा-आख्यायिकाएं काव्य के पास पड़ती हैं और उपन्यास वस्तु-प्रधान जगत के पास[2]।" अतएव उपन्यास का सम्बंध संस्कृत की प्राचीन कथा-आख्यायिका की परम्परा से जोड़ना एक विडम्बना मात्र है।

१- "जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों में से "नाटक" का जन्म प्रथम यहीं हुआ, इसी प्रकार "उपन्यास" की सृष्टि भी प्रथम प्रथम यहां ही हुई, यह बात अलौकिक नहीं है। किसी किसी [illegible] का यह कथन है कि "[illegible] पूर्व काल में यहां प्रचलित नहीं था, बल्कि अंग्रेजों की देखा-देखी लोगों ने नोवेल शब्द के स्थान में [illegible] की कल्पना करली" [illegible]। परन्तु इन महाशयों को प्रथम उनकी नाम [illegible] कर लेनी चाहिए; क्योंकि "उपन्यास" उप-नी-आस धातु से बना है - यथा(उप)समीप(नी)न्यास(आस)रखना, अर्थात् इसकी रचना [illegible] स्वभावक हो, एवं इसकी कथा छिपी हुई क्रमशः समाप्ति में [illegible] हो। अमरकोश का भी "उपन्यासः वाङ्मुखम्" अर्थात् "[illegible] वाच" यह अर्थ [illegible] उपन्यास के [illegible] से ही पड़ता है। इससे [illegible] [illegible] है [illegible] उपन्यास भी [illegible] काल से भारतवर्ष में प्रचलित था और [illegible] प्रकार चरित्र"वासवदत्ता" "श्री हर्षचरित", "कादम्बरी", "[illegible] [illegible]" आदि [illegible] उपन्यास इसकी प्राचीनता में ज्वलन्त प्रमाण हैं।
-किशोरीलाल गोस्वामी:प्रणयिनी प [illegible] के प्रथम [illegible] की [illegible]।
२- डा० [illegible] प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का मर्म, पृ० ११।

उपन्यास का जन्म और विकास सर्वप्रथम १८वीं शताब्दी में योरोप में हुआ और अनुकूल परिस्थिति पाकर १९वीं शताब्दी में इस साहित्य रूप ने भारतीय साहित्य में भी अपना प्रमुख स्थान बना लिया । योरप में "रोमांस" के नाम से अभिहित प्रेम तथा साहसपूर्ण काल्पनिक एवं आदर्शात्मक पद्य-बद्ध कहानियों के बदले जब गद्य के माध्यम से यथार्थ जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का चित्रण आरम्भ हुआ तो उसे "नावेल" नाम दिया गया । क्योंकि उसका स्वरूप प्राचीन के मुकाबिले में बिल्कुल नया था । "रोमांस" में जहाँ जीवन के "दुर्लभ" तथा "असम्भव" वस्तुओं का चित्रण रहता था वहाँ "नावेल" ने इन दोनों को त्याग कर जीवन के "सम्भव" एवं "सुलभ" सम्बन्धों का आश्रय ग्रहण किया[1]। इसी "नावेल" को हिन्दी और बंगला में "उपन्यास" गुजराती में "नवलकथा" मराठी में "कादम्बरी" तथा उर्दू में "नाविल" कहा गया

उपन्यास और रोमांस का अन्तर स्पष्ट करते हुए क्लारा रीव ने लिखा है:-
"उपन्यास उस युग के यथार्थ जीवन एवं आचार-विचार का चित्र है जिसमें वह लिखा जाता है । रोमांस गूढ़-गम्भीर एवं समुन्नत भाषा में उन वस्तुओं का वर्णन करता है, जो न कभी घटित हुआ है और न जिसके घटित होने की संभावना है। उपन्यास उन परिचित वस्तुओं का वर्णन प्रस्तुत करता है जो हम लोगों के प्रति-दिन के जीवन में आँखों के सम्मुख घटती है, जो स्वयं हमारे या हमारे मित्रों के अनुभव की है । उपन्यास की पूर्णता इसी में है कि वह प्रत्येक दृश्य को इस स्वाभाविकता एवं सरलता से प्रस्तुत करे कि वह पूर्ण रूप से सम्भाव्य प्रतीत हो और हमें विश्वास हो जाय (कम से कम उपन्यास पढ़ते समय) कि यह सब कुछ

१- डा० देवराज उपाध्याय: कथा के तत्व, पृ० १० ।

यथार्थ है और हम सोचने लगें कि पात्रों के सुख-दुख हमारे ही सुख-दुख हैं[१]।"

उपन्यास केवल कथामात्र नहीं है और पुरानी कथा-आख्यायिकाओं की भांति कथा-सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों एवं श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुम्फित पदावली की घटा दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की उपज है। इसमें लेखक कथानक के माध्यम से अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है और उसे इस प्रकार सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करता है कि पाठक अनायास ही उसके मन्तव्य को ग्रहण कर सके और उससे प्रभावित हो जाय। लेखकों का जीवन-जगत् के प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण ही उपन्यास की आत्मा है।

कथा के विभिन्न रूपों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आधुनिक कहानी एवं उपन्यास की प्रकृति पौराणिक एवं जैन-बौद्ध-कथाओं, प्रबंध-काव्य-गाथा, लोक कथा एवं गाथा आदि से नितान्त भिन्न है। कथा के उक्त प्राचीन रूपों में जहाँ अलौकिकता, चमत्कार वर्णन, आध्यात्मिकता, आदर्श आदि की प्रधानता है, वहाँ आधुनिक कहानी तथा उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, स्वाभाविक वातावरण एवं कलात्मक किन्तु सहज सामान्य कथन रहता है। नाटकों की तरह कहानी तथा उपन्यास में भी संवाद, कुतूहल आदि नाटकीय तत्त्व रहते हैं किंतु वे मर्यादित रूप में आते हैं। कथा के ये आधुनिक रूप हमारे वर्तमान जीवन के अधिक सन्निकट पड़ते हैं और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक आत्मीयता उत्पन्न

१- The novel is picture of real life and manners and of times in which it is written. Romance in lofty and elevated language describes what never happened nor is likely to happen. The novel gives a familiar relation of such things as pass every-day before our eyes, such as may happen to our friends, or to ourselves and the perfection of it is to represent every scene in so easy and natural manner and to make them appear so probable as to decieve us into persuation (at least while we are reading) that all is real until we are affected by joy or distresses of persons in the story as if they were our own.

— C. Reeve: Progress of Romance.

करते हैं । अतएव अधिक प्रभावशाली होते हैं ।

(ख) उपन्यास की परिभाषा, एवं स्वरूप तथा साहित्य में उसका स्थान

"उपन्यास" शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या

अंग्रेजी के "नावेल" शब्द के लिए हिन्दी तथा बंगला में "उपन्यास" शब्द का प्रयोग होता है । यद्यपि प्राचीन संस्कृत-साहित्य में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है किन्तु "नावेल" के अर्थ में इसका प्रयोग कभी नहीं हुआ । भरत के "नाट्य शास्त्र" में इस शब्द का प्रयोग प्रतिमुख संधि के एक उपभेद के लिए हुआ है और किसी बात को उसके युक्तियुक्त अर्थ में प्रस्तुत करने को "उपन्यास" कहा गया है[1] । भामह ने अपने "काव्यालंकार"[2] में "विन्यास" एवं "स्थापन" तथा साहित्यदर्पणकार ने "साहित्यदर्पण"[3] में "स्थापना" एवं "ज्ञापन" अर्थों में "उपन्यास" शब्द का प्रयोग किया है । "अभिज्ञान शाकुन्तल" में एक स्थल पर इसका प्रयोग वक्तव्य के अर्थ में हुआ है[4]। "अमरकोश" में भ "उपन्यास" का अर्थ "वाङ्मुख" अथवा "कथन" दिया हुआ है[5] । "मृच्छकटिक" में भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है[6] ।"ब्रह्मसूत्र" के शांकर भाष्य में "उपन्यास" शब्द का प्रयोग निरूपण के लिए हुआ है[7]। इस प्रकार "उपन्यास" शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न अर्थों में किया गया है ।

१- उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः स कीर्तितः ।७९ । (अध्याय १९)
२- (क) नाचर्य [illegible] धीर्वीर्यगुणादिभिः ।११। (प्रथम परि-)
   (ख) उपन्यासस्य [illegible] ।०१। (द्वितीय परि-)
३- [illegible] उपन्यास[illegible] ।(प्रसन्न [illegible] आदि अलंकार का उदाहरण) ।
४- वाक्यः [illegible] उपन्यासः । (तृतीय अंक)
५- [illegible] उपन्यासस्तु वाङ्मुखम् । (.काण्ड, शब्दादि वर्ग)
६- [illegible] उपन्यास[illegible] । - [illegible], पृ० १०, [illegible] बम्बई, १९११ ।
७- [illegible] उपन्यास [illegible] । १।७-१

"उपन्यास" शब्द "उप" उपसर्ग तथा "न्यास" पद के संयोग से बना है । "उप" शब्द से समीप, निकट तथा "न्यास" शब्द से रखने, स्थापित करने का अर्थबोध होता है । इसप्रकार "उपन्यास" शब्द का अर्थ हुआ निकट रखी हुई वस्तु, धरोहर अर्थात् वह वस्तु अथवा कृति जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है[1]। शब्दार्थ की दृष्टि से जिस साहित्यांग के लिए आज इस शब्द का प्रयोग होने लगा है, पुरानी परम्परा से प्रयोग के अनुकूल न होने पर भी उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बेमेल नहीं कहा जा सकता और उसकी प्रकृति एवं स्वरूप को पूर्ण रूप से अभि-व्यक्त करने के लिए सक्षम और उपयुक्त है ।

"उपन्यास" शब्द का प्रयोग इस विशिष्ट साहित्य-रूप के लिए सर्वप्रथम बंगला में हुआ और फिर बंगला से ही होकर यह हिन्दी में प्रयुक्त होने लगा। बंगला में "उपन्यास" शब्द के दो अर्थ हैं । प्राचीन अर्थ में "उपन्यास" का व्यवहार "वाक्यारम्भ", "उल्लेख" "उपस्थापन" तथा "प्रमाण" के लिये होता है, इन अर्थों की संगति संस्कृत-परम्परा से बैठती है । नवीन अर्थ में "उपन्यास" कथा-साहित्य का रूप विशेष है जो अंग्रेजी के सम्पर्क का प्रासंगिक फल है[2]। इस अर्थ में "उपन्यास" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भूदेव चन्द्र मुखर्जी (१८२५-१८९४) ने किया । वे बंगाल सरकार के शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी थे और हिन्दी तथा बंगला के प्रेमी थे । १८५७ में इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम "अंगुरीय विनिमय" था और जिस पर "ऐतिहासिक उपन्यास" लिखा था[3]। सन् १८६६ में रामसदय भट्टाचार्य कृत "अद्भुत उपन्यास" नाम की एक अन्य रचना प्रकाशित हुई थी[4]। यद्यपि इन दोनों रचनाओं से पहले बंगला

१- हिन्दी साहित्य कोश(सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा), पृ०१४९ ।

२- डा० कैलाश प्रकाश: प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृ० १ ।

३- भारतीय साहित्य में "ऐतिहासिक उपन्यास(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, आगरा प्रकाशन), पृ० ३०, ३८ ।

में टेकचन्द ठाकुर की उपन्यास जैसी प्रथम कृति "आलालेर घरेर दुलाल" नाम से १८५५ में ही प्रकाशित हो गयी थी किंतु "अंगुरीय विनिमय" के पहले यह उपन्यास नाम से नहीं पुकारी जाती थी । इस प्रकार "उपन्यास" शब्द के प्रथम प्रयोग का श्रेय भूदेव मुखर्जी को ही दिया जा सकता है । डा० सत्येन्द्र ने "उपन्यास" शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३९-९४) को दिया है और पंडित किशोरीलाल गोस्वामी से इस सम्बंध में गवाही भी दिलवा दी है[1] । किन्तु डा० सत्येन्द्र के इस कथन का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है ।

हिन्दी में कथा-साहित्य के लिए "उपन्यास" शब्द का प्रथम प्रयोग कब हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । डा० माता प्रसाद गुप्त ने "आधुनिक पुस्तक साहित्य" में आरंभिक उपन्यासों की सूची में "मनोहर उपन्यास" नामक ग्रन्थको शीर्ष स्थान दिया है और इसका रचनाकाल १८७१ ई० लिखा है । गुप्त जी ने उक्त पुस्तक के सम्पादक रूप में सदानंद मिश्र तथा शंभुनाथ मिश्र का नाम लिखा है । उनके मत से "मनोहर उपन्यास" किसी इतर भाषा की कृति का अनुवाद नहीं है । इस रचना का उल्लेख अन्य साहित्येतिहासकारों की कृतियों में नहीं मिलता । किसी अन्य प्रमाण के अभाव में हिन्दी में "उपन्यास" शब्द का प्रयोग १८७१ ई० में माना जा सकता है ।

उपन्यास की परिभाषा:

किसी भी साहित्य रूप की ऐसी परिभाषा देना जो उसके

१- पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने इन पंक्तियों के लेखक को एक बार बतलाया था कि "उपन्यास" नाम का प्रारम्भ बंगाल के बंकिमचन्द्र ने किया था । उनका कहना था कि बंकिम बाबू उनके घनिष्ठ मित्र थे । बंकिमचन्द्र एक दिन पुस्तक पीछे-पीछे "मनुस्मृति" पढ़ रहे थे कि वहीं से "उपन्यास" शब्द का पता चला और यही नाम उन्होंने ग्रहण कर लिया ।"

-डा० सत्येन्द्र : [illegible] के सिद्धान्त, पृ० १३७ ।

यथार्थ रूप की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति कर सके, सहज कार्य नहीं है । एक विषय के जितने विद्वान हैं, उस विषय के सम्बंध में उनकी उतनी ही परिभाषाएं हैं । उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है । अनेक देशी तथा विदेशी विद्वानों ने इस साहित्य विधा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसकी विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं । अंग्रेजी उपन्यास साहित्य के प्रमुख आलोचक डा०ई०ए० बेकर ने उपन्यास को ऐसा कथात्मक एवं वर्णनात्मक गद्य माना है जिसके माध्यम से जीवन की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है । बेकर का कथन है कि उपन्यास का सम्बंध यथार्थ जगत से होता है और वह वास्तविकता तथा ऐसी विषयवस्तु से सम्बंध रखता है जिसे उपन्यासकार की कला ने वास्तविकता का रूप दे दिया है । इसका उद्देश्य एक जीवन-जगत को यथासम्भव यथार्थ जगत के रूप में प्रस्तुत करना होता है[1] । आर्नाल्ड केटिल के अनुसार उपन्यास गद्य में लिखी हुई यथार्थ जगत की कल्पित गाथा है जो सामान्य विस्तार से युक्त है और अपने में पूर्ण होती है[2]। लार्ड डेविड सेसिल ने उपन्यास को एक ऐसी कलाकृति माना है जो हमको जीवित जगत से परिचित कराती है और कुछ अर्थों में उस जगत से सादृश्य रखती है जिसमें हम रहते हैं[3]। फाक्स के मतानुसार उपन्यास एक ऐसा गद्य [illegible] है जो जीवन की वास्तविकता को [illegible]

---

1. Novel is the interpretation of human life by means of fictitious and narrative prose.....Novel is concerned with real world, it deals with facts or with things that are made as like facts as the novelist can make them. Its aim is to present a world as possible to the actual world, not to fashion a new one to the heart's desire.
   -E.A.Baker: The history of English Novel, page 15.

2. The novel- as I use the term in this book- is realistic prose fiction complete in itself and of a certain length.
   - Arnold Kettle: An Introduction to the English Novel, page 28.

3. A novel is a work of art in so far as it introduces us into a living world, in some respects resembling the world we live in, but with an individuality of its own.
   - Lord D.Cecil: Hardy the Novelist.

ढंग से प्रस्तुत करता है[1]। हरबर्ट जे०मूलर ने उपन्यास की व्याख्या करते हुए लिखा है कि उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है, चाहे वह यथार्थ का हो या आदर्श का, और इस प्रकार उसमें अनिवार्य रूप से जीवन की आलोचना रहती है[2]। अमेरिकन आलोचक एवं उपन्यासकार हेनरी जेम्स के विचार से "उपन्यास अपनी व्यापक परिभाषा के अनुसार जीवन का एक वैयक्तिक तथा प्रत्यक्ष अंकन है जो प्रथमतः उसके मूल्य की स्थापना करता है। यह जीवन मूल्य, प्रभाव की तीव्रता के अनुसार कम या अधिक होता है। किन्तु यदि उपन्यासकार अनुभव करने तथा कहने के लिए स्वतंत्र नहीं है तो तीव्रता का सर्वथा अभाव रहेगा, फलतः उसका कोई मूल्य नहीं होगा[3]। ई०एम०फार्स्टर ने काव्य तथा इतिहास की सीमा से घिरी हुई पचास हजार शब्दों से अधिक बड़ी गद्य रचना को उपन्यास की संज्ञा दी है[4]। राल्फ

---

1. Cross: The Development of English Novel, page 1.

2. Novel is typically a representation of human experience whether liberal or ideal and therefore inevitably a comment upon life.-
   - Herbert J.Muller: Modern fiction (A study of values) p.forward XIV.

3. A novel in its broadest definition a personal, a direct impression of life: What to begin with, constitute its value, which is greater or less according to the intensity of the impression. But there will be no intensity at all, and therefore no value, unless thereis freedom to feel and say.
   - Henry James: The Art of Fiction, page 8.

4. E.M.Forster: Aspects of Novel, page 17.

फाक्स के विचार से उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, यह मानव जीवन का गद्य है । यह कला का प्रथम प्रकार है जिसमें मनुष्य जीवन की समग्रता से समझने तथा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है । इस प्रकार उपन्यास कथा, कविता, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत की अपेक्षा यथार्थ का एक भिन्न दृश्य प्रस्तुत करती है[1]। न्यू इंगलिश डिक्शनरी में "उपन्यास" की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है:-उपन्यास एक लम्बे आकार की काल्पनिक गद्य कथा या वृतान्त है जिसके द्वारा कार्य-कारण-शृंखला में बंधे हुए कथानक में वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और कार्यों का चित्रण किया गया रहता है[2]।

हिन्दी के आलोचकों तथा उपन्यासकारों ने भी उपन्यास की व्याख्या प्रस्तुत की है और इस संदर्भ में अनेक परिभाषाएं सम्मुख आई हैं । डॉ० श्याम सुन्दर दास ने अपने आलोचना ग्रन्थ "साहित्यालोचन" में "उपन्यास" का विवेचन करते हुए लिखा है कि उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है[3]। उपन्यासकार प्रेमचन्द ने "उपन्यास" की परिभाषा इस प्रकार दी है-मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं ।

---

1. The novel is not merely fictional prose, it is prose of man's life. The first art to attempt to take the whole man and give him expression.

   - Ralf Fox: The Novel and the people, page 20.

2. A Novel is prose tale or narrative of considerable length in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot.

   - New English Dictionary.

३- डॉ० श्याम सुन्दर दास: साहित्यालोचन, पृ० १८० ।

मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है[1]।" प्रसिद्ध आलोचक नन्द दुलारे वाजपेयी ने उपन्यास को एक ऐसी काल्पनिक कृति माना है जो गद्य के माध्यम से आख्यान विशेष की सहायता लेकर सामाजिक जीवन के किसी स्वरूप का यथार्थ आभास देती हुई जीवन की मार्मिक व्याख्या करती है[2]। गुलाब राय ने उपन्यास को कार्य-कारण-शृंखला में बंधा हुआ एक गद्य कथानक माना है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है[3]। उपन्यास के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए एक बंगला आलोचक ने लिखा है कि उपन्यास उद्देश्य प्रणोदित गल्प का एक रूप विशेष है जिसमें वास्तविक पर्यवेक्षण तथा वस्तु-तांत्रिक चित्रण के बीच मानव-प्रकृति तथा जीवन का परिचय देने की चेष्टा की जाती है[4]।

ऊपर उपन्यास की जितनी परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी है, वस्तुतः उनमें कोई मौलिक मतभेद नहीं है। यद्यपि किसी ने उपन्यास में यथार्थ जीवन के चित्रण को महत्व दिया है, तो किसी ने जीवन की व्याख्या करना ही उपन्यास का लक्ष्य निर्धारित किया है, किसी ने इसे मानवीय अनुभव का निरूपण माना है, तो किसी ने जीवन का वैयक्तिक एवं प्रत्यक्ष अंकन स्वीकार किया है, किसी ने इसे मानव जीवन का चित्र मात्र कहा है, तो किसी ने वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा है, किन्तु सभी के कथनों का प्रकारान्तर से आशय यही है कि उपन्यास मानव-जीवन की कलात्मक व्याख्यात्मक गद्य कथा है। मानव का यह जीवन केवल दुःख एवं सुख भी हो सकता है

१- प्रेमचन्द: कुछ विचार(१९४२), पृ० ४४ ।

२- नन्द दुलारे वाजपेयी: आधुनिक साहित्य, पृ० १८० ।

३- गुलाब राय: काव्य के रूप, पृ० १०० ।

४- कुमार [illegible]: बंगला साहित्येर कथा, पृ० १४६ ।

तथा सहज स्वाभाविक भी । कथा के माध्यम से मनुष्य के यथार्थ जीवन को, चाहे वह भावात्मक हो अथवा घटनात्मक, समग्रता से चित्रित करना तथा मानव चरित्र के आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन करना ही उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है और इसी में इसकी परिभाषा की सार्थकता निहित है ।

<u>उपन्यास का साहित्य में स्थानः</u>

अपने व्यापक अर्थ में साहित्य समूचे वाङ्मय का पर्याय है । जितना शब्द-भंडार, वाणी का विस्तार एवं मुद्रित सामग्री है सब कुछ इसकी सीमा में आ जाता है । दर्शन, इतिहास, विज्ञान, काव्य आदि सभी साहित्य -सीमा के अन्तर्गत आते हैं । पाश्चात्य आलोचक डीक्विन्सी ने साहित्य को दो भागों में विभक्त किया है -(१) ज्ञानवर्द्धक साहित्य तथा (२) शक्ति-सम्पन्न साहित्य[1] । इन्हें क्रमशः उपयोगी साहित्य तथा ललित साहित्य भी कहा जा सकता है । ज्ञानवर्द्धक साहित्य के अन्तर्गत वह साहित्य आता है जो हमारे सामान्य ज्ञान की अभिवृद्धि करता है, जैसे इतिहास, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि । शक्ति-सम्पन्न साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों से होता है और वह हमारी भावनाओं को उद्वेलित कर रसोद्रेक उत्पन्न करता है । साहित्य के इस भाग के अन्तर्गत नाटक, कविता, कहानी, उपन्यास आदि आते हैं । भारतीय शब्दावली में ज्ञान वर्द्धक साहित्य को "शास्त्र" तथा शक्ति-सम्पन्न साहित्य को "काव्य" नाम दिया गया है ।

संस्कृत में "साहित्य" शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ में हुआ है । यह शब्द "काव्य" का समानार्थी रहा है और दोनों का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय रूप में हुआ है । मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि

---

1. Scott James: Making of Literature, page 22.

शास्त्राचार्यों ने "साहित्य" तथा "काव्य" दोनों शब्दों के प्रयोग एक ही अर्थ में किये हैं[१]। वास्तव में संस्कृत साहित्य में "साहित्य" शब्द से अभिप्राय शक्ति-संपन्न साहित्य अथवा ललित साहित्य से ही लिया जाता था और शास्त्राचार्यों ने साहित्य के अनेक रूपों, उपरूपों का विवेचन इसी को ध्यान में रखकर किया है।

भारतीय साहित्य के प्राचीन वर्गीकरण की पृष्ठभूमि में देखने पर ज्ञात होता है कि साहित्य का "उपन्यास" रूप बिल्कुल नया है और [illegible] की देन है। अतः प्राचीन संस्कृत-साहित्य में "उपन्यास" शब्द के उपलब्ध होने पर भी साहित्य की अन्य विधाओं जैसे, महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, आख्यायिका आदि की भाँति उपन्यास के स्वरूप का कहीं शास्त्रीय विवेचन नहीं मिलता। सम्भवतः इसीलिए हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्यामसुन्दर दास ने अपनी "साहित्यालोचन" नामक पुस्तक में लिखा है कि उपन्यास की कोई शास्त्रीय मर्यादा नहीं[२]। आधुनिक भारतीय आलोचकों ने श्रव्य काव्य के अन्तर्गत इसके प्राचीन रूपों के साथ साथ "काव्य" अथवा "साहित्य" के नवीन रूप " [illegible] समाविष्ट कर लिया है। इसीप्रकार साहित्य के अन्य नये रूप "आधुनिक कहानी; रेडियो नाटक भी समाविष्ट कर लिये गये हैं।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि श्याम सुन्दर दास ने अपने प्रथम आलोचना ग्रन्थ "साहित्यालोचन" में "उपन्यास" को शास्त्रीय-मर्यादा-विहीन साहित्य-रूप कहा है। सम्भव है संस्कृत साहित्य में इस विधा की अनुपलब्धि तथा हिन्दी में उच्च कोटि के उपन्यास-ग्रन्थों के अभाव को देखकर [illegible] ऐसी धारणा बना ली हो। किन्तु वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। [illegible] तथा उसके आधार पर पूर्वी आलोचकों ने उपन्यास के स्वरूप, रचना-कौशल, प्रकार, उद्देश्य आदि पर [illegible] रूप से विचार किया है और

१- डॉ० [illegible] शर्मा: [illegible] का विवेचनात्मक [illegible], पृ०४।

२- डॉ० श्याम[illegible]र दास: साहित्यालोचन(सं०२००४), पृ० १०५।

उसकी मर्यादा स्थापित की है । साहित्य का यह रूप आज लगभग सभी देशों में इतना व्याप्त हो चुका है कि साहित्य की अन्य-विधाएं इससे पीछे पड़ गयी हैं । कदाचित् आज इस विधा की जितनी कृतियों का प्रचार है, उतना अन्य विधा की कृतियों का नहीं । उपन्यास की इस लोकप्रियता को देखकर ही हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक एवं उपन्यासकार डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -"उपन्यास इस युग का बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है । शायद ही कोई पढ़ा लिखा नौजवान इस जमाने में ऐसा मिले जिसने दो चार उपन्यास न पढ़े हों । यह बहुत ही मनोरंजक साहित्यांग माना जाने लगा है । आजकल जब किसी पुस्तक को बहुत मनोरंजक पाया जाता है तो प्रायः कह दिया जाता है कि इस पुस्तक में उपन्यास का सा आनन्द मिल रहा है । किसी-किसी यौरोपीयन समालोचक ने तो उपन्यास का एकमात्र गुण मनोरंजकता को ही माना है । इस साहित्यांग ने मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं का ही नहीं, नाटकों का भी रंग फीका कर दिया है । क्योंकि पांच मील से दौड़कर रंगशाला में जाने की अपेक्षा १०० मील से दूर से ऐसी किताब मंगा लेना कहीं आसान है जो अपना रंगमंच अपने पन्नों में ही छिपे हुए है[1] ।"

आज से कुछ वर्षों पहले उपन्यास अत्यन्त हेय दृष्टि से देखा जाता था और इसका उद्देश्य मात्र मनोरंजन होता था[2]। यौरोप में भी, जहां उपन्यास का जन्म और विकास हुआ, उसके प्रति साहित्यिकों एवं आलोचकों की कोई अच्छी धारणा नहीं थी और यह निम्न कोटि का साहित्य समझा जाता था । अनेक धर्माचार्यों द्वारा यह विचार जन-साधारण के मस्तिष्क में भर दिया गया था कि [illegible] साहित्य का [illegible]

१- डा०हजारी प्रसाद द्विवेदीः साहित्य का साथी, पृ०८१ ।
२- उपन्यास अब साहित्य का उपेक्षित अंग रहा है । उद्देश्य की दृष्टि से यह मनोरंजन मात्र रह जाता था ।

-अशिम सिंह का अर्थ[illegible] उपन्यास कला का इतिहास [illegible] १९५५, पृ०११३) ।

है । इनके ऐसा कहने में अर्नाल्ड एवं लावेल जैसे प्रख्यात आलोचकों का प्रच्छन्न समर्थन भी प्राप्त था[1] ।

उपन्यास के प्रति हीनता का भाव जेन आस्टिन की "नार्थेंगर एबी" नामक उपन्यास में आये हुए एक सम्वाद से भी परिलक्षित होता है ।इसमें एक कुमारी युवती एक उपन्यास पढ़ती हुई दिखाई जाती है।जब उससे प्रश्न किया जाता है कि वह क्या पढ़ रही है तो वह बड़ी लापरवाही से उदासीनता एवं लज्जा का भाव प्रदर्शित करती हुई तथा पुस्तक को एक किनारे रखती हुई कहती है"ओह, यह केवल एक उपन्यास है[2] ।"

उपन्यास को अपने उद्भव काल से ही कटु आलोचनाएं सहनी पड़ी है।इसकी प्रतिष्ठा न तो साहित्यकारों में थी और न बुद्धिपूर्ण पाठकों में ही । उपन्यासकार को कथा-कहानी लिखने वाला मानकर कोई विशेष सम्मान नहीं देता था । [illegible] बेलगन ने स्पष्ट कर दिया है कि उपन्यासों में रचनात्मक साहित्य जैसी कोई वस्तु है ही नहीं । और चूंकि उपन्यासकार एक रचनात्मक कलाकार नहीं है तो उसे हम जीवन के प्रति एक निजी दृष्टिकोण के प्रचारक-रूप में ही स्वीकार कर सकते हैं[3] । आलोचक

---

1. The lingering American popular view disseminated by pedagogues that the reading of non-fiction was instructive and meritorious, that of fiction harmful or atleast self indulgent was not without implicit backing in the attitude towards the novel of representative critic like Lowell and Arnold.

   -Austin Warren and Wellek: Theory of literature: p.219.

2. "And what are you reading Miss?", Oh, it is only the novel" replied the young lady, while she lays down her book with affected indifferent or momentary shame.- Jane Austen: Northanger Abbey.

3. Mr. Belgion says that there is no such thing as creative art and since a novelist is not a creative artist, there is only one thing, he can be propagandist for his own particular view of life, an irresponsible propagandist at that.

   -R.Liddell: A Treatise on the novel. p.14.

तो आलोचक, स्वयं उपन्यासकार भी उपन्यास को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं। "द विकार आफ वेकफील्ड" का लेखक गोल्ड स्मिथ उपन्यास को किसी किशोर के हाथ में न पड़ने देने के लिए माता-पिता को चेतावनी देता है, क्योंकि वह इसे परम-आनन्द का घातक एवं नवयुवकों को काल्पनिक सुख एवं सौन्दर्य के पीछे पागल बनाने वाला समझता था[1]। इसीप्रकार मेरी वार्टले माण्टेग उपन्यास से पाठकों की दुहरी हानि देखती थी। उनके विचार से उपन्यास पढ़ने से उसके पाठकों के समय और धन दोनों का अपव्यय होता है, क्योंकि उपन्यास में जिन व्यक्तियों, घटनाओं, रीति-रिवाजों आदि का वर्णन रहता है, उनका न तो कोई अस्तित्व रहा है और न भविष्य में होने की सम्भावना है[2]।

किन्तु अब उपन्यास के संबंध में उपर्युक्त धारणाएं समाप्त हो गयी है और स्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो गयी है। इसका उद्देश्य अब केवल मनोरंजन मात्र ही नहीं रह गया है। जीवन के यथार्थ एवं आदर्श को आज उपन्यास ने जिस सीमा तक चित्रित किया है, अन्य साहित्य-रूप उसे छू भी नहीं सके हैं। लोक-प्रियता की दृष्टि से तो इस नवीन साहित्य-विधा ने प्राचीन साहित्य विधाओं- कविता, नाटक, कहानी, निबन्ध आदि -को

---

1. Above all things never let your son touch a novel of romance. How destructive are those pictures of consummate bliss. They teach the youthful to sigh afte beauty and happiness that never existed to despise the little good that fortune has mixed in our cup......I say such books teach us very little of world.
   -Goldsmith (Dictionary of English thought.)

2. Writers of novel and romance in general bring a double loss on their readers- they rob them both of their time and money, representing men and manners, and things that never have been nor are likely to be, either confounding or perverting history and truth, inflating the mind or committing violence upon the understanding.
   - Lady Wortley Montague (Dictionary of Eng.Thought)

पराजित कर दिया है और सर्व साधारण का एक प्रतिनिधि साहित्य बन गया है । अत्युक्ति न होगी, यदि कहा जाय कि मानव मात्र के स्वभाव का सर्वांगीण दिग्दर्शन, विभिन्न प्रकार के आमोदप्रद प्रसंग, मार्मिक व्यंग एवं हास्य की जितनी सुन्दर व्याख्या एवं चित्रण आकर्षक शैली एवं सरल भाषा में उपन्यास के माध्यम से सम्भव है, उतनी विश्व के किसी भी साहित्य विधा के माध्यम द्वारा सम्भव नहीं । आज उपन्यास सर्वाधिक शक्तिशाली साहित्यिक स्वरूप सिद्ध हो रहा है और जो भी कल्पनाशील एवं प्रतिभा सम्पन्न लेखक साहित्य सर्जना की ओर अग्रसर होता है, वह अपने विश्वास, भावनाओं एवं जीवनानुभूति को समुचित रूप से व्यक्त करने के लिए प्रायशः उपन्यास का ही आधार लेता है । उपन्यास आज किसी भी देश की सांस्कृतिक भावना का प्रमुख वाहक एवं प्रतिनिधि साहित्य-विधा बन गया है[1] ।

साहित्य का सम्बंध जीवन से है । आलोचकों ने साहित्य अथवा काव्य को जीवन की आलोचना अथवा व्याख्या कहा है[2] । साहित्य उन सब बातों का प्राणभूत संग्रह है जिन्हें मनुष्यों ने जीवन की अवधि में देखा है,

---

1. The novel, today, is most vigorous of all literary forms. It is obviously takes precedence over all others- The novel is the form in which our culture has most often saught expression, it is the only form that seems able to express our experience and there is no where any sign that power or will is slackening. In no country where culture seeks expression in literature, is there any sign of decadence. Every where today the novel comes so close to beings in any imaginative literature that distinction in any other form is so frequent as to cause to surprise.

   - Bernard De Voto: The world of Fiction, page 296.

2. 2 (क) Poetry is at bottom a criticism of life- -Mathew Arnold: Essay on Wordsworth.

   (ख) साहित्य की बहुत सी परिभाषाएं की गयी है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है । चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या काव्य के, उसे हमारे जीवन की व्याख्या करनी चाहिये ।

   - प्रेमचन्द: कुछ विचार (१९३९), पृ० ६

अनुभव किया है तथा उनके उन पक्षों के विषय में सोचा-समझा है जो हमारे लिए जीवन के आसन्न एवं शाश्वत प्रयोजन अथवा आकर्षण है । इस प्रकार साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम से जीवन की पूर्णता की अभिव्यक्ति है[1] ।

साहित्य की इस परिभाषा पर हम थोड़ी गम्भीरता से विचार करें और साहित्य के विभिन्न रूपों को इस कसौटी पर कसें तो हम उपन्यास को अन्य साहित्य रूपों- कविता, नाटक, कहानी आदि- की अपेक्षा साहित्य की इस परिभाषा को अधिक निकटता से स्पर्श करते हुए पायेंगे । यद्यपि कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि में भी जीवन की अभिव्यक्ति रहती है किन्तु जिस विस्तार एवं गहराई की सम्भावनाएं उपन्यास में निहित रहती है, उतनी अन्य साहित्य-रूपों में नहीं । जहाँ कविता के एक उत्कृष्ट रूप महाकाव्य में जीवन की अभिव्यक्ति केवल महान् व्यक्तियों एवं उनके महान् कार्यों, अलौकिक व्यापारों, एवं अद्भुत घटनाओं आदि के माध्यम से की जाती है, वहाँ उपन्यास साधारण से साधारण व्यक्तियों एवं उनके प्रतिदिन के जीवन में घटित होने वाली यथार्थमय घटनाओं के माध्यम से ही जीवन की अभिव्यक्ति करता है । जहाँ नाटक जीवन के सहज-प्रवाह के बीच से नाटकीय परिस्थितियों का चयन कर तथा प्रमुख प्रभावशाली घटनाओं को रंगमंच पर उतारने के माध्यम से जीवन की विवेचना करता है, वहाँ उपन्यास पाठक के मन में काल्पनिक रंगमंच का निर्माण कर व्यापक धरातल पर जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति करता है । जहाँ कहानी जीवन के एक पक्ष विशेष को चित्रित करती है, वहाँ उपन्यास जीवन के विस्तीर्ण पक्ष को । इसप्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास आज के युग का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं जीवन को समग्र तथा

---

1. Literature is vital record of what men and women have seen in life, what they have experienced of it, what they have thought and felt, about those aspect of it which have the most immediate and induring interest of all of us. It is thus fundamentally an expression of life through the medium of language.

   - W.H.Hudson: An introduction to the study of literature, page 11.

यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने वाला साहित्य-रूप है । जीवन की विविध परिस्थितियों, संघर्षमय जटिलताओं, भावात्मक प्रतिक्रियाओं एवं सम्भावनाओं का जितना सफल उद्घाटन तथा चित्रण इस साहित्यिक माध्यम द्वारा संभव है उतना अन्य साहित्यिक विधाओं द्वारा नहीं । इसके विस्तार की परिधि इतनी विशाल है कि इसमें सभी प्रकार की घटनाएं तथा सभी वर्ग के व्यक्ति सरलता पूर्वक आ सकते हैं । महाकाव्यों की भांति यह अतीत कालीन राजाओं एवं राजवंशों तक ही अपने को सीमित नहीं रखता है और न तो प्राचीन नाटकों की भांति इसे केवल धीरोदात्त नायक की ही आवश्यकता होती है । उपन्यास के लिए न तो अतीत-वर्तमान का कोई बंधन है और न साधारण जन के लिए कोई रोकथाम ही । ऐतिहासिक, अनैतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सभी विषयों को उपन्यास-साहित्य का विषय बनने का अधिकार प्राप्त है और समाज के किसी वर्ग के व्यक्ति उसकी चर्चा के विषय बन सकते हैं, बशर्ते कि वे मानव सम्बन्धी किसी भी समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हों[1]। उपन्यास, आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रमुख एवं [illegible] साहित्य रूप कहा जा सकता है । प्राचीन काल में मानव समाज के लिए जो महत्व महाकाव्यों का था, सम्भवतः उससे कहीं अधिक महत्व आज के युग में उपन्यासों को प्राप्त है । आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओं का सम्यक् विश्लेषण, विवेचन एवं समाधान यदि कहीं सम्भव है तो वह केवल उपन्यास में ही है और इस दृष्टि से उपन्यास आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रमुख एवं प्रतिनिधि साहित्य-रूप कहा जा सकता है ।

(ग) उपन्यास के तत्व

उपन्यास आलोचकों ने उपन्यास के छः तत्वों - कथावस्तु या कथानक,

१- त्रिभुवन सिंह: हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद(तृतीय संस्करण)पृ०८८ ।

विविध प्रकार से हो सकती है ।

कथावस्तु अथवा कथानक:

कथावस्तु अथवा कथानक एक ऐसा निश्चित साहित्यिक पारि-भाषिक शब्द है जो कथा-साहित्य की लगभग सभी विधाओं में व्यवहार्य है । यह पारिभाषिक शब्द महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी सभी में समान रूप से व्यवहृत होता है ।

कथावस्तु की परिभाषा देते हुए ई॰एम॰फार्स्टर ने लिखा है - "कथावस्तु कार्य-व्यापार एवं घटनाओं का वर्णन है जिसमें कार्य-कारण सम्बंधों पर विशेष बल दिया जाता है[1]। एडविन म्योर ने भी इसी से मिलती-जुलती परिभाषा दी है । उसके अनुसार किसी कथा में शृंखलाबद्ध घटनाएं और उनको परस्पर सम्बद्ध करने वाला आधार कथानक है[2]। शृंखलाबद्ध घटनाओं को परस्पर जोड़ने वाला यह आधार निश्चित रूप से उनका कार्य-कारण-सम्बन्ध है जिसकी उपस्थिति कथावस्तु के लिए [illegible] आवश्यक है । इस कार्य-कारण सम्बंध के अभाव में कथा में घटनाएं केवल एक कौतूहलपूर्ण समूह प्रतीत होंगी । उपन्यास के कथावस्तु के निर्माण में अनेक प्रकार के उपकरणों का योग रहता है । ये उपकरण मुख्य कथा, प्रासंगिक या अवान्तर कथाएं, पत्र, प्रामाणिक लेख आदि हैं जिनका उपन्यासकार आवश्यकतानुसार अपने उपन्यास में उपयोग करता है । जिस मुख्य विचार, आधार, कार्य या विकास विशेष पर उपन्यास आधारित रहता है उसे कथा-सूत्र कहते हैं ।

उपन्यास के तत्वों में कथावस्तु का तत्व सर्वाधिक स्पष्ट और स्थूल है । कुछ आलोचकों के अनुसार तो यह उपन्यास का मूल तत्व है और अन्य तत्व

---

1. A plot is a narrative of events, the emphasis falling on causality. - E.M.Forster: Aspects of Novel, page 93.
2. Plot is the chain of event in a story and the principle which knit it together.
   -Edwin Muir: The structure of the Novel, page 16.

उसी के अधीनस्थ रहते हैं[१]। ई०एम० फार्स्टर ने तो कथानक को इतना अधिक महत्व दिया है कि वह उसे ही उपन्यास मान लेता है । "एस्पेक्ट्स आफ नावेल" नामक पुस्तक में उसने लिखा है कि तार्किक बौद्धिक दृष्टि से हमें कथानक को ही उपन्यास मानना पड़ेगा[२]।

इस तथ्य को तो अस्वीकार नहीं ही किया जा सकता कि कथावस्तु, उपन्यास का मेरुदण्ड है जिस पर उपन्यासकार कल्पना द्वारा अन्य तत्वों के माध्यम से उपन्यास-शरीर को गढ़ता है । कुछ लोगों का यह कथन है कि कथानक या कथावस्तु विभिन्न घटनाओं एवं कार्य-व्यापारों का संकलन मात्र है, उचित नहीं प्रतीत होता । [illegible] की घटनाओं एवं कार्य-व्यापार में एक शृंखला होती है जो कार्य-कारण के सम्बन्धों पर निर्भर होती है तथा नियोजित ढंग से प्रत्येक घटना को एक दूसरे से सम्बद्ध करती है । उपन्यास में व्याप्त कुतूहल तत्व कथानक के सहारे ही विकास पाता है और उपन्यास का समग्र रूप उसी पर विकसित होता है । कथानक का चुनाव और निर्माण उपन्यासकार का प्रमुख विषय है और लेखक के कौशल का परिचय इसमें मिल जाता है । कथानक के समस्त अंगों का संगठन, घटनाओं का समुचित विन्यास उपन्यास को सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक होता है ।

कुछ आलोचकों की धारणा है कि उपन्यास में कथा एवं कथावस्तु अनावश्यक है । उनका कथन है कि जीवन कदाचित् ही किसी कथा के सांचे एवं आकार में ढलता है । कथानक मूलतः [illegible], कृत्रिम एवं उन्मत्त व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज है जो यथार्थ के स्वरूप को विकृत कर देता है । जीवन अस्त-व्यस्त, [illegible] एवं अपूर्ण है । तो फिर उसे एक उपन्यास में भी जीवन

१-(क) भगीरथ मिश्र: काव्य शास्त्र, पृ० ८३ ।

(ख) [illegible]प्रतापनारायण टंडन: हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास, पृ०७१।

२. The plot, then, is the novel in its logical intellectual aspect.
-E.M.Forster: Aspects of Novel, page 103.

का चित्र है, इतना सुसम्बद्ध, तार्किक एवं सुसंगठित क्यों बनाया जाय? अतः उपन्यास को यथार्थ के सन्निकट रखने के लिए उपन्यास के भ्रांतिजनक वस्तु स्वरूप एवं ढांचे को नष्ट कर देना चाहिए[1] ।

इन तथाकथित आलोचकों के उक्त प्रश्न और कथन का उत्तर दिया जा सकता है । प्रमुख एवं मूल बात तो यह है कि जीवन को अस्त-व्यस्त, अनियोजित एवं विशृंखल क्यों माना जाय? भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार, जीवन अनन्त है और अनन्त काल से किसी निश्चित योजना द्वारा प्रवाहित होता जा रहा है । ऐसी ही एक निश्चित योजना है कर्मवादी योजना । चाहे हिन्दू दृष्टिकोण हो, चाहे बौद्ध दृष्टिकोण या जैन दृष्टिकोण हो, तीनों ने ही जीवन की कर्मवादी योजना को स्वीकार किया है और उसकी प्रवाह-मानता में कर्म को प्रमुख स्थान दिया है[2] । मनुष्य कर्म करता है और अपने कर्मों के अनुसार फल पाता है । हो सकता है कि उसके कर्म का फल इस जन्म में न मिले, दूसरे जन्म में मिले, तीसरे जन्म में मिले । उसका वर्तमान जीवन भी विगत जीवन के कर्मों का परिणाम हो सकता है[3] । इस प्रकार मनुष्य के जीवन में एक योजना

---

1. A story, they seemed to suggest, invariably involved a certain amount of conscious or unconscious falsification of our awareness and experience of life. Life very seldom falls into a pattern and shapes itself into story. A plot is basically something invested, artificial and a madeup affair. It tortures reality out of shape. Life is chaotic, incomplete and confusing, why should it become so well knit-logical and ordered. Then in a novel? So in order to keep the novel closer to reality, the illusory objective pattern and the frame work of the novel must be annihilated.-

   Sisir Chattopadhyaya: The Technique of Modern English Novel, page.25.

२- (क) श्रीरामधारी सिंह दिनकर: संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ११२ तथा ११० ।
   (ख) धर्मानंद कोसम्बी: भगवान बुद्ध, पृष्ठ ३११ ।

3. Chatterjee and Dutta: An Introduction to the Indian Philosophy, page.135.

रहती है जो उसके कर्मों से परिचालित एवं बँधी हुई होती है । भले - बुरे कर्मों के अनुसार जीवन की उस योजना का विकास होता है और उन्हीं के अनु अनुसार जीवन का ढाँचा तैयार होता है । महाकवि तुलसीदास जी का यह "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा" जीवन की इसी कर्मवादी योजना की ओर इंगित करता है । अतः यह कहना कि जीवन अस्त-व्यस्त तथा अनियोजित है, कर्मवादी दृष्टि से अपूर्ण एवं एकांगी है ।

इस सन्दर्भ में एक बात और महत्वपूर्ण है । मूलतः उपन्यासकार एक [illegible]कार होता है। साथ ही वह एक दृष्टा एवं [illegible] भी होता है । उसके भीतर निहित दृष्टा वस्तुओं को जिस रूप में देखता है, प्रस्तुत करता है। वह उस ठोस भूमि को प्रदर्शित करता है जहाँ उसके पात्र विचरण करते हैं, आचरण करते हैं तथा घटनाओं को विकसित करते हैं । इसके पश्चात उसका प्रयोगधर्मी रूप प्रगट होता है और अपने उस रूप से वह अपने प्रयोग को प्रस्तुत करता है अर्थात् वह अपने पात्रों को एक विशिष्ट कथा में नियोजित कर घटना[illegible] को इस प्रकार निरूपित करता है जिससे उसके[1] दृष्टिकोण में आने वाले तथ्य की नियति का औचित्य निर्धारण हो जाय । [illegible]पन्यासकार बाह्य जीवन का निरपेक्ष [illegible]करण नहीं करता, वरन् वह समग्र जीवन प्रवाह से उत्पन्न अपनी

---

१. The novelist is equally an observer and an experimentalist. The observer in him gives the facts as he has observed them, suggests the point of departure, displays the solid earth on which his characters are to tread and the phenomena to develop. Then the experimentalist appears and introduces an experiment, that isto say, sets his characters going in a certain story so as to show that succession of facts will be such as the requirements of the determinism of the phenomena under examination call for.

— Zola: The Experimental Novl, page 8.

अनुभूति को कथा के विशिष्ट माध्यम द्वारा व्यक्त करता है । अतएव, उसे अपनी आवश्यकतानुसार वस्तु-विन्यास करना पड़ता है जिसमें कलात्मक नियोजन अनिवार्य है । अभिव्यक्ति का नियोजन इस बात का प्रमाण नहीं है कि अभिव्यक्त वस्तु भी नियोजित है । अथवा अनियोजित । उपन्यासकार के कलाकार होने की सार्थकता उसके वस्तु-विन्यास एवं शिल्प-विधि के निर्माण में ही निहित है ।

<u>कथा और कथावस्तु</u>

"कथा" तथा "कथावस्तु" का प्रयोग विद्वानों द्वारा प्रायः एक दूसरे के पर्याय रूप में किया जाता है और ऊपरी दृष्टि से सामान्यतः उनमें अन्तर देखना कठिन भी जान पड़ता है । किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उनमें भेद स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होगा । कथा एवं कथावस्तु का संबंध किसी न किसी रूप से उपन्यास के उस महत्वपूर्ण अंश से है जिसे कहानी कहा जाता है । कहानी से यहाँ तात्पर्य साहित्य के एक विशिष्ट स्वतंत्र रूप "कहानी" नामक विधा से नहीं है बल्कि उस कहानी से है जो महाकाव्यों, नाटकों, उपन्यासों आदि के माध्यम से कही जाती है । महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, आदि का सहज स्वाभाविक धर्म है कथा या कहानी कहना और इसी कथा या कहानी के आनंद के लिए पाठक उनको पढ़ता है । उपन्यास के माध्यम से भी एक कथा ही कही जाती है और यही उसका मुख्य धर्म है जिसके अभाव में उसका अस्तित्व ही [illegible] हो जायेगा ।

"कथा" एवं "कथावस्तु" में अन्तर है । "कथा" जहाँ उपन्यास का मुख्य धर्म है, वहाँ "कथावस्तु" उपन्यास का उच्चस्तरीय कलात्मक संगठन । कथावस्तु के कलात्मक शिल्प-संगठन के द्वारा ही उपन्यासकार कहानी को प्रस्तुत करता है । वह उपन्यास के माध्यम से कही जाने वाली [illegible] को अन्य कहानियों की भाँति सीधे सादे ढंग से नहीं कहता वरन् उसकी समुचित व्यवस्था करता है, उसका क्रम [illegible] करता है तथा उपन्यास में आये हुए अन्य प्रसंगों के साथ उसकी संगति [illegible] है । इस दृष्टि से कथा जहाँ उपन्यास का साध्य है, वहाँ कथावस्तु उपन्यास का साधन, कथा उपन्यास का जहाँ धर्म है, वहाँ कथावस्तु कर्म । अतः कथा एवं [illegible] का एक दूसरे के पर्याय रूप में प्रयुक्त करना

तथा कथा को उपन्यास का एक तत्व कहना असंगत तथा भ्रमपूर्ण है[1]।

"कथा" और "कथावस्तु" में जो प्रमुख अंतर है वह है उनकी प्रकृति का। "कथा" में जहाँ "फिर क्या हुआ" जानने की इच्छा जगती है वहाँ "कथावस्तु" में "ऐसा क्यों हुआ" जानने की प्रवृत्ति होती है। एक में कौतूहल वृत्ति जागृत होती है तो दूसरे में हमारी बुद्धि एवं स्मरण शक्ति भी सजग रहती है[2]। कथा में पूर्वा पर सम्बंधों को प्रधानता नहीं रहती, परन्तु कथावस्तु में कारण और उससे उत्पन्न परिणामों पर विशेष बल दिया जाता है। सम्राट की मृत्यु हो गयी और उसके पश्चात् साम्राज्ञी की भी मृत्यु हो गयी, यह तो कहानी हुई और सम्राट की मृत्यु हो गयी जिसके दुख के कारण साम्राज्ञी की भी मृत्यु हो गयी, यह हुई कथावस्तु। कथावस्तु में कथा का रूप पूर्णतः सुरक्षित रहता है, पर कारण इतना प्रभावशाली हो जाता है कि वह कथागत समय को आच्छादित कर लेता है। उदाहरण स्वरूप सम्राट "के बाद" साम्राज्ञी के मृत्यु की घटना घटती है। इस कथा में समय और उसके क्रम का महत्व है, लेकिन दुख के कारण साम्राज्ञी की मृत्यु हो जाती है, इसमें समय या कालक्रम की अपेक्षा दुख का महत्व अधिक बढ़ जाता है। कारण पर विशेष बल देने के हेतु से ही कथावस्तु में पर्याप्त विस्तार की सम्भावना बढ़ जाती है जो कि कथा के माध्यम से सम्भव नहीं है। समय में विस्तार नहीं लाया जा सकता लेकिन कारणों के [illegible] की कोई सीमा नहीं। कथा में समय का महत्व अधिक रहता है जबकि कथावस्तु में कारणों पर बल देने के कारण समय का महत्व कम हो जाता है। कथा और

१- डा०त्रिभुवन सिंह ने अपनी पुस्तक "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद" में कथा को [illegible] के एक प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार किया है। कई स्थलों पर कथा को [illegible] उपन्यास का मूलधर्म भी कहा है। देखिये उनकी पुस्तक, पृ०४४ (तीसरा संस्क०)।

2. A plot cannot be told to a gaping audience of cave men or to a tyrannical Sultan or to their modern descendant this movie-public. They can only be kept a wake by and then— and then— they can only supply curiousity. But a plot d[illegible]s intelligence and memory also.

—E.M.Forster: Aspects of Novel.94.

कथावस्तु में यही मूल भूत अन्तर है ।

<u>पात्र तथा चरित्र-चित्रण:</u>

यदि कथावस्तु उपन्यास शरीर का मेरुदण्ड है तो पात्र अथवा चरित्र उपन्यास के प्राण है । प्रेमचन्द का यह कथन कि मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझता हूँ[१] पात्र अथवा चरित्र की महत्ता को उद्घोषित करता है । उपन्यास में मनुष्य तथा उसके जीवन की विभिन्न घटनाएं एवं भाव-स्थितियाँ चित्रित रहती है । इसलिए स्वाभाविक रूप से पात्रों का महत्व बढ़ जाता है । पात्र एवं उनकेक्रिया-कलाप ही वे मूलाधार है जिनके माध्यम से उपन्यासकार अपने अपनी कृति में महत् उद्देश्यों की स्थापना कर उसे शाश्वत सत्यों तथा स्थायी मूल्यों से समन्वित करता है ।

पात्र अपने क्रिया-कलापों से घटना-व्यापार का निर्माण करते है और वे घटना-व्यापार कथावस्तु का निर्माण करते है । एक प्रकार से कहा जा सकता है कि पात्र ही घटना-व्यापार है और घटना-व्यापार ही कथावस्तु है । अतएव, कथावस्तु में आकर्षण से लाने तथा उसे प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पात्रों को सजीव एवं यथार्थ बनाया जाय । यदि उनमें सजीवता और स्वाभाविकता नहीं है तो वे कठपुतली की तरह भले ही हमारा मनोरंजन कर लें, किन्तु हमारी भावनाओं एवं रागात्मक वृत्तियों को उद्वेलित नहीं कर सकेंगे । वस्तुतः उपन्यास तथा उपन्यासकार की सफलता इसी पर निर्भर करती है कि उसके पात्र कितने सजीव एवं शक्तिशाली है तथा स्वाभाविक जीवन के कितने करीब है । यदि उपन्यासकार की कल्पना द्वारा सृजित पात्रों में वास्तविक सृष्टि की अनुरूपता न आ सकी, वह नवीन सृष्टि के पात्र किसी अपरिचित देश के रहे और उनके प्रति पाठक कोई वैसी सहानुभूति न हो सकी, जैसी हम अपने के सम्बन्ध के साथ होती है तो वे किसी मानव-जगत के चित्र नहीं—अन्य जगत के भले ही हों ।

१- प्रेमचन्द: कुछ विचार(१९३९संस्क०), पृ० ५५ ।

पात्रों की स्वाभाविकता इसी में है कि वे जीवन के स्वाभाविक धर्मों- राग, द्वेष, घृणा, करुणा, प्यार आदि- से स्वयं प्रभावित हों और हमें भी प्रभावित करें तथा पाठक को यह प्रतीति करा दें कि वे भी सुख में सुखी तथा दुख में दुखी होने वाले रक्त-मांस से निर्मित सांसारिक मनुष्यों की ही तरह हैं । उपन्यास में चरित्र न तो बिल्कुल निर्दोष होने चाहिये और न पूर्णतया भ्रष्ट एवं दूषित ही । हर व्यक्ति में गुण होता है और दुर्गुण भी । अतः वास्तविक जीवन में पाये जाने वाले गुण-दोष-समन्वित चरित्रों की अवतारणा ही उन्हें स्वाभाविकता के निकट ले जा सकती है । किसी भी उपन्यास की सफलता पात्रों की विश्वसनीयता तथा वास्तविकता पर ही निर्भर करती है । एक सफल उपन्यास के लिए शैली का महत्व है, कथानक का महत्व है, [illegible] के दृष्टिकोण की मौलिकता का भी महत्व है, किन्तु पात्रों की विश्वसनीयता और उनकी वास्तविकता का महत्व सर्वोपरि है । यदि पात्र यथार्थ हैं, जीवन के सन्निकट हैं तो उपन्यास की सफलता असंदिग्ध है और यदि वे जीवन से दूर हैं, अयथार्थ हैं तो उनकी स्मृति बहुत दिनों तक हमारी स्मृतिकोष में नहीं टिक पायेगी[1] ।

पात्रों में जीवन्तता के साथ साथ उनके अपने व्यक्तित्व का होना भी आवश्यक है । वास्तविक जीवन में भी हर व्यक्ति अपना एक अलग व्यक्तित्व रखता है जिसके कारण वह समूह में से भी पहचाना जा सकता है । यदि किसी भी व्यक्ति का विश्लेषण हम करें, चाहे वह परम्परावादी ही क्यों न हो, तो कहीं न कहीं उसका अपना व्यक्तित्व छिपा नजर आयेगा । उसका यही व्यक्तित्व जीवन के संघर्ष में उसे आगे बढ़ाता है और परिस्थितियों

---

1. Arnold [illegible] says:- "The foundation of good fiction is character creating and nothing else--style counts; plot counts; originality of outlook counts, but none of these counts anything like so much as convincingness of the character. If the characters are real, the novel will have a chance, if they are not, oblivion will be its portion."-

को बनाता बिगाड़ता चलता है । अतएव, शक्तिशाली चरित्र-निर्माण के लिए न केवल स्वाभाविकता का वरन् उनके निजी व्यक्तित्व का आरोपण भी आवश्यक है । पात्रों में ऐसी शक्ति होनी चाहिये कि वे परिस्थितियों से संघर्ष लेते हुए तथा उन्हें बनाते-बिगाड़ते चलें । यदि पात्रों में कोई अपनी जीवनी शक्ति अथवा अपना व्यक्तित्व नहीं है और वे लेखक के इशारे की कठ-पुतली हैं, तो उन्हें जीवंत एवं भिन्न व्यक्तित्वधारी मानव-चरित्र नहीं कह सकते । चरित्रांकन की सफलता तो यह है कि उपन्यास के पात्र जीवित स्त्री-पुरुषों की भांति घूमते दृष्टिगोचर हों और पुस्तक बन्द कर देने तथा सूक्ष्म विवरण भूल जाने पर भी वे हमारी स्मृति में जीवित रह सकें[1] ।

चरित्र-चित्रण के संबंध में प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि उपन्यासकार को अपने पात्रों या चरित्रों का निर्माण कल्पना से करना चाहिये या उनको यथार्थ जीवन से लेना चाहिये । इस सम्बंध में तो प्रायः सभी आलोचक एकमत हैं कि पात्रों का चुनाव यथार्थ जीवन से करना चाहिये। किन्तु एक बात यहाँ ध्यान देने की है कि उपन्यास मूलतः एक काल्पनिक कलाकृति ही है, अतः कल्पना को छोड़कर यह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती । अतः पात्रों के निर्माण के लिए कल्पना भी आवश्यक है । हाँ, यह बात दूसरी है कि उपन्यास में प्रयुक्त कल्पना यथार्थ और सजीव होनी चाहिये । यदि कथाकार पात्रों की सृष्टि केवल निर्जीव यांत्रिक और [illegible] कल्पना के आधार पर करेगा, तो पात्र सर्वथा निर्जीव और अयथार्थ होंगे और पाठक पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकेंगे । इसके विपरीत

---

1. And the first thing we require of any novelist in this handling of character is that, whether he keeps close to common experience or boldly experiments with fantastic and the abnormal, his men and women shall more through his pages like living beings remain in our memory after his book is laid a side and its details perhaps forgotten.

—W.H.Hudson: Introduction to the study of lit. page 144-145.

यदि चरित्र यथार्थ जीवन से लिये गये होंगे, यथार्थ कल्पना द्वारा निर्मित हुए होंगे, तो वे जीवन की यथार्थता का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ होंगे । वाल्टर बेसेंट ने अपनी "उपन्यास-कला" नामक पुस्तक में लिखा है -"उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिये जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं ------ कुछ लोगों को यह शंका भी होती है कि मनुष्यों में जितने अच्छे नमूने थे वे तो पूर्वकालीन लेखकों ने लिख डाले, अब हमारे लिए क्या बाकी रहा ? यह सत्य है, लेकिन अगर पहिले किसी ने बूढ़े, कंजूस, उड़ाऊ युवक, जुआरी शराबी, रंगीन युवती आदि का चित्रण किया है तो क्या अब उसी वर्ग के दूसरे चरित्र नहीं मिल सकते ? पुस्तकों में नये चरित्र न मिले, पर जीवन में नवीनता का अभाव कभी नहीं रहा[१] ।"

उपन्यासकार के लिए किसी भी सशक्त एवं प्राणवान् चरित्र का निर्माण तब तक सम्भव नहीं है जब तक वह अपनी कल्पना के सम्मुख किसी व्यक्ति को सजीव रूप में खड़ा नहीं कर लेता । यह सजीव व्यक्ति उसके आस-पास का भी हो सकता है या लेखक स्वयं भी । चरित्र निर्माण में लेखक अपने चुने हुए व्यक्ति के किसी एक विशेष पक्ष को या अनेक पक्षों को लेता है या किसी अन्य चरित्र के विभिन्न पक्षों का उस पर आरोपण कर एक नया चरित्र गढ़ता है । यदि उसके चरित्र यथार्थ जीवन से लिये गये तथा यथार्थ कल्पना द्वारा निर्मित होते हैं तो प्राणवान, स्वाभाविक एवं विश्वसनीय होते हैं और हमारे मन की रागात्मक वृत्तियों को उद्वेलित कर हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं । अयथार्थ एवं निर्जीव कल्पना द्वारा निर्मित पात्रों में न तो जीवन होता है और न स्वाभाविकता होती है, अतः वे हमारे हृदय एवं बुद्धि से अछूते रह जाते हैं । अतः उपन्यासकार को पात्रों का चुनाव यथार्थ जीवन से करना चाहिये और यथार्थ कल्पना द्वारा उनका निर्माण करना चाहिये ।

१- प्रेमचन्दः कुछ विचार, पृ०६३ ।

कथावस्तु तथा पात्र में कौन उपन्यास का प्रमुख तत्व है, इस सम्बन्ध में प्रायः प्रश्न किये जाते हैं । प्रायः यह भी पूछा जाता है कि उपन्यास रचना के पूर्व उपन्यासकार पहले चरित्रों की रूप-रेखा तैयार करता है या कथावस्तु की योजना करता है । इन दोनों प्रश्नों में कोई सार नहीं है । थोड़ा सा भी चिन्तन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही समान रूप से उपन्यास के प्रमुख तत्व हैं । वस्तुस्थिति तो यह है कि दोनों तत्व एक दूसरे से ऐसे गुंथे हुए हैं कि उनको अलग-अलग करके देख पाना अत्यन्त कठिन है[1] । इस सम्बन्ध में हेनरी जेम्स का कथन उचित ही है कि चरित्र हमारे सामने किसी न किसी कार्य के प्रसंग में आते हैं और कार्य ही कथावस्तु का आधार है[2]।

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की सफलता आवश्यक रूप से उपन्यासकार की स्पष्ट वर्णन क्षमता पर निर्भर करती है । नाटकों में पात्रों का परिचय देने के लिए जहाँ अनेक साधनों-अभिनय-कौशल, वेशभूषा, दृश्यावली आदि का उपयोग किया जाता है वहाँ उपन्यासों में एक । अभिनय-कौशल, वेश-भूषा एवं दृश्यावली के द्वारा नाटकीय पात्रों का परिचय मिल जाता है, किन्तु उपन्यास में ये सब साधन सुलभ नहीं । उपन्यास - पाठक को तो अपनी कल्पना से ही इन साधनों का अनुमान करना पड़ता है और इस अनुमान का प्रधान आधार होता है उपन्यासकार द्वारा वर्णन । इस प्रकार चरित्रों

---

1. The characters are not part of the machinery of the plot, nor is the plot merely a rough framework around the characters. On the contrary, both are inseperably knit together.
-Edwin Muir: Structure of the Novel, page 41.

2. Henry James says: Character in any sense in which we can get at it, is action and action is plot and any plot which hangs together even if it pretends, to interest us only in the fashion of Chinese puzzle, play upon our emotion, our suspense, by means of personal reference.
-R.Liddle: A Treatise on Novel, page 12.

के स्वभाव, अनुभूति एवं उनके रूपरंग का स्पष्ट वर्णन उपन्यासकार के महत्व-पूर्ण कार्यों में हो जाता है । अतः उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार पात्रों के रूप-रंग तथा आकार-प्रकार में जो व्यक्तिगत तथा चारित्रिक विशेषताएं हों, उनके आचरण, भावाभिव्यंजना, क्रिया-कलाप तथा मनोवृत्ति में जो महत्वपूर्ण बातें हों, उनका ऐसा स्पष्ट वर्णन प्रस्तुत करे कि पाठक के मन में एक स्पष्ट चित्र खिंच जाय ।

चरित्र-चित्रण के लिए आजकल मुख्यतः दो प्रकार की विधियां प्रयुक्त होती हैं - विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक । पहली में उपन्यासकार एक इतिहासकार की भांति अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वयं अपने शब्दों में करता है ।वह उनके भावों, विचारों, प्रवृत्तियों तथा मनोद्वेगों आदि का विश्लेषण - विवेचन स्वयं करता है । और कभी-कभी आधिकारिक ढंग से निर्णय भी दे डालता है । दूसरी विधि में, उपन्यासकार अपने पात्रों को प्राणशक्ति से सम्पन्न करके स्वच्छन्द छोड़ देता है और स्वयं अलग खड़ा हो जाता है । वे सजीव पात्र ही अपने क्रिया-[illegible] तथा वार्तालापों द्वारा अपने चरित्र को अनावृत करते हैं । उपन्यासकार को उनके बीच आकर उनके सम्बन्ध में कुछ कहने या व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती और यदि कभी पड़ती भी है तो वह कथा के अन्य पात्रों के मुख से बोल देता है ।

चरित्र-चित्रण की उपर्युक्त दोनों विधियों में अभिनयात्मक विधि ही सर्वोत्तम मानी जाती है । इस सम्बन्ध में आलोचकों का कथन है कि [illegible] कला पूर्ण तथा सफल नहीं होता । इसलिए पात्रों के सम्बन्ध में वह अपना जो अभिमत अथवा टीका-टिप्पणी प्रस्तुत करेगा या उनका जो मनोविश्लेषण [illegible] करेगा, वह भी किसी अंश में पूर्ण नहीं हो सकता । अतः चरित्रों को पूर्ण रूप से जानने तथा उनके विभिन्न पक्षों के [illegible] के लिये यह आवश्यक है कि उन्हीं को जीवन के संघर्ष, घात-प्रतिघात, [illegible] में

छोड़ दिया जाय । इन परिस्थितियों के प्रभावों तथा प्रभाव-जन्य क्रिया-कलापों से उनका चरित्र स्वयं ही प्रस्फुटित तथा विकसित हो जायेगा और वार्तालापों तथा उनके विशिष्ट क्रिया-कलापों से हम उनकी चरित्रगत विशेषताओं से परिचित हो जायेंगे ।

चरित्र-चित्रण की इस नाटकीय अथवा अभिनयात्मक पद्धति की उत्कृष्टता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । निश्चय ही चरित्र-चित्रण की यह सजीव एवं प्रभावशालिनी विधि है और स्वाभाविकता के अधिक सन्निकट है । किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस विधि का प्रयोग उपन्यास में वहीं तक श्लाघनीय है, जहाँ तक वह उसकी सत्ता को नष्ट न कर दे और उसे नाटक का विकृत रूप न बना दे । नाटक और उपन्यास में प्रधान अन्तर यही होता है कि नाटक में पात्र अपने चरित्र का उद्घाटन अपने क्रिया-कलापों, संवादों तथा अन्य पात्रों के संवादों द्वारा करता है, नाटककार को उसके विषय में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होता, जबकि उपन्यास में उपन्यासकार समय-समय पर आ उपस्थित होता है और पात्रों के विषय में अपना मत देकर तथा उनके चरित्र की व्याख्या उपस्थितकर पुनः लोप हो जाता है । वस्तुतः श्रेष्ठ उपन्यास में विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक दोनों प्रकार की चरित्र-चित्रण की विधियों का उपयोग होना चाहिये, दोनों विधियों के सम्मिलित सहयोग से ही उपन्यास में सजीवता एवं स्वाभाविकता अक्षुण्ण रह सकती है[1]।

पात्रों को यथार्थता का संस्पर्श देने तथा उनके चरित्र के स्वाभाविक विकास एवं चित्रण के लिए उपन्यासकार में कल्पनाशीलता तथा नाटकीय सहानुभूति का होना आवश्यक है । साथ ही साथ उसको मानव-प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवेगों, भावस्थितियों आदि का [illegible] एवं सूक्ष्म ज्ञान भी होना चाहिए । यदि उसे मानव-प्रकृति का ज्ञान नहीं है, पात्रों के

१- श्याम सुन्दर दास: साहित्यालोचन, पृ० २०१ ।

परिस्थितिजन्य भावों एवं अनुभूतियों से यथेष्ट परिचय नहीं है, तो वह पात्रों में न प्राण प्रतिष्ठा कर सकता है और न उन्हें स्वाभाविक रूप से जगत में विचरने के लिए खड़ा ही कर सकता है । और इसके अभाव में निर्मित पात्र, पात्र न बनकर मशीन से चलने वाले खिलौने मात्र बन रहेंगे ।

चरित्रों के प्रकार:

उपन्यासों में सामान्यतः, दो प्रकार के चरित्र देखने को मिलते हैं - एक स्थिर तथा दूसरा गतिशील । पहले प्रकार के चरित्र-निर्माण के पीछे एक निश्चित आदर्श अथवा गुण का प्राधान्य होता है । उस गुण अथवा आदर्श के माध्यम से उसे एक भीड़ में से भी पहचाना जा सकता है । इनको पहचानने के लिए न तो किसी दृष्टि विशेष की आवश्यकता होती है और न चिल्ला-चिल्लाकर [illegible] धारणा करने की । साधारण से साधारण पाठक भी इनको आसानी से पहचान सकता है और अपनी स्मृति में रख सकता है । ऐसे पात्रों की विशेषता यह है कि वे अपरिवर्तनशील होते हैं । इनमें न तो किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव है और न परिस्थितियाँ ही उन्हें बदल पाती हैं । विभिन्न परिस्थितियों के बीच स्थिर रहते हुए वे अपने मार्ग का निर्माण करते हैं, साथ साथ परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाते चलते हैं । परिस्थितियों के इस संघर्ष में इनका निश्चित आदर्श तथा गुण भी [illegible] होता जाता है और इनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली बन जाता है कि वे पाठकों के मस्तिष्क में सदा के लिए अमर हो जाते हैं ।

किन्तु, स्थिर चरित्रों का एक दूसरा पक्ष भी है जिसमें इनकी [illegible]शीलता अथवा एकरसता तथा अस्वाभाविकता उद्भूत होकर हास्य और व्यंग्य की उद्भावना करती है । स्थिर चरित्र को ई०एम०फार्स्टर ने "[illegible]" चरित्र की संज्ञा दी है । कदाचित् इसी-लिए १७ वीं शताब्दी में इस प्रकार के स्थिर अथवा कुंठित चरित्रों को "ह्यूमरस" तथा कभी कभी

"टाइप्स" तथा "कैरीकेचर" भी कहते हैं[1]।

स्थिर चरित्रों के विपरीत कुछ ऐसे भी चरित्र होते हैं जिनमें गतिशीलता होती है । इस दूसरे प्रकार के चरित्रों को ई०एम०फार्स्टर ने "राउण्ड" चरित्र की संज्ञा दी है । इनकी निर्माण किसी निश्चित आदर्श अथवा गुण को लेकर नहीं किया जाता । ये इतने गूढ़ होते हैं कि सहज ही इन्हें पहचाना नहीं जा सकता । किस क्षण वे क्या कर बैठें, इसके विषय में कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता । ऐसे चरित्रों का अन्तर्मन अधिक जागरूक होता है जो परिस्थितियों के प्रवाह से प्रवाहित होता रहता है । ये चरित्र मनोवैज्ञानिक होते हैं ।

आधुनिक उपन्यासों में स्थिर चरित्रों की अपेक्षा गतिशील चरित्रों को चित्रण अंकित किया जाता है । गतिशील चरित्र यथार्थ के अधिक निकट होते हैं जबकि स्थिर चरित्र आदर्श के । गंभीर तथा करुण स्थिर चरित्र पाठकों के मन में एक प्रकार की उदासी पैदा कर देते हैं, क्योंकि बार- बार वे पाठकों के सम्मुख प्रतिशोध लेने के लिए या यह कहने के लिए कि "मेरे रक्त का प्रत्येक बूंद मानवता के लिए प्रस्तुत है" या "प्रभु, मुझे अपने दामन में छुपा" आ उपस्थित होते हैं । इस प्रकार की बातों को सुनते-सुनते पाठकों का मन ऊबने लगता है । इसके विपरीत गतिशील चरित्रों को पहचानना कठिन होता है । और प्रत्येक क्षण उनके बदलते हुए रूपों तथा गतिविधियों को जानने की उत्सुकता बनी रहती है । जब भी वे हमारे सम्मुख आते हैं अपने में एक नवीनता लिए आते हैं और अपनी इस नवीनता से हमारा मन सहज ही आकर्षित कर लेने में समर्थ हो जाते हैं ।

---

1. We may divide the characters into flat and round. Flat characters were called 'humours' in seventeenth century and are sometimes called 'types' and sometimes caricatures. In their purest form, they are constructed round a single idea or quality: when there is more than one factor in them, we get the beginning of the curve towards the round.
   —E.M.Forster: Aspects of Novel. page 75

कथोपकथन:

कथोपकथन अथवा संवाद उपन्यास का ऐसा तत्व है जिसके माध्यम से पाठक पात्रों के घनिष्ठ सम्पर्क में आता है और दृश्य काव्य की सजीवता और वास्तविकता का अनुभव करता है । आधुनिक उपन्यासों में इस तत्व का अधिकाधिक प्रयोग इसकी महत्ता को घोषित करता है । एक सामान्य पाठक जब कोई उपन्यास पढ़ने के लिए उठाता है तो यह देखने के लिए कि पुस्तक उसके रुचि के अनुकूल है या नहीं, वह पुस्तक में आए कथोपकथनों एवं वर्णनात्मक अंशों की तुलना करता है और तब निर्णय लेता है । यदि उपन्यासमें कथोपकथन का अंश अधिक नहीं होता तो सामान्य पाठक उसे एक ओर रख देता है और यदि पढ़ता भी है तो उसको उतना आनन्द नहीं मिलता । उपन्यास में कथोपकथन का अभाव उसमें एक प्रकार की कृत्रिमता एवं अयथार्थता का वातावरण उत्पन्न कर देता है । सम्भवतः इसी तथ्य को लक्ष्य कर प्रेमचन्द ने लिखा है कि "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है[1] ।"

कथावस्तु के विकास तथा चरित्र-चित्रण में कथोपकथन का अत्यधिक योग रहता है । कथोपकथन के द्वारा ही कथाकार अपनी कृति में वर्णित घटनाओं या दृश्यों का संयोजन कर कथानक में विस्तार लाता है तथा उसमें नाटकीयता का समावेश कर कथा-क्रम को आगे बढ़ाता है । [illegible] का श्रेष्ठ रूप वस्तुतः उस समय होता है, जब वह पाठक के मानस की [illegible] बन जाता है और जो कुछ होता है वह चरित्रों के द्वारा ही किया हुआ लगता है । उपन्यास का यह रूप बहुत कुछ कथोपकथन पर ही निर्भर करता है । कथोपकथन, कथावस्तु के प्रवाह को कभी वायुवेग से आगे बढ़ा देता है और कभी मन्थर गति से उसके कुतूहल अंशों को उभारते रहता है । इस प्रकार संपूर्ण उपन्यास में यह तत्व एक प्रकार का [illegible] स्थापित किये रहता है ।

१- [illegible]न्द : कुछ विचार(१९३९), पृ० ७३ ।

कथोपकथन चरित्र का स्वयं निवेदित स्वरूप पूरी मानवीय संवेदना के साथ हमारे सामने प्रस्तुत करता है । चरित्रों के संबंधों तथा उनकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करने का यह एक प्रबल साधन है । इस दृष्टि से कथोपकथन को चरित्र की कुंजी कह सकते हैं । मनुष्य जो कुछ सोचता-समझता है, वही कहता है और जो कुछ वह कहता है प्रायः वही करता भी है । इस प्रकार कथोपकथन पात्र की मानसिक विचार-धारा एवं क्रिया-कलाप का एक संबंध-सूत्र है । इसी तत्व के माध्यम से कथाकार चरित्रों के विभिन्न पारवों का उद्घाटन कर उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं को सम्मुख रखता है । पात्रों के घटना-जन्य मनोरागों, भावनाओं, क्रिया-प्रतिक्रियाओं, तथा उनके प्रभावों को प्रकट करने की अद्भुत क्षमता कथोपकथन में होती है और कुशल लेखक जो अभिनयात्मक प्रणाली को विशेष पसन्द करता है, इसके द्वारा चरित्रों का विश्लेषण तथा उनकी व्याख्या बड़ी सुगमता से कर सकता है[1]।

आदर्श कथोपकथन की परिभाषा देते हुए अलविटस ने लिखा है- "ऐसी रचना, जो मनुष्यों की साधारण बातचीत का सा प्रभाव उत्पन्न करे अथवा उस सम्भाषण सा जो किसे कहीं ओट में होकर सुना गया हो[2]।" इस परिभाषा के अनुसार वास्तविक जीवन की बातचीत की अनुरूपता ही कथोपकथन का मापदण्ड है । उपन्यास के पात्र मानव के प्रतिबिम्ब होते हैं, अतएव उनके बातचीत की कसौटी भी मानव की बातचीत ही होती है । किसी भी उपन्यास की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके चरित्रों की बातचीत स्वाभाविक, [illegible] तथा नाटकीय हो अर्थात् बोलने वाले पात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल, परिस्थिति के अनुरूप, सुबोध,

---

1. It has immense value in the exhibition of passions, motives, feelings of the reactions of speakers, to the events in which they are taking part; and of their influence upon one another. In the hands of novelist who leans strongly towards the dramatic method, it may thus often be made to fill the place and perform the work of analysis and commentary.
   -W.H.Hudson: An Introduction to the study of literature p.154.

2. Composition which produces the effect of human talk- as nearly as possible the effect of conversation which is overheard.
   -Arlobatus: Talk on writing of English, Series 2 p.230.

स्पष्ट एवं सरल हो । नीरस कथोपकथन उपन्यास के सम्पूर्ण सौन्दर्य को नष्ट कर देता है । स्वाभाविक बातचीत से तात्पर्य प्रतिदिन के जीवन में बोली जाने वाली भाषा से नहीं है । दैनिक जीवन में साधारण व्यक्ति तथा परिस्थिति विशेष में प्रतिभाशाली व्यक्ति भी ऐसी बातें कह जाते हैं जो असम्बद्ध एवं प्रभावशून्य होती हैं तथा जिनका कोई महत्व नहीं होता । ऐसे कथोपकथन उपन्यास को नीरस एवं प्रभावहीन बना देते हैं और पाठक का मन उसमें नहीं रम पाता । इसके विपरीत यदि जान-बूझकर कथोपकथन को नाटकीय तथा प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया जायेगा तो उसमें कृत्रिमता आ जाने की बहुत सम्भावना रहेगी । ऐसे कृत्रिम और आडम्बरपूर्ण कथोपकथन में हमारा विश्वास कभी नहीं टिक सकेगा और उसे हम केवल लेखक द्वारा गढ़ा हुआ शब्द-कौतुक ही समझेंगे[1] । अतः डब्ल्यू० एच० हडसन के मतानुसार उपन्यासकार को इन दो "अतियों" से बचना चाहिए और उनके मध्य सामंजस्य का प्रयत्न करना चाहिए । इसी में उसकी कला है । उसका उद्देश्य स्त्री पुरुषों के सामान्य जीवन के वार्तालापों को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना नहीं होना चाहिए वरन् उस रूप में उपस्थित करना चाहिए कि उनमें एक नाटकीय गति और शक्ति आ जाने पर भी वे हमें सहज, स्वाभाविक और युक्तिसंगत प्रतीत हों[2] ।

उपन्यास में सार्थक और सम्बद्ध कथोपकथन ही वांछनीय हैं। निरर्थक, असम्बद्ध तथा अनावश्यक कथोपकथनों से उपन्यास की प्रभावात्मकता कम हो जाती है और कथा में शैथिल्य आ जाता है । कथोपकथन का प्रयोग उपन्यास में उतना ही होना चाहिये जितने से पात्रों के चारित्रिक विकास एवं कथा-क्रम की प्रगति में सहायता

१- शिवनारायण श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास (सं० २०१९), पृ० ४५१ ।

2. His aim must therefore be, not to report the actual talk of every day men and women, but to give such a conventionalised version of this as shall at once maintain required dramatic rapidity and power and leave the reader with a satisfying general sense of naturalness and reality.
-W.H.Hudson: An Introduction to the study of literature, p.156.

मिले । कथोपकथन की सफलता इसी में है कि वह पात्रों के मनोभावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों तथा घटनागत् प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करने के साथ-साथ कार्य-प्रवाह को भी आगे बढ़ाता जाय ।

कथोपकथन, परिस्थिति और पात्र के बौद्धिक विकास के अनुकूल होना चाहिए । इस संबंध में प्रेमचन्द का यह कथन कि "वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए । प्रत्येक वाक्य को- जो किसी चरित्र के मुंह से निकले- उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए । बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना चाहिए" उचित ही है[1] । गुलाब राय के मतानुसार तो कथोपकथन की भाषा ही पात्रानुकूल नहीं होनी चाहिए वरन् उसका विषय भी पात्रों के मानसिक धरातल के अनुकूल होना चाहिए[2] । ऐसा न होने से उपन्यास में कृत्रिमता आ जायेगी और वह अपनी स्वाभाविकता खो बैठेगा । पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही कथोपकथन में स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता एवं संक्षिप्तता का गुण होना वांछनीय है । ऐसा कथोपकथन उपन्यास के सौन्दर्य को मुखरित बना देता है और उसका उचित एवं सुसंगत प्रयोग उपन्यासकार के शिल्पगत कौशल को स्पष्ट कर देता है ।

देश-काल तथा वातावरण

उपन्यास में उपन्यासकार की दृष्टि केवल चरित्रों तथा घटनाओं पर ही नहीं वरन् पात्रों के चतुर्दिक व्याप्त उस वस्तु जगत पर भी रहती है जिसमें पात्रों का कार्य-व्यापार सम्पन्न होता है । पात्रों के चतुर्दिक व्याप्त यह वस्तु-जगत ही उपन्यास का देशकाल तथा वातावरण है जिसके सजीव, यथार्थ तथा सशक्त चित्रण से औपन्यासिक जीवन स्वाभाविक एवं मुखर हो उठता है । देशकाल तथा वातावरण का उपन्यास में वही स्थान है जो चित्र में उसकी पृष्ठभूमि का है ।

१- प्रेमचंद: कुछ विचार (१९३९ ई०) पृष्ठ ७६

२- गुलाबराय: काव्य के रूप, पृ० १७९-८१ ।

यदि हम यह मान लें कि उपन्यास की कथावस्तु उपन्यास रूपी शरीर की हड्डियों का ढांचा है और चरित्र उसके प्राण तत्व हैं तो कहा जा सकता है कि देशकाल तथा वातावरण वह स्नायविक गठन है जिसकी स्वस्थता के कारण समुचित रूप से प्राण-तत्व का संचार होता रहता है । वस्तुतः उपन्यास में देशकाल तथा वातावरण उसके चरित्रों के घूमने-फिरने, सोचने समझने तथा क्रियाशील जीवन बिताने की आधार भूमि है जिसमें संयोजित होकर चरित्र तथा घटनाएं स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक हो उठती हैं और चरित्रों का मानसिक वैविध्य तथा घटनाओं की मार्मिकता स्पष्ट होकर प्रभावाभिव्यक्ति में योग देती रहती हैं[1] ।
उपन्यास पढ़ते समय पाठक पर चरित्रों तथा उनके क्रिया-कलापों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, लेकिन यह प्रभाव तभी तीव्र और स्पष्ट होता है जबकि उसके देशकाल तथा वातावरण के वर्णन में औचित्य हो अर्थात् चरित्रों की प्रकृति एवं उनके कार्य-व्यापारों के साथ देश, काल और परिस्थितियों का सहज स्वाभाविक संबंध हो । इस प्रकार देशकाल तथा वातावरण उपन्यास की प्रभावाभिव्यक्ति की पुष्टि में भूमिका का कार्य करता है ।

देशकाल तथा वातावरण के अन्तर्गत कथा के सभी बाह्य उपकरण अर्थात् उसकी योजना में सहायता देने वाले आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक वि[illegible] तथा प्राकृतिक पीठिका और परि[illegible] आदि आते हैं । इस प्रकार हम देशकाल तथा वातावरण को दो भागों में बांट सकते हैं- सामाजिक अथवा सांस्कृतिक तथा भौतिक अथवा प्राकृतिक ।

देशकाल के सामाजिक अथवा सांस्कृतिक चित्रण के अन्तर्गत उस देश और काल की, जहां उपन्यास की घटना- घटित होती है, सामाजिक रीति-नीति, शिष्टाचार, भाषा-प्रयोग, [illegible] तथा भौगोलिक परिस्थिति आदि का [illegible] होता है । इन विचारों और [illegible]करणों के [illegible] से ही [illegible] में

१- [illegible]: उपन्यास-एक विवेचन, पृष्ठ ७० ।

उपन्यासकार स्वाभाविकता एवं सजीवता ले आता है । किन्तु देश और काल के इन विधानों और उपकरणों के यथार्थ चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार उनसे पूर्णतः परिचित हो । ऐसा न होने तथा मनमानी कल्पना द्वारा उनका चित्रण करने से उपन्यास में अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है और वह विचित्रताओं का एक कौतुकगृह हो जाता है । सफल उपन्यासकार अपने उपन्यास में देश-काल की स्थितियों का चित्रण इतने स्वाभाविक एवं सहज रूप में करता है कि उससे एक ओर उपन्यास का कलात्मक सौन्दर्य बढ़ जाता है और दूसरी ओर पाठक देश-काल एवं परिस्थिति से पूर्णतः परिचित हो जाता है ।

यों तो देशकाल का उपयुक्त सामाजिक या सांस्कृतिक चित्रण सभी उपन्यासों के लिए आवश्यक है किंतु ऐतिहासिक उपन्यासों का यह प्राण है जिनका मुख्य ध्येय किसी विशिष्ट युग के जीवन के विविध रूपों के साथ ही साथ कथावस्तु एवं चरित्रों के नाटकीय स्थलों का संयोजन करना होता है । ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाला लेखक उसकाल के वातावरण से बंधा होता है । यदि वह कोई भी ऐसी बात लिख दे जो उस युग विशेष में सम्भव न थी तो बात खटक जायेगी और सहृदय पाठक के रसास्वादन में बाधा उपस्थित होगी[1] । ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखकों की सबसे बड़ी कुशलता देशकाल तथा ऐतिहासिक वातावरण के सजीव चित्रण में निहित होती है । सच तो यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक कथानक तथा पात्र इतने महत्वपूर्ण नहीं होते जितना तत्कालीन युग, उस युग का रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, विचार धारा एवं जीवन का आदर्श आदि ।

ऐतिहासिक उपन्यास मे ऐसे समाज एवं उसके व्यक्तियों का चित्रण रहता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है । किन्तु, उसने कुछ पद-चिन्ह अवश्य छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते[2] । ऐतिहासिक

१- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृष्ठ ९१ ।
२- राहुल सांकृत्यायन, आलोचना, उपन्यास अंक, पृष्ठ १०० ।

उपन्यास लिखने के लिए इन पद चिन्हों अथवा ऐतिहासिक कसौटियों का ज्ञान आवश्यक है । ऐतिहासिक वातावरण तथा देशकाल और घटनाओं एवं पात्रों के सजीव तथा यथार्थ चित्रण के लिए उपन्यासकार को उस काल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा एवं राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है और उनसे संबंधित छोटी से छोटी बात का वर्णन करते समय सतर्क दृष्टि का रखना अपेक्षित है । क्योंकि ये ही वे साधन हैं जो अतीत के जीवन तथा युग को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और हमें ऐसे काल में पहुँचा देते हैं जो कब का बीत चुका है । देश तथा स्थान के वर्णन में भौगोलिक ज्ञान स भी अपेक्षित है अन्यथा भयंकर भूलें हो जाने की सम्भावना रहती है । भौगोलिक परिस्थिति की असत्यता घटनास्थल के औचित्य में बाधा उपस्थित करता है । एक उपन्यासकार महोदय ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास ([illegible] रेखा-गुलबदन) में वैशाली की स्थिति मिर्जापुर के समीप दिखाकर भयंकर देश चित्रण की भूल की है ।

ऐतिहासिक उपन्यास का महत्व तो केवल इसी में है कि उसमें किसी बीते हुए युग के जीवन का चित्रण पूर्णता एवं विविधता के साथ किया जाय, जिससे सुधी पाठकों के सम्मुख उस काल का स्पष्ट एवं सजीव चित्र मस्तिष्क में उभर जाए । यह कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब लेखक ने उस काल के सभी बातों का पूर्ण अध्ययन किया हो और साथ ही साथ उसमें स्पष्ट एवं यथार्थ वर्णन की क्षमता हो । हडसन महोदय के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यासकार का यही कार्य है कि वह इतिहासकार एवं पुरातत्ववेत्ता के शुष्क तथ्यों तथा विभिन्न साधनों से संग्रहीत अस्त-व्यस्त सामग्री द्वारा अपनी सर्जनात्मक कल्पना एवं निर्माण-कौशल से ऐसा सजीव एवं मनोरम चित्र उपस्थित कर दे कि जिसे पढ़ते समय पाठक मुग्ध हो जाय और अपनी उपस्थिति उसी वातावरण में अनुभव करने लगे । ऐतिहासिक उपन्यासों के पाठक उसी उपन्यासकार का अधिक आदर करते हैं जो सभ्यता एवं संस्कृति के किसी विशिष्ट अतीतकाल का सजीव, यथार्थ एवं मनोरंजक वर्णन प्रस्तुत करने में

सफल होते हैं[1]। किसी काल-विशेष की घटनाओं के आधार पर लिखे ऐतिहासिक उपन्यास का महत्व उस काल अथवा युग की प्रकृति, उसके स्वर एवं रीति-रिवाजों आदि के सजीव एवं पूर्ण वर्णन पर ही निर्भर करता है ।

भौतिक अथवा प्राकृतिक संविधान की योजना कथा की मार्मिकता बढ़ाने तथा पात्रों को अधिक स्पष्टता देने के उद्देश्य से की जाती है । इस प्रा[illegible]क पीठिका का प्रयोग [illegible]र अपने उपन्यास में कई प्रकार से करता है । कहीं तो वह स्वयं की भावना से प्रेरित होकर प्रकृति का निरपेक्ष मनोरम काव्यमय चित्र उपस्थित करता है और कहीं प्रकृति को [illegible]स के पात्रों की रागात्मिका वृत्तियों के साथ साम्य अथवा विरोध [illegible] उनके भाव - वेग को और गतिशील बना देता है । प्रकृति के प्रति लेखक का लगाव, [illegible] और निरीक्षण जितना ही तीव्र होगा, उसकी कृति में उतनी ही अधिक सजीवता आयेगी और उस पीठिकापर प्रतिपादित घटना उतनी ही अधिक जीवन्त होगी तथा निश्चय ही [illegible]पन्यास का कलात्मक सौन्दर्य बढ़ जायेगा । डा० शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार प्रकृति का मनोरम काव्यात्मक चित्रण करते समय उपन्यासकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह उसकी कथा का एक अंग हो । ऐसे वर्णनों को जिनका कथा-प्रवाह के विस्तार अथवा चरित्र-[illegible] से कोई सम्बन्ध न हो, अधिक महत्व नहीं देना चाहिए, अन्यथा वे कथा के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध कर देंगे[2]। उचित स्थान पर उचित रीति से प्राकृतिक वर्णनों की योजना एवं कुशल

---

1. It is the business of historical novelist to bring creative imagination to bear upon the dry facts of the annalist and the antiquarian and out of the mass of the scattered material gleaned from variety of sources, to evolve a picture having the fulness and a unity of a work of art. It is this power of making real and picturesque some particular period of civilization and of doing this without any suggestion of the dry-as-dust and pedantic that the ordinary reader values most in the writer of historical fiction.

   -W.H.Hudson: An Introduction to the study of literautre p.159-160.

२- डा० [illegible]नारायण [illegible]: हिन्दी [illegible]पन्यास(सं०२०१६), पृ० ४४६ ।

विधानों द्वारा ही कथा की वास्तविकता का भ्रम कराया जा सकता है।

प्राकृतिक दृश्य-विधान का प्रभावशाली एवं कलात्मक उपयोग पात्रों की रागात्मक वृत्तियों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल दिखलाने में है। अनुकूलावस्था में प्रकृति पात्रों के भावनाओं के समानान्तर प्रदर्शित की जाती है और प्रतिकूलावस्था में पात्रों के भावनाओं के विपरीत प्राकृतिक वैभव-विलास का वर्णन कर गंभीर अंतर्द्वंद्व की अवतारणा की जाती है। ऐसे दृश्य-विधानों से कथा एवं पात्रों की मार्मिकता बढ़ जाती है।

देशकाल एवं वातावरण का चित्रण उपन्यास में कथा-प्रवाह के विस्तार तथा चरित्र विकास का साधन मात्र है। किन्तु जहां यह साधन न होकर साध्य बन जाता है, वहां कथा की गति में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। परिणाम यह होता है कि पाठक ऐसे स्थलों से घबराकर उन्हें छोड़ देता है और कथा-सूत्र ढूंढने के लिए आगे बढ़ जाता है। अतः देशकाल तथा वातावरण के चित्रण की [illegible] इसी में है कि वह निरर्थक न होकर कथा तथा पात्रों को स्पष्ट करने में सहयोग दे।

शैली:

भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है और शैली उस साधन के उपयोग करने की रीति। यों तो सभी साहित्यिक कृतियों में शैली का महत्व है किन्तु कदाचित् इसलिए कि उपन्यास जीवन की समग्रता का एक वैविध्यपूर्ण एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करता है, उपन्यास में इसका विशेष महत्व है। आधुनिक [illegible]ों की सफलता का बहुत कुछ श्रेय इस "शैली" नामक तत्व को भी दिया जा सकता है। वस्तुतः बिना शैली के किसी भी रचनात्मक साहित्य में पूर्णता का आना असम्भव है[१]।

---

१. There is no complete creation without style-
Henry James: The Art of # Fiction (Introduction p.XVII

शैली उपन्यास का वह तत्व है जिसके द्वारा अन्य तत्वों का नियोजन किया जाता है । कथावस्तु कितना ही सुसम्बद्ध एवं प्रभावशाली क्यों न हो, पात्र कितने ही सजीव एवं व्यक्तित्वशाली क्यों न हों, कथाकार के पास कितना ही सुन्दर भाव, उत्कृष्ट कल्पना तथा गंभीर विचार क्यों न हो, किन्तु रोचक शैली के अभाव में उनका मर्मस्पर्शी तथा उत्कृष्ट नियोजन नहीं हो सकता ।

रोचक एवं उत्कृष्ट शैली में कुछ विशेष गुण होते हैं । वे गुण हैं-रोचकता, सरलता एवं प्रवाह-पूर्णता । उपन्यास आज के इस पूंजीवादी एवं संघर्षमय जीवन में भी जन-मन-रंजन का साधन अधिक है । अतः उपन्यास की शैली ऐसी होनी चाहिये कि पाठक उसमें रम जाय और उपन्यासकार के भावों के साथ बहता जाय । सरलता, सुबोधता एवं प्रवाह-पूर्णता शैली के ऐसे गुण हैं जो साधारण से साधारण पाठक में भी उपन्यास-रसास्वादन की क्षमता को जगा देते हैं । शैली के इन गुणों के अभाव में कृति एक दुरूह, क्लिष्ट कल्पना मात्र रह जाती है । भाषा को सुबोध, सक्षम, प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग वांछनीय है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का अलंकार उचित मात्रा में शैली को आकर्षक बनाने में सहायक होता है[1] ।

उपन्यास की कथा कहने के लिए उपन्यासकार विभिन्न प्रकार की शैलियों का आश्रय ग्रहण करता है । कुछ उपन्यासकार आत्मकथा की शैली पर उपन्यास लिखते हैं तो कुछ डायरी के रूप में । कुछ [illegible] के रूप में लिखते हैं तो कुछ पत्र-शैली में । कथा कहने की सबसे आसान एवं प्रमुख-शैली वह है जिसमें उपन्यासकार एक इतिहासकार की भांति सर्वज्ञ बनकर श्रोताओं अथवा पाठकों का ध्यान रखे बिना ही तटस्थ-सा होकर कथा का पूरा वर्णन करता है । इस वर्णन शैली में लेखक उपन्यास के भीतर आये हुए पात्रों तथा दृश्यों का वर्णन एक अन्य पुरुष की भांति करता है । विविध शब्द-चित्रों के रूप में लेखक पात्रों के रूप और दृश्यों का वर्णन

१- गुलाब रायः काव्य के रूप, पृष्ठ १९७-१९८

करता, वातावरण का चित्र खींचता और स्थान स्थान पर उनके संलापों और संभाषणों का भी उल्लेख करता जाता है[1]। इन पांचो शैलियों में सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखना उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। आत्मकथा या डायरी की शैली में लिखने वाले उपन्यासकार पर केवल नायक या नायिका की जानी हुई बातों के सहारे उपन्यासगत औत्सुक्य बनाये रखने तथा रस-परिपाक कराने का दायित्व होता है। उसे कथा के प्रवाह को गतिशील बनाने के लिए सावधानी-पूर्वक ऐसी नवीन घटनाओं की संयोजना करनी पड़ती है जो पाठक की जानकारी में सम्भव हो[2]। पत्र शैली तथा कथोपकथन की शैली में लिखे हुए उपन्यासों में उपन्यासकार को कुछ अधिक सुविधाएं अवश्य मिलती है, किंतु संयम यहाँ भी होता है। पत्र की शैली उपन्यासों के लिए अनुपयुक्त पड़ती है। इसमें कथानक तथा उसका विकास समझना बुरा 'टेढ़ी खीर' है क्योंकि एक पत्र में लिखी हुई बातों का विस्तार और विवरण अन्य कई पत्रों द्वारा मिलता है- फिर इन पत्रों में [illegible] बार की बातें छपी रहती है जिनका उपन्यास से कोई सम्बंध नहीं रहता। मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा प्रकृति-वर्णन इत्यादि के लिए इसमें बहुत कम स्थान रहता है[3]।

उपन्यास लिखने की ऐतिहासिक या वर्णनात्मक शैली सर्वाधिक प्रचलित है और तब आत्मकथात्मक एवं कथोपकथनात्मक शैली का स्थान आता है।

उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन

आज से कुछ समय पूर्व उपन्यास को मात्र मनोरंजन का साधन समझा जाता था और इसका मुख्य उद्देश्य [illegible] मात्र था। जीवन दर्शन की व्याख्या

१- डॉ० श्रीकृष्णलाल: आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ० २८१-२८२ ।

२- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृ० ५४ ।

३- डॉ० श्रीकृष्णलाल: [illegible] हिंदी साहित्य का विकास, पृ० २८८ ।

करना या नैतिक सिद्धान्तों की विवेचना करना इसका लक्ष्य नहीं था और न कोई उससे ऐसी आशा ही करता था । किन्तु अब परिस्थिति बिल्कुल भिन्न हो गयी है । आज की इस संघर्षमय परिस्थितियों तथा परिस्थितियों से आबद्ध जीवन में इतनी गतिशीलता, [illegible]ता एवं जटिलता आ गयी है कि कोई भी भावुक पाठक उपन्यास मात्र इसलिए नहीं पढ़ता कि वह मनोरंजन चाहता है, बल्कि इसलिए पढ़ता है कि उससे उसे कोई ऐसी नयी जीवन-दृष्टि मिले, ऐसा कोई रास्ता मिले जिससे वह अपने जीवन का मार्ग-दर्शन कर सके । सच बात तो यह है कि आज का प्रबुद्ध पाठक उपन्यास को केवल मनोरंजन के साधन रूप में नहीं ग्रहण करना चाहता, वह तो उससे प्रखर और स्पष्ट जीवन-दर्शन की माँग करता है ।[1] यही कारण है कि आज के उच्चकोटि के उपन्यासों में केवल मनोरंजकता ही नहीं होती, बल्कि उनमें एक जीवन-दर्शन होता है । विचारशील एवं विवेकी उपन्यासकारों द्वारा ऐसे अनेक उपन्यास रचे गये हैं जिनमें निहित जीवन-दर्शन की उपेक्षा नहीं की जा सकती । आज के उपन्यास का उद्देश्य मात्र मनोरंजन न होकर जीवन की व्याख्या करना या जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करना भी है ।

काव्य के अन्य रूपों की तरह उपन्यास का सम्बंध भी प्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन से है । स्त्री और पुरूष, उनके पारस्परिक सम्बंध, उनके विचार एवं भावनाएं, उनके मनोवेग एवं जीवनोद्देश्य आदि ही उपन्यास के आधार हैं । वस्तुतः मानव-जीवन ही उपन्यासकार के लिए कथा-सूत्र होता है । इस प्रकार जीवन के विभिन्न पक्षों से उपन्यासकार जब अपनी कथा का निर्माण करता है तो यह असम्भव है कि उसके द्वारा वर्णित रचना में उसके अपने विचार, जीवन के प्रति उसका अपना दृष्टिकोण न हो । किसी नैतिक सत्य या आदर्श के प्रतिपादन की ओर से वह कितना ही [illegible] क्यों न हो, परन्तु उसकी निजी भावनाओं की प्रतिच्छाया उसकी कृति पर पड़ जायगी[2]। साधारण से साधारण उपन्यासों में भी, जो किसी विचार-विशेष या

१- डॉ० प्रताप नारायण टंडन: हिन्दी [illegible] में कथा शिल्प का विकास, पृ०१०६ ।

२- डॉ० शिव [illegible]नारायण श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास, पृ० ४५५ ।

सिद्धान्त के प्रतिपादन स्वरूप नहीं लिखे गये हैं, उनमें भी कुछ विशिष्ट विचार अथवा सिद्धान्त इंगित किए जा सकते हैं। उपन्यास ही क्यों, छोटी से छोटी कहानी का भी विश्लेषण किया जाय तो उसके पात्रों एवं घटनाओं में निहित किसी न किसी नैतिक मूल्यों एवं जीवनादर्श सम्बन्धी विचारों की झलक मिल ही जायेगी। इस प्रकार प्रत्येक उपन्यास चाहे वह साधारण कोटि का ही क्यों न हो एक सीमा तक जीवन की किसी निश्चित दिशा एवं विभिन्न सामान्य सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है और सामान्य जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करता है[1]। सम्भवतः इसी तथ्य को लक्षित कर प्रमुख उपन्यास आलोचक हेनरी जेम्स ने कहा है कि उपन्यास के अस्तित्व का एक मात्र [illegible] यही है कि वह जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है[2]।

उपन्यास में जीवन-दर्शन की चर्चा करने पर यह सम्भव है कि इस तथ्य को कुछ लोग स्वीकार न करें और उपन्यास को मात्र मनोरंजन का साधन समझकर इसकी उपेक्षा कर बैठें। "उपन्यास जन-मन-रंजन का एक साधन है" इस कथन को [illegible] अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यह कहना कि उपन्यास मात्र मनो-रंजन का साधन है और इसमें जीवन-दर्शन सम्बन्धी कोई गूढ़ तत्व खोजना व्यर्थ है,

---

1. Little as he may dream of using his narrative as the vehicle of any special theories or ideas, certain theories or ideas will more or less be found embodied in it, and even the slightest story will yield under analysis a more or less distinct underlying conception of the moral values of the characters and incidents of which it is composed.

   —W.H.Hudson: An Introduction to the Study of literature.

2. The only reason for the existence of a novel is that it does attempt to represent the life.

   —Henry James: The Art of Fiction p.5.

प्रस्तुत संभव नहीं है । निम्नकोटि के उपन्यासों के सम्बन्ध में यह कथन ठीक हो सकता है किन्तु उच्च कोटि के उपन्यासों के सम्बन्ध में इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता । जीवन सम्बंधी कुछ न कुछ सिद्धान्त और विचार साधारण से साधारण उपन्यासों में भी होते हैं, किन्तु वे स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख इसलिए नहीं आते कि उनके लेखकों में जीवन के सत्य को उभार कर रखने तथा स्पष्ट-वर्णन की क्षमता नहीं होती । फलस्वरूप वे जीवन के गम्भीर एवं स्वस्थ तत्वों से रिक्त तथा प्रेरक-हीन नज़र आते हैं ।

उपन्यासकार, कलाकार होने के अतिरिक्त सामाजिक प्राणी भी होता है और इस अर्थ में समाज के प्रति उसका दायित्व सामान्य लोगों की अपेक्षा कुछ अधिक होता है । वह समाज एवं जीवन का निरीक्षण, मात्र दूर से खड़े होकर ही नहीं करता, बल्कि उस पर गम्भीरता से मनन भी करता है । फलस्वरूप जीवन के प्रति उसकी एक अपनी दृष्टि बन जाती है । जब वह किसी कथा को उपन्यास के रूप में कहने का निश्चय करता है, तभी उसके मन में कथा-सूत्र के साथ वह जीवन-दृष्टि मूर्त होने लगती है । यह हो सकता है कि उस जीवन-दृष्टि को बता सकने में वह समर्थ न हो सके, परन्तु वह जिन परिस्थितियों का निर्माण करता है तथा जिन पात्रों की कल्पना करता है, वे उस जीवन-दृष्टि को अपने में निहित किए हुए होते हैं । अनेक प्रतिभाशाली उपन्यासकारों का मानव-चरित्र का ज्ञान, मानवीय मनोवेगों एवं प्रवृत्तियों की सूक्ष्म दृष्टि से परख, जीवन के अनुभूत सत्यों एवं स्थायी समस्याओं का साक्षात्कार तथा उत्कृष्ट रचना-कौशल सब मिलाकर उनकी रचनाओं को एक ऐसी विशेषता एवं गाम्भीर्य प्रदान कर देते हैं कि उनमें एक स्पष्ट नैतिक मूल्य उभर आता है जिसकी कोई भी विचारशील पाठक उपेक्षा नहीं कर सकता । यही कारण है कि जब किसी उत्कृष्ट उपन्यास की चर्चा होने लगती है तो हम जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों तथा नैतिक मूल्यों पर चर्चा करने लग जाते हैं ।

उपर्युक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि उपन्यास का कोई पूर्व निर्धारित उद्देश्य होता है और उपन्यासकार नैतिक सिद्धान्त अथवा किसी निश्चित

जीवनादर्श को चित्रित या प्रदर्शित करने की योजना बनाकर ही कथा की रचना करता है । एक सफल कृतनात्मक कलाकार के सम्बन्ध में ऐसा सोचना उचित एवं न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता।जीवन के सम्बन्ध में उपन्यासकार जो कुछ सोचता-समझता है, निरीक्षण करता है उसका जाने-अनजाने में उपन्यास के वस्तु-विन्यास तथा चरित्र-चित्रण के माध्यम से आ जाना अवश्यम्भावी है । किन्तु उसके ये निरीक्षण या जीवन के नैतिक आदर्श उसकी कृति से प्रधान रूप से सम्बन्धित नहीं होते । ये तो बिना किसी इच्छा या प्रयास के उपन्यास में आ जाते हैं जिसे ढूंढ निकालना आलोचक का कार्य है । उपन्यासकार का मुख्य कार्य तो जीवन सम्बन्धी यथार्थ घटनाओं एवं कार्यों का चित्रण तथा निरूपण करना होता है और इन्हीं के माध्यम से वह अपनी जीवन सम्बन्धी मान्यताओं एवं नैतिक मूल्यों की एक परछाईं प्रस्तुत कर देता है । [illegible] में जीवन-दर्शन का यही अर्थ है ।

उपन्यासों में नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन या जीवन की व्याख्या उपन्यासकार दो प्रकार से करता है । एक तो ना[illegible]कार की भांति पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से तथा दूसरे स्वयं पात्रों का [illegible] देकर या उनकी व्याख्या करके । प्रथम में वह मानव जीवन से कुछ निश्चित सामग्री चुन लेता है और अपनी [illegible] द्वारा कुछ [illegible] वस्तुओं को उभार कर पात्रों एवं कथावस्तु को प्रदर्शित करता है । पात्रों के संवाद एवं कथावस्तु के विकास द्वारा साधारणतया हमें यह आभास मिल जाता है कि उपन्यासकार जीवन को किस दृष्टि से देखता है अथवा जीवन के प्रति उसकी क्या मान्यताएं हैं । इन अस्त-व्यस्त विचारों एवं उनमें निहित जीवन-दर्शन के आधार पर किसी मूलभूत [illegible] को [illegible] एक आलोचक का कार्य है ।यह मूलभूत सिद्धान्त ही उपन्यास का उद्देश्य भी कहा जा सकता है । यहां तक तो [illegible]न्यासकार और ना[illegible]र में पूर्णतः समानता होती है किन्तु इसके आगे उप[illegible]कार को ना[illegible]कार की अपेक्षा कुछ अधिक स्वतन्[illegible] होती है । जहां नाटक-कार अपनी बात को कहने के लिए परोक्ष रीति का आश्रय ग्रहण करता है वहां उपन्यासक[illegible] प्रत्यक्ष रूप से सम्मुख आकर पात्रों के कार्यों, उनके [illegible] तथा मनो-भावों की [illegible] कर सकता है । इतना ही नहीं, बल्कि जीवन-व्याख्या के संदर्भ

में कोई नैतिक सिद्धान्त भी रख सकता है । इस प्रकार जब वह इस अधिकार का उपयोग करता है तो अपने द्वारा निर्मित काल्पनिक जगत् का वह स्वयं ही व्याख्याता बन जाता है और तब एक आलोचक को जीवन सम्बंधी उसकी मान्यताओं एवं विचारों को ढूंढ लेने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती ।

(घ) कथावस्तु के उपकरण, तत्व तथा गुण

जीवन एवं जगत बहुत व्यापक तथा रहस्यमय है । क्षण-प्रतिक्षण इसमें नाना प्रकार की घटनाएं घटित होती रहती हैं और सृष्टि-क्रम के विकास में अपना क्षणिक योग देकर लुप्त हो जाती हैं । उपन्यासकार जीवन-जगत की इन घटनाओं से ही अपनी कथा-वस्तु का विन्यास करता है । अपने उद्देश्य के अनुकूल घटनाओं के महासागर में से वह कुछ घटनाएं चुनकर उनमें एक प्रकार की एकता लाता है और अपनी कल्पना के सहारे कथावस्तु का निर्माण करता है । मानव- जीवन की मौलिक वृत्तियों- राग-द्वेष, घृणा, भय, क्रोध, प्रेम आदि-- के आधार पर ही उपन्यासकार कथावस्तु की रचना करता है और अपनी प्रतिभा एवं विवेक से ऐसी भव्यता एवं रोचकता पैदा करता है कि पाठक सहज ही उसमें लीन हो जाता है ।

उपन्यास की कथावस्तु का विन्यास उपन्यासकार प्रायः कई कथाओं के माध्यम से करता है । इसमें एक कथा प्रमुख रहती है जो उपन्यास के आदि से अंत तक चलती है और कथा के प्रधान पात्र (नायक या नायिका) से सम्बद्ध होती है । यही कथा मुख्य कथानक या आधिकारिक कथा कही जाती है । मुख्य कथानक के संगठन में ही उपन्यासकार का कौशल प्रकट होता है ।

प्रधान कथानक को विस्तार देने तथा सम्बद्ध रूप में पूर्णता लाने के लिए उपन्यासकार कभी कभी प्रासंगिक कथा तथा अवान्तर घटनाओं की भी सृष्टि करता है । ये कथाएं मुख्य कथा के साथ प्रायः अन्त तक नहीं चलती, बल्कि बीच में ही लोप हो जाती हैं । प्रासंगिक कथाएं तथा अवान्तर घटना आनुषंगिक या अन्य

कारणों से उत्पन्न उन हिलोरों तथा भंवरों के समूह हैं जो मूलकथा-धारा की गति में वेग या क्षणिक अवरोध उत्पन्न कर चली जाती हैं । कभी-कभी एक से अधिक दो या तीन कथाएं समान प्रमुखता से समानान्तर चलकर कभी तो अलग-अलग ज्ञात होती हैं और कभी एक दूसरे में इस प्रकार विलीन हो जाती हैं कि इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है कि दोनों में कौन प्रमुख है ।

कथान्तर या प्रासंगिक कथाएं मूल कथा को दो प्रकार से उज्ज्वल एवं गतिशील बनाती हैं -(१) सहायक के रूप में या (२) विरोधी के रूप में[१] । "मृगनयनी" में लाखी और अटल की कथा मूलकथा को अग्रसर करने में सहायक है, परन्तु "गोदान" में होरी तथा ग्रामीण जीवन की कहानी के साथ रायसाहब, मिस्टर मेहता, मालती आदि उच्चतर वर्ग के लोगों तथा शहरी जीवन की भी समानान्तर कथा चलती है, उसका प्रमुख उद्देश्य यह है कि कृषक तथा ग्रामीण जीवन को उसके बिल्कुल विरोधी जीवन एवं वातावरण में रखकर उसके उज्ज्वल रूप को दर्शाया जाय ।

[illegible] को पुष्ट करने तथा पाठकों को उसकी सत्यता एवं यथार्थता की प्रतीति कराने के लिए उपन्यासकार कभी कभी किसी महत्वपूर्ण समाचार, किसी व्यक्तिगत पत्र, प्रामाणिक लेख, अधिकार-पत्र, न्यायालय के निर्णय आदि का भी आवश्यकतानुसार उद्धरण देता है । यद्यपि मूलकथा से इन उपकरणों का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु सहायक रूप में स्वाभा[illegible] उत्पन्न कर कथा के [illegible] में इनका परोक्ष-रूप से हाथ रहता है और इस दृष्टि से ये उपकरण कभी-कभी कथानक के आवश्यक अंग हो जाते हैं ।

कथानक के तत्व

कथानक के तत्व से तात्पर्य उन आधारभूत तत्वों से है जो कथानक के निर्माण

१- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृ० १० ।

एवं विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योग देते हैं । इन तत्वों के अभाव में कथानक की कल्पना असम्भव है । वस्तुतः ये ही वे तत्व हैं जो सम्पूर्ण उपन्यास का निर्माण करते हैं । इस दृष्टि से कथानक के कई तत्व वे ही हैं जो उपन्यास के हैं । इन तत्वों में कुछ तो स्थूल हैं तथा कुछ सूक्ष्म । सामान्य रूप से कथानक के निम्नलिखित तत्व हो सकते हैं:-

(१) पात्र (२) मनोभावनाएं (३) परिस्थितियां एवं भावस्थितियां

(४) वातावरण (५) कुतूहल एवं परितोष (६) गति (७) उद्देश्य ।

पात्र कथानक का सबसे प्रधान एवं स्थूल तत्व है । चूंकि कथानक उपन्यास का ही एक वैशिष्ट्य रूप है, इस नाते कथानक के मुख्य तत्व के रूप में पात्र की सत्ता अनिवार्य है । पात्र ही वह मुख्य तत्व है जिसके चारों ओर कथानक की घटनाएं एवं उसके अन्य अवयव परिधि की भांति घूमा करते हैं । पात्र के अभाव में न तो कथानक की कल्पना की जा सकती है और न उपन्यास की। कथानक के परिविस्तार का मूल मनोभावनाएं होती हैं जिनके प्रतीक अथवा वाहक पात्र होते हैं । पात्र विभिन्न परि[illegible]यों एवं भावस्थितियों में आचरण करते हुए चित्रित किये जाते हैं । परिस्थितियों एवं भावस्थितियों के [illegible] में मनोभावनाओं का विकास, विस्तार तथा निर्वहण होता है और कथानक स्वाभाविक गति से आगे की ओर बढ़ता है ।

कथानक की सारी स्थिति को वास्तविकता का आभास देने के लिए देशकाल अथवा वातावरण की सृष्टि की जाती है । वातावरण, [illegible] का ऐसा तत्व है जो कथानक को उभार कर प्रखरता से हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और जीवन्त बनाता है । कथानक में कथा-सूत्र (प्लॉट) कुतूहल और परितोष के माध्यम से क्रमशः [illegible] होता है जिसमें गति का बोध होता है । कथा-सूत्र की समस्त गति किसी निश्चित दिशा में किसी निश्चित उद्देश्य की ओर इंगित करती है जिसे जीवन-दर्शन भी कहा जाता है । यह उद्देश्य कभी तो स्पष्ट होता है और कभी नहीं भी होता । गति का आभास अथवा प्रवाह की प्रतीति कथा के जीवंत होने के लिए आवश्यक है ।

किसी भी उपन्यास के कथानक के लिए उपर्युक्त तत्व अनिवार्य हैं और इन्हीं से कथानक का निर्माण एवं विकास होता है। हाँ, यह सम्भव है कि कभी कोई तत्व प्रधान हो उठता है तो कभी कोई। किन्तु अपने स्थान पर सभी तत्वों की स्थिति अनिवार्य है।

श्रेष्ठ कथावस्तु के गुण

किसी भी उपन्यास की सफलता बहुत कुछ उसके कथानक पर निर्भर करती है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही गढ़ा जाता है और उसी के अनुसार विकसित होता है। यद्यपि कुछ आलोचकों के मतानुसार उपन्यास की रचना के लिए कथानक उतना महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु इस संबंध में दो राय नहीं हो सकती कि कथानक की [illegible], उसके समस्त अंगों का संगठन एवं घटनाओं का समुचित विन्यास, उसकी मौलिकता आदि उपन्यास को सुन्दर एवं सफल बनाने के लिए आवश्यक हैं। एक श्रेष्ठ कथानक में साधारणतया निम्नलिखित गुण होने आवश्यक हैं:-

(क) गठनशीलता या सम्बद्धता- एक श्रेष्ठ कथावस्तु का ठोस और सुसम्बद्ध होना परम आवश्यक है। कथा की गति को अग्रसर करने के लिए और उसके पात्रों की मनोवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए जो कुछ आवश्यक है, उससे कुछ भी अधिक होने से घटनागत औचित्य नष्ट हो जाता है[१]। अतः कथावस्तु के ठोसपन एवं गठनशीलता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कोई ऐसी अनावश्यक बात या घटना न आ जाय जो कथा के प्रवाह में बाधा उपस्थित करे। घटनाओं को एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध होना चाहिए कि उनकी सभी बातों को देखने पर कोई बात छूटी हुई अथवा अप्रासंगिक न जान पड़े तथा उनके सभी अंगों में [illegible] तथा साम्य रहे।

१- डॉ० [illegible] प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृ० ६० ।

श्रेष्ठ कथावस्तु के लिए यह वांछनीय है कि उसकी घटनाएं कार्य-कारण-शृंखला में बंध कर क्रमागत रूप में दिखाई दें । कार्य-कारण-शृंखला में बंधना ही घटना-चक्र को कथानक का रूप देता है । बहुत से कथानकों में दो कथाएं साथ-साथ चलती हैं अथवा अनेक घटनाओं का गुम्फन किया जाता है । उपन्यासकार का कौशल इस बात में है कि वे सब घटनाएं एक दूसरे के साथ कार्य-कारण-शृंखला में बंधी हुई साथ-साथ चलें[1] । घटनाओं की शाखाओं - प्रशाखाओं को अपने मूल से तथा एक दूसरी से स्वाभाविक रीति से प्रस्फुटित होना चाहिए । मुख्य कथा तथा प्रासंगिक कथाओं को एक - दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध होना चाहिए कि उनके बीच किसी प्रकार की सन्धि न दिखाई पड़े और सम्बंध - सूत्र दृढ़ता से दोनों भागों को पकड़े रहे ।

कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से आलोचक डब्ल्यू० एच० हडसन ने उपन्यासों के दो भेद किये हैं - एक तो वे जिनकी कथावस्तु असम्बद्ध या शिथिल होती है तथा दूसरा वे जिनकी कथावस्तु सुसम्बद्ध या संगठित होती है । पहले प्रकार के उपन्यास की कथा ऐसी बहुत सी विच्छिन्न घटनाओं से निर्मित होती है जिनमें परस्पर कोई सहज अथवा तर्कसंगत सम्बंध प्रायः नहीं होता । अन्तर्निहित कार्य-कलापों पर आश्रित न होकर नायक के व्यक्तित्व पर आश्रित रहती है । नायक ही इन बिखरे हुए घटना-सूत्रों एवं तत्वों में सम्बंध स्थापित करता है । और उसी के चरित्र को लेकर उपन्यास के भिन्न-भिन्न तत्वों का एक स्वरूप खड़ा किया जाता है । ऐसा उपन्यास एक प्रकार से एक व्यक्ति के जीवन की विविध घटनाओं का इतिहास - सा होता है जिसमें न तो किसी व्यापक स्वरूप की

१- गुलाब राय: काव्य के रूप, पृ० १०६ ।

संयोजना रहती है और न जिसका कोई अन्तिम परिणाम होता है[1]। "बहती गंगा", "मैला आंचल", "शेखर: एक जीवनी" जैसी कृतियां इस प्रकार के उपन्यासों के अन्तर्गत रखी जा सकती है। "बहती गंगा" में तो न कोई नायक है और न उसकी कथा में कोई एकसूत्रता है। वस्तुतः यह ऐतिहासिक कहानियों का एक संग्रह है, जिसके माध्यम से काशी के दो सौ वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास को अंकित किया गया है। "मैला आंचल" में भी कोई ऐसा नायक नहीं है जो सभी विशृंखल घटनाओं को समेट कर एक सूत्र में पिरोये। "शेखर:एक जीवनी" में, शेखर नायक अवश्य है किन्तु उसकी घटनाएं परस्पर विशृंखल, असम्बद्ध एवं अव्यवस्थित है। इन घटनाओं को एक सूत्र में पिरोने वाला केवल नायक ही है।

सुगठित अथवा सुसम्बद्ध कथावस्तु वाले उपन्यास में घटनाएं परस्पर इस प्रकार सम्बद्ध रहती हैं कि वे साधारणतया अलग नहीं की जा सकती और सब अन्तिम परिणाम या उपसंहार की ओर अग्रसर होती हुई उस उपन्यास को ऐसा रूप दे देती है जिससे उसके भिन्न भिन्न अवयव एक दूसरे से मिले हुए प्रतीत होते हैं और उनको अलग अलग करने से उसकी महत्ता नष्ट हो जाती है। ऐसे उपन्यासों की रचना एक व्यापक विधान के अनुसार की जाती है और उनकी सफलता उनके घटना-कड़ियों की ए- नता एवं संयोजना पर निर्भर करती है। ऐसे उपन्यासों की कोटि में "गबन", "नू- नन।" "बाण भट्ट की आत्मकथा" जैसी कृतियों को रखा जा सकता है।

---

1. In the former case the story is composed of a number or detached incidents, having little necessary or logical connection among themselves: The Unity of narrative depending not on the machinery of action, but upon the person of the hero, who as the central figure or nucleus binds the otherwise scattered element together. Such a novel in fact" rather a history of the miscellaneous advantagures which be-fall on individual in the course of life than the plot of regular and connected epoposia."

   -W.H.Hudson: An Introduction to the Study of Literature, p.139.

कथा-संगठन की दृष्टि से उपन्यास के जो उपर्युक्त दो भेद किये गये हैं, वस्तुतः वे अपने आप में कोई महत्वपूर्ण नहीं है । दोनों प्रकार के उपन्यासों की परम्परा में ऐसे कई उपन्यास हैं जो उच्च कोटि के उपन्यासों में रखे जा सकते हैं और किसी का भी महत्व एक दूसरे से कम नहीं है । कथावस्तु-संगठन के संबंध में दो महत्वपूर्ण बातें आवश्यक हैं- एक तो यह कि कथा का प्रवाह स्वाभाविक गति से हो और पढ़ते समय, पाठक को ऐसा न लगे कि उपन्यासकार कोशिश करके बलात् किसी घटना को कृत्रिमता का जामा पहनाकर उपस्थित कर रहा है और दूसरी यह कि कथा-वस्तु के विकास में जो साधन काम में लाये गये हैं उन्हें हम उन परिस्थितियों के आवरण में स्वीकार कर सकें और वे विश्वसनीय प्रतीत हों ।

(ख) <u>मौलिकता</u>- कथावस्तु की मौलिकता उपन्यासकार की सृजनात्मक प्रतिभा की परिचायक है । किसी उपन्यास के कथानक में जितनी मौलिकता एवं नवीनता होगी, उतना ही उसका मूल्य एवं महत्व बढ़ जायेगा । मौलिक कथा-निर्माण एवं विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उपन्यासकार वस्तुतः अपने कार्य में विधाता के सदृश होता है जो अपनी कल्पना के माध्यम से यथार्थ की भूमि पर एक ऐसे संसार का निर्माण करता है जो उसका अपना होता है और अपनी विशिष्टता, अपने संयोजन एवं विन्यास द्वारा पाठक के लिए नया क्षितिज प्रस्तुत करता है ।

वस्तुतः उपन्यास की कथावस्तु के निर्माण में मौलिकता का प्रश्न बड़ा ही कठिन है । जीवन में विभिन्न घटनाएं घटित होती हैं और उनकी प्रतिक्रिया हर व्यक्ति पर विभिन्न रूपों में होती है । सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो घटना स्वयं में मौलिक नहीं होती, बल्कि उस घटना को मानस-पटल पर [illegible]ना तथा उसको देखने का ढंग मौलिक होता है । साधारण श्रेणी के उपन्यासकारों का दृष्टिकोण एक घटना के प्रति वही होता है जो साधारण जन का होता है जिसमें प्रायः नवीनता का अभाव रहता है, किन्तु वही घटना जब किसी प्रतिभाशाली उपन्यासकार की मौलिक दृष्टि के सम्मुख आती है और उसकी प्रतिभा के धरातल पर चढ़ती

है तो उसमें मौलिकता, नवीनता एवं विलक्षणता स्पष्ट नजर आने लगती है और लगता है कि कोई नयी चीज हो । और, तब वह मौलिक कथावस्तु का स्वरूप ग्रहण कर लेती है और उपन्यासकार के वर्णन एवं विन्यास की कुशलता तथा नवीन संयोजन-प्रणाली द्वारा और प्रखर हो उठती है ।

आज उपन्यास के विषय का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत हो गया है और उसमें विचार एवं विश्लेषण का पर्याप्त मात्रा में समावेश हो गया है । जीवन की विविध समस्याओं एवं इन समस्याओं के गुम्फन ने विषय की विविधता को अत्यधिक बढ़ा दिया है, इसलिए मौलिकता के लिए बहुत गुंजाइश हो गयी है । फ्रायड एवं युंग के मनोविश्लेषण ने मौलिकता के क्षेत्र में उपन्यासकारों के लिए विशेष विस्तार दे दिया है और उनकी दृष्टि को और सूक्ष्मता एवं गहराई प्रदान कर दी है ।

विषय की नवीनता एवं मौलिकता का स्थान, कथावस्तु के संगठन में महत्वपूर्ण तो है ही, किन्तु उसके वर्णन में नवीनता एवं मौलिकता का होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है । आज अनेक उपन्यास इसलिए मौलिक कहे जाते हैं कि उनके प्रस्तुत करने का ढंग मौलिक है, नवीन है । हालांकि कथा वस्तु की दृष्टि से उनमें कोई विशेष मौलिकता नहीं पाई जाती है ।

(ग) <u>निर्माण कौशल</u>- कथानक के निर्माण कौशल से तात्पर्य यह है कि उपन्यासकार ने कथानक में विभिन्न घटनाओं का संयोजन किस प्रकार से किया है और घटनाओं के संबंध निर्वाह तथा उनकी उलझनों को सुलझाने में कहाँ तक सफल हुआ है । कथानक के निर्माण में उपन्यासकार का कौशल इसी में है कि अनेक घटना-सूत्रों एवं कथाओं को एक सूत्र में पिरोकर ऐसे कलात्मक ढंग से संयोजित करे कि वे एक पूर्ण कथा-इकाई नजर आवे और अनेक स्वतंत्र तत्व जो कथा के स्वाभाविक विकास में योग देते हैं, परस्पर संतुलित रहें ।

(घ) <u>सम्भवता तथा सत्यता</u>- कथावस्तु या कथानक की सम्भवता उसका एक ऐसा गुण है जो सहज ही पाठक को सत्यता की प्रतीति कराकर रसास्वादानुभूति में

डुबो देता है । असम्भव घटनाएं, जादूभरी कहानियां तथा परियों की कथाएं बाल-मन की कुतूहल वृत्ति को शान्त करने के लिए उपयुक्त हो सकती हैं, किन्तु आज के वैज्ञानिक युग के किसी विवेकशील पाठक के लिए अधिक महत्व नहीं रखतीं । असम्भव तथा अलौकिक बातें सुनने को आज का जागरूक पाठक तैयार नहीं होता और सुन भी लेता है तो उसका विवेकी मन उस पर विश्वास नहीं करता ।

उपन्यास में सत्य की कसौटी सम्भावना एवं घटनागत् औचित्य है । एक कलाकृति होने के कारण उपन्यास में जीवन की सत्यता का प्रदर्शन रहता है । जीवन की यह सत्यता यद्यपि घटनात्मक नहीं भी हो सकती है, फिर भी उसमें ऐसी बात नहीं होनी चाहिए जो सम्भव एवं घटनीय न हो । उपन्यास की कल्पना-प्रसूत घटनाएं भी वास्तविक घटनाओं की प्रतिच्छाया ही होनी चाहिए[1] । यद्यपि यह सदैव सम्भव नहीं है कि जीवन की वास्तविक अनुभूतियों एवं घटनाओं को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत किया जा सके, लेकिन एक कलाकार को चूंकि वह कलाकार है, जो कुछ उसने अनुभव किया है उसका एक सम्भवनीय रूप देने का यथा-शक्ति प्रयत्न करना चाहिए ।

कथावस्तु की वास्तविकता के गुण पर बल देते हुए हेनरी जेम्स ने लिखा है- "यह निश्चित है कि आप तब तक एक अच्छे उपन्यास का प्रणयन नहीं कर सकते जब तक आपको वास्तविकता एवं सत्यता का ज्ञान नहीं है[2]"। पुनः वह लिखता है- "मैं यह कहने का साहस करता हूं कि वास्तविकता का वातावरण उपन्यास का सबसे बड़ा गुण है जिस पर उसके अन्य सभी गुण निर्भर करते हैं । यदि वह नहीं है तो अन्य सभी गुणों का होना व्यर्थ है । और, यदि अन्य सभी गुण उसमें हैं तो वे उन प्रभावों के ऋणी हैं जिनके द्वारा लेखक ने जीवन का

१- गुलाब राय: काव्य के रूप, पृ० १७८ ।

२- It goes without saying that you will not write a good novel unless you possess the sense of reality.
—Henry James: Art of Fiction, p.10.

इन्द्रजाल प्रस्तुत किया है । इस सफलता का परिशीलन तथा इस विशिष्ट प्रणाली एवं रूप का अध्ययन, मेरे विचार से, उपन्यासकार की कला का आदि और अन्त है[1]

उपन्यास मनुष्य-जीवन की एक यथार्थवादी कथा-कृति है । उपन्यास में सम्भवता एवं सत्यता का तात्पर्य यह है कि उसकी कथा-वस्तु ऐसे तत्वों से निर्मित हो कि हमारी बुद्धि सहज ही उस पर विश्वास करने लग जाय । इसके लिए आवश्यक है कि उपन्यासकार कथा की सामग्री आस-पास के बिखरे जीवन से ले । उसके स्वयं का अनुभव भी वस्तु-निर्माण में सत्यता की प्रतिष्ठा कर सकता है । अपनी कल्पना का प्रयोग वस्तु-निर्माण या उपन्यास में वह उसी सीमा तक कर सकता है ताकि पाठक को प्रतीति हो जाय कि उसकी कल्पना सत्यता एवं सम्भवता की अनुगामिनी है और वास्तविकता की छाया और संभावनाओं की प्रतिरूप है ।

कथावस्तु में सत्यता लाने के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार को जीवन का व्यापक ज्ञान हो । यह ज्ञान प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव के अतिरिक्त, पुस्तकों एवं अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क से जिन्होंने संसार को देखा-परखा है, प्राप्त किया जा सकता है । ज्ञान के साथ ही साथ उपन्यासकार में ऐसी सृजनशील प्रतिभा भी होनी चाहिए कि सभी प्रकार के साधनों से उपलब्ध सभी सामग्रियों को आत्मसात करके तथा अपना अनुभव-भण्डार भर कर अपनी स्वाभाविक यथार्थवादी कल्पना शक्ति द्वारा उन घटनाओं एवं दृश्यों का जो उसके अनुभव एवं निरीक्षण से परे हैं, ऐसा जीता-जागता चित्र उपस्थित करे कि वे सहज सत्य का रूप धारण कर लें । अतः यह आवश्यक है कि उपन्यासकार अपने अनुभव एवं ज्ञान की सीमा को विस्तृत करे

---

1. I may, therefore, venture to say that the air of reality seems to me to be the supreme virtue of a novel- the merit of which all its other merits helplessly and submissively depend. If it be not there, they are all as nothing, and if these be there. They owe their effect to the success with which the author has produced the illusion of life. The cultivation of this success, the study of this exquisite process, form, to my taste, the beginning and the end of the art of the novelist.

   - Henry James: Art of Fiction, Page 12.

और अपने उद्देश्य की सिद्धि में उनका उपयोग करे । इस प्रकार जब उपन्यासकार की कल्पना शक्ति, अनुभव एवं ज्ञान का सहारा लेकर कथावस्तु के निर्माण कार्य में प्रवृत्त होगी तो उसमें सत्यता एवं सम्भवता अवश्य आ जायेगी ।

सम्भावना के साथ औचित्य का भी कथावस्तु में महत्वपूर्ण स्थान है । वार्तालाप, वेश-भूषा, वर्णन आदि सभी में औचित्य का ध्यान रखना आवश्यक है अन्यथा पाठक के रसास्वादन में बाधा उपस्थित हो जायेगी ।

(ङ०) [illegible]: उपन्यास और कुछ हो या न हो, वह कम से कम एक कहानी अवश्य है । अतः उपन्यास के कथानक में कहानी का आवश्यक गुण रोचकता का होना अति आवश्यक है । रोचकता कथानक का ऐसा गुण है जिसके अभाव में सुसम्बद्ध एवं सुगठित कथावस्तु वाले उपन्यास भी असफल हो जाते हैं । सामान्य पाठक उपन्यास मनोरंजन के लिए ही पढ़ता है । जब वह अपनी [illegible] से श्रांत-क्लान्त हो उठता है तो उपन्यासकार द्वारा सृजित एक नयी दुनिया के माध्यम से घड़ी दो घड़ी अपना जी बहलाने के लिए ही वह उपन्यास उठाता है । इसलिए उपन्यास का कथानक इतना रोचक होना चाहिए कि थोड़े समय के लिए पाठक अपनी वास्तविक दुनिया को भूल जाय और उपन्यासकार की दुनिया में डूब जाय ।

यों तो [illegible] प्रत्येक साहित्यिक विधा के लिए आवश्यक है किन्तु उपन्यास के लिए यह अति आवश्यक है । उपन्यास का एक महत्वपूर्ण दायित्व जिसके कारण हम उसे हाथ में पढ़ने के लिए लेते हैं, उसका रोचक होना है[1] । [illegible] की सृष्टि करना तथा उसे आदि से लेकर अन्त तक उसकी स्थि[illegible]ति कथावस्तु में बनाए रखना

---

1. The only obligation to which in advance we may hold a novel, without incurring the accusation of being arbitrary, is that it be interesting, that general responsibility rest upon it, but it is the only one I can think.

   – Henry James: Art of Fiction page 5.

एक कुशल एवं समर्थ उपन्यासकार के लिए ही सम्भव होता है । कथानक में रोचकता के लिए कुतूहल, नवीनता एवं [illegible] सम्बन्ध[illegible] की सृष्टि आवश्यक है । उपन्यास में रोचकता बनाए रखने के लिए उपन्यासकार को चाहिए कि वह घटना वैचित्र्य को कथानक में स्थान दे, लेकिन साथ ही साथ उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक घटना वास्तविक जीवन से निकट सम्बंध रखती हो । इतना ही नहीं, वरन् वह उनमें इस प्रकार गुम्फित गयी हो कि कथा का आवश्यक अंग बन गयी हो ।

कथानक में उत्सुकता एवं कुतूहल को जागृत रखने के लिए उपन्यासकार को पात्रों का परिचय क्रमागत रूप में देना चाहिए । उसका कौशल इस बात में है कि वह ऐसी बात गुप्त न रखे जिससे कथानक के समझने में बाधा पड़े । साथ ही [illegible]न बातों का रहस्य वह एक साथ भी न खोल दे जिससे भावी घटनाओं एवं कथा-रहस्य को जानने की जिज्ञासा एवं कुतूहल का अंत हो जाय । उसे घटनाओं एवं पात्रों को उस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि पाठक के कुतूहल एवं जिज्ञासा का क्रम निरन्तर बना रहे और कथा के अंतिम परिणाम पर उसकी जिज्ञासा पूर्ण रूप से शान्त हो जाय ।

(ड०) ऐतिहासिक कथावस्तु की विशेषताएं और विभिन्न कथा-रूपों में इसका [illegible]

ऐतिहासिक कथावस्तु की विशेषताएं :

[illegible]कार, नाटककार अथवा उपन्यासकार जब कथावस्तु का चयन वर्तमान जीवन की [illegible] से न करके सुदूर अतीत के इतिहास से करता है तो उसे ऐतिहासिक कथावस्तु की संज्ञा देते हैं । वह ऐतिहासिक पात्रों, तथ्यों एवं [illegible] के महासमुद्र में से अपने उद्देश्य के अनुकूल कुछ विशिष्ट पात्रों, तथ्यों एवं घटनाओं को चुन लेता है और ऐतिहासिक यथार्थ एवं वातावरण की [illegible] में अपनी [illegible] द्वारा कथावस्तु का संजीवन करता है । प्रश्न उठता है कि

ऐतिहासिक कथावस्तु में कौन सी ऐसी विशेषता है जिसके कारण कथाकार वर्तमान से संबंधित कथावस्तु को छोड़कर उसी का चुनाव करता है ।

ऐतिहासिक कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी जड़ कल्पना के आकाश में न होकर वास्तविकता एवं तथ्यों की भूमि में दूर तक गड़ी रहती है और सामान्य कथावस्तु की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक होती है । जब एक सामान्य पाठक को यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक कथा या काव्य या नाटक की आधार भूमि वास्तविकता एवं तथ्यों में निहित है, घटनाएं सचमुच की घटी हुई हैं और कथानक के पात्र वस्तुतः किसी युग में रहे थे, उस दशा में कृति तथ्यगत तथा भावगत यथार्थ की अधिक प्रतीति कराकर मन और हृदय पर तीव्रतर आघात करती है और उसकी एक अमिट छाप मस्तिष्क पर पड़ जाती है ।

यदि किसी ऐसे स्थान या व्यक्ति के संबंध में, जिसे हम परिचित हैं, कोई कथा कही जाती है (यद्यपि वह काल्पनिक ही क्यों न हो) तो हमारा मन बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है और कहीं न कहीं वह कथा हमारे मर्म को छू लेती है । कारण कि उसकी जड़ वास्तविकता में जमी होती है और हमको सुनने के लिए बाध्य कर देती है । यदि उसी कथा की जड़ वास्तविकता की भूमि में न होकर आकाश में होती तो वह हमें उतनी आकृष्ट नहीं करती । यदि हम किसी ऐसी कथा को सुनें जो हमारे किसी मित्र से संबंधित हो तो यह जानते हुए भी कि वह काल्पनिक है, हमें अधिक आकृष्ट करेगी । कोई भी कहानी अथवा पात्र यदि वास्तविकता में आरोपित कर सकती है तो फिर वह कल्पना मात्र की नहीं रह जाती और वास्तविकता से कुछ संबंध रखने के कारण अतिरिक्त शक्ति प्राप्त कर लेती है ।

ऐतिहासिक कथावस्तु की इस विशेषता का ज्ञान सम्भवतः प्राचीन शास्त्रकारों को भी थी । इन लोगों ने भी नितांत कल्पनात्मक और चरित (ऐतिहासिक) के बीच एक सामान्य अन्तर किया है । यद्यपि [illegible] के संबंध में उनकी कल्पना

भाव की तो तथ्यात्मक नहीं थी तो भी उन्होंने कथा एवं कथा-काव्य के लिए नितान्त काल्पनिक के स्थान पर "इतिहासोद्भववृत्त" (ऐतिहासिक कथावस्तु) का विधान करते हुए उसे अधिक महत्ता दी है[1]। प्राचीन आचार्यों ने नितान्त कल्पित कथानक को कथा-काव्य के लिए उपयोगी नहीं माना- विशेष रूप से नाटक एवं महाकाव्य के लिए ।

"इतिहासोद्भववृत्त", काव्य, नाटक तथा उपन्यास का कथानक बनकर चमत्कारण से युक्त, [illegible]य, विश्वसनीय एवं प्रभविष्णु हो जाता है । कथानक की ऐतिहासिकता पाठकों में रचना के प्रति विश्वास उत्पन्न कराती है और इस प्रकार उसका रूप सजीव, स्वाभाविक एवं व्यावहारिक लगने लगता है । पाठक को पढ़ते समय इस बात की प्रतीति हो जाती है कि कथा में वर्णित तथ्य कल्पनागत सत्य न होकर इस जगत का ही अनुभवगत सत्य है जिसका अनुभव यहीं लोक के प्राणियों ने अपने जीवन में किया है । ऐसा इसलिए विशेष रूप से होता है, क्योंकि वर्तमान युग की विचारधारा वैज्ञानिक और यथार्थवादी है, मध्यकाल की तरह नितांत कल्पना लोक में स्थित होकर जीवन की सार्थकता [illegible] करना आज कठिन एवं अस्वा[illegible] लगता है । इस प्रकार कथा एवं पात्रों के प्रति पाठकों के मन में सहज सा[illegible]ति उत्पन्न हो जाती है और वे उनसे उत्पन्न प्रभाव को सहज ही ग्रहण कर लेते हैं ।

ऐतिहासिक वृत्त एवं पात्र साहित्य-सिद्ध आदर्शों की सजीवता से अनुप्राणित कर देते हैं, साहित्यिक कल्पना में यथार्थता ला देते हैं तथा काव्यगत भावनाओं एवं विचारों को कापनी उड़ान से उतार कर सम्भाव्य एवं प्रतीति

१-(क) इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् - काव्यादर्श १।१५

(ख) [illegible] पावन भावकः ।

उत्पत्त्यादि विधातव्यं [illegible]म् ।।- दश रू ३।२२।

भोगुयता की भूमि पर ला खड़ा करते हैं । इतिहास में वर्णित चरित्रों से जन-सामान्य का संस्कारतः एक आत्मीय सम्बन्ध जुड़ा रहता है जिससे साधारणीकरण तथा तादात्म्य स्थापित करने में सुगमता होती है । इसीलिए विश्व के लगभग सभी साहित्यों में ऐतिहासिक कृतियों की ही प्रधानता रही है ।

ऐतिहासिक कथावस्तु, काल्पनिक कथावस्तु के सदृश ही मानव-मस्तिष्क की कथा सम्बन्धी जिज्ञासा को तुष्ट करती है और उत्कण्ठा तथा नाटकीय परिस्थितियों से मन को सम्मोहित कर रसानुभूति में डुबा देती है । ऐसे कथानक के द्वारा हम एक ऐसे युग में पहुंच जाते हैं जो हमारे युग से भिन्न, अतीत का है, फिर भी सम्मोहक है । हम अतीत युग के उन व्यक्तियों में इतने घुलमिल जाते हैं, उनके सुख-दुख में इतने लीन हो जाते हैं कि वस्तुतः वह हमारा ही सुख-दुख हो जाता है । इस प्रकार हम स्वयं को ही उस अतीत युग का अनुभव करने लगते हैं और नए लोक में पहुंच कर आनन्दमग्न हो उठते हैं ।

कथा की जिज्ञासा के साथ ही साथ ऐतिहासिक कथावस्तु हमारी इतिहास सम्बन्धी जिज्ञासा को भी संतुष्ट करती है । जिस देश और काल के इतिहास से कथावस्तु का संयोजन हुआ रहता है, उस देश-काल के जीवन, संस्कृति तथा समाज के यथार्थ चित्रण द्वारा राष्ट्रीय [illegible] को हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर वह हमारी राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करती है । ऐसे कथानक के द्वारा जब हम अपने पूर्वजों की वीरतापूर्ण [illegible] एवं कहानियों को सुनते हैं तो स्वाभाविक रूप से हमारे मन में वीरतापूर्ण अतीत साकार हो उठता है और राष्ट्रीय चेतना का समुद्र हमारे भीतर लहराने लगता है । यह महान् व्यक्तियों के महत्वपूर्ण क्रिया-[illegible] एवं आदर्शों द्वारा हमें नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षण प्रदान कर हमारी वर्तमान की चेतना को उद्बुद्ध करती है तथा राष्ट्र के भावी कार्यक्रमों की ओर संकेत भी करती है । ऐतिहासिक कथावस्तु हमको एक नयी [illegible] ही नहीं प्रस्तुत करती वरन् आत्म-औचित्य स्थापन द्वारा अतीत में देखने की [illegible] भी प्रदान करती है ।

[illegible]तिहासिक [illegible]वस्तु जिस रूप में [illegible] के माध्यम से सम्मुख आती उसी [illegible] का [illegible] भी निहित रहता है [illegible] परिणाम यह होता

है कि वह अपने समग्र रूप में सामने नहीं आती, उसमें चयन की प्रक्रिया घटित हो जाती है जिससे बिखराव के स्थान पर सम्पृक्तता का समावेश हो जाता है और पाठक पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है । इसलिए वर्तमान के बहुत से अभावों की पूर्ति ऐतिहासिक कथावस्तु के द्वारा सम्भव हो जाती है ।

चयन की प्रक्रिया के साथ एक अन्य प्रक्रिया भी घटित होती है, वह है नैतिक [illegible]नों के समावेश की । लेखक न केवल ऐतिहासिक कथावस्तु को प्रस्तुत करता है वरन् वह एक दृष्टि भी देना चाहता है जिससे घटनाओं, पात्रों एवं परिस्थितियों की औचित्य महत्ता एवं निरर्थकता स्वतः उद्घाटित होती चलती है ।

ऐतिहासिक कथावस्तु का विभिन्न कथा-रूपों में व्यवहार:

(पृष्ठ सं ९)

"इतिहास" की चर्चा के सन्दर्भ में जैसा कि पीछे उल्लेख किया गया है, "इतिहास" के लिए अंग्रेजी में "हिस्टरी" शब्द का प्रयोग होता है जो ग्रीक-शब्द "हिस्टोरिया" से निकला है । "कथा" के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला अंग्रेजी शब्द "स्टोरी" भी "हिस्टोरिया" से ही निकला है और उसी स्तर का है जिस स्तर का "हिस्टरी" शब्द है । "हिस्टरी" का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है अन्वेषण अथवा जाँच-पड़ताल द्वारा प्राप्त की गयी कोई सूचना । अतएव व्यापक अर्थ में पृथ्वी पर रहने वाले मानव तथा मानवेतर [illegible]णियों से संबंधित घटित घटना ही इतिहास है[1]। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव की तरह पृथ्वी पर रहने वाली सभी वस्तुओं का अपना एक इतिहास है, किन्तु जब कोई व्यक्ति, चाहे वह सामान्य ही क्यों न हो, बिना

---

1. History and story are the same word, and are derived from a Greek word which means information obtained by inquiry or research. History in its most comprehensive sense is all that has happened not merely to man but to every other object on earth.
—A.X.Moares: An Introduction to the study of literature (1927), p.121.

किसी व्याख्यात्मक सन्दर्भ से इतिहास की बातचीत करता है तो ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि उसका संकेत अपने अतीत रिकार्डों अर्थात् पृथ्वी पर मानवता के विकास-कथा की ओर है । "कथा" में भी मनुष्य जीवन की कहानी व्यापक रूप से रहती है, चाहे वह कल्पित ही क्यों न हो । इस दृष्टि से "कथा" और "इतिहास" बहुत कुछ एक दूसरे के समीप है और उनकी प्रकृति में एक सीमा तक साम्य है ।

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में "इतिहास" का अर्थ आधुनिक अर्थ से अधिक व्यापक था । पीछे (पृष्ठ सं १) जैसा संकेत किया गया है, कौटिल्य के अनुसार पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सब इतिहास हैं । रामायण और महाभारत को भी इतिहास ग्रन्थ माना गया है । "इतिहास" शब्द के इस व्यापक एवं अनेक अर्थों के कारण ही आधुनिक इतिहासकार के सामने भारतीय इतिहास के सम्बंध में अनेक जटिल एवं भ्रामक समस्यायें आ खड़ी होती हैं जिनका समाधान करना अत्यन्त कठिन हो जाता है । सच बात तो यह है कि "इतिहास" शब्द का प्रयोग प्राचीन साहित्य में आधुनिक अर्थ में कभी भी नहीं हुआ और न आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि से कोई "इतिहास ग्रंथ" ही लिखा गया ।

यद्यपि प्राचीन भारतीय चिन्तन में आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव था, फिर भी कथा [illegible] के लिए वहाँ ऐतिहासिक कथावस्तु तथा वास्तविक [illegible] का आधार प्रचुरता से ग्रहण किया गया है । आज भी महा-काव्य, खण्ड काव्य, नाटकों, उपन्यासों एवं कहानियों के लिए ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लिया जाता है । किंतु एक बात ध्यान देने की है कि प्राचीन ऐतिहासिक काव्य, कथा, आख्यायिकाएं, नाटक आदि जहाँ आज के इतिहासकार के लिए इतिहास के स्रोत रहे हैं वहाँ आधुनिक ऐतिहासिक कथाकार के लिए इतिहास ही प्रमुख आधार रहा है । प्राचीन भारतीय [illegible] और आधुनिक ऐतिहासिक [illegible] की रचना-प्रक्रिया एक दूसरे से सर्वथा विपरीत है । प्राचीन भारतीय इतिहास में जहाँ [illegible] को मुक्त स्वीकृति मिली है वहाँ आधुनिक इतिहास में उसका पूर्ण [illegible] करके यथार्थ एवं [illegible] रूप की प्रतिष्ठा की जाती है तथा

प्रामाणिकता पर विशेष बल दिया जाता है ।

ऐतिहासिक लोककथाएं एवं गाथाएं:

ऐतिहासिक कथावस्तु का व्यवहार कथा के आदिम रूप मौखिक कथा-कहानियों (लोक गाथा एवं लोक कथा) में नाना रूपों में हुआ है और ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं को लेकर अगणित लोक-कथानकों की रचना हुई है । वस्तुतः भारतीय लोक-कथानकों की एक यह विशेषता रही है कि वे प्रारम्भ में सदा किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व तथा वास्तविक घटना का आधार लेकर रचे जाते हैं किन्तु बाद में उनके विकास-क्रम में ऐसी अनेक लोक-प्रचलित कल्पनाजन्य, अद्भुत चमत्कारात्मक कहानियां एवं अनुश्रुतियां आकर जुड़ जाती हैं कि उनमें ऐतिहासिक-घटना-परम्परा का अभाव सा लगने लगता है । फलस्वरूप उनमें ऐतिहासिक व्यक्तित्व केवल एक किंवदन्ती व्यक्तित्व सा भान पड़ने लगता है । विक्रमादित्य, उदयन, शालिवाहन, भोज आदि ऐतिहासिक व्यक्तित्व ऐसे ही हैं जो लोक-कथानकों में किंवदन्ती व्यक्तित्व ले चुके हैं । अतएव ऐतिहासिक लोक-कथाओं को इतिहास की कसौटी पर कसना और उनमें इतिहास की खोज करना एक अत्यन्त ही दुरूह कार्य है ।

हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में वर्तमान समय में लोक-प्रचलित गाथाओं में आल्हा, लोरिकायन, राजा भरथरी, गोपीचंद, विजयमल, सोरठी, बिहुला, शोभा नायका बनजारा, और कुंवर सिंह विशेष प्रसिद्ध हैं । सैकड़ों वर्षों से ये गाथाएं कण्ठानुकण्ठ रक्षित और विकसित होती आ रही हैं । इनमें ऐतिहासिक आधार या पृष्ठभूमि वाली गाथाएं ये हैं - आल्हा, गोपीचंद, राजा भरथरी तथा बाबू कुंवरसिंह । ऐतिहासिक आधार से तात्पर्य यह है कि इनके पात्रों तथा स्थानों के नाम आदि तो ऐतिहासिक हैं पर घटनाएं अधिकतर कल्पनाओं पर आधारित हैं ।

आल्हा मूलतः और प्रधानतया एक बुंदेली लोक-कथा है किन्तु लगभग संपू हिन्दी प्रदेश में इसका प्रचार है । इस लोक - गाथा में महोबा के राजा परमर्दिदेव

के दो दरबारी सामंतो - आल्हा और ऊदल - के उन ऐतिहासिक लड़ाइयों का वर्णन है जिन्हें इन वीरों ने परमर्दिदेव की ओर से उस समय के अन्यतम वीर पृथ्वीराज चौहान के साथ लड़ा था । यद्यपि आल्हा अपने वर्तमान रूप में शुद्ध ऐतिहासिक लोक-काव्य नहीं है किन्तु इसका मूलाधार और पृष्ठभूमि अवश्य ऐतिहासिक रही होगी । इसके प्रधान पात्रों में कुछ तो ऐसे हैं जिनका इतिहास में उल्लेख मिलता है, कुछ ऐसे पात्र हैं जिनके नाम से सम्बद्ध कुछ मंदिर, भवन या स्थान आज तक उनकी स्मृति दिलाते हैं । अनेक पात्र काल्पनिक भी हैं । डा॰ ग्रियर्सन ने इस लोक-कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में लिखा है "किन्तु यह बात ध्यान रखने की है कि आल्ह खण्ड में जो कुछ भी कहा गया है वह इतिहास नहीं, किंवदन्ती आख्यान है और वह किंवदन्ती आख्यान मात्र नहीं है वरन् उसमें बहुधा परस्पर विरोधी बातें भी कही गयी हैं । इसमें प्रमुख पात्र तो ऐतिहासिक है किन्तु उनके साहस और पराक्रम के जो कार्य आल्हखण्ड में वर्णित हैं, ऐतिहासिक सत्य नहीं है[1] ।" डा॰ ग्रियर्सन के कथन में वास्तविकता का [illegible] अंश है, किन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि [illegible] में ऐतिहासिकता का काफी अंश रहा होगा और अब लोक-[illegible] के आवरण से उसकी ऐतिहासिकता दब सी गयी है ।

नाथ - सम्प्रदाय के अन्तर्गत गोपीचन्द का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है । नवनाथों में इनकी भी गणना होती है । जोगियों में [illegible] की गाथा बहुत प्रचलित है । [illegible] ने माता मैनावती के आदेश [illegible] राज और भोग [illegible] का त्यागकर तपस्या का जीवन व्यतीत किया था । इनके इस त्याग की कथा ही लोकगाथा के रूप में प्रसिद्ध है ।

[illegible] को बहुत दिनों तक विद्वान अनैतिहासिक व्यक्ति मानते रहे और इनकी कथा को कवि-कल्पना प्रसूत मानते रहे । किन्तु डा॰ [illegible] ने प्रबल [illegible] से सिद्ध कर दिया है कि वे ऐतिहासिक [illegible] थे । [illegible] की

---

1. George Grierson: Linguistic Survey of India IX, Part Ist p.495.

ऐतिहासिकता को स्वीकार करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि गोपीचन्द बंगाल के राजा मानिकचंद के पुत्र थे । मानिकचंद का सम्बन्ध पालवंश से बताया जाता है जो सन् १०९५ तक बंगाल में शासनारूढ़ थे । इसके बाद वे लोग पूर्व की ओर हटने लगे । गोपीचंद का ही दूसरा नाम गोविन्दचंद है[1] ।

राजा भरथरी से संबंधित लोकगाथा में राजा भरथरी और रानी सामदेई की कथा है । भरथरी नाथ-परम्परा के अनुगामी थे । नव-नाथों में उनका भी नाम आता है । कुछ लोगों का अनुमान है कि भरथरी किसी नाथपंथी लोकगायक का कल्पित एवं अनैतिहासिक पात्र है । किंतु जैसा कि डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है इनका सम्बंध उज्जैन के [illegible] से था । राजा भरथरी ने अपना राज्य छोटे भाई विक्रमादित्य को सौंपकर गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था । स्मिथ के अनुसार उज्जैन में एक विक्रमादित्य नामक राजा सन् १००६ से ११२६ तक राज्य करता रहा[2] । इस प्रकार द्विवेदी जी ने भरथरी को ऐतिहासिक व्यक्ति माना है ।

बाबू कुंवर सिंह से सम्बन्धित लोकगाथा सम्पूर्ण भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है । कुंवर सिंह [illegible] जिले के जगदीशपुर गांव के निवासी थे और आस-पास के कुछ इलाकों के अधिपति थे । सन १८५७ के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने प्रमुख रूप से भाग लिया था और वीर गति को प्राप्त हुए थे ।

ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर लिखी गयी जिन गाथाओं की चर्चा ऊपर की गयी है प्रायः हिंदी प्रदेश में ही प्रचलित है । किन्तु अन्य प्रादेशिक बोलियों में भी ऐतिहासिक कथानकों का आधार लेकर [illegible] की रचना होती रही है । मराठी में तो [illegible] के लिए प्रयुक्त "पवाड़ा" शब्द का अर्थ ही होता है - किसी ऐतिहासिक व्यक्ति की कथा का वर्णन[3] । इसी प्रकार अनेक ऐतिहासिक

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: नाथ-सम्प्रदाय पृ० १६८ ।

२- वही, पृ० १६८ ।

३- महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश, भाग १७, पृ० ५५० ।

व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लोक-कहानियां भी गढ़ी जाती रही हैं । विक्रम और राजा भोज की कहानियां तो लगभग सम्पूर्ण देश और समुदाय में प्रचलित हैं । ऐतिहासिक लोक कथाओं का सम्बन्ध अधिकतर स्थानीय इतिहास से ही होता है ।

पुराख्यान:

समूचा पुराण-साहित्य आख्यानात्मक है । कुछ वर्षों पहले पौराणिक आख्यानों एवं कथाओं को मात्र कवि-कल्पना एवं धार्मिक साहित्य कह कर उन्हें इतिहास से दूर रखा जाता था और उनमें वर्णित नामों एवं घटनाओं को अप्रामाणिक माना जाता था, किन्तु अब इतिहासानुरागी विद्वान इतिहास की दृष्टि से उसे अमूल्य निधि मानने लगे हैं । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि अधिकांश पौराणिक कथाएं कल्पित हैं और उनमें इतिहास की खोज करना व्यर्थ है, किंतु उनमें ऐसे आख्यानों एवं कथाओं की भी कमी नहीं है जिनमें ऐतिहासिक दृष्टि से सत्यता है और वे ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लिखे गये हैं ।

साधारणतः पुराणों में पांच विषयों का वर्णन होना चाहिए-सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय के बाद पुनः सृष्टि या कल्प का कल्पान्तर प्रलय), वंश (प्राचीन राजाओं, देवों एवं ऋषियों की वंशावलियां), मन्वन्तर(काल के महायुग) तथा वंशानुचरित । किन्तु यह आदर्श योजना वर्तमान पुराणों में पूरी तरह घटित नहीं मिलती । पुराणों की इतिहास विषयक सामग्री वंश तथा वंशानुचरित तक ही सीमित है । वंश के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं, देवों एवं ऋषियों की क्रमिक वंशावलियां हैं । "वंशानुचरित" में किसी राजा के जीवन से सम्बद्ध वृत्तान्तों का वर्णन है । वंशवर्णन के प्रसंग में किसी महान राजा के चरित का गान कभी कभी संक्षेप में गाथा द्वारा होता है[1] । वंश तथा वंशानुचरित से सम्बन्धित ऐतिहासिक गाथाएं अठारह पुराणों में से केवल सात में मिलती हैं, ग्यारह पुराणों में

१- डा० वीणापाणि पाण्डेय: हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, पृ० ११२।

-तिहास-परक सामग्री का अभाव है[१]। पुराणों की वे ऐतिहासिक गाथाएं अभि-लेखों की प्रशस्तियों की भांति राजाओं के अस्तित्व और चरित्र का सूक्ष्म परिचय देती है।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पुराणों में वैदिक काल के पूर्ववर्ती काल का भी इतिहास है और उनमें बहुत सी कहानियां और ऐतिहासिक घटनाएं विशुद्ध हैं जो आर्य-पूर्व-जातियों की चीज़ है[२]। आज पुराणों के गम्भीर अध्ययन के द्वारा प्रामाणिक वंशवृक्षों की वास्तविकता अनेक विद्वानों द्वारा स्वीकृत हो चुकी है[३]। पुराणों के वैज्ञानिक विवेचक पार्जिटर तथा काशी प्रसाद जायसवाल ने [illegible] के आधार पर इतिहास की प्रामाणिक [illegible] अंकित की है और भारतीय इतिहास के आंध्र, वाकाटक, भारशिव और गुप्त वंशों के इतिहास को सामने रखा है[४]।

१- डॉ० राधा कुमुद मुकर्जी: हिन्दू सभ्यता: पृ० १४४ ।

२- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १४१ ।

3. (क) Modern European writer have been included to disparage unduly the authority of Puranic list, but the clear study finds in them much more genuine and valuable historical tradition. For instance the Vishnu Puran gives the outline of the history of Maurya dynasty with near approach to accuracy and the Radcliff manuscript of the Matsya is equally trust worthy to Andhra History.
-V.A.Smith: The Early History of India, page 10.

(ख) Recently Altekar in his presidential address to the Indian History Congress 1939 has tried to show how the Pre Bharat War History of India can be constructed from evidence of the Puranas and Epics with help of the Vedic evidence.
-D.R.Patil: Cultural History from the Vayu. page 2

4. The Puranas are full on the Vakataka and Gupta empires. The chronicles of those periods seem to have composed in Vakataka country wherein the Vakataka secretariate. The detai of both areavailable. The imperial system of the Andhras is also attempted in Puranas by recording their feudatories. The Puranas have followed a system of going back to the begi[illegible] of a dynasty from a critical point and giving an earlier history of the imperial families. Thus they have done in the case of Andhras, the Vakatakas and [illegible].
-K.P.Jaiswal, [illegible] of India, p.33 .

पुराणों के कितने नाम एवं घटनाएं ऐतिहासिक हैं यह एक बड़ा विवादास्पद प्रश्न है और इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निर्णय लेना आसान कार्य नहीं है । किंतु अब तक के अध्ययनों से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुछ पौराणिक आख्यानों एवं कथाओं का मूलाधार इतिहास अवश्य था और ऐतिहासिक विवेक के अभाव में भी पौराणिक कथाकारों द्वारा कथा-निर्माण के लिए ऐतिहासिक कथानक का आधार ग्रहण किया जाता था ।

पौराणिक आख्यानों एवं कथाओं के समानान्तर चलने वाली बौद्ध एवं जैन कथा-धाराएं भारतीय कथा-साहित्य की ही नहीं, भारतीय इतिहास की भी अमूल्य निधि हैं । इन कथाओं में ऐसी अनेक कथाएं हैं जो ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं के आधार पर लिखी गयी हैं । जातकों तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों में ऐसी अनेक कथाएं हैं जो बुद्ध तथा उनकी सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध हैं तथा तत्कालीन तथा उसके पहले के इतिहास की ओर इंगित करती हैं । बुद्ध-कालीन अनेक राजाओं जैसे बिम्बिसार, प्रसेनजित, उदयन, चंड प्रद्योत, अजातशत्रु, विडूडभ आदि से सम्बंधित अनेक कथाएं जातकों एवं बौद्ध साहित्य में संगृहीत हैं । इसी प्रकार जैन आगम ग्रन्थों में भी ऐसी अनेक कथाएं हैं जो ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लिखी गयी हैं । [illegible] बिम्बिसार और चेलना के विवाह(आवश्यक चूर्णि २), महावीर की प्रथम शिष्या [illegible] (आवश्यक चूर्णि २), कुशल मंत्री अभयकुमार (आवश्यक चूर्णि २), रानी चेलना का सतीत्व(बृहत्कल्प ।भाष्यवृत्ति। पीठिका), रानी मृगावती का कौशल (आवश्यक चूर्णि), [illegible] की मृत्यु, कूणिक तथा चेटक का महायुद्ध (आवश्यक चूर्णि २), से सम्बंधित जैन [illegible]ाएं इतिहासाश्रित हैं[1] । [illegible] लिखित "त्रिषष्टि[illegible]पुरुषचरित" में चन्द्रगुप्त के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को लेकर कई विविध आख्यान दिये गये हैं ।

पौराणिक तथा जैन-बौद्ध [illegible]ओं के मूल में धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान रही है और इसी उद्देश्य से ये कथाएं रची गयी हैं । अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिन

१- डा० जगदीश चन्द्र जैन द्वारा सम्पादित दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां [illegible] ऐतिहासिक [illegible] है ।

ऐतिहासिक कथाओं का निर्माण किया गया उनमें अपने धर्म को सर्वोपरि सिद्ध करने के लिए कहीं-कहीं तथ्य-विरोधी बातें भी लिख दी गयीं । अतः इतिहासकार के लिए इन कथाओं को सामने रखकर इतिहास की संगति मिलना कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता है ।

पौराणिक तथा बौद्ध-जैन कथाओं में ऐतिहासिक कथावस्तु के संगठन एवं संचयन की दृष्टि से बहुत सी कमियां हैं और उन्हें कथा-साहित्य की निधि होने पर भी शुद्ध साहित्यिक कथाएं नहीं कह सकते । ऐतिहासिक कथावस्तु का कलात्मक, संचयन एवं संगठन कथा के साहित्यिक रूप- प्रबन्ध काव्य, नाटक, कथा-आख्यायिका, उपन्यास तथा आधुनिक कहानी - में मिलता है ।

ऐतिहासिक काव्य और नाटक:

ऐतिहासिक [illegible] तथा घटनाओं से सम्बद्ध प्रबंध काव्य और नाटक लिखने की परम्परा हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से ही चली आ रही है । अनेक भारतीय कवियों ने प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर अपनी [illegible] एवं [illegible]त्मक शक्ति द्वारा महान् काव्य ग्रन्थों की रचना की है । इस प्रकार के काव्य ग्रंथों के लिखने की [illegible] का सूत्रपात हम रामायण एवं म[illegible]भारत से मान सकते हैं जो सम्भवत् सन् ईसवी से ५०० वर्ष पहले लिखे गये थे । कीथ ने रामायण को इतिहास और महाकाव्य के बीच की रचना कहा है[1]। महाभारत की घटनाओं को भी विद्वानों ने इतिहास के रूप में स्वीकार किया है और पार्जिटर ने सी ३२२ ई०पू० को चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारम्भ की तिथि मानकर पुराणों के आधार पर महाभारत के राजवंशों का राज्यकाल तथा महाभारत-युद्ध की सम्भावित तिथि भी निकाल दी है[2]।

१- ए०बी०कीथ: संस्कृत साहित्य का इतिहास(हिन्दी अनुवाद), पृ० ५७ ।

२- डॉ०राधाकुमुद मुखर्जी: हिन्दू सभ्यता, पृ० १३९ ।

रामायण और महाभारत में इतनी लौकिक-अलौकिक तथा पौराणिक कथाएं भरी पड़ी हैं कि उनकी ऐतिहासिकता पर किसी भी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता । फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि इनकी मूल-कथाएं अवश्य ही ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं पर आधारित रही होंगी । यह दूसरी बात है कि लौकिक-अलौकिक घटनाओं के महा जंजाल में से उस मूल कथा को निकालना तथा उनकी ऐतिहासिकता की कसौटी पर कसना दुस्साहस का कार्य है । सच बात तो यह है कि ये दोनों ग्रन्थ अपने युग के ऐतिहासिक, नैतिक, पौराणिक, उपदेश मूलक और तत्ववाद सम्बंधी कथाओं के विशाल विश्वकोश हैं[1]।

कुछ विद्वानों ने ७-८वीं शताब्दी से संस्कृत ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा का प्रारम्भ माना है । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बद्ध काव्य लिखने की प्रथा का प्रचलन सम्भवतः ईरानियों तथा उत्तर-पश्चिम सीमांत की जातियों के संसर्ग का ही फल है[2]। इतिहास को केवल राजाओं की कहानी तक सीमित कर देने में द्विवेदी जी की बात सत्य हो सकती है लेकिन इतिहास केवल राजाओं की लड़ाइयों तथा विवाहों का लेखा-जोखा मात्र ही तो नहीं है । वह तो, द्विवेदी जी की शब्दावली में, "जीवन्त मनुष्य के विकास की जीवन-कथा होता है जो काल-प्रवाह से नित्य उद्घाटित होते रहने वाले नव-नव घटनाओं और परिस्थितियों के भीतर से मनुष्य की विजय - यात्रा का चित्र उपस्थित करता है और काल के पर्दे पर प्रतिफलित होने वाले नये-नये दृश्यों को हमारे सामने सहज भाव से उद्घाटित करता रहता है ।" इतिहास की इस परिभाषा से द्विवेदी जी की बात को एकदम स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रथम शती ईसवी में ही अश्वघोष ने इतिहास की गति में एक नया मोड़ देने वाले व्यक्ति महात्मा बुद्ध के जीवन को आधार बनाकर "बुद्धचरित" तथा "सौन्दरनन्द" नामक संस्कृत ऐतिहासिक काव्य-ग्रंथों की रचना की । ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर काव्यग्रन्थों की

१- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० १०७ ।

२- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७६ ।

रचना को ध्यान में रखकर ही सम्भवतः दंडी(७वीं शती ईसवी) तथा अग्निपुराण-कार ने महाकाव्य के लक्षणों को निर्धारित करते समय यह भी निर्धारित किया कि महाकाव्य का कथानक इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी महात्मा, सज्जन व्यक्ति के वास्तविक जीवन पर आश्रित होना चाहिए[1]। द्विवेदी जी की बात के समर्थन में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ८-९वीं शताब्दी में ईरानियों तथा उत्तर-पश्चिम सीमांत की जातियों के सम्पर्क से ऐतिहासिक काव्य लिखने की परम्परा को बल मिला।

ऐतिहासिक काव्यों के संबंध में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम-भर लिया शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था और विवरण-संग्रह की ओर कम, कल्पना-विलास का अधिक मान था, तथ्य-निरूपण का कम, सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लसित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार ऐतिहासिक काव्यों में इतिहास को कल्पना तथा सम्भावनाओं के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन [illegible] में कल्पना को उकसा देने वाले साधन मात्र मान लिए गए हैं। एक तथ्य को लेकर अनेक सम्भावनाओं की सृष्टि की गयी है जो कभी-कभी अलौकिकता की सीमा तक भी पहुंच गये हैं। यही कारण है कि इतिहास के विद्यार्थी के लिए इन अनेक कल्पित सम्भावनाओं के बीच से ऐतिहासिक तथ्यों को खोज [illegible] एवं इतिहास की संगति बैठाना बड़ा कठिन हो जाता है।

१-(क) [illegible] कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्[illegible] [illegible]दात्तनायकम् ।।(काव्यादर्श, १।१५) ।

(ख) इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
मंत्रदूत [illegible]णादि नियतं नातिविस्तरम् ।।(अग्निपुराण, अध्याय ३३७, काव्यादि लक्षण) ।

भारतवर्ष में या कहीं भी प्राचीन काल में इतिहास का वह स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता जैसा कि आज के वैज्ञानिक युग में देखा जाता है । अपने देश में "हमेशा से ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या निजंधरी कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है । कुछ में दैवी शक्ति का आरोप कर पौराणिक बना दिया गया है - जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध आदि - और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप करके निजंधरी कथाओं का नायक बना दिया गया है जैसे उदयन, विक्रमादित्य, और हाल । पद्मावत के रतनसेन और रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और कल्पना- फैक्ट्स और फिक्शन - का अद्भुत योग हुआ है । कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति-भाण्डार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है[१] ।" यही कारण है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बद्ध काव्यों में इतिहास कम एवं कल्पना-प्रसूत घटनाएं अधिक हैं । फिर भी ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्य निजंधरी कथाओं से इस अर्थ में भिन्न अवश्य है कि उनमें कुछ न कुछ इतिहास की सामग्री वर्तमान है ।

भारतीय कवियों ने काव्य को "शिव" और "आनंद" का साधन माना है । सिद्धान्ततः काव्य में ऐसी घटनाओं एवं परिस्थितियों का आना भारतीय कवि उचित नहीं समझता जो दुःखोत्पादक होते हैं, यद्यपि वास्तविक जीवन में ऐसी दुःखोत्पादक विषम परिस्थितियां आती ही रहती हैं । ऐतिहासिक कथानकों में भी भारतीय कवियों की इस प्रवृत्ति को स्पष्ट लक्ष्य किया जा सकता है । बहुत कम कवियों ने ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा कर जाने की वृत्ति से अपने को मुक्त रखा है । यही कारण है कि ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों के नायक को उसके प्रकृत-रूप से हटाकर धीर, वीर एवं ललित बनाने की प्रवृत्ति ही अधिक प्रबल हो गयी है और वास्तविक जीवन के कर्तव्य, संघर्ष, आत्मविरोध और आत्म-परितोष,-जैसी बातें उनमें नहीं आ पाती । अब स्वभावतः ऐतिहासिक काव्य कल्पित निजंधरी कथाओं से बहुत भिन्न नहीं जान पड़ते ।

१- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृ० ७७ ।

अश्वघोष के "[illegible]" तथा "सौन्दरनन्द" के बाद ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर पद्यात्मक शैली में लिखा गया प्रबन्ध ग्रन्थ पद्मगुप्त "परिमल" का "नवसाहसांकचरित" है जो सम्भवतः १००५ ईसवी के आस पास लिखा गया था । इस काव्यग्रन्थ में धारा के राजा नवसाहसांक उपाधिधारी सिन्धुराज का राजकुमारी शशिप्रभा से विवाह की कल्पित कथा का वर्णन है । यद्यपि इस ग्रन्थ की मूलकथा ऐतिहासिक नहीं है, फिर भी यत्र-तत्र इतिहास की सामग्री मिल जाती है । बिल्हण रचित "विक्रमांकदेव चरित"(रचना काल लगभग ११वीं शती उत्तरार्द्ध) का ऐतिहासिक काव्य परम्परा में एक महत्वपूर्ण स्थान है । इस ग्रन्थ में बिल्हण ने १८ सर्गों में अपने आश्रयदाता कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ(१०७६-११२७ ईसवी) को नायक बनाकर उससे सम्बद्ध अनेक ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है । "विक्रमांकदेवचरित" में मूलतः एक महाकाव्य की रचना की साधारण पद्धति का प्रयोग एक ऐतिहासिक विषय पर किया गया है । "नवसाहसांकचरित" तथा "विक्रमांकदेवचरित" राजकीय विवाहों और युद्धों का काव्य है । राजाओं के गुणानुवाद के लिए उन दिनों ये ही दो विषय उपयुक्त समझे जाते थे । दोनों में ही कल्पना का प्रचुर अवकाश और सम्भावनाओं की पूरी गुंजाइश रहती थी । वस्तुतः इन स्तुतिमूलक कल्पनाप्रवण काव्यों में इतिहास का केवल छुट-स्पर्श मात्र है । इतिहास की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ कल्हण की "राजतरंगिणी" है । इस काव्य-ग्रन्थ को कीथ ने प्रथम भारतीय इतिहास-ग्रन्थ तथा कल्हण को प्रथम भारतीय इतिहास-लेखक माना है[1] । इस महान काव्य ग्रंथ में कल्हण ने काश्मीर के प्राचीन राजाओं तथा समसामयिक राजाओं का सजीव चित्र उपस्थित किया है । किन्तु इसमें हजारों वर्षों का इतिहास सम्मिलित होने के कारण कथा की अन्विति, कथावस्तु के संगठन एवं महत्त्व[illegible]पूर्ण घटनाओं के चयन का अभाव है । यद्यपि पौराणिक और किंवदन्ती तत्त्वों, देवी-देवताओं, भूत-प्रेत, राक्षस आदि अलौकिक-[illegible] शक्तियों के कार्यों, शकुन-शाप-वरदान, जादू-टोना, भाग्य, कर्मफल और पुनर्जन्म में [illegible] जैसी बातों के कारण "राजतरंगिणी"

१- ए०बी०कीथ: संस्कृत साहित्य इतिहास (हिन्दी अनुवाद), पृ० १९४ ।

की सम्पूर्ण घटनाओं की ऐतिहासिकता में विश्वास नहीं किया जा सकता, फिर भी कल्हण ने समसामयिक और निकटभूत की घटनाओं को तटस्थ दृष्टि से देखा है[1]। सब मिलाकर राजतरंगिणी को एक ऐतिहासिक काव्य ही कहा जा सकता है ।

ऐतिहासिक चरित काव्यों में सन्ध्याकर नंदी का "रामचरित" बंगाल के राजा रामपाल के नाम से सम्बद्ध होने पर भी उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व से अछूता है । कल्हण का अपने आश्रय दाता, सोमपाल के जीवन को लेकर लिखा काव्य "सोमपाल विलास" ऐतिहासिक काव्य ही है । "जयानक" का लिखा कहा जाने वाला "पृथ्वीराजविजय" दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज पर लिखा गया है । जैन कवि हेमचन्द्राचार्य ने "कुमारपालचरित" अथवा "द्व्याश्रय" १२वीं शताब्दी ईसवी में लिखा जिसका कथानक अनहिलवाड़े के चौलुक्य राजा कुमारपाल के पूर्वजों तथा स्वयं उसके जीवन से सम्बन्धित है । इसी प्रकार सोमेश्वर की "कीर्तिकौमुदी" और "सुरथोत्सव", बालचन्द्र सूरि का "वसन्तविलास" तथा नयचंद सूरि का "हम्मीर काव्य" ऐतिहासिक काव्य है ।

ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर लिखे जाने वाले काव्यों में विद्यापति की "कीर्तिलता" का एक महत्वपूर्ण स्थान है जो संस्कृत में न होकर अपभ्रंश में है । यद्यपि यह पुस्तक भी कवि के आश्रयदाता कीर्तिसिंह की कीर्ति गाने के उद्देश्य से लिखी गयी है और कवि कथोचित अलंकृत भाषा में रची गयी है किन्तु संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों की तरह इसमें ऐतिहासिक तथ्य एवं घटनाएं कल्पित घटनाओं या संभावनाओं के आवरण में धूमिल नहीं हो गयी है । व्यक्ति-परक होने पर भी यह काव्यग्रन्थ उस काल के वातावरण रहन-सहन एवं जीवन का एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है । उस काल के हिन्दू-मुसलमानों, गांव-नगरों, राजा-सामन्तों, जनता-सिपाहियों आदि का यथार्थ वर्णन किया गया है । यह काव्य इतिहास की बातों से निर्मित होकर तथ्य [illegible] पुस्तक नहीं ललित अद्भुत का काव्य है ।

१- डा० शम्भूनाथ सिंह: हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १५६ ।

हिन्दी में "पृथ्वीराजरासो" तथा "पद्मावत" भी ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से सम्बद्ध हैं । इन प्रबन्ध काव्यों की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में बहुत मतवैभिन्य है । "पृथ्वीराजरासो" की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता को लेकर उसके पक्ष-विपक्ष में प्रायः मत प्रकाशित होते ही रहते हैं । इनके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि संस्कृत के अन्यान्य ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों की तरह मूलतः इनमें भी ऐतिहासिक और निर्धंधरी आख्यानों का मिश्रण रहा होगा । अन्य ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों के समान इनमें भी इतिहास और कल्पना-कौतूहल और विश्वास-का मिश्रण है । आधुनिक काल में भी इतिहास का आधार लेकर अनेक ऐतिहासिक काव्य प्रबन्ध शैली में लिखे गये हैं ।

प्रबंध-काव्य की तरह नाटकों के लिए भी ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार प्राचीन काल से ही ग्रहण किया जाता रहा है । धनंजय ने स्पष्ट ही लिखा है कि नाटक की आधिकारिक कथावस्तु का चुनाव इतिहास से करना चाहिए और उनका नायक धीरोदात्त, गुणवान् और इतिहास-प्रसिद्ध(प्रख्यात) होना चाहिए[1] । संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों की स्थिति ऐतिहासिक काव्यों से बहुत भिन्न नहीं है । इनमें भी नाटककारों की दृष्टि तथ्यों की ओर कम और सम्भावनाओं की ओर अधिक रही है और ऐतिहासिक पात्रों में पौराणिकता एवं अलौकिकता का आरोप कर दिव्यादिव्य बना दिया गया है । फिर भी रंगमंचीय विधान के कारण अलौकिक तत्वों के कम हो जाने से ऐतिहासिक नाटक, ऐतिहासिक काव्यों की अपेक्षा अधिक यथार्थ लगते हैं ।

ऐतिहासिक कथानक के आधार पर अश्वघोष लिखित "शारिपुत्र-प्रकरण" प्रथम उपलब्ध नाटक है । इसमें [illegible] के दो प्रधान शिष्यों शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बौद्ध-धर्म ग्रहण की कथा है । दोनों अन्त में गौतमबुद्ध के शिष्य बन गए हैं । महात्मा बुद्ध भी इस नाटक में पात्र रूप में दिखाये गये हैं । भास लिखित

१- डा० [illegible] व्यास कृत "हिन्दी दशरूपक"(धनंजय कृत "दशरूपक" का अनुवाद) अध्याय ३, श्लोक २२।२३, पृ० १८८ ।

"स्वप्न वासवदत्ता" और "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" का कथानक कौशाम्बी के राजा उदयन और उसके विवाहों से सम्बन्धित है। "वासवदत्ता" में महाराजा उदयन की रानी वासवदत्ता के त्याग और नीति पथ पर चलकर मगधदेश की राजकुमारी पद्मावती से राजा का विवाह करा देने में सहायक होने का वर्णन है । "प्रतिज्ञा यौगंधरायण" में उदयन का उज्जयिनी के राजा महासेन चंड प्रद्योत के कुटिल चक्र में पड़कर बंदी बनने तथा फिर मंत्री यौगंधरायण के बुद्धि-कौशल और पराक्रम से महासेन की कन्या वासवदत्ता के साथ उसके कौशाम्बी पहुंच जाने का वर्णन है । हर्षलिखित "रत्नावली" और "प्रियदर्शिका" के कथानक भी उदयन तथा उसके विवाहों से सम्बन्धित हैं । विशाखदत्त कृत "मुद्राराक्षस" ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्राट हो जाने के बाद चाणक्य की कुटिल नीति द्वारा शासन में अवरोध उपस्थित करने वाले तत्वों के विनाश की कहानी है । विशाखदत्त द्वारा ही लिखित "देवीचन्द्रगुप्त" में चन्द्रगुप्त द्वितीय का ध्रुवदेवी के रूप में शकराज को मारने का वर्णन है । अनंग हर्ष का "तापस वत्सराज" भी उदयन से सम्बन्धित है । इसीप्रकार "प्रताप रुद्र कल्याण" (विद्यानाथ) "हम्मीर-मदमर्दन"(जयसिंह सूरि) तथा "गंगादास-प्रतापविलास"(गंगाधर) भी ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित ऐतिहासिक नाटक हैं ।

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों का श्रीगणेश अंग्रेजी साहित्य के संपर्क में आने के पश्चात् भारतेन्दु युग से हुआ । भारतेन्दु ने हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक"नीलदेवी" की रचना १८८१ ईसवी में की जिसका कथानक पंजाब के राजा सूर्यदेव तथा अमीर अब्दुश शरीफ खाँ के युद्ध से सम्बद्ध है । भारतेन्दु के पश्चात् ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे गये । "प्रसाद" हरिकृष्ण "प्रेमी", लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि नाटककारों ने ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर अनेक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है । आधुनिक ऐतिहासिक नाटकों की एक विशेषता यह है कि इनके कथानक आधुनिक ऐतिहासिक विवेक द्वारा समर्थित तथ्यों पर आधारित है और जहाँ कहीं कल्पना का आश्रय लिया गया है वह ऐतिहासिक सम्भावनाओं से दूर नहीं पड़ता ।

जैसा कि एक स्थान पर संकेत किया जा चुका है कि अपने देश में बराबर ऐतिहासिक व्यक्तियों को पौराणिक अथवा काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है । इसका परिणाम यह हुआ है कि नायक का ऐतिहासिक व्यक्ति एवं प्रकृत-रूप सर्वथा लुप्त हो गया और वह एक निजंधरी कल्पित नायक के रूप में दिखाई पड़ने लगा । कथा-आख्यायिकाओं में ऐसे ऐतिहासिक नामों की कमी नहीं है जो ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बद्ध होते हुए भी निजंधरी एवं काल्पनिक व्यक्तित्व रखते हैं । कथा-आख्यायिकाएं प्रायः उपदेश एवं मनोरंजन प्रधान है । सम्भव है, लोक में सत्यता की प्रतीति कराने के लिए ही कथा-आख्यायिकाओं के लेखकों ने ऐतिहासिक नामों और तथ्यों को लेकर कल्पना के प्राचुर्य से कथा का महल खड़ा किया हो । किन्तु अब वस्तुस्थिति यह है कि कल्पना के प्राचुर्य में तथ्य भी वैसे ही जान पड़ते हैं ।

ऐतिहासिक कथा-आख्यायिकाएं:

प्राचीन कथा-ग्रन्थों में "कथासरित्सागर" तथा "बृहत्कथामंजरी" का महत्वपूर्ण स्थान है । इन्हीं ग्रन्थों की परम्परा में बुधस्वामी का "बृहत्कथा श्लोक संग्रह", भी आता है । विद्वानों का अनुमान है कि दोनों ग्रन्थों की सामग्री गुणाढ्य की "बृहद्-कथा" से ली गयी है जो अब लुप्त हो चुकी है । इन ग्रन्थों में उज्जैन के राजा महासेन या प्रद्योत, कौशाम्बी के प्रेमी और साहसी राजा उदयन तथा उसके पुत्र नरवाहनदत्त से सम्बद्ध अनेक कल्पित कथाएं हैं । डा० कीथ का अनुमान है कि गुणाढ्य ने ये कथाएं, बौद्ध उपाख्यानों तथा उज्जैन एवं कौशाम्बी की अनुश्रुतियों से ली होंगी[1] । इन निजंधरी कथानायकों की तरह राजा भोज, विक्रमादित्य, शालिवाहन आदि को नायक बनाकर अनेक कथाओं की रचना की गयी ।

ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर लिखे गये कथा-ग्रन्थों में बाणभट्ट रचित "हर्षचरित" का विशिष्ट स्थान है । [illegible] ने इसे आख्यायिका [आख्यायिक कहा है।]

१- [illegible] संस्कृत सा० का इतिहास (अनु- मंगलदेव शास्त्री), पृ० ४११ ।

का कथानक नायक के वास्तविक जीवन की घटनाओं पर आधारित होता है । "हर्ष-
चरित" में बाणभट्ट ने समसामयिक राजा एवं आश्रयदाता हर्ष के जीवन तथा
तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण कवि ने किया है किन्तु सच बात तो
यह है कि इसमें इतिहास की अपेक्षा काव्य ही प्रधान है । हर्ष तथा हर्षकालीन
कुछ घटनाओं का आधार लेकर कवि ने अपनी भव्य कल्पना द्वारा ललित एवं अलंकृत
गद्य शैली में यह काव्य ग्रन्थ रचा है । काव्यात्मकता की प्रधानता के कारण ही
ऐतिहासिक पात्रों का व्यक्तित्व पूर्णरूप से उभर कर नहीं आया है । ऐतिहासिक
दृष्टि से भले कम मूल्यवान होने पर भी भाषा की दृष्टि से इसके महत्व को अस्वीकार
नहीं किया जा सकता । ऐतिहासिक कथाओं की परम्परा में इसका एक विशिष्ट
स्थान सुरक्षित है ।

ऐतिहासिक उपन्यास और कहानियाँ:

भारतीय साहित्य के धरातल पर उपन्यास और आधुनिक कहानी का जन्म
१९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में यूरोपवासियों के संपर्क में आने पर हुआ । अपने देश में
पुरातन काल से ही कथा की एक विशाल परम्परा सुरक्षित होने पर भी उपन्यास
और आधुनिक कहानी जैसी कोई रचना उपलब्ध नहीं है । शैली, शिल्प, विषयवस्तु
आदि कई दृष्टियों से उपन्यास और आधुनिक कहानी प्राचीन कथा-रूपों से भिन्न
है । इतिहास की नवीन दृष्टि भी यूरोपियों की ही देन है ।

उपन्यासों एवं आधुनिक कहानियों में ऐतिहासिक कथावस्तु का व्यवहार
इन कथा-रूपों के प्रारम्भ के साथ ही हुआ । अंग्रेजी के प्रथम और सफल ऐतिहासिक
उपन्यासकार वाल्टरस्कॉट ने स्कॉटलैण्ड के इतिहास का आधार लेकर १८१४ ईस्वी
में - वेवर्ली नामक अपने प्रथम उपन्यास की रचना की । यह उपन्यास बहुत ही लोक-
प्रिय हुआ । फिर तो इसने स्कॉटलैण्ड के ११वीं से १८वीं शताब्दी के इतिहास
का आधार लेकर बत्तीस सफल उपन्यासों की रचना की । धीरे-धीरे इसके उपन्यासों
का प्रचार अन्य देशों में भी हुआ और इसकी देखा-देखी अनेक ऐतिहासिक उपन्यास
लिखे गये । [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] - [illegible] का [illegible] [illegible] नाम
[illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को लेकर लिखे गये उपन्यास
[illegible]

हिन्दी में उपन्यास और आधुनिक कहानियों के लिए उनके जन्म काल से ही ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार ग्रहण किया जाने लगा । हिंदी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार कहे जाने वाले श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के आधार पर अनेक ऐतिहासिक रोमांसो एवं उपन्यासों की रचना की । उनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास हृदयहारिणी १८९० ईसवी में प्रकाशित हुआ था । हिन्दी की प्रथम मौलिक कही जाने वाली कहानी "इन्दुमती" (१९०० ईसवी) भी इतिहास के परिवेश में ही लिखी गयी है जिसके लेखक श्री गोस्वामी जी ही हैं । गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में, सच बात तो यह है कि उनमें इतिहास का आधार नाम-मात्र को ग्रहण किया गया है और लेखक की कल्पना ही प्रधान हो उठी है । अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का गला घोंट दिया गया है । और ऐतिहासिक चरित्रों को उनके यथार्थ रूप में न प्रस्तुत कर विकृत-रूप में किया गया है । गोस्वामी जी के ऐतिहासिक कहे जाने वाले उपन्यास तिलस्मी एवं जासूसी कहे जाने वाले उपन्यासों से बहुत भिन्न नहीं जान पड़ते । उनके हर उपन्यास में काल-क्रम-दोष स्पष्टतः से लक्षित किया जा सकता है । किशोरी लाल जी के समकालीन अन्य कई उपन्यासकारों- जैसे - गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास [illegible] बलदेव प्रसाद, - ने भी कई ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की, लेकिन उनके भी उपन्यास गोस्वामी जी के उपन्यासों की ही कोटि में आते हैं ।

ऐतिहासिक कथानक को लेकर लिखा हुआ वृन्दावनलाल वर्मा का "गढ़-कुंडार" सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ । ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में यह प्रथम सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है जिसमें इतिहास, [illegible] के माध्यम से सजीव हो उठा है । इतिहास की नींव पर अपनी [illegible] कल्पना द्वारा जिस उपन्यास-भवन का निर्माण लेखक ने किया है वह अतीत का होते हुए भी वर्तमान की तरह [illegible] देता है । इस उपन्यास की परम्परा में ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर वर्मा जी ने अनेक सफल उपन्यासों - झाँसी की रानी, मृगनयनी, विराटा की पद्मिनी, कचनार, टूटे काँटे, माधव जी सिंधिया आदि- की रचना

की है और वे आज हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहे जाते हैं । वर्मा जी के अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, यशपाल आदि कथाकारों ने भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि पर अनेक उपन्यासों की रचना की है । ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर कहानियां लिखने वालों में जयशंकर "प्रसाद", प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, आनन्दप्रकाश जैन प्रमुख हैं । पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमास प्रायः ऐतिहासिक कहानियां प्रकाशित होती रहती हैं ।

प्राचीन ऐतिहासिक काव्यों, नाटकों एवं कथा आख्यायिकाओं तथा आधुनिक ऐतिहासिक काव्यों, नाटकों, उपन्यासों एवं कहानियों की रचना-प्रक्रिया में मूलभूत अन्तर यह है कि जहां प्रथम कथा-स्वरूप -तत्व इतिहास के लिए साधन-स्रोत रहा है वहां दूसरा इतिहास की नींव पर आधारित है । प्रथम में जहां कल्पना का उन्मुक्त साम्राज्य है वहां दूसरे में कल्पना नियंत्रित है । फलस्वरूप आधुनिक काव्यों, नाटकों, उपन्यासों आदि में कहानीपन के साथ-साथ इतिहास का भी कुछ आधुनिक रूप दृष्टिगोचर होता है । इनमें ऐतिहासिक पात्रों को उनके प्रकृत रूप में प्रस्तुत करने के साथ - साथ उस युग को भी [illegible] किया गया । कल्पित घटनाएं भी युगानुरूप सम्भावनाओं से मण्डित ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में उपस्थित की गयी । आधुनिक कथा-रूपों के लिए ऐतिहासिक कथावस्तु ने एक सुदृढ़ आधार और यथार्थ पृष्ठभूमि प्रस्तुत किया ।

अध्याय : तीन

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा, प्रकृति, स्वरूप एवं भेद

(क) इतिहास और उपन्यास ।

(ख) ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा ।

(ग) ऐतिहासिक उपन्यास की प्रकृति एवं स्वरूप-
ऐतिहासिक उपन्यास का इतिहास से संबंध
तथा भेद ।

(घ) ऐतिहासिक उपन्यास तथा अन्य उपन्यासों
में अन्तर ।

(ङ०) ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण तथा
उनका स्वरूप-भेद ।

(क) इतिहास और उपन्यास

विवेचन-विश्लेषण की प्रक्रिया के फलस्वरूप उपन्यास के जितने विभिन्न प्रकार अब तक निर्धारित हुए हैं उनमें से एक "ऐतिहासिक उपन्यास" है - अर्थात् ऐतिहासिक विशेषण से मर्यादित विशिष्ट उपन्यास। यहीं पर ये प्रश्न भी उठते हैं कि इतिहास और उपन्यास में परस्पर क्या सम्बन्ध है, उनकी मर्यादाएं क्या हैं तथा दोनों के बीच वह कौन सी सीमा-रेखा है जहां से दोनों को पृथक् किया जा सकता है ?

प्राचीन वाङ्मय में "इतिहास" और "कथा" में कोई ऐसा मौलिक भेद नहीं था जिसकी सीमा-रेखा निर्धारित की जा सके। पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सबको इतिहास माना गया है। "इतिहास" और "कथा" के इस मिश्रित रूप के कारण ही कतिपय पाश्चात्य विद्वानों एवं इतिहासकारों का कथन है कि प्राचीन भारतीयों ने अपने अतीत का इतिहास नहीं लिखा, उनमें ऐतिहासिक विवेक था ही नहीं[1]। "इतिहास" और "कथा" में यह

१-(क) History is the one weak point in Indian literature. It is in fact non-existent. The total lack of history sense is so characteristic that the whole course of Sanskrit literature is darkened by the shadow of this defect, suffering as it does from an entire absence of chronology"
—Macdonell: Sanskrit literature, page 10.

(ख) Ancient India bequeathed to us no historical work"
—Pargiter: Ancient Indian Historical tradition. p.2.

(ग)————पुराने काल में इतिहास का अर्थ था पुराणों की कथाएं जिनमें सत्य की मात्रा थोड़ी और वाग्जाल का [illegible] अधिक था ———हमारे इतिहास के पुराने कालों में इतिहास नहीं था। "इतिहास" शब्द तो था पर उसका अर्थ कुछ और था। रामायण और महाभारत की बातों को, पुराणों की कहानियों को इतिहास का नाम दे दिया गया था। इनमें आज के इतिहास के ढंग से न [illegible] के काल का निर्णय है और न व्यक्तियों एवं वस्तुओं के जीवन का क्रमबद्ध - वर्णन।
—डा० ताराचन्द (डॉ० सावित्री सिन्हा द्वारा सम्पादित "[illegible] की [illegible]" नामक पुस्तक के पृ० १२७-२८ से उद्धृत)।

भेद निश्चित रूप से विज्ञान युग का स्वाभाविक परिणाम है और लगभग दो शताब्दियों पूर्व की घटना है । आधुनिक विज्ञान ने जैसे हमारे ज्ञान, सोचने-समझने की प्रणालियों एवं कार्य की विविध दशाओं को प्रभावित किया है, वैसे ही इति-हास और कथा को भी । इसके पूर्व दोनों अधिक समीप थे । और कुछ शताब्दियों के अन्तरपट को चीर कर देखें तो प्रायः अभिन्न दिखाई देंगे ।

किन्तु एक बात लक्ष्य करने की है कि जिस विज्ञान ने इतिहास और कथा को पृथक्-पृथक् किया, बाद को उसने ही दोनों में एक प्रकार का सामंजस्य भी स्थापित किया । "आख्यान, पुराण, एवं किम्वदंतियों के घेराव से मुक्त होकर, जब एक बार इतिहास, विज्ञान की ही भाँति विशुद्ध तथ्यों का भंडार बना तो मनुष्य की व्यवस्था-परायण बुद्धि ने उसे एक सिस्टम का रूप दिया और फिर इसी क्रम में सिस्टम की परख भी उसकी प्रयोगशील दृष्टि ने की । सार्थकता की परख के इस दौरान में इतिहास की अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की गईं, जिन्हें हम इतिहास-दर्शन के नाम से जानते हैं । इन विविध व्याख्याओं एवं दर्शनों ने विचार-प्रक्रिया को प्रभावित किया[1] ।" फलस्वरूप इतिहास को इन दर्शनों के आलोक में देखा जाने लगा । अतीत का चित्रण भी इस दृष्टियों के प्रकाश में किया जाने लगा और यहीं से ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन का सूत्रपात हुआ । वास्तव में "ऐतिहासिक उपन्यास" इतिहास और कथा की उस पुरातन समीपता की नूतन सम्बन्धात्मक अभिव्यक्ति है जिसके पीछे युग-युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित हैं । इसकी उत्पत्ति विगत में आत्मविस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है । कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को मुक्त नहीं कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को [illegible] है[2]। इस प्रकार इतिहास विशुद्ध तथ्योन्मुखी बना तो रसात्मक साहित्य से दूर हटा, किन्तु जब उसने संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं समाज के विकास पर दृष्टिपात आरम्भ किया तो भावनाओं के क्षेत्र में उसने व्यापक रूप से प्रवेश किया और ऐतिहासिक उपन्यासकार की रचना का आधार बना ।

१- डॉ० देवीशंकर अवस्थी: आज कला और आलोचना, पृ० ६० ।

२- डॉ० जगदीश गुप्त: आलोचना का उपन्यास विशेषांक(जनवरी ५४), पृ० १०८ ।

कोई भी उपन्यास चाहे वह ऐतिहासिक हो अथवा सामाजिक, उसका प्रधान लक्ष्य होता है जीवन के विविध मानवीय संवेदनाओं का विस्तार कर भावनाओं एवं विचारों, हृदय एवं मस्तिष्क के बीच एक नवीन सामंजस्य स्थापित करना तथा सीमित रूप में जीवन के चिरन्तर सत्य का उद्घाटन करना[1]। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपन्यास कल्पना का सहारा लेता है। इतिहास का लक्ष्य - केन्द्र भी प्रायः यही रहता है, किंतु उसकी दिशा एवं मर्यादाएं उपन्यास से भिन्न होती है। उसमें कल्पना पूर्णतः उन्मुक्त न होकर पतंग की भांति नियंत्रित रहती है एवं तथ्य-समर्थित होकर ही क्रियाशील हो पाती है। वस्तुतः ऐसे इतिहास की कल्पना एक प्रकार से असम्भव है जिसमें कल्पना का नितान्त अभाव हो।

इतिहास और उपन्यास के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा के सन्दर्भ में सर फ्रांसिस पाल्ग्रेव का नाम उल्लेखनीय है। पाल्ग्रेव ने दोनों के सम्बन्धों पर आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा है कि "ऐतिहासिक उपन्यास" इतिहास के घातक शत्रु होते हैं[2]। स्टीफेन्सन स्मिथ ने ऐतिहासिक उपन्यासों को घटिया इतिहास और निकृष्ट उपन्यास की संज्ञा दी है[3]। इसी प्रकार साहित्यालोचक लेस्ली स्टीफेन ने ऐतिहासिक कथा-सूत्र को अच्छे उपन्यास के लिए प्रतिकूल माना है[4]। कुछ [illegible]

१- डॉ० जगदीशगुप्त: आलोचना का उपन्यास वि[illegible] (अक्टूबर ५४), पृ० १०८ ।

2. Historical Novels are mortal enemies to history.
- Palgrave (Reproduced from introduction of 'English History in English Fiction' by J.Marriott.)

3. ..The historical novel is bad history and worst fiction; that is fall between the two modes, and succeeds in being neither one nor the other- S.Stephenson Smith: The Craft of Critic, pp.121.

4. Historical Theme is inimical to good fiction
-Leslie Stephen: Hours in Library, page 241.

आलोचक इसे मात्र पलायनवादी साहित्य कहकर इसका तिरस्कार करते हैं और कुछ "वर्ण संकर" अर्थात् निम्नकोटि का साहित्य मानकर उसे हेय दृष्टि से देखते हैं, हालांकि वे संगीत तथा नाटक के मिश्रित रूप"ओपेरा" जैसी कला को स्वीकार करते तनिक भी नहीं हिचकिचाते[1]। इस प्रकार के कथनों का यही अभिप्राय है कि न तो उपन्यास को इतिहास की सीमा में प्रवेश करना चाहिए और न इतिहास को उपन्यास की, इससे दोनों की हत्या होती है और कोई मूल्यवान् परिणाम नहीं निकलता ।

जिन लोगों ने ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं उन्होंने अपनी धारणा के पक्ष में कोई सम्यक आधार प्रस्तुत नहीं किया है । इस प्रकार के निर्णय या तो अपरिपक्व कृतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप हो सकते हैं या इतिहास के प्रति शुद्धतावादी पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टिकोण के कारण । ऐसे लोग सोचते हैं कि इतिहास केवल मृतक घटनाओं, तथ्यों, तिथियों एवं राजा-महाराजाओं का विवरण है और उपन्यास मात्र कल्पना का कलित विलास । वे यह भूल जाते हैं कि इतिहास, मात्र घटना-संकलन अथवा महापुरुषों की वीरगाथा न होकर चिरन्तन मानवीय प्रकृति के संतुलन में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के आन्तरिक सत्यों की खोज एवं सारे राग-विरागों के साथ अतीत का यथार्थ है । और उपन्यास स्वभावतः यथार्थ को पकड़ता है, चाहे वह अतीत का यथार्थ हो या वर्तमान का । अतः उपन्यास का इतिहास के क्षेत्र में जाना अनुचित अथवा किसी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता ।

इतिहास के क्षेत्र में कल्पना का जो दुहरा उल्लेख किया गया है, वह

---

1. Some critic, notwithstanding the fact that Tolstoy's War and Peace' is widely acknowledged the greatest of all novels have sought to disparage historical fiction as bastard art. They shrug shoulders over the hybrid combination of history and fiction, although they accept an art like opera, sprung from music and drama.

—Ernest E.Leisy: The American Historical Novel, p.5-6.

निराधार नहीं । १९वीं शताब्दी में जब प्रत्यक्षवादी इतिहासकारों ने इतिहास संबंधी अनुशीलन में तटस्थता एवं निर्वैयक्तिकता की घोषणा कर सैद्धान्तिक रूप से "विशुद्ध विज्ञान, न इससे कम, न इससे ज्यादा" कहा और इतिहास को कल्पना की छाया से दूर खींच कर विज्ञान की सीमा तक ले जाने का प्रयास किया, तो कई विचारकों को इस दृष्टि से अपूर्णता का आभास मिला । फलस्वरूप इतिहास को पूर्णता प्रदान करने के प्रयत्न में उन लोगों ने इतिहास की नयी परिभाषाएं एवं नयी व्याख्याएं प्रस्तुत की और नये इतिहास-दर्शन का सूत्रपात किया । इस विवेचन-विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया कि इतिहास पूर्णतया विज्ञान नहीं है, क्योंकि वह मानव-प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ पूर्व निश्चित धारणाओं को लेकर चलता है । "क्या हुआ" इसको तथ्यों से नापा-जोखा जा सकता है और इसमें वैज्ञानिक का दृष्टिकोण मान्य हो सकता है, लेकिन "क्यों हुआ" इसका उत्तर मानव-प्रकृति के सापेक्ष ज्ञान तथा व्यक्तिगत धारणाओं से तटस्थ रहकर नहीं दिया जा सकता । और इसका उत्तर दिये बिना इतिहास, इतिहास न होकर तथ्यों की सूची मात्र रह जाता है ।

विभिन्न घटनाओं का पूर्वापर सम्बंध स्थापित करते हुए उन्हें एक सूत्र में परिकल्पित तथा धारावाहिक बनाने की प्रक्रिया इतिहासकार के लिए आवश्यक है । यह विज्ञान के क्षेत्र की वस्तु न होकर साहित्य के क्षेत्र की वस्तु है । यह प्रक्रिया कल्पना द्वारा संचालित होकर ही क्रियाशील होती है और इतिहास को साहित्य की सीमा तक खींच लाती है । यहीं पर इतिहासकार भी उपन्यासकार के निकट आ जाता है और [illegible] होने के नाते उपन्यासकार इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकार पा जाता है । अतः इतिहास के क्षेत्र में उपन्यास का प्रवेश अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

इस विचार की मान्यता के [illegible] स्वरूप आधुनिक कथा-साहित्य में अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का व्यापक सृजन हुआ जिनमें आख्यायि[illegible] तथा इतिहास का [illegible] रूप उपलब्ध होता है । वास्तव में किसी भी साहित्य रूप को

सफलता लेखक की प्रतिभा एवं उसकी सर्जना शक्ति पर निर्भर करती है, न कि साहित्य रूप पर । कई ऐतिहासिक उपन्यासों में महान ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अतीत को अधिक सजीव तथा अधिक स्वाभाविक चित्रित किया है और वर्तमान युग के सामाजिक उपन्यासकार की भाँति ही संघर्षों, युद्धों एवं द्वन्द्वों के बीच मानव-इतिहास के विकास को सफलता से उपस्थित किया है । अतः उपन्यासकार की प्रतिभा एवं सर्जनात्मक शक्ति के अभाव का दायित्व ऐतिहासिक उपन्यास को देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता ।

अब प्रश्न उठता है कि उपन्यास और इतिहास के मध्य वह कौन सी विभाजन-रेखा है, जहाँ से दोनों को पृथक् किया जाय । जहाँ तक अंतिम लक्ष्य का प्रश्न है, दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज उपन्यास का लक्ष्य भी मनोरंजन एवं कल्पना का विलास मात्र न होकर मानव जीवन के सूक्ष्म, गंभीर और स्थायी सत्यों की खोज ही है । साहित्य के सभी अंग इसी लक्ष्य की ओर गतिशील हैं । किन्तु उपन्यास और इतिहास के मार्गों एवं मर्यादाओं में पर्याप्त अंतर है और दोनों की दिशाएं एक दूसरे से पृथक् हैं ।

इतिहास सत्य का अन्वेषण करते हुए भी प्रकृति से वस्तुोन्मुख एवं तथ्यान्वेषी होता है । उसका आग्रह तथ्य पर अधिक रहता है और उसके लिए वह सब प्रकार के प्रमाणों (प्रामाणिक ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपट्टों, मुद्राओं, प्राचीन पत्रों आदि) का संग्रह करता है । किन्तु ये सब प्रकार के [illegible] मिलकर भी उसके वास्तविक स्वरूप को उपस्थित नहीं करते । इतिहास के वास्तविक रूप को [illegible] करने तथा उसे धारावाहिक बनाने के लिए [illegible] लेखक को [illegible] एवं अनुमान का सहारा लेना पड़ता है (यहीं से वह [illegible] के निकट आने लगता है), किन्तु उसकी यह कल्पना का [illegible] तथ्य से इतना निकट का होता है कि उन्हें अंतर आसानी से नहीं किया जा सकता । घटनाओं एवं तथ्यों का यथावत् वर्णन एवं उनको विकास के एक सूत्र में बांधना ही [illegible] का मुख्य कार्य होता है । इसके विपरीत, [illegible]न्यास मानवीय सत्य की तरह [illegible] और व्याख्या में तथ्यों की उपेक्षा भी कर सकता है । तथ्य उसके लिए बन्धन नहीं बनते, उपकरण मात्र हो सकते हैं ।अतीत

तथ्यों के ज्ञात होने से कालान्तर में इतिहास असत्य हो सकता है, किन्तु उपन्यास, यदि वह वास्तव में शक्तिशाली एवं प्राणवान रचना बन सका है तो कला की दृष्टि से कभी भी महत्वहीन एवं असत्य नहीं बन सकता, भले ही ऐतिहासिक तथ्यों में कुछ अन्तर आ जाय ।

उपन्यास और इतिहास में एक अन्य मूलभूत अन्तर यह है कि जहां इतिहास का संबंध राष्ट्र के उत्थान-पतन से विशेष रूप से रहता है वहां उपन्यास विविध पात्रों के चरित्र पर केन्द्रित मुख्यतया व्यक्तिपरक होता है । इतिहास के लिए वाह्य घटनाओं का महत्व अधिक होता है और उसी के आलोक मे वह पात्रों का विश्लेषण करता है । केवल वाह्य घटनाओं तक सीमित रहने के कारण इतिहास का पात्र संबंधी विशलेषण एकांगी होता है । किन्तु उपन्यास का मुख्य केन्द्र व्यक्ति उसका वाह्य क्रिया-कलाप एवं उसका मनोजगत होता है जिसके आलोक में वह चिरन्तन मानवीय प्रकृति एवं उसकी समग्र नियति का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें समाज एवं राष्ट्र का चित्रण केवल प्रभावान्विति को प्रदीप्त करने के लिए पीठिका रूप में होता है ।

उपन्यास और इतिहास में विभेद दर्शाते हुए फ्रेंच आलोचक एलेन ने लिखा है कि उपन्यास में कथा उतनी काल्पनिक नहीं होती जितनी प्रणाली, जिसके द्वारा विचार, कार्य में परिणत होते हैं । इतिहास वाह्य घटनाओं को प्रधानता देने के कारण अनस्तित्व भाव (~~Existence~~ Fatality) से प्रेरित होता है जब कि उपन्यास में ऐसी कोई बात नहीं होती । उपन्यास में सभी चीजें मनुष्य की प्रकृति पर आधारित होती है और उसमें अस्तित्व भाव प्रधान होता है, जिसमें प्रत्येक वस्तु उद्दिष्ट रहती है, चाहे वह भावोद्वेग हो या अपराध हो या शोक हो

या संघर्ष हो[1] । इतिहास मानवीय चेतना की आन्तरिक एकता के लिए प्रतिश्रुत नहीं होता । वह दर्शन का विषय हो सकता है, इतिहास का नहीं । इतिहास प्रायः निरपेक्ष भाव से तथ्यों का अनुशीलन करते हुए अतीत के विविध व्यक्तियों में स्वतंत्र रूप से व्यक्त मानवीय चेतना की प्रगति, ह्रास एवं विकास का अनुशीलन करता है जब कि उपन्यास केन्द्रीभूत मानवीय संवेदना का ही अनेकमुखी परिविस्तार होता है । उसके (उपन्यास के) विविध पात्र रचयिता की कल्पना एवं संवेदना के एक ही स्रोत से अनुप्राणित होते हैं ।

इतिहास मूलतः वास्तविक घटनाओं की साक्षी पर आधारित रहता है जबकि उपन्यास का आधार जीवन की प्रत्यक्ष घटनाएं होती हैं । उपन्यास भी वास्तविक घटनाओं की साक्षी पर आधारित हो सकता है, किन्तु तब उसमें कुछ अन्य तत्वों का भी समावेश आवश्यक रूप से हो जाता है । यह आवश्यक तत्व है उपन्यासकार का स्वभाव विशेष और जीवन को देखने की उसकी अपनी दृष्टि । उसकी यह जीवन दृष्टि तथा स्वभाव विशेष कभी साक्षीभूत घटनाओं की प्रभावान्विति को घटा-बढ़ा देता है और कभी उसमें आमूल परिवर्तन भी कर देता है[2] । यही उपन्यासकार के० स्रष्टा रूप का विधायक होता है । इतिहास

---

1. What is fictious in a novel is not so much the story as themethod by which thought develops into action, a method which never occurs in daily life...History, with its emphasis on externel causes, is dominated by the notion of fatality, whereas there is no fatality in the novel; there, every-thing is founded on human nature, and the dominating feeling is of an existence where everything is intentional, even passions and crimes, even misery.

   -Alain (Reproduce from "Aspects of Novel, page. 54).

2. ...History is based on evidence. A novel is based on evidence + or-x, the unknown quantity being the temperament of the novelist, and the unknown quantity always modifies the effect of the evidence and sometimes transforms it entirely.

   -E.M.Forster: Aspects of Novel page 52-53.

जहाँ द्वितीय कोटि की सामग्री पर निर्भर करता है, वहाँ उपन्यास वास्तविकता एवं प्रत्यक्षदर्शी घटनाओं की दृढ़ भूमि पर आधारित रहता है । अतः वह सत्य के अधिक निकट होता है । उपन्यास तथा इतिहास के इसी अन्तर को स्पष्ट करते हुए उपन्यासकार जैनेन्द्र ने लिखा है- "इतिहास का अपना मूल्य है । वह विश्व की प्रगति के मार्ग का नक्शा हमारे सामने रखता जाता है । उपन्यास एक नये अजीब ही ढंग से रुचि और उपादेय जीवन का चित्र हमारे सामने रखता है । जीवन के साधारण से साधारण कृत्य और गुत्थियों को सुलझाकर और खोल खोलकर रख देता है । उपन्यास इस तरह सत्य में स्वप्न का पुट देकर, वास्तव में कल्पना मिलाकर, व्यवहार में आदर्श का सामञ्जस्य स्थापित कर और वर्तमान पर भविष्य का रंग चढ़ाकर जीवन का वह रूप पेश करता है जो जीवन से मिलता जुलता है, फिर भी अनोखा है"[1] ।

इस संदर्भ में इतिहासकार तथा उपन्यासकार की कार्यप्रणाली पर थोड़ा विचार कर लेना असंगत न होगा । इतिहासकार की कार्य-प्रणाली के दो प्रधान अंग होते हैं- प्रथम, प्राप्त सामग्री का परीक्षण एवं अध्ययन करना तथा द्वितीय प्राप्त सामग्री की व्याख्या एवं उसके आधार पर स्थापित घटनाओं का क्रम-बद्ध विवरण प्रस्तुत करना । पहली प्रक्रिया एक सीमा तक यांत्रिक है और विज्ञान की कोटि में आती है, परन्तु दूसरी में कल्पना का स्थान प्रधान होता है । प्रस्तुत सामग्री का अध्ययन एवं परीक्षण करते समय इतिहासकार की दृष्टि विशुद्ध वैज्ञानिक की होती है- प्रस्तुत सामग्री विश्वसनीय है या नहीं, निकाले हुए निष्कर्ष सत्य हैं या नहीं, जिन साधारण तथ्यों की स्थापना की गयी है वे न्यायसंगत हैं या नहीं आदि बातों को वह एक वैज्ञानिक की दृष्टि से जाँचता है । किन्तु जब निष्कर्ष रूप में प्राप्त तथ्यों तथा घटनाओं को संग्रथित एवं विन्यास से साकार करने का प्रश्न उठता है, तब उसे कथा-प्रवाह के विषय में सोचना पड़ता है और उसके लिए उसे कल्पना का सहारा लेना पड़ता

१- "परख" की भूमिका

है । किन्तु इतिहासकार की कल्पना उपन्यासकार की उन्मुक्त उड़ान न होकर परतंत्र होती है और घटनाओं की सीमा में बँधी हुई रहती है । इतिहासकार भी उपन्यासकार की भाँति घटनाओं में निहित भावनाओं की खोज करता है किन्तु इसके लिए उसका रूप सर्वव्यापी ब्रह्म का न होकर शरीर में निहित जीवात्मा का होता है और वह भी ऐसा जीव जो कलेवर के बिना अस्तित्व ही नहीं रखता[1] ।

किन्तु उपन्यासकार की रचना-प्रक्रिया इससे भिन्न होती है । वह द्रष्टा एवं स्रष्टा दोनों होता है । जहाँ इतिहासकार विवरण प्रस्तुत करता है वहाँ उपन्यासकार स्थिति की अनुभूति करता है । इस प्रकार के विवरण से मूलतः भिन्न चित्रण में वर्णन के आन्तरिक सम्बन्धों का नैरन्तर्य रहता है । इसी कारण यह अधिक सूक्ष्म एवं अधिक व्यंजक होता है[2] । उपन्यासकार की रचना-प्रक्रिया अपने समग्र रूप में एक साथ उपस्थित होती है । वह जीवन के विभिन्न अंगों तथा अपने आस-पास की बिखरी सामग्रियों से अपने उपजीव्य साधनों का चयन तो अवश्य करता है किन्तु उसके विषय (Content) तथा उसके प्रतिपादन के ढंग की अवस्था अलग अलग उपस्थित नहीं होती । यह नहीं होता कि उपन्यासकार ने विषय पहले सोचा हो तब उसके प्रतिपादन करने अथवा सम्प्रेषणीय बनाने की बात सोची हो[3] । दोनों बातें उपन्यास-रचना में साथ-साथ अवतरित होती हैं और प्रत्येक उपन्यासकार अपनी रूपाभिव्यक्ति की छाप लिये आता है ।

व्यक्तियों तथा घटनाओं को चित्रित करते समय उपन्यासकार का स्रष्टा रूप सामने आता है और उसके सृजन के आयाम में उसका सम्पूर्ण लेखन-कौशल उसकी सहायता करता है । उसके भीतर एक उदात्त कल्पना भी जागृत हो जाती है और इन सबके सम्मिलित प्रभाव से वह एक ऐसी कलाकृति को रूप देने में समर्थ होता है जो वास्तविक जगत में न होते हुए भी सम्भावित लगती है । उसके [illegible],

---

१- देखिये डॉ० विश्वेश्वर प्रसाद का "अनुसंधान का स्वरूप (सं० डा० सावित्री [illegible]) में संकलित लेख-ऐतिहासिक शोध की रूप रेखा, पृ० ६ ।
२- डॉ० देवी शंकर अवस्थी: आलोचना और आलोचना, पृष्ठ ५९ ।
३- डॉ० देवराज उपाध्याय: [illegible] तथा [illegible], पृ० १६९ ।

इतिहास सम्पूर्ण आधारभूत तथ्यों एवं प्रमाणों के होते हुए भी पूर्णरूपेण स्वाभाविक एवं सत्य नहीं प्रतीत होता । इस भाव को लक्ष्यकर ही सम्भवतः एक विद्वान ने लिखा है कि उपन्यास में सब कुछ सत्य होता है-केवल नाम और तिथियाँ सत्य नहीं होतीं और इतिहास में नाम और तिथियों के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं होता[1] ।

इतिहास संबंधी प्राप्त प्रामाणिक सामग्रियों में प्रवेशकर जब कोई इतिहासकार किसी युग-विशेष का चित्र प्रस्तुत करने लगता है तब केवल वैज्ञानिक विधि से ही उसका कार्य सम्पादित नहीं होता, उसमें एक सरसता लाने के लिए वह कल्पना का आश्रय लेने को विवश हो जाता है । वैज्ञानिक अनुसंधान, जो इतिहास का आधार है अपने आप में कठोर, नीरस और निर्जीव होता है । उसे सरस, आकर्षक एवं सजीव बनाने के लिए इतिहासकार को कलाकार के प्रमुख साधन कल्पना का प्रयोग करना पड़ता है । किन्तु इस प्रयास में वह मूलतः इतिहासकार ही रहता है, कलाकार नहीं । कलाकार तो वह है जो शैली और विषय में भेद नहीं करता । कलाकार के मन में आनेवाली कलाकृति की अवधारणा आरम्भ से ही भाव और भाषा, विषय और शैली, कथ्य और कथन को एकाकार किये रहती है[2] । किंतु इतिहासकार की प्रणाली इससे भिन्न होती है । पहले वह अनुसंधान एवं विश्लेषण से प्राप्त परिणामों द्वारा युग-विशेष का चित्र अपने मन में बैठा लेता है और तब उसे रोचक, सजीव एवं प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए अनुरूप भाषा एवं शैली का आश्रय ग्रहण करता है । फलस्वरूप उसके सामने कला गौण और कथ्य प्रमुख हो जाता है और गौण कला, कला नहीं, साहित्यिक कारीगरी है । अतः इतिहासकार को हम शुद्ध कलाकार नहीं साहित्यिक शिल्पी कह सकते हैं[3] ।

१- In fiction everything is true except names and dates, in history nothing is true except names and dates. Reproduced from W.H.Hudson's An Introduction of to the study of literature, p.166.

२- श्री रामधारी सिंह दिनकर: "महाकाव्य में सत्य और कल्पना" योगी, अक्टूबर ६० ।

३- डा० देवराज उपाध्याय: साहित्य और साहित्यकार, पृ० १६८ ।

प्रश्न हो सकता है कि इतिहासकार अपनी कला को गौण क्यों होने देता है ? क्यों नहीं वह भी अपनी कला को कवि अथवा उपन्यासकार अथवा अन्य कलाकार की भाँति प्रमुख बना देता है ? इस प्रश्न का उत्तर दोनों की रचना-प्रक्रिया के उपकरणों को दृष्टि में रखकर अधिक सरलता से दिया जा सकता है । कवि अथवा उपन्यासकार की अभिरुचि घटना विशेष में न होकर मानवसमाज के सम्पूर्ण इतिहास, उसकी समग्र नियति में होती है । इसलिए वह एक घटना के आलोक में अनन्त घटनाओं के रहस्यों को देखता है, एक मनुष्य की नियति द्वारा सभी मनुष्यों की नियति पर विचार करता है । किन्तु इतिहासकार की अभिरुचि घटना विशेष तक ही सीमित रहती है, और व्यक्ति विशेष के आवरणों से बंधी रहती है । एक युग के भीतर से सभी युगों की झलक प्राप्त करने का काम, एक घटना के माध्यम से मनुष्य की सम्पूर्ण नियति तक जाने की क्रिया-ऐसी है जिसमें तथ्य कम और कल्पना बहुत अधिक सहायता करती है[1] । इसलिए कल्पना, कवि अथवा उपन्यासकार की सबसे बड़ी सृजन-शक्ति है, इतिहासकार उसका प्रयोग अनिवार्य परिस्थितियों में एक सीमित क्षेत्र में ही कर सकता है । उपन्यासकार या कवि के लिए कल्पना एक ऐसी टार्च है जिसके सहारे वह मानव-मन एवं मस्तिष्क के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थानों को देख सकता है, जहाँ इतिहास की प्राकृतिक रोशनी का पहुँचना असम्भव है ।

वस्तुतः इतिहासकार एवं उपन्यासकार दोनों ही सत्य के अन्वेषक होते हैं, किन्तु जहाँ इतिहासकार सत्य को केवल अतीत की घटनाओं के आलोक में खोजता है, वहाँ उपन्यासकार उसे मानव-प्रकृति के आलोक में ढूंढता है । उपन्यासकार का सत्य अनुभवगत सत्य है और वह चिरकाल के विकास का संकेत है, जबकि इतिहासकार अतीत के ही सन्दर्भ में सत्य का अन्वेषण करते हुए मानव-जगत के क्रम से मौलिक सिद्धान्तों की खोज करता है[2] । इतिहासकार की दृष्टि

१- श्री रामधारी सिंह दिनकर: महाकाव्य में सत्य और कल्पना, योगी, अक्टूबर, ६० ।

२- डॉ॰ विश्वेश्वर प्रसाद: 'अनुसंधान का स्वरूप' (सं॰ डा॰ सावित्री सिन्हा) में संकलित लेख 'ऐतिहासिक शोध की रूप रेखा', पृ॰ १ ।

केवल अतीत की ओर रहती है, उपन्यासकार की तरह वह न तो वर्तमान के भीतर झाँक सकता है और न भविष्य की ओर संकेत कर सकता है । उपन्यासकार जब अतीत की ओर दृष्टि डालता है तो वह इतिहास की सामग्री से केवल अतीत का चित्र खड़ा करके ही संतोष नहीं करता । वह वर्तमान के सपनों एवं आस्थाओं को भी प्रकारान्तर से मुखर किया देता है और भविष्य के लिए उसे संदेशवाहक भी बना देता है । इसी को लक्ष्य कर बाबू गुलाब राय ने लिखा है कि "उपन्यासकार केवल संजय की ही दिव्य दृष्टि नहीं रखता जो केवल 'किमकुर्वत' का ही उत्तर दे सके, वरन् वह "किंविचारयन्ति" का भी उत्तर देता है । इसलिए उसकी कथा बाहर और भीतर दोनों ओर से पूर्ण रहती है । वह अच्छे कवि की भाँति रवि की गति से भी परे मर्मस्पर्शी मानस-लोक-निवासिनी वृत्तियों और कौतूहल को पूर्ण कर देता है[1] । इस दृष्टि से उपन्यास में मौलिकता का अत्यधिक विस्तार पाया जाता है जब कि इतिहास में मौलिकता के लिए कोई स्थान नहीं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिहास की प्रक्रिया बौद्धिक व्यवस्थापित होती है जबकि उपन्यास की प्रक्रिया अन्तश्चेतनात्मक होती है । जहाँ इतिहासकार मौन है, वहाँ भी उपन्यासकार मुखर होता है । जिस मनोजगत तक इतिहास की गति असम्भव है वहाँ कल्पना एवं मानवीय संवेदना के सहारे उपन्यासकार की पहुँच है ।

(ख) ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा

अब प्रश्न उठता है कि ऐतिहासिक उपन्यास है क्या ? इसमें कौन सी ऐसी [illegible] है जो इसे इस विशिष्ट पद पर प्रतिष्ठित करती है ?

ऐतिहासिक उपन्यास के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं और अनेक [illegible] प्रस्तुत की है । डा॰ वेबस्टर फोर्ड ने

१- बा॰ गुलाब राय: उपन्यास का शरीर विधान, साहित्य संदेश का उपन्यास विशेषांक, [illegible], नवम्बर १९४० ।

ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "ऐतिहासिक उपन्यास" एक ऐसा उपन्यास है जिसकी कथा ऐसी वास्तविक घटनाओं अथवा व्यक्तियों द्वारा समन्वित हो जिन पर ऐतिहासिकता की मुहर लग चुकी हो[1] । ओवेन विस्टर के अनुसार कोई भी कथा जो एक युग को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करे, ऐतिहासिक है[2] । जान बुकन ने ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी है-"

ऐतिहासिक उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसमें लेखक के युग से भिन्न किसी युग के जीवन के पुनर्निर्माण तथा वातावरण की पुनःसृष्टि का प्रयत्न हो[3] ।

ए० सी० वार्ड द्वारा प्रस्तुत परिभाषा भी जान बुकन की परिभाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती है । इसके अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास एक सुदूर अतीत काल का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण है[4] । जोनाथन नील्ड ऐसे उपन्यास को ऐतिहासिक मानता है जिसमें ऐतिहासिक तिथियों, घटनाओं अथवा व्यक्तियों का समावेश हो और जिन्हें हम पहचान सकें[5] । अर्नेस्ट ई० लेजी के अनुसार ऐतिहासिक

---

1. Paul Leicester once said" An historical novel is one which graft upon a story, actual incidents or persons well enough known to be recognised as historical element.

   -Ernest E.Leisy: American Historical Novel. p.4.

2. Any narrative which present faithfully a day and a generation is, of necessity, historical.
   -Owen Wister: The Virginian (New York,1902) to the reader.

3. John Buchan's definition runs this:- An historical novel is simply a novel which attempts to reconstruct the life and recapture the atmosphere of an age other than that of the writer.
   -J.Marriott: English History in English Fiction p.2.

4. A Historical Novel is an imaginative recreation of a remote period.
   -A.C.Ward: Foundation of English Prose, page 131.

5. Mr. Jonothan Nield offers us a definition:- A novel is rendered historical by the introduction of dates, personages or events to which identification can be readily given.

   -A.T.Sheppard: Art and Practice of Historical Fiction p.15.

उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसकी घटनाएं पूर्ववर्ती काल में प्रस्तुत की गयी हों[1]।

ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध में ऊपर जितनी परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी हैं वस्तुतः उनमें कोई मौलिक भेद नहीं है। सभी आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि इसमें किसी अतीत युग की कहानी होनी चाहिए। वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास आवश्यक रूप से अतीत की एक कल्पित कहानी ही होती है जिसमें इतिहास का पुट रहता है अर्थात् जिसमें परिचित तिथियों, घटनाओं अथवा व्यक्तियों का समावेश रहता है। निष्कर्ष रूप में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक उपन्यास वह है जिसमें अतीत कालीन पात्र, वातावरण एवं घटनाओं के प्रति तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाने का प्रयास होता है[2]।

कुछ आलोचकों का कथन है कि वास्तविक विश्वसनीय ऐतिहासिक उपन्यास वही है जिसका [illegible] उस समय हुआ हो जबकि इतिहास बन रहा हो[3]। जी०एम०ट्रैवेलियन ने ऐसे उपन्यासों का एक अन्य वर्ग बनाकर उन्हें "समसामयिक ऐतिहासिक उपन्यास" नाम दिया है। उनका कथन है कि उन सामयिक आचार-विचार, रहन-सहन तथा वातावरण से सम्बन्धित होने के कारण ऐसे उपन्यास कुछ काल बीत जाने पर ऐतिहासिक मूल्य के हो जाते हैं[4]। जान मैरियट ने भी ऐसा ही

१- A Historical Novel is a novel, the action of which is laid in an earlier time-
-Ernest.E.Leisy: American Historical Novel, page 5.

२- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी: [illegible] ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और तथ्य का प्रस्तावना भाग।

3. The really trustworthy historical novel are those which were a.writing while history was a making.
-Brander Mathew: The historical novel and other essay. (1901).

4. But there is another class of work which may be called contemporary historical fiction that is epic drama or novel of contemporary manners which acquires historical value only.p. by the passage of time.
- G.M.Trevelyan: History and Fiction (Clio A.Muse and other Essay).

प्रश्न अपनी पुस्तक "इंगलिश हिस्टरी इन इंगलिश फिक्शन" में उठाया है[१२२]। (इस प्रकार के उपन्यासों में फ्रेंच उपन्यासकार डूमा लिखित The She-wolves of Machecoul को लिया जाता है । हिन्दी में सेठ गोविन्ददास का "इंदुमती" तथा यशपाल का "झूठा सच" भी इस श्रेणी के उपन्यास कहे जा सकते हैं । The She-wolves of Machecoul में डूमा ने सन् १७९३ से १८४१ तक अर्थात् लगभग ५० वर्षों के फ्रांस के इतिहास को स्थान दिया है । उसका जन्म सन् १८०२ में हुआ था । इस प्रकार वर्णित घटनाएं उसके समकालीन हो जाती हैं । इसी प्रकार सेठ गोविन्ददास ने "इंदुमती" में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली प्रमुख संस्था कांग्रेस के इतिहास को स्थान दिया है । यशपाल ने "झूठा सच" की कथा का निर्माण सन् १९४७ के हिंदू-मुस्लिम दंगे के [illegible] में किया है ।) वस्तुतः ऐसे प्रश्न समस्या को सुलझाने के बदले और भी उलझा देते हैं । इस प्रकार तो सभी उपन्यास कुछ समय बीत जाने पर ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में आ जायेंगे, क्योंकि सभी उपन्यासों में तत्-सामयिक आचार-विचार, रहन-सहन तथा वातावरण का चित्रण रहता है जो समय बीतने पर ऐतिहासिक मूल्य के हो जायेंगे । फिर "ऐतिहासिक उपन्यास" और सामान्य उपन्यास में भेद ही क्या रह जायेगा ?

इस प्रश्न का उत्तर लेखक के जीवन काल को ध्यान में रखकर अधिक सरलता से दिया जा सकता है, लिखित जीवन की दृष्टि से नहीं । वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास वही है जिसकी कथावस्तु लेखक के वर्तमान से सम्बद्ध न होकर अतीत के इतिहास से सम्बद्ध हो - और जिसमें एक ऐसे युग के वातावरण, विचार-व्यवहार, एवं प्रचलित मनोविज्ञान को पुनर्निर्मित करने का प्रयास हो जिसका अनुभव लेखक ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में न किया हो । ऐसे उपन्यास [illegible]

---

१२२. Are there not many novels which at the time when they were written could not be regarded as historical, but became historical by the mere lapse of time.

—J. Marriott: English History in English Fiction. p.3.

ऐतिहासिक न होकर अपने अभिप्राय में ऐतिहासिक होते हैं और अतीत में झाँकने वाले मस्तिष्क से ही निकलते हैं । इनका प्रभाव कुछ विशिष्ट प्रकार का होता है ।

यहाँ प्रायः एक प्रश्न और उठाया जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यास के लिए आधारभूत इतिहास कम से कम कितना पुराना हो । जब हम यह कहते हैं कि आधारभूत इतिहास लेखक के वर्तमान से सम्बद्ध न हो, तो इसका अर्थ लेखक के जन्म से दो मिनट पहले भी हो सकता है और हज़ार वर्ष पहले भी । इतिहास की दृष्टि में दो मिनट पहले का अतीत उतना ही महत्वपूर्ण है जितना हज़ार वर्ष पहले का । इस अर्थ में इसके लिये कोई निश्चित सीमा-रेखा बाँधना या कोई नियम बना देना अत्यन्त ही कठिन है ।

फिर भी, उपन्यासकारों तथा आलोचकों ने इस पक्ष पर विचार किया है और एक निश्चित कालावधि निर्धारित करने का प्रयत्न किया है । आधुनिक ऐतिहासिक उपन्यासों के जन्मदाता सर वाल्टर स्काट ने ऐतिहासिक उपन्यास के आधार के लिये इतिहास का कम से कम ५० वर्ष पुराना होना निर्धारित किया है[1]। लेस्ली स्टीफेन ने आधारभूत इतिहास का साधारणतः कम से कम ६० वर्ष प्राचीन होने का सुझाव रखा है[2]। अमेरिकन आलोचक अर्नेस्ट ई० लेसी ने अमेरिका के इतिहास में परिवर्तन की तीव्रता को देखकर ४० वर्ष पूर्व का काल उचित

---

1. Sir Walter Scott who in Theory and Practice laid the foundation-stone of modern historical m novel, set the interval at a half a century.

   -Ernest E.Leisy: American Historical Novel, p.5.

2. An attempt to fix a certain number of years was made by Leslie Stephen; he suggested sixty years back, basing his period of elapsee time on the "Tis sixty years since" which was the second title of 'Waverley' (But as a matter of fact, scot original sub-title was "T'is fifty years since" which was altered to suit the date of publication).

   -A.T.Sheppard: Art and Practice of Historical Fiction page 16.

माना है।[1] हिन्दी उपन्यास - समीक्षक डॉ० देवराज उपाध्याय ने भी उपन्यास के आधारभूत इतिहास का साधारणतः ५० वर्ष पुराना होना स्वीकार किया है[2]। ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा एवं इतिहास की परिसीमा को देखते हुए ५० वर्षों की अवधि को अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस अर्द्ध शताब्दी की अवधि में नवयुवक वृद्ध होने लगते हैं, प्रौढ़ एवं बूढ़े संसार छोड़कर चले जाते हैं, पुराने रहन-सहन की विधियों, रीति-रिवाजों, विधि-विधानों आदि में परिवर्तन आ जाता है और नयी परम्पराएं, नयी विचार-धाराएं एवं मान्यताएं जन्म लेने लगती हैं। इस प्रकार मृत्यु और परिवर्तन अर्द्ध शताब्दी के अतीत के चित्रों पर धुन्धलास तथा धुंधलके का लेप फैला देते हैं और उपन्यासकार को उन चित्रों को भरने के लिए बाध्य होकर कल्पना का सहारा लेना पड़ता है।

(ग) ऐतिहासिक उपन्यास की प्रकृति और उसका स्वरूप:

"ऐतिहासिक उपन्यास" ऐसी कला-कृतियों में से एक है जो विभिन्न कलाओं के पारस्परिक संयोग से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार संगीत, कविता तथा नाट्य-कला के पारस्परिक सम्मिलन से एक नयी कला "संगीत-नाट्य" की उत्पत्ति होती है जो रूपाभिव्यक्ति में अपने तीनों पूर्ववर्ती कला-रूपों से भिन्न होती है, उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास भी उपन्यास - कला और इतिहास का मिश्रण है।

---

1. But in America so rapid are changes here- a generation appears sufficient to render a preceding period historical
-Ernest E.Leisy: American historical Novel.p.5.

२- डॉ०देवराज उपाध्याय: साहित्य और साहित्यकार(साहित्य और ऐतिहासिक उपन्यास), पृष्ठ १६१ ।

ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटनाएं जब मनःकल्पना के पंखों पर चढ़कर उपन्यास-कला के क्षेत्र में प्रविष्ट होती हैं तो ऐतिहासिक उपन्यास का जन्म होता है, ठीक वैसे ही, जैसे कविता, संगीत के सहारे गीत में बदल जाती है । और जैसे संगीतकार संगीत में बांधने के लिए किसी कविता का चुनाव करते समय कुछ विशिष्ट सीमाओं को स्वीकार करता है, और उस चुनी हुई कविता तथा उसमें निहित मूल-भावनाओं के प्रति निष्ठावान् बन कर ही उसे संगीत में बांधता है, वैसे ही ऐतिहासिक उपन्यासकार को भी उस इतिहास के प्रति निष्ठावान् रहना पड़ता है जिसका वह उपन्यास में उपयोग करता है ।

<u>अतीत की पुनर्रचना:</u>

वाल्टेयर के मतानुसार इतिहास मानव-कार्य-कलाप की समग्र अभिव्यंजनाओं का वृत्तान्त है । इसमें जीवन के समस्त पक्षों का सामंजस्य रहता है । अतः इसका लक्ष्य राजनीतिक घटनाओं की तालिका मात्र प्रस्तुत करना ही नहीं है, वरन् जन-जीवन के विविध पक्षों की चित्रमयी अभिव्यक्ति उपस्थित करना है[1]। ऐतिहासिक उपन्यास का लक्ष्य भी इतिहास के लक्ष्य के ही समान अतीत के जन-जीवन के विविध पक्षों के आलोक में जीवन के शाश्वत सत्यों का उद्घाटन करना तथा विविध मानवीय संवेदनाओं का विस्तार कर भावनाओं एवं विचारों के बीच [illegible] स्थापित करना है । किन्तु, इतिहास के लक्ष्य के समानान्तर लक्ष्य रखते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास नहीं है । वह इतिहास से निःसृत एक ऐसा कला-रूप है जिसकी प्रकृति एक सीमा तक इतिहास की प्रकृति के निकट होती हुई भी उससे भिन्न है । कोई भी ऐतिहासिक उपन्यास, चाहे वह उच्च कोटि का ही क्यों न हो, इतिहास का विशिष्ट कार्य नहीं कर सकता और न उससे हम ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का अनुसन्धान ही कर सकते हैं । कारण कि वह अतीत की वास्तविक

१- डॉ० बुद्ध प्रकाश: इतिहास दर्शन, पृ० ११४ ।

घटनाओं एवं तथ्यों का विवरण नहीं प्रस्तुत करता जो कि इतिहास करता है[1]। तथ्यों एवं घटनाओं का वर्णन तो उसमें कभी-कभी ही प्रसंगवश होता है । वह तो इतिहास का एक बहाना मात्र लेकर घटनाओं एवं तथ्यों को नहीं वरन् अतीत को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न करता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार का मोह तथ्यों एवं घटनाओं के वर्णन के प्रति न होकर उनके नाटकीय पुनर्रचना के प्रति होता है । वह विशिष्ट काल के वातावरण एवं उसकी भावनात्मक परिस्थिति को पुनर्निर्मित कर उसे पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है ।

इतिहास की तरह ऐतिहासिक उपन्यास भी मानव-जीवन की कथा को प्रस्तुत करता है । किन्तु उसमें ऐसी सूक्ष्म बातें, अचेतन पूर्वाग्रह एवं भाव-स्थितियाँ रहती हैं जो इतिहास में नहीं पायी जातीं । ये वस्तुएं अप्रत्याशित रूप से हमें आकर्षित करती हैं । उसमें प्रायः जीवन के ऐसे चित्र भी रहते हैं जो बार-बार स्मृति-पटल पर आकर कौंध जाते हैं और हम रस-मग्न हो जाते हैं । किन्तु इन सबके अतिरिक्त उसमें एक और भी प्रधान वस्तु रहती है और वह है इतिहास की भाव-भूमि, अतीत के प्रति मोह। इतिहास की यह भाव-भूमि ही किसी भी उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है । इस दृष्टि से एक अर्थ में ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास का एक रूप है, अतीत को चित्रित

---

1. Historical novels, even the greatest of them, cannot do the specific work of history. They are not dealing, except occasionally, with the real facts of the past. They attempt instead to create, in all profusion and wealth of nature, typical cases imitated from, but not identical with recorded facts. In one sense this is to make the past alive, but it is not to make the events alive and therefore it is not history.—G.Trevelyan: Clio A Muse and Other Essays में [illegible] 'History and Fiction' शीर्षक लेख ।

करने का एक ढंग है[1]।

ऐतिहासिक रस:

ऐतिहासिक उपन्यास का जागरूक पाठक उपन्यास को पढ़ते समय मात्र इतिहास की घटनाओं एवं तथ्यों को ही नहीं जानता और न वह केवल ऐतिहासिक नामों तक ही अपने को सीमित रखना चाहता है, वह तो विगत युग के आन्तरिक मन्तव्यों, उसके समग्र चेतना-प्रवाह, दूसरे शब्दों में "इतिहास की भाव-भूमि" को जानना चाहता है और यही उसका अभीष्ट होता है। इस भाव-भूमि के द्वारा पाठक को जो आनन्द मिलता है, सम्भवतः उसे ही रवि बाबू ने "ऐतिहासिक रस" तथा इन्हीं का करते हुए चतुरसेन शास्त्री ने "इतिहास-रस" नाम दिया है। इस सन्दर्भ में यहाँ रवि बाबू तथा शास्त्री जी का मन्तव्य उल्लेखनीय है। रवि बाबू अपने "ऐतिहासिक उपन्यास"शीर्षक एक लेख में लिखते हैं:- "हमारे अलंकार-शास्त्र में नौ मूल रसों का उल्लेख किया गया है, किन्तु बहुत से अनिर्वचनीय मिश्र रस भी हैं जिनके उल्लेख का प्रयत्न नहीं किया गया। उन्हीं असंख्य अनिर्दिष्ट रसों के अन्दर एक का नाम "ऐतिहासिक रस" रखा जा सकता है और यह रस महाकाव्यों का प्राण है[2]।" इसी लेख में पुनः वे लिखते हैं -"उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने से जो एक विशेष रस संचारित हो जाता है, उपन्यासकार एक मात्र उसी "ऐतिहासिक रस" के लालची होते हैं, उसके सत्य को

---

1. If we find nothing else, we find the sentiment of history, the feeling for past in the historical novel. On one side, therefore, the historical novel is 'form' of history. It is a way of treating the past- H.Butterfield: The Historical Novel, page. 2.

२- रवीन्द्रनाथ ठाकुर: साहित्य([illegible]), १९५५ ईस्वी, अनुवादक: [illegible] विद्यालंकार, पृष्ठ १०२।

उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती । यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास के उस विशेष गन्ध और स्वाद से ही एकमात्र सन्तुष्ट न हो और उसमें से अखण्ड इतिहास को निकालने लगे तो वह शाक के बीच साबित जीरे, धनिये, हल्दी और सरसों ढूंढेगा । मसाले को साबित रख कर जो व्यक्ति शाक को स्वादिष्ट बना सकते हैं, वे बनाएं और जो उसे पीस कर एक सम कर देते हैं, उनके साथ भी हमारा कुछ झगड़ा नहीं । क्योंकि यहां स्वाद ही लक्ष्य है, मसाला तो उपलक्ष्य मात्र है[1] ।"

अपने "इतिहास रस" की चर्चा करते हुए शास्त्री जी लिखते हैं:-"यह प्रकट है कि ऐतिहासिक उपन्यास और कहानियों में जो ऐतिहासिक प्रसंग होते हैं वे विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं । उनमें बहुत कुछ कल्पना और विकृति मिली होती है । पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उपन्यास, काव्य या कहानी को पढ़ कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे । ऐसी पुस्तकों में तो इतिहास के स्थान पर केवल "इतिहास रस" ही की प्राप्ति होगी[2] ।" आगे वे लिखते हैं:-"यह कहा जा सकता है कि उसे (ऐतिहासिक उपन्यासकार को) ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक को लिखने से पहले ऐतिहासिक विशेष तथ्यों को जानना चाहिए । परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता, क्योंकि ऐतिहासिक विशेष तथ्यों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता, उनमें अन्वेषण करने वाले विद्वानों के द्वारा नयी-नयी जानकारी होते रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार कहानी और उपन्यास को चिर सत्य के आधार पर जिसमें [illegible] को कोई गुंजाइश ही नहीं---रचना करे, और ऐसी रचनाएं जो साहित्य संश्लिष्ट हैं और जिनका आस्वाद एक निर्दिष्ट रस है---अपने स्थान पर पूजित हों । साहित्य के आचार्यों ने भी नव रसों को साहित्य-सृजन में महत्व दिया है । परन्तु

१- रवीन्द्रनाथ ठाकुर:साहित्य(निबन्ध-संग्रह),१९५४ ईसवी, अनुवादक :वंशीधर विद्यालंकार, पृ० १०५ ।

२- चतुरसेन शास्त्री: वैशाली की नगरवधू, भूमिका, पृष्ठ ७७५-७७(तृतीय,सं० १९५९) ।

उनके सिवा कुछ अन्य "अनिर्दिष्ट रस" हैं जिनमें एक "इतिहास-रस" है[१]।"

<u>इतिहास के उपजीव्य स्रोत:</u>

इतिहास के निर्माण में एक नहीं वरन् अनेक वस्तुओं का योग रहता है । केवल इतिहास के ग्रन्थ तथा जीवन-चरित ही उसके निर्माण में योग नहीं देते, वरन् पौराणिक कथाएं, स्थानीय लोक-परम्पराएं, प्राचीन कथाग्रन्थों की कहानियां भाटों द्वारा गायी जाने वाली लोक-गाथाएं, प्राचीन शिलालेख, मुद्राएं आदि ऐसे अनेक उपजीव्य स्रोत हैं जो इतिहास के चित्रपट का निर्माण करते हैं और हमारे मस्तिष्क में एक ऐसे संसार का चित्र खींच देते हैं जो वर्तमान का न होकर अतीत का होता है । हम लोग अपने प्रबुद्ध ज्ञान से उस चित्र का संशोधन कर सकते हैं, किन्तु उसे पलायन नहीं कर सकते । यहां एक बात लक्ष्य करने की है कि इतिहास का यह चित्रपट, जो हमारे मस्तिष्क में अवस्थित है, प्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक उपन्यास का स्रोत नहीं होता ।

इतिहासकार, इतिहास के चित्रपट के निर्माण के लिए प्राप्य उपजीव्य स्रोतों को एकत्र करता है, तत्परता से उनका निरीक्षण-परीक्षण करता है, तिथि-संवतों का छानबीन करता है और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं आदि के विषय में प्रामाणिक विचार व्यक्त करता है । वैज्ञानिक की भांति वह घटना-पुंजों में कार्य-कारण-सम्बन्ध स्थापित करता हुआ उसे अधिकाधिक बुद्धि-ग्राह्य एवं विश्वसनीय बनाने का प्रयास करता है । एक निःसंग बौद्धिक [illegible] से ही इतिहासकार प्रेरित होता है ।"विशुद्ध वैज्ञानिक अर्थ में इतिहास अविच्छिन्न प्रामाणिक तथ्यावली का धारावाहिक संग्रह है । प्रामाणिक ग्रन्थों, [illegible]लेखों, ताम्रपट्टों, मुद्राओं और प्राचीन पत्रादि के आधार पर प्रामाणिक तथ्य ग्रहण किये जाते हैं, परन्तु वे सब मिला कर भी इतिहास नहीं बनते । उसे धारावाहिक बनाने के लिए इतिहासकार को अनुमान का सहारा लेना ही पड़ता है ।

१- [illegible] : वैशाली की नगर[illegible], [illegible], पृ० ७७३-७६(तृतीय सं० १९६९) ।

"तथ्य" सदा "सत्य" नहीं होता । मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय से निकलने पर ही वह सत्य का रूप धारण कर सकता है । इतिहास - लेखक कम से कम अनुमान का सहारा लेना चाहता है , पर ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक तथ्य को साधन बना कर उसे रसमय बनाने के लिए कल्पना का यथेष्ट आश्रय लेता है[1] ।"

ऐतिहासिक अनुसंधान भी एक विशेष प्रकार के आनन्द का विधायक होता है, किन्तु यह आनन्द नवीन ज्ञान की उपलब्धि का आनन्द है जो काव्यानन्द से भिन्न कोटि का होता है । कुछ इतिहासकार विशेष रूप से सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास-लेखक ---- वर्णनों में किंचित् काव्य-शैलियों का अनुसरण कर उसे रसमय बनाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु अपनी दृष्टि को ऐतिहासिक सत्यों पर कठोरता से केन्द्रित रखने तथा इतिवृत्तात्मकता के कारण वे पाठक को पूर्ण रस-दशा तक पहुंचाने में सफल नहीं हो पाते । इतिहासकार हमें यह ज्ञान कराता है कि कौन सम्राट् या महापुरुष किस काल में उत्पन्न हुआ, उसकी शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई, वह कब सिंहासनारूढ़ हुआ, उसकी शासन-प्रणाली कैसी थी, उसके शासन में कौन-कौन-सी प्रमुख घटनाएं घटित हुईं, आदि-आदि । किन्तु इस ज्ञान-प्रदर्शन के बावजूद भी वह उस सम्राट् या महापुरुष को हमारे सम्मुख उस प्रकार सजीव रूप में नहीं प्रस्तुत करता कि हम उसके हृदय का स्पन्दन, उसकी वाणी सुन सकें तथा उसे भावात्मक रूप से प्रत्यक्ष देख सकें । कारण कि वह जीवन के तथ्य मात्र देता है और घटनाओं का एक लेखा-जोखा प्रस्तुत करके ही रह जाता है, जीवन के अन्दर में क्या है, उस ओर वह दृष्टि नहीं डालता ।

ऐतिहासिक तथ्य और सत्य:

किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक उपन्यास इसलिए नहीं लिखता कि वह सरस ढंग से इतिहास की शिक्षा देना चाहता है अथवा परोक्ष रूप से

१- देखिए, डॉ०एस०चिन्तामणि की "ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य" नामक पुस्तक में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी-लिखित प्रस्तावना-भाग ।

कोई नैतिक उपदेश देना चाहता है, वरन् वह इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास लिखता है कि उसका मस्तिष्क अतीत की भावना से सम्पृक्त रहता है, ठीक वैसे ही जैसे एक संगीतकार का मस्तिष्क धुनों से भरा रहता है । वह अतीत के भीतर से अपने लिए एक संसार का सृजन करता है और अधिकांशतः उसी में रहता है तथा अपने पाठकों को उस संसार के प्रदर्शन के लिए कथा का आश्रय लेता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार का उद्देश्य घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना नहीं होता, वरन् सार्थकता की दृष्टि से वर्तमान सन्दर्भ में अतीत को साकार करना होता है । वह इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री को आयत्त कर अपनी सहृत्कल्पना के पंख से अतीत युग में केवल पहुँच ही नहीं जाता, वरन् अतीत को रूप, सौन्दर्य एवं प्राण प्रदान कर वर्तमान में ला खड़ा करता है । इतिहास की स्थूल रेखाओं में कल्पना की रंग-तूलिका से ऐतिहासिक उपन्यासकार रूप उरेहता है और दूरी को नष्ट कर ऐतिहासिक पात्र हमारे बीच आ खड़े होते हैं—बोलते हुए, आचरण करते हुए[1] । अतीत को साकार करने के प्रयत्न में ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक सत्य के प्रति जागरूक होते हुए भी तथ्यों एवं घटनाओं से इधर-उधर हो जाना पड़ता है और काल्पनिक घटना-प्रसंगों की उद्भावना भी करनी पड़ती है । कारण कि उसके लिए वास्तविक घटनाएं अथवा तथ्य साध्य नहीं, साधन होते हैं जिनके भीतर निहित मूल "इतिहास की भाव भूमि" को चित्रित करना ही उसका लक्ष्य होता है और उसके इस प्रयास में कल्पना का विशेष योग रहता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास, समसामयिक जीवन को नहीं वरन् अतीत के जीवन और समाज को चित्रित करता है । जिस युग और स्थान में उपन्यास की कथावस्तु घटित होती है उसके जीवन की प्रत्येक [illegible]—इतिहास-[illegible], आचार विचार, रीति-[illegible], वेश-भूषा, [illegible] तथा सांस्कृतिक वातावरण आदि—को सजीव रूप में प्रस्तुत करना ही ऐतिहासिक उपन्यासकार का लक्ष्य होता है ।

१- शिवनारायण श्रीवास्तव—"ऐतिहासिक उपन्यास", "साहित्यायन", जौनपुर, वर्ष १, अंक १, पृ० १६ ।

अतः ऐतिहासिक उपन्यास केवल इतिहास से ही सम्बन्धित नहीं होता वरन् पौराणिक कथाओं, स्थानीय परम्पराओं तथा लोक-प्रसिद्ध लोक-गाथाओं आदि से भी सम्बद्ध होता है । वह अतीत की कथा को कहने तथा उसके चित्र को रमणीय बनाने के लिए पौराणिक कथाओं, परम्पराओं लोक-गाथाओं की ही तरह इतिहास ग्रन्थों की प्रमाण-सिद्ध सामग्रियों की सीमा का अतिक्रमण भी करता जाता है और कथात्मकता उत्पन्न करने के प्रयत्न में कभी-कभी इतिहास के पुन-र्प्राप्त तथ्यों की विश्वसनीयता तथा विवरणों की यथातथ्यता को कम महत्व देता है । ये पौराणिक कथाएं तथा लोक-प्रचलित कहानियां, ऐतिहासिक उपन्यास से उसी प्रकार संबंधित होती हैं जिस प्रकार किसी लोकगीत का एक टुकड़ा किसी सुसंस्कारी प्रतिभा से उद्भूत संगीत से सम्बद्ध होता है[1]। लोक- कथाएं, किम्वदंतियां अथवा लोक-प्रवाद प्रत्यक्ष रूप से लोकजन्य होते हैं और उनमें कहीं न कहीं तथ्य का अंश छिपा होता है । जब हम इन पुराण तथा लोक-कथाओं को सुनते हैं तो ऐसा लगता है जैसे धरती स्वयं अपने आप को व्यंजित कर रही हो, अपने अतीत की स्मृतियों को बिखेर रही हो । हां, एक बात अवश्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास सोद्देश्य, कलात्मक एवं व्यवस्थित रचना होने के कारण एक सीमा तक ही इनसे सम्बन्धित होता है और वह सीमा है ऐतिहासिक यथार्थ ।

इतिहास अपने चित्रों को बनाने तथा अतीत को पुनर्निर्मित करने के लिए केवल उन्हीं सामग्रियों एवं साधनों का आधार लेता है जिनको वह विश्वास

---

1. In this, it is linked up with legend and tradition of localities and popular ballads; like these it goes beyond authentical data of history book, the definitely recoverable things of the past, in order to paint its picture and tell its story; and like these it often subordinates fidelity to the recovered fact of history and strict accuracy of detail to give some other kind of effectiveness. And these legends and popular stories are related to the historical novel in a way similar to that in which a snatch of folk-song is related to the music of cultured genius.— H.Butterfield: The Historical Novel, Page 3.

से बचा पाता है । वह उन खण्ड-खण्ड सामग्रियों को एकत्र करता है और उनको मिला कर एक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है । विश्व की धारणा-शक्ति उस दीप्तिमान्, भास्वान् स्फटिकमणि जैसी नहीं है जो निरन्तर प्रकाश देती है, वरन् कुछ ज्योति-स्फुरणों के सदृश है जो अचानक अन्धकार को विदीर्ण करती हुई आगे बढ़ जाती है । और इस प्रकार इतिहास उन कहानियों से भरा हुआ है जो अर्ध-कथित हैं, उन तानों से भरा हुआ है जो बीच में ही टूट गये हैं[1]। इतिहास, प्रधानतः हमारे सम्मुख मनुष्यों के पूर्ण जीवन को नहीं, बल्कि जीवन-खण्डों को प्रस्तुत करता है, वह जीवन की पृष्ठ-भूमि में बची उन सामग्रियों को प्रस्तुत करता है जो क्षत-विक्षत हो गयी हैं । वस्तुतः प्रत्येक इतिहास रन्ध्र छिद्रों से भरा हुआ होता है और उसके द्वारा हमें घटनाओं की एक अस्पष्ट झलक मात्र ही मिल पाती है ।

इतिहास कदाचित ही उन परिस्थितियों को पुनर्हस्तगत करता है जो बीत चुकी हैं । वह कदाचित् ही हमें एक दिये हुए काल और स्थान में मानव-कार्यों की किसी विशिष्ट अवस्था या किसी निश्चित स्थिति का बोध कराता है । किन्तु इन्हीं सामग्रियों से जब कोई उपन्यासकार उपन्यास का निर्माण करता है तो वह सम्पूर्ण इतिहास-बोध को अपने अन्दर में बैठा लेता है और तब सृजन की ओर अग्रसर होता है । वह इतिहास के विवरण को नहीं वरन् उसके प्राण को उस रूप में प्रस्तुत करता है जिसे इतिहास कदाचित् ही कर पाता है। इस प्रयत्न में ऐतिहासिक उपन्यासकार एक सीमा तक स्वच्छन्द भी होता है और कल्पना के पंखों पर उड़ कर अपूर्वस्पृष्ट भावभूमि में भी प्रविष्ट करता है, जबकि

---

1. The memory of the world is not a bright shining crystal but a heap of broken fragments, a few fine flashes of light that break through the darkness. And so history is full of tales half-told and of tunes that break off in the middle.

-H.Butterfield: The Historical Novel, page S 15-16.

इतिहासकार के लिए ऐसी कोई स्वतन्त्रता नहीं होती । वास्तव में अतीत के पूर्ण निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि इतिहास को उसकी घटनाओं में भाव-प्रवाह का समावेश करते हुए कथा का रूप दिया जाय ।

<u>कल्पना-निर्मित जीवन्त चित्रणः</u>

पाठ्य-पुस्तकों में लिखा हुआ इतिहास, जिसकी रूप-रेखा अतीत के विभिन्न पुनर्प्राप्तव्य तथ्यों द्वारा बनायी जाती है, वस्तुतः बीती हुई घटनाओं की एक तालिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं । उस तालिका के द्वारा यदि हम अपने मस्तिष्क में अतीत को उद्घाटित करें तो हमारे सामने चित्र आ खड़े होते हैं । इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में वर्णित इतिहास और हमारे मस्तिष्क में निर्मित अतीत के चित्र में परस्पर उसी प्रकार का सम्बन्ध होता है जिस प्रकार का संबंध किसी देश के मानचित्र और उस देश के भूखण्ड के मनोगत चित्र में होता है । किसी युद्ध सम्बन्धी चित्र का पर्यवेक्षण करते समय हम बता सकते हैं कि अमुक मार्ग कहां जाता है, किस घाटी अथवा पहाड़ के भीतर जा कर समाप्त हो जाता है, कहां वह किसी जंगल अथवा किसी नदी को स्पर्श करता है, आदि-आदि, किन्तु यदि हमें उस भूखण्ड में अपनी यात्रा का दृश्य चित्र प्रस्तुत करना हो तो वहां हमें कटीली झाड़ियों, मार्गों के चित्ताकर्षक मोड़ों तथा सरिताओं के ऊंचे-ऊंचे चट्टानी कगारों को भी प्रदर्शित करना पड़ेगा । ठीक इसी प्रकार, जब हम इतिहास का अध्ययन करते हैं और यदि केवल महान् व्यक्तियों को ही रंगमंच पर गर्वोन्नत मस्तक किये आते तथा जन-जीवन में भाग लेते देखने की ही इच्छा नहीं करते, वरन् ग्रामीण प्रदेश के स्वच्छन्द जीवन को अनेक मानवीय संघर्षों से युक्त भी देखना चाहते हैं, अतीत के विशद जीवन को भी पकड़ना चाहते हैं, तो इसके लिए आवश्यक है कि इतिहास को यथाप्राप्त मानवीय कार्य-

व्यापारों एवं कल्पना से परिपुष्ट एवं सजीव बनाया जाय[1]। महान पुरुषों का सार्वजनिक जीवन हमारे नेत्रों के सम्मुख रहता है। उनके व्यक्तिगत जीवन की भी कुछ बातें हम जानते हैं। किन्तु, उनका वह जीवन, जो अपने कोलाहल से राजपथों को भर देता है, जो एकाकी वस्तु को आश्चर्यजनक रूप से समुज्ज्वल बना देता है, जो हर्षविषादमय है, जो परिहासान्त एवं रोमांचकारी है, इतिहास में अस्पष्ट एवं अन्धकारमय होता है। इसीकारण इतिहास मानव-हृदय तथा मानव-भावनाओं को उद्वेलित नहीं कर पाता, जैसा कि एक ऐतिहासिक उपन्यास करता है। तथ्यों के प्रति इतिहास की अगाध श्रद्धा सम्भवतः उसे जीवन के प्रति कम सत्य ही नहीं बनाती, वरन् मानव-हृदय से भी उसे दूर कर देती है। इतिहास, जो हमारे इतिहास-ग्रन्थों में वर्णित होता है, वस्तुतः एक कंकाल सदृश होता है जिसको मांसल एवं प्राणमय बनाने के लिए कल्पना अपेक्षित है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य अपनी कल्पना द्वारा इतिहास के कंकाल में प्राण डालना एवं उसे मांसल, हृष्ट-पुष्ट बनाना होता है।

जब इतिहास हमसे यह कहता है कि अशोक ने अमुक कार्य किया तो उसके इस कार्य को हृदयंगम करने तथा अशोक को कार्य में संलग्न देखने के लिए यह आवश्यक है कि इतिहास-ग्रन्थ में वर्णित उसके कार्य को हम अपनी कल्पना में चित्रवत बनायें। किसी अतीत की घटना का वर्णन अच्छी तरह किया जा सकता है और वह वर्णन हमारे मन और मस्तिष्क पर प्रभाव भी डाल सकता है, किन्तु यदि हम इसी घटना को घटित होते हुए देख सकें और एक दृश्य सदृश ग्रहण कर सकें तो वह अतीत

---

1. So when we read history , if we wish, not merely to see great figures strutting upon a stage, acting a public part but to fill in the lives of the picture with the robust life of the countryside and to catch the hundred human touches, if we wish, say, to see the vivid life of three hundred years ago stirring in the crooked streets and topsy/turvy houses, we must change our history with some of the human things that are i-recoverable, we must reinforce history by our imagination.-H.Butterfield: The Historical Novel, Page 17.

की घटना असीम शक्ति से हमारे हृदय और मस्तिष्क को उद्वेलित कर हमारी चेतना को झकझोर देगी और सच बात तो यह है कि जब हम इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो यही बात देखना चाहते हैं । इतिहास पढ़ते समय अतीत का साक्षात्कार करना ही महत्वपूर्ण बात है न कि किसी अन्य के वर्णन द्वारा केवल उसका श्रवण करना । अतः इसके लिये किसी घटना का वर्णन पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् वहाँ रहना, उनका निरीक्षण करना भी आवश्यक है, ताकि हम घटना के क्षण-विशेष को पुनः प्राप्त कर सकें । इतिहास उस क्षण -विशेष को पुनः प्राप्त करने का कार्य यथार्थतः नहीं कर पाता, अतः उसे हमें अपनी कल्पना से करना पड़ता है और इस प्रकार इतिहास हमारी कल्पना में पूर्ण होता है । उसकी यह पूर्णता-अपूर्णता वस्तुगत होने के अतिरिक्त कालगत भी होती है । हमारे और अतीत के बीच जो काल का व्यवधान है, वह भी कल्पना द्वारा पूर्ण होता है और इस प्रकार अतीत हमारे इतने निकट आ जाता है कि हम उसे इस प्रकार देखने लगते हैं जैसे हम स्वयं को या अपने चारों ओर के परिवेश को देखते हैं ।

<u>इतिहास का पुनरुज्जीवनः</u>

अतीत कहने मात्र से जिस अर्थ का बोध होता है वह कल्पना द्वारा संश्लिष्ट इतिहास है । जब किसी विशिष्ट परिस्थिति को पुनरुज्जीवित करने अथवा परिस्थितियों के एक निश्चित संयोजन को तीव्रता से पकड़ने अथवा किसी क्षण-विशेष को अधिकृत करने का प्रश्न उठता है, उस समय इतिहास असफल सिद्ध होता है और जब तक ये कार्य सुसम्पन्न नहीं किये जा सकते तब तक न तो अतीत साकार हो सकता है और न अतीत के जीवन को ही पुनरुज्जीवित किया जा सकता है । यदि इतिहास को मात्र शव-परीक्षण न होकर अतीत के जीवन का एक सजीव चित्र होना है तो यह आवश्यक है कि इतिहास के प्राप्त अस्थि -तालिका को जीवन्त चित्र का रूप दिया जाय । यद्यपि इतिहासकार की कल्पना कुछ अंशों में चित्र-निर्माण का प्रयास करती है, लेकिन अपनी सीमित मर्यादाओं के कारण एक अधूरा चित्र बना कर ही रह जाती है । ऐतिहासिक उपन्यास अपने उद्देश्यों एवं आकांक्षाओं में अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होने के कारण तथा परिस्थितियों एवं

क्षण-विशेष की तीव्रता से पकड़ने के कारण अतीत की एक सजीव चित्र का रूप देने में सफल होता है । इस प्रकार जहाँ इतिहास विवरण देता है वहाँ ऐतिहासिक उपन्यास चित्र प्रस्तुत करता है । किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास सुदूर अतीत का केवल चित्र ही नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि वह हमें उसमें निमग्न भी कर देता है । वह इतिहास की तरह सुदूर अतीत को प्रदर्शित करने वाला एक दूरवीक्षण-यन्त्र मात्र नहीं होता, वरन् अतीत एवं वर्तमान को अलग करने वाली खाईं को जोड़ने वाला एक सेतु होता है । वह काल को इतिहास की तरह खण्ड-खण्ड करके नहीं प्रस्तुत करता वरन् एक अनवच्छिन्न धारा के रूप में प्रस्तुत करता है ।

इतिहास घटनाओं से परिपूर्ण होता है । एक कुशल इतिहासकार उनके समुचित चयन, निरीक्षण, परित्याग तथा क्रम-निर्धारण द्वारा उनको यथार्थता प्रदान करता है, किन्तु इतिहास में ऐसी भी अनेक अग्राह्य घटनाएं या बातें होती हैं जिनको इतिहास कोई विशेष महत्व नहीं देता, किन्तु कथा के लिए उन बातों का अधिक महत्व है । इतिहासकार की दृष्टि प्रमुख घटनाओं तथा पात्रों पर ही विशेष केन्द्रित रहती है और एक सीमा तक तटस्थ रह कर ही वह उनका विवरण प्रस्तुत करता है । किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार जिन घटनाओं एवं पात्रों द्वारा उपन्यास की रचना करता है, उनका तटस्थ विवरण मात्र देकर ही संतोष नहीं कर लेता, वरन् प्रत्येक पात्र से अपने घनिष्ठ एवं अन्तरंग व्यक्तिगत [illegible] तथा प्रत्येक घटना के प्रति अपने प्रत्यक्ष अनुभव-[illegible] द्वारा उसे प्राणवान् भी बनाता है । ऐतिहासिक उपन्यास में जो महत्वपूर्ण बात है, वह प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं का पुनर्कथन नहीं है बल्कि उन व्यक्तियों का भावपूर्ण जागरण है जिन्होंने उन घटनाओं में महत्वपूर्ण भाग लिया था [illegible] । सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उसे पढ़ कर हम उन सामाजिक एवं मानवीय [illegible] का पुनरानुभव करने लगे जिसने मनुष्यों को सोचने, समझने, अनुभव करने तथा ठीक वैसे ही कार्य करने के लिए प्रेरित

किया था वैसा उन लोगों ने वस्तुतः किया[1]।

ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने की इतिहासकार की अपनी पद्धति होती है जो उपन्यासकार से मूलतः भिन्न होती है । इस पद्धति में अनिवार्य रूप से अतीत का वर्णन उत्तरकालीन युगों के लिए किया जाता है । इसमें अपना रहस्योद्घाटन करते हुए अपनी कथा को कहने वाला स्वयं अतीत नहीं होता । इतिहासकार वाणी की एक विशिष्ट भंगिमा का प्रयोग करता है । इसके अतिरिक्त वह केवल उस संसार का ही वर्णन नहीं करता जैसा कि वह कुछ वर्षों पहले था, वरन् वह परवर्ती काल के सम्पूर्ण विकासों के साथ उस काल के संसार का सम्बन्ध भी स्थापित करता है और चलचित्रों की तरह खण्ड-चित्रों के विशृंखलित समूह को प्रकट करके रह जाता है । किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत अपने पक्ष में स्वयं बोलता है । हम अतीत को उसमें साकार होते हुए देखते हैं और स्वयं भी लीन हो जाते हैं । सामान्यतया ऐतिहासिक उपन्यास में हम किसी व्यक्ति को अतीत का वर्णन करते हुए नहीं सुनते । उसमें अतीत पात्रों की वाणी एवं घटनाओं के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं सहित स्वयं मूर्तिमान् हो उठता है । इस प्रकार इतिहास, कथा-शैली में लिखा जा कर अधिक शक्ति-सम्पन्न प्रभावशाली और सजीव हो उठता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार, इतिहास की प्रत्येक घटनाओं में घटना नहीं निहित कहानी देखता है, कथा-निर्माण करने वाली परिस्थितियों को देखता है और फिर उनको इस रूप में ढालता है कि वे कथा बन कर निःसृत होने लगती हैं ।

---

1. What matters, therefore, in historical novels is not the re-telling of great historical events, but the poetic awakening of the people who figured in these events. What matters is that we should re-experience the social and human motives which led men to think, feel and act just as they did in historical reality.

   —George Lukacs: The Historical Novel, p.42

उसके लिए बाह्य घटनाओं का उतना महत्व नहीं होता जितना व्यक्तिगत जीवन के संघर्षों एवं भावात्मक परिस्थितियों का । इसलिए उसकी दृष्टि प्रधान रूप से व्यक्तिगत जीवन की उलझनों की ओर रहती है । भावी युगों पर कथा के प्रभाव की आकांक्षा करने के बदले वह तत्कालीन जन-जीवन के मन्तव्यों के आन्तरिक कार्य-परिणामों को उद्घाटित करता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य उस त्रिपार्श्व कांच के सदृश होता है जो एकरंगी रवि-रश्मियों को सतरंगे वर्णों में बदल देता है । वह इतिहास के सामान्य सिद्धान्तों एवं अपने पाठक के मध्य खड़ा होकर सामान्य को विशिष्ट में परिवर्तित कर देता है और एक चित्र सदृश अंकित करता है । इस कार्य में उपन्यासकार की मानसिक प्रतिक्रिया और कल्पना का विशेष योग रहता है । उपन्यासकार की यह मनःकल्पना उन रज-कणों के सदृश होता है जो रवि-रश्मि का सृजन भी करते हैं और रवि-प्रकाश को अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराने में भी सहायता देते हैं[1]। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासको जिस रूप में प्रस्तुत करता है, इतिहासकार नहीं कर सकता । वह एक युग के जीवन को पुनः हस्तगत करके उसके द्वारा अतीत के चित्र का पुनर्निर्माण करता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास और अन्तःप्रज्ञा:

हार्वे एलेन ने संकेत किया है कि इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास सत्य के दो रूपों--वस्तुगत सत्य तथा दार्शनिक सत्य--को प्रकट करते हैं । किन्तु चूंकि दोनों की कार्य-प्रणाली भिन्न होती है, अतः उनके स्पष्ट कथा-रूपों में भी भिन्नता होती है । इतिहासकार जहां शुद्ध बुद्धि द्वारा प्रेरित होता है, वहां ऐतिहासिक उपन्यासकार अन्तःप्रज्ञा द्वारा । यद्यपि न तो इतिहासकार ही अतीत को पुनः प्रस्तुत कर सकता है और न उपन्यासकार ही, फिर भी उसे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत

---

1. Fiction is like the dust which creates a sun-beam and helps the sunlight to show that it is there.
   -H.Butterfield: The Historical Novel, p.25.

कर उपन्यासकार पाठक को अतीत युग का बोध इतिहासकार की अपेक्षा अधिक स्पष्टता, अधिक औचित्य तथा अधिक प्रभविष्णुता से करा सकता है। कारण कि इतिहासकार ऐतिहासिक सत्य को तर्क के द्वारा पकड़ने का प्रयत्न करता है और चूंकि इतिहास की घटनाएं मरने के साथ ही जीवाश्म बनने लगती हैं, पत्थर बनने लगती हैं, दन्तकथा और पुराण बनने लगती है और इतिहास की "झिलमिली" ओढ़ कर अस्पष्ट एवं धुंधली हो जाती है, अतः इतिहासकार की बुद्धि की उंगली उन्हें छूने में असमर्थ हो जाती है और सत्य अनुद्घाटित ह रह जाता है। "इतिहास की यह झिलमिली बुद्धि को कुण्ठित और कल्पना को तीव्र बनाती है, उत्सुकता में प्रेरणा भरती है और स्वप्नों की गाठ खोलती है। घटनाओं के स्थूल रूप को कोई भी देख सकता है लेकिन उनका अर्थ वही पकड़ता है जिसकी कल्पना सजीव हो[२]।" ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी सजीव कल्पना द्वारा घटनाओं के अर्थ को उद्घाटित कर अखण्डित सत्य को व्यक्त करता है और अतीत युग का बोध कराने में सफल हो जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार उपन्यास-रचना की सामग्री अथवा उसकेलिए संकेत इतिहास से लेता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह सामग्री अथवा संकेत एक बनी-बनायी कथा हो अथवा एक घटना-क्रम द्वारा नियोजित हो। ऐसे अनेक ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनकी कथाएं सीधे इतिहास की पुस्तक से ली गयी हैं और कदाचित् कल्पना द्वारा काट-छांट कर परिवर्तित-परिवर्धित कर दी गयी हैं। ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना के लिए इतिहास, कथानक एवं अप्रत्याशित घटनाएं प्रस्तुत करता है। किन्तु जहां इतिहास मौन रहता है और घटनागत औचित्य का कारण उपस्थित करने में असमर्थ होता है, वहां उपन्यासकार की कल्पना सम्मुख

---

1. Ernest E.Leisy: American Historical Novel,page 8.

२- रामधारी सिंह "दिनकर": संस्कृति के चार अध्याय(तृतीय संस्करण की भूमिका-भाग), पृ० [illegible] ।

आती है तथा घटनाओं और चरित्रों को आदर्श रूप में उपस्थित करती है[1]। अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अनुगत वास्तविक घटनाओं तथा पौराणिक-काल्पनिक कथाओं को भी आत्मसात् किया है और इस प्रकार इतिहास और कथा को एक-दूसरे से अन्तर्ग्रथित कर उनमें सामंजस्य स्थापित किया है। उपन्यासकार की कल्पना एक ऐसा मार्ग प्रस्तुत करती है जिसमें इतिहास को उपन्यास में परि-वर्तित किया जा सकता है। किन्तु, उसके लिए मात्र यही मार्ग नहीं है और प्रमुख बात यह है कि इतिहास एक कथा-वृत्तान्त या घटनाओं का एक क्रम अथवा एक सत्य घटना-विवरण को प्रस्तुत कर कथा-पुस्तक की शैली में उसे फिर से कहने के लिए कल्पना को ही केवल प्रेरित नहीं करता है, वह कथा को भी उपेक्षित करता है, ऐसी परिस्थितियों, उनके पारस्परिक सम्बन्धों एवं व्यवस्थाओं को भी संयोजित करता है जो कथा-निर्माण के लिए समुचित आधार प्रस्तुत करते हैं।

इतिहास की ज्ञात सामग्री की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यास किसी अतीत कालीन अनुभव का अध्यास अधिक विशिष्टता से उत्पन्न करता है। दिये हुए अतीत काल के तथ्यों को इतिहासकार एक विशिष्ट प्रकार से आकार देता है, यत्नपूर्वक उनमें से कुछ निकालता है और उनमें निहित अभिप्रायों एवं गूढार्थों की खोज करता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार इन तथ्यों का उपयोग एक भिन्न अभिप्राय से करता है, उन्हें भिन्न प्रकार से विन्यस्त करता है और एक विभिन्न तर्क-कौशल द्वारा अपनी चिन्तन-धारा का रूप देता है। एक दी हुई घटना में इतिहासकार उसमें निहित मूलभूत मन्तव्यों का मूल्यांकन करने तथा उसके प्रभाव को खोजने का प्रयत्न

---

१. The historical novelist receives his hints from history but this hint needs not necessarily be a story ready-made, a sequence of events to be followed. Many historical novels are stories straight from a history book, amplified and rounded off by fiction perhaps and retold with some variations. History may provide plot and adventure, and fiction may just fill in the lines where history is inadequate and idealise incidents and characters where history is incomplete and disappointing.

-H.Butterfield: The Historical Novels, page 29.

करता है जबकि उपन्यासकार केवल चंचल, अन्यामी क्षण को पुनः पकड़ने, घटनाओं को घटित हुआ देखने एवं उसे एक चित्र अथवा भाव-दशा में परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है । किसी देश के सामाजिक तथ्यों से इतिहासकार कुछ निष्कर्ष निकाल कर एक सामान्य सिद्धान्त, एक नियम बनाने की चेष्टा करता है जबकि उपन्यासकार उनको एक विशिष्ट प्रकार से संश्लेषित कर एक जीवन-प्रवाह के पुनर्निर्माण का तथा मानव-प्रकृति के उद्घाटन हेतु उनको विशिष्ट रूप देने का प्रयत्न करता है । इतिहास-कार के लिए अतीत विकास की एक ऐसी अखण्ड प्रक्रिया है जो वर्तमान को तैयार करती है, उपन्यासकार के लिए वही अतीत कथा का एक अद्भुत स्रोत है । इतिहास-कार वर्तमान की दृष्टि से अतीत की ओर देखता है, इसके विपरीत उपन्यासकार अपने मनोनुकूल अतीत काल में अपने आप को डाल देता है और तत्कालीन घटनाओं के प्रकाश में उसका मूल्यांकन करने की अपेक्षा उसके वास्तविक पुनर्निर्माण की ओर ही अधिक उन्मुख रहता है और इस प्रकार अभिनेताओं अथवा पात्रों के साथ रह कर उनके सुख-दुख का सहभोक्ता बन जाता है[1] ।

उपन्यासों की ऐतिहासिक सत्यनिष्ठा:

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के जीवन के प्रति निष्ठावान् एवं ईमानदार होता है और जिस युग का वह वर्णन करता है उसे यथातथ्य रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । किसी युग की "स्पिरिट" का बोध कराने के लिए वह उसका वर्णन किसी दूरस्थ देश की तरह कर

---

1. Whereas the historian looks back to the past in the light of the present, historical novalist reprojects himself into the period of his choice and is concerned more with re-creating something akin to the actual experience than with appraising it in the light of what happened later. He is there with the actors, living through the experience-

-Ernest E.Leisy: The American Historical Nove, p.72.

सकता है, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अतीत की वास्तविक घटनाओं अथवा इतिहास-समर्थित घटनाओं का आधार ले । यदि अतीत की वास्तविक घटनाओं से वह ऐसा होता है तो यह उसके लिए अतिरिक्त गौरव की बात है किन्तु यदि वह वास्तविक घटनाओं और पात्रों का आधार न लेकर कल्पित घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से ऐसा करता है और फिर भी इतिहास की मूल चेतना की रक्षा कर पाता है तो वह कल्पित वस्तु-विधान के कारण ही निम्न कोटि का ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता । अतः ऐतिहासिक उपन्यास की प्रत्येक घटना काल्पनिक भी हो सकती है और वह किसी घटित हुई विशिष्ट घटना के बिना भी इतिहास की भाव-भूमि को उपस्थित कर सकता है । वह एक काल्पनिक जीवन के ढांचे में अपने कार्य-व्यापारों द्वारा इतिहास को उद्घाटित कर अपनी कथा वैसे ही कह सकता है जैसे एक अध्यापक अपने बच्चों के सम्मुख गुरुत्वाकर्षण-शक्ति की व्याख्या एक काल्पनिक सेब पर उसके कार्य-फल द्वारा करता है । इस तरह ऐतिहासिक उपन्यास तथ्यों का आधार न लिये बिना भी इतिहास के प्रति सत्यनिष्ठ हो सकता है । अंग्रेजी में बुल्वर लिटन का "लास्ट डेज आफ पम्पियाई" तथा हिंदी में यशपाल की "दिव्या" एवं रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" इसी श्रेणी के उपन्यास हैं ।

किसी भी युग की परिस्थितियां और अवस्थाएं अव्यक्त कथाओं से भरी हुई तथा किसी व्यक्ति की कथा कहने की प्रवृत्ति को उकसाने के लिए पर्याप्त होती हैं । अतः, इतिहास, उपन्यासकार को प्रायः कथा के लिए संकेत दे देता है । कुछ अधिक व्यापक एवं प्रत्यक्ष रूप में वह उपन्यासकार को एक कथासूत्र भी दे सकता है । प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन-चरित के रूप में वह एक बिल्कुल बना-बनाया उपयुक्त कथानक तो नहीं, किन्तु उपन्यास-रचना के लिए एक उपयुक्त विकास, विकसित करने तथा समाधान प्रस्तुत करने के लिए कोई समस्या दे सकता है, क्योंकि वे चीजें उनके जन-जीवन को लेकर ही नहीं वरन् उनके व्यक्तिगत जीवन-पक्ष को ले कर भी कथा को निबन्धित करती हैं । इसके [illegible] इतिहास स्वयं भी उनके सम्बन्ध

में अनेक सामान्य घटनाओं तथा प्रसिद्ध घटनाओं की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करता है जो उपन्यास के लिए एक आधार प्रस्तुत करते हैं तथा एक ऐसी सीमा निर्धारित कर देते हैं जिसके भीतर उपन्यासकार रचना-कर्म करता है । किन्तु इन सबके परे मानवीय अनुभवों का, जीवन की विस्तृत परिधि का, जन-साधारण के सम्पूर्ण संसार का एक ऐसा विशाल समूह भी है जिनके विषय में इतिहास मात्र एक अपर्याप्त कथा कह कर रह जाता है । ये सब वो ऐसी बातें हैं जिनके बारे में उपन्यासकार को स्वयं ही चिन्ता करनी पड़ती है । वह उपन्यासकार, जो राजाओं का तो कदाचित् ही वर्णन करता है, वरन् प्रायः सामान्य योद्धाओं तथा नागरिकों का चित्रण करता है, जो हृदय और घर को छोड़कर कभी-कभी ही किसी और पार्लियामेण्ट को चित्रित करता है, इतिहास को वृत्तान्तों का संग्रहागार मान कर वास्तविक घटनाओं के लिए ही उसकी ओर दृष्टिपात करता है और वहाँ केवल प्रासंगिक कथाएं ही पाता है । अल्पकालीन अवसरों पर बातें अन्धकार में खो ही जाती हैं । बहुत-सी बातें केवल इंगित भर रहती हैं, और कथा के बहुत-से सूत्र थोड़ी दूर ही जा कर टूट जाते हैं । इतिहास, कथा के कुछ सुन्दर स्फुरणों में इधर-उधर फूट तो पड़ता है किन्तु उसमें कथा का वह निरन्तर प्रवाह बहुत कम पाया जाता है जो किसी भी उपन्यास को सत्य, संश्लिष्ट एवं गतिशील बनाने के लिए आवश्यक होता है । उपन्यास में समाविष्ट होने के योग्य यह विवरणात्मक इतिहास खण्डित रूप में आता है और उपन्यासकार की कल्पना द्वारा ही परस्पर संग्रथित हो पाता है ।

इतिहास का द्विविध प्रयोग:

उपन्यास की [illegible] के लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास का दो प्रकार से प्रयोग करता है । उपन्यास में इतिहास की इन दो प्रयोग-पद्धतियों के अनुसार इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में मुख्यतया दो प्रकार के संबंध हो सकते हैं - प्रथम, साधन और साध्य का, तथा द्वितीय, आधार और आधेय का । प्रथम अवस्था में [illegible] केवल सामग्री प्रस्तुत करता है जबकि कथा

में वैसे ही सम्पन्न हो सकता है, जैसे एक भूगोल की पुस्तक एक यात्रा-वर्णन की पुस्तक में परिवर्तित की जाती है। दूसरी अवस्था में, इतिहास केवल सामग्री ही नहीं, उपन्यास के लिए एक सुदृढ़ कथानक भी प्रस्तुत करता है जिसको काट-छाँट कर उपन्यासकार अपने उद्देश्य के अनुकूल बनाता है और फिर अपनी कल्पना तथा सर्जना-शक्ति द्वारा उसे सुगठित बना कर उसमें प्राण-संचार करता है। इसप्रकार इस पद्धति में उपन्यासकार को दो मुख्य कार्य करने पड़ते हैं----(१) कथानक का अनुभावन, और (२) उसका कलात्मक पुनर्गठन। ऐतिहासिक उपन्यास के निर्माण की इस पद्धति में इतिहास का वही स्थान है जो शरीर-संरचना में कंकाल का है। पहली पद्धति एक प्रकार से आवश्यक होती है, और केवल इसी अर्थ में उपन्यासकार की सीमा निर्धारित करती है कि उसे अपने निर्माण-कौशल में अतीत के जीवन के प्रति निष्ठावान् रहना होगा। अतः इस पद्धति के मुख्य स्वर के साथ उपन्यासकार भी अपना स्वर मिला सकता है। उसके अनुसार इतिहास धातु प्रदान करता है और उपन्यासकार उससे अपने मनोनुकूल मूर्ति गढ़ता है। अपने इस प्रयत्न में वह चरित्रों की कल्पना कर सकता है, संवादों की कल्पना कर सकता है, घटना की उस सम्पूर्ण स्थिति और विस्तार की कल्पना कर सकता है जिसके माध्यम से इतिहास अपनी कथा कहने में स्वयं समर्थ हो उठे। लेकिन इन सबके बावजूद भी वह कथा में ऐतिहासिक व्यक्तियों को सुसंगत ढंग से बैठाने के लिए उनके वास्तविक चरित्रों को विकृत करने अथवा अपने कथानक के सूत्रों को परस्पर गुम्फित करने के लिए काल-क्रमिक वरणि में परिवर्तन करने का अधिकारी नहीं। काल-क्रमिक वरणि का अनुसरण तो दूसरी पद्धति में भी होता है, किन्तु दूसरी पद्धति में इतना ही नहीं, उपन्यासकार को इतिहास के अन्य तथ्यों तथा लोक-प्रसिद्ध भावाधारित घटना-क्रम के प्रति भी सत्यनिष्ठ रहना पड़ता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह पद्धति इस अर्थ में यान्त्रिक कही जा सकती है कि इसमें इतिहास से ली गयी कथा को उपन्यासकार अपनी रचना में गुम्फित एवं सन्तुलित कर [illegible] स्थापित करता है और उपन्यास की माँग के अनुसार इतिहास की तीव्रता और आकस्मिकता को स्वाभाविक बनाने के लिए कभी-कभी उसमें मोड़ भी ला देता है। यद्यपि ऐसा तो कदाचित् ही

कोई उपन्यास होगा जिसमें केवल एक ही पद्धति का अनुसरण किया गया हो, फिर भी दोनों के दो अलग आदर्श हैं जो ऐतिहासिक उपन्यास के दो विभिन्न रूपों का निर्माण करते हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार जिन वास्तविक घटनाओं के आधार पर कथा विन्यस्त करता है वे दो प्रकार की होती हैं । एक "ऐतिहासिक" तथा दूसरी "इतिहास-विश्रुत"। ऐतिहासिक घटना वह है जो वस्तुत अतीत काल में घट चुकी हो । इसमें घटित होने का भाव ही अधिक महत्वपूर्ण है । किन्तु "इतिहास विश्रुत" घटना वह है जो कभी विस्मृत नहीं होती और विश्व में अपनी प्रसिद्धि की घोषणा करती है । "इतिहास-विश्रुत" घटना भी ऐतिहासिक ही होती है, किन्तु इसमें इसकी प्रसिद्धि का भाव अधिक म त्वपूर्ण है । । इतिहास-विश्रुत चरित्र विख्यात चरित्र होता है और प्रायः सामान्यजन होता है । इस सन्दर्भ में इतिहास का अर्थ,शताब्दियों से [illegible] विश्व नहीं होता वरन् वह रंगमंच होता है जिस पर महान [illegible] घटित और परिचालित होती हैं तथा जिस पर दूर-व्यापी गम्भीर हलचलें सम्पन्न होती हैं। अतीत के [illegible] युगों में केवल कुछ ही ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने संसार में क्रान्ति उपस्थित की है तथा अपने युग पर [illegible] छाप छोड़ी है । ऐसे व्यक्तियों के पीछे एक ऐसा जन-समुदाय रहा है जिसने पथ-प्रदर्शन नहीं किया, वरन् अनुसरण किया, प्रधान रूप में कार्य में भाग नहीं लिया वरन् निरीक्षण किया । वस्तुतः प्रत्येक जन-समुदाय प्रख्यात व्यक्तियों के लिए ऐसा उपकरण होता है जिस पर वे अपनी भूमिका संपादित करते हैं । इतिहास-विश्रुत घटना में भाग लेने वाले व्यक्ति ही इतिहास को जीवित रखते हैं, जन-समुदाय तो दर्शक मात्र होता है । तब इतिहास तीव्र प्रकाश वाला दर्शकों [illegible] सम्पूर्ण रंगमंच को अन्धकार में छोड़ देता है तथा अत्यधिक मुखर [illegible] और प्रसिद्ध रूपों को आलोकित कर देता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए एक महान् "इतिहास-विश्रुत" घटना उन [illegible] कथाओं की अपेक्षा, जो सामान्य इतिहास से ली जाती

है, अधिक विस्तृत कथा-सूत्र प्रस्तुत करती है । जब ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत के एकान्तिक पथों में विचरण करने तथा मार्ग से दूर अज्ञात कोने की रोमांचक घटनाओं के विस्मयों को प्राप्त करने के बदले, प्रसिद्ध घटनाओं की पूर्ण धारा का साहस के साथ सामना करता है तथा महान् व्यक्तियों की नियति में प्रविष्ट होता है तो ऐतिहासिक उपन्यास दूरस्थ प्रसिद्ध घटना के अर्थ में इतिहास विस्तृत कार्य-कलाप का प्रतिरूप हो जाता है और उसकी सीमाएं तथा क्षेत्र दोनों अधिक विस्तृत हो जाते हैं । यहाँ केवल घटनाएं ही इतिहास से नहीं ली जातीं बल्कि कार्य-व्यापारों एवं घटनाओं का एक सम्पूर्ण खण्ड, महान युगों के शक्तिशाली नाटक का एक सम्पूर्ण अंक इतिहास से लिया जाता है । इतिहास केवल युगों के टुकड़ों को ही नहीं प्रस्तुत करता, वरन् एक सम्पूर्ण सामयुगन्दीय अभिप्राय को प्रस्तुत करता है, जिसको उपन्यासकार पुनर्गठित और नये सिरे से निष्पादित करता है । इससे ऐसी समस्याएं उपस्थित हो जाती हैं जो उपन्यास-रचना के सौगुण तथा मानवीय अभिप्रायों से संयुक्त होतीं हैं । इस सन्दर्भ में मात्र यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार का कथासूत्र सीमित होता है अथवा कम से कम उसका स्वरूप इस बात से स्थिर रहता है कि वह उन्हीं व्यक्तियों एवं घटनाओं से सम्बद्ध होता है जो जनता की आँखों में रहे हैं तथा विश्व-स्मृति पर अंकित हो गये हैं ।

अवधान केन्द्र—मानव:

इस विश्व में मनुष्य की जो नियति होती है तथा उसके जो जीवनानुभव होते हैं वे ही उपन्यास का कथा-विन्यास बनते हैं । उसके कथा-सूत्र की परिधि में वे सभी वस्तुएं आ जाती हैं जो मानव-हृदय एवं मस्तिष्क से सम्बद्ध होती हैं । उसका कथानक जीवन की ऐसी छोटी से छोटी घटना से हो सकता है और बड़ी से बड़ी घटना से भी, जिसकी प्रतिध्वनि युगों से आती रही है । वह उस महान् हृदय को स्पर्श कर सकता है जिसने सम्पूर्ण महाद्वीप के जीवन को उद्वेलित कर दिया हो । वह उन क्रान्तियों का वर्णन कर सकता है जिन्होंने मानव-जाति के भाग्य को पलट दिया हो । किन्तु, उसकी रुचि सबसे अधिक मनुष्य में ही होती है ।

उपन्यास का क्षेत्र सामान्य व्यक्तियों के जीवन एवं कार्यों तक ही सीमित नहीं रहता । ऐसे भी मनुष्य हैं जो जीवन को दूसरों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से अनुभव करते हैं और अनुभव के उच्चतर शिखर पर पहुंच जाते हैं । उनके सम्मुख घटनाएं सामान्य जन-समूह की अपेक्षा अधिक सशक्त हो कर आती हैं । ऐसे मनुष्य अपने जीवन के विशिष्ट अनुभवों, अद्भुत कार्य-क्षमताओं तथा अपनी अदम्य शक्ति के कारण इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपने हृदय अथवा मस्तिष्क की स्वाभाविक महानता के कारण नहीं, वरन् दैववशात् नयी असाधारण परिस्थितियों में प्रतिष्ठा पा जाते हैं और इस प्रकार उन्हें जीवन की नवीन अवस्थाओं एवं अनुभव के नवीन आयामों में प्रविष्ट होने का अवसर मिल जाता है । ऐसे लोगों के जीवन-सन्दर्भ में युग और उत्पाद एक नये अप्रत्याशित रूप में गतिशील दृष्टिगत होता है । अतएव यदि उन्हें ही आधार बनाया जाय तो उपन्यास में जीवन के सर्वाधिक उत्कृष्ट भाग को चित्रित किया जा सकता है और उनके अनुभवों को अन्य व्यक्तियों तक पहुंचाया जा सकता है ।

ऐसा देखा गया है कि विशेष शक्ति-सम्पन्न तथा विशिष्ट परिस्थितियों से आवृत पुरुषों को ही इतिहास नहीं भूलता, किन्तु यह एक सीमा के भीतर ही सत्य है । ऐसे पुरुषों के लिए ऐसा व्यक्ति होना आवश्यक है जो अपनी विशिष्ट शक्तियों अथवा परिस्थिति-जन्य घटनाओं के कारण एक बार जन-सामान्य की आंखों में बस गया हो । यदि हमारा ऐसे व्यक्तियों से सम्बद्ध ज्ञान एकांगी न होकर अनेकांगी हो तो वे अवश्य ही "इतिहास-विश्रुत" होने के साथ ही साथ "ऐतिहासिक" भी होंगे । यदि कोई व्यक्ति अपने सार्वजनिक जीवन में स्मरणीय है तो संसार के सामने उसका व्यक्तिगत जीवन भी अविदित तथा विस्मृत नहीं रहेगा, उसकी व्यक्तिगत बातें, उसके जीवन के अनुभव आदि भी अज्ञात नहीं रह सकेंगे, बशर्ते कि उन्हें जान-बूझ कर न छिपाया जाय । यह उपन्यासकार जो ऐसी बातों के प्रति सत्यनिष्ठ रह सकता है, उपन्यास की सीमा को और विस्तृत करता है तथा उपन्यास के राज्य में नवीन तथा तीव्रतर अनुभवों को प्रस्तुत कर जीवन

के गम्भीर एवं दुरावर्ष भाग में उसकी खोज करता है । इस प्रकार वह जीवन के छिपे हुए अत्यन्त मर्मस्पर्शी भाग को उच्चतम बिन्दुओं पर स्पर्श करने में सफलीभूत होता है । इस प्रकार इतिहास उपन्यास को केवल पंख ही नहीं प्रदान करता, वरन् नया आकाश भी प्रदान करता है ।

क्षण का पुनर्निर्माण:

ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए वे बातें, जो गम्भीर एवं इतिहास विश्रुत हैं, उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती जितनी वे बातें जो क्षणिक किन्तु बाह्य हैं । एक महत्वपूर्ण राजनीतिक व्याख्यान या घोषणा उसके कार्यक्षेत्र में आ सकती है, राजनीतिक सन्धियों का वह उपयोग कर सकता है, किन्तु इतिहासकार जहाँ सम्पूर्ण घटना को राजनीति के विशिष्ट ढंग से जोड़ने के लिए लालायित रहता है, वहाँ उपन्यासकार व्याख्याता के सिर-दर्द की ओर भी ध्यान देता है जिसने उसे पीड़ित बना दिया, भवन की उस भयंकर गर्मी की ओर भी ध्यान देता है जिसने उसे उत्तेजित कर दिया, उसके उन व्यक्तिगत कष्टों की ओर भी ध्यान देना है जिनके कारण वह अपने उन्मुक्त एवं स्वतंत्र विचारों को नहीं रख सकता । किसी भी घटना के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन करने की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासकार उसके-क्षण को पुनर्निर्मित करने का प्रयत्न करता है और उन बातों का अवलोकन करता है जिन्होंने किसीक्षण विशेष पर व्यक्ति को प्रभावित किया था, यद्यपि वे सर्वदा राजनीति से सम्बन्धित नहीं होती ।

संसार में व्यक्तिगत योजना और संघर्ष ही प्रायः महत्वपूर्ण घटनाओं को स्थापित करते हैं तथा व्यक्तिगत चिन्ताएं, पक्षपात तथा परिवारों के वाद-विवाद किसी देश के अधिकांश इतिहास का निर्माण करते हैं । इतिहास में ऐसे बहुत से क्षण आये हैं जबकि एक छोटी-सी घटना महान् जय-पराजय का कारण बन गयी है, ऐसे बहुत से अवसर आये हैं जबकि एक अकारण बात साम्राज्य के दुःखान्त नाटक की सूत्रधारिणी बन गयी है । और कौन जानता है कि ऐसी व्यक्तिगत बातों ने किसी [illegible] के इतिहास को कितना प्रभावित किया है ?

इन सब बातों में व्यक्तिगत जीवन उस स्थान पर भी एक कठिन समस्या उत्पन्न कर देता है जहाँ वह महत्वपूर्ण घटनाओं की स्थापना नहीं करता । वस्तुतः सम्पूर्ण इतिहास ऐसी अनेक सम्भाव्य एवं कल्पनीय परिस्थितियों से भरा हुआ होता है जो उपन्यास में प्रयुक्त होने के लिए आमन्त्रित की जा सकती है । शुद्ध राजनीतिक अभिप्रायों के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन में ऐसी अनेक व्यक्तिगत बातें--जैसे व्यक्तिगत असन्तोष, पारिवारिक संघर्ष, मन की सनक, निरंकुश इच्छा, आदि--होती हैं, ऐसे अनेक क्षण होते हैं जो ऊपर से देखने में तो महत्वहीन एवं आकस्मिक-से लगते हैं, किन्तु इतिहास को दूर तक प्रभावित करते हैं । ऐतिहासिक उपन्यास, सम्भवतः जान-बूझ कर तो नहीं, फिर भी सतत इस बात का प्रधान रूप से प्रतिनिधित्व करता है । यह इतिहास में व्यक्तिगत बातों के प्रभाव को प्रमुखता देता है, मानव-जीवन को अखण्ड तथा अविभाज्य समझता है और उसके व्यक्तिगत कार्यों तथा सार्वजनिक आचारों को एक-दूसरे से ऐसे घुला-मिला देता है, जैसा होना चाहिए, और सम्पूर्ण को मानव-प्रकृति के अध्ययन का विषय बना देता है[1] ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार किसी इतिहास-विश्रुत व्यक्ति पर दृष्टिपात करते समय उसके व्यक्तित्व का अवलोकन करता है जबकि वैज्ञानिक इतिहासकार उसको केवल राजनीति के यन्त्र के रूप में देखने को लालायित रहता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार मानव-प्रकृति का स्पर्श करता है जबकि सामान्य इतिहासकार प्रसिद्ध घटनाओं एवं तथ्यों पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित रखता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार की अन्वेषण-सीमा में आने वाले हर ऐतिहासिक निर्णय का मूल कारण

---

1. The historical novel, not consciously perhaps, but still demonstrably stands for this fact. It emphasises the influence of personal things in history, it regards man's life as a whole and runs his private action and his public conduct into each other as it ought to do and it turns the whole into study of human nature.

—H. Butterfield: The Historical Novel, p.73.

उस काल की राजनीति नहीं होती वरन् उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था एवं व्यक्तिगत राग-द्वेष भी होते हैं जिनसे उसका निर्माण होता है । प्रत्येक महत्वपूर्ण नाम के पीछे ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने जीवन के कुछ विशिष्ट अनुभवों से संपन्न एक मनुष्य को देखता है । वह इतिहास के धागे में उन अनुभवों को पिरो कर मनुष्य को प्रदान करता है तथा इतिहास जो कुछ देने में असमर्थ सिद्ध होता है उसे वह अपने व्यक्तित्व से समन्वित कर अपनी कल्पना से पूर्ण करता है । वस्तुतः अतीत का यही वास्तविक पुनर्निर्माण है । यही कारण है कि ऐतिहासिक उपन्यास में युग और मनुष्य का जीवन बोल उठता है जबकि इतिहास प्रायः मृतक एवं रक्तहीन होता है ।

इतिहास की बहुपक्षीयता :

किसी ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने में कम से कम एक उपन्यास, अपने जीवन के व्यक्तिगत [illegible] की एक कथा लिये रहता है । ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में इस कथन को थोड़ा और बढ़ा कर कहा जाय तो कह सकते हैं कि प्रत्येक इतिहास-विश्रुत कथासूत्र, अतीत से छिपा हुआ प्रत्येक काल-खण्ड स्वयं में केवल एक ही कथा को नहीं वरन् अनेक कथाओं को छिपाये रहता है । सभी कथाएं एक ही समान सत्य होती हैं, सभी घटनाओं के उसी रूप को प्रदर्शित करती हैं जिस रूप में वे विभिन्न सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्मुख आयी थीं और उनको प्रभावित की थीं । सभी कथाएं एक ही सत्य के विविध पक्ष होती हैं ।

जब किसी घटना या घटनाओं को देखने के लिए नवीन दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो उनसे निर्मित कथा का सम्पूर्ण विवरण परिवर्तित हो जाता है और वही घटनाएं एक अन्य रूप में सम्मुख आने लगती हैं । किसी घटना का अपराधी, घटना-ग्रस्त व्यक्ति तथा नायक के दृष्टिकोण से वर्णन करना एक ही कथा को विभिन्न प्रकार से वर्णन करना मात्र नहीं, वरन दो नयी कथाओं को प्रस्तुत करना है । एक ही घटना एक व्यक्ति के लिए प्रसन्नता का कारण हो सकती है, दूसरे के लिए दुःख का कारण । यदि किसी कथा का सहानुभूति-केन्द्र बदल जाता है तो उसकी प्रत्येक बात का रूप ही कुछ अन्य हो जाता है । इतिहास की अनन्य

तथा जीवन की बहुपक्षीयता को इस कार्य की अपेक्षा अन्य कोई कार्य उचित ढंग से स्पष्ट नहीं कर सकता । ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने अतीत प्रयोग में इसी को (इतिहास की सम्पन्नता एवं जीवन की बहुपक्षीयता को ही) प्रदर्शित करता है। वह सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से एक कथा बना सकता है और उसके जीवन की उन्हीं घटनाओं द्वारा चाणक्य या नन्दवंश के अन्तिम सम्राट् की दृष्टि से एक बिल्कुल भिन्न कथा की रचना कर सकता है । इस प्रकार वह ऐतिहासिक घटनाओं के महत्व की जटिलता तथा विभिन्नता एवं इतिहास के बहुपक्षीय तात्पर्यों को प्रकाश में ले आकर इतिहास को सम्पन्न बनाता है ।

इतिहास का अर्थ अतीतकालीन संसार तथा उसके कार्य-व्यापार की स्मृति से लिया जाता रहा है । किन्तु स्मृति के पश्चात् अनुभव तथा अनुभव-चिन्तन का स्थान आता है । अपने व्यक्तिगत जीवन में हम लोग उन बातों का स्मरण कर के ही सन्तोष नहीं कर लेते जो घट चुकी हैं, वरन् परस्पर उनकी चर्चा भी करते हैं, उनके अर्थ भी सोचते हैं और उन्हें अनुभव-क्रम में नियोजित भी करते हैं । परिणाम-स्वरूप हमारा जीवन एक संगति, एक अभिप्राय, एक प्रक्रिया सदृश दिखायी पड़ता है । इसी प्रकार एक ऐसा समय आता है जब कि इतिहास घटनाओं, युगों अथवा मनुष्यों की [illegible] मात्र ही नहीं रह जाता वरन् ऐसा कुछ हो जाता है जो इन सबसे श्रेष्ठतर होता है । वह इन सभी को एक संग्रन्थित कर लेने वाला एक जाल, एक इकाई बन जाता है । इस अर्थ में इतिहास इस पृथ्वी पर मनुष्य का अनुभव है, उसके संघर्षों की कहानी है, वह एक ऐसी धुन है जिसका वाद्यवृन्दीय अंश सम्पूर्ण की महान् विचारधारा को अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जिसका प्रत्येक क्षण, प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक युग संगीत-रचना की स्वर-लिपि को एक नवीन ताल-रेखा प्रस्तुत करता है और सम्पूर्ण की निर्मिति को कुछ आगे तक वहन कर ले जाता है । इतिहास वस्तुतः मनुष्य तथा उसके साहस-भरे कार्यों की कहानी मात्र ही नहीं है, वह मानव-जाति का महाकाव्य है ।

इतिहास को इस नव दृष्टिकोण से देखने पर [illegible] जीवन इतिहास का मुख्य केन्द्र नहीं रह जाता और स्त्री-पुरुषों तथा उनके जीवन-व्यापार

कार्यों कौशलपूर्ण धारा में उर्मियों के समान खण्ड-खण्ड दृष्टिगत होते हैं एवं संपूर्ण जीवन-प्रणाली का जीवन-स्पन्दन अथवा ऐतिहासिक क्रान्ति की लहर ही कथा का वास्तविक विकास-सूत्र बन जाती है । वह कलाकार, जो प्रभंजन को चित्र या शब्द में बाँधने का प्रयत्न करता है, जानता है कि उसका क्या अर्थ है । वह चाहे तो उस प्रभंजन द्वारा विकीर्ण पत्तों, झुके हुए वृक्षों तथा ध्वस्त, वीरान जनपद को प्रदर्शित कर सकता है, किन्तु ये सब स्वयं प्रभंजन नहीं हैं । वह चाहे तो मन्द समीरण के साथ अठखेलियाँ करते हुए अथवा भीषण लहरों से मदोन्मत्त सागर पर सन्तरण करते हुए जलपोत को चित्रित कर सकता है, किन्तु वे स्वयं पवन नहीं हैं। वह चाहे तो आपके केशों के साथ किलकारियाँ अथवा हरित-भरित तृणांकुरों के साथ उसके मर्दन का वर्णन कर सकता है--किन्तु ये सब भी पवन नहीं है । ये सब तो वास्तव में प्रभंजन के परिणाम हैं और सच बात तो यह है कि उसका वर्णन उसके कार्य-परिणाम के माध्यम से ही हो सकता है । इतिहास के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है । ऐतिहासिक आख्यान का महाकाव्य मूर्त, विशिष्ट एवं ठोस वस्तु का ही वर्णन करता है, लेकिन उसकी पृष्ठभूमि में निहित एक ऐसे जीवन्त-सिद्धान्त को भी व्यंजित करता चलता है जो उन्हीं के भीतर क्रियाशील रहता है तथा उन्हीं के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता है । जैसे जब ऐतिहासिक उपन्यासकार के भीतर का महाकाव्यकार अतीत के जीवन को देखता है तो उसे घटनाओं, विवरणों एवं दृष्टान्तों का सीमित भण्डार दीख पड़ता है, किन्तु वह इन सभी में एक समन्वय-सूत्र खोज निकालता है, एक महान हृदय के स्पन्दनों का दर्शन पाता है तथा वह अनुभव करता है कि इन सब के पीछे एक ही जीवन-तत्त्व कार्यरत है और मनुष्य को उसी प्रकार अपने साथ वहन करता चलता है जैसे ज्वार झाग को बहाता चलता है

अथवा जैसे वसन्त के साथ कलियां खिल उठती हैं[1]।

इस प्रकार, ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास - प्रयोग की एक पद्धति अथवा अतीत को निरूपित करने का एक ढंग मात्र ही नहीं है, वरन् अतीत के युग और जीवन की विविधता एवं सूक्ष्मता को व्यापक तथा प्रभावशाली ढंग से व्यंजित करने की श्रेष्ठतम पद्धति है । यह एक ऐसी शक्तिशाली, जीवनाबद्ध एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है जो सामान्य उपन्यासों तथा इतिहास से अधिक शक्ति वहन करता है । इसका नायक केवल मनुष्य नहीं होता वरन् मनुष्य-रूप में एक शक्ति होता है । अतीत के प्रति इसकी दृष्टि परोक्ष में कार्य करने वाली महानतम शक्तियों में से एक होती है जो नियति को चित्रित करने का प्रयत्न करती है और अतीत के संसार को सम्मुख लाने के लिए बाध्य करती है । वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास रूप में मानव - की ही एक महान् जीवन-गाथा है ।

(ख) ऐतिहासिक उपन्यास तथा अन्य उपन्यासों में अन्तर

यद्यपि सामान्य उपन्यासों की भांति ऐतिहासिक उपन्यास भी मानव-जीवन की कथा को प्रस्तुत करता है, इसमें भी प्रत्याशित-अप्रत्याशित घटनाएं, आकर्षक चरित्र, सूक्ष्म बातें, अचेतन पूर्वाग्रह तथा भावस्थितियां रहती हैं, फिर भी इसका एक अलग विभाग मानने का कारण यह है कि इसमें एक ऐसी विशेषता होती है जो अन्य उपन्यासों में नहीं पायी जाती । ऐतिहासिक उपन्यास की यह विशेषता है इसके द्वारा प्रस्तुत "ऐतिहासिक यथार्थ" । ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना का मूल प्रेरक व प्रधान रूप से यह ऐतिहासिक यथार्थ ही है ।

---

1. The epic in historical fiction describes the tangible and the particular and the concrete, but it suggests a living principle behind these, work-ing in these and only manifesting itself in them. The epic-writer looking at the file of the past sees an accumulation of events, of details, of instances, but in them all he divines a synthesis and sees one throb of great hearts and behind them all he feels one life principle working itself out and carrying men with it as tide carries the foam or as spring brings bud.-H.Butterfield:The Historical Novel,page 94.

उपन्यास में "यथार्थवाद" और "ऐतिहासिक यथार्थवाद" में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । देश और काल के अन्तर आ जाने के कारण यथार्थ ही ऐतिहासिक यथार्थ कहलाने लगता है । विगत के लिये जो यथार्थ था वह परिस्थिति भेदानुसार आज के लिए ऐतिहासिक यथार्थ है और जो यथार्थ है वह भावी कल के लिए ऐतिहासिक यथार्थ माना जायेगा । ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्तर्गत अतीत काल की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्र साकार उपस्थित किया जाता है और तिथियों तथा घटनाओं आदि की सत्यता को विशेष महत्व न देकर तत्कालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन को उभार कर, रखने के प्रति आग्रह दिखाया जाता है । इस प्रकार विगत युग का सामाजिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ ही वर्तमान युग का ऐतिहासिक यथार्थ है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में देशकाल का चित्रण ऐतिहासिक यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है । यों तो देशकाल -चित्रण का प्रयोग सभी उपन्यासों में किया जाता है, किन्तु उसका स्थान प्रधान न होकर गौण रहता है और उपन्यास की आलोचना करते समय आलोचक अन्य तत्वों की अपेक्षा इस पर कम ध्यान देता है । परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों में देश-काल का यह चित्रण ही उनका प्राण होता है और उनकी सफलता बहुत कुछ देश-काल के जीवन्त एवं वास्तविक चित्रण पर ही निर्भर करती है । यही उनको विभिन्नता प्रदान करके उनकी पृथक्-पृथक श्रेणी स्थापित करता है । बिना इसके ऐतिहासिकता का कोई महत्व नहीं । "ऐतिहासिक उपन्यासों का आकर्षण और साहित्यिक मूल्य बहुतकुछ उनके द्वारा किये गये भूभाग और काल-विशेष के जीवन, रीतिरिवाज, रहन-सहन आदि के वर्णन पर निर्भर रहता है और उनकी सफलता यहां पर वर्णनों की यथार्थता तद्रूपता और शक्ति पर निर्भर रहती है[1] ।" ऐतिहासिक यथार्थ की एकमात्र कसौटी है लेखक की निष्पक्षता एवं तटस्थ दृष्टि का होना। यदि लेखक ऐतिहासिक यथार्थ का

१- शिवनारायण श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास([illegible] संस्करण), पृ० १६८ ।

चित्रण करते समय अपने व्यक्तिगत आग्रहों से ऊपर नहीं उठ पाता, तो उसकी रचना विकृत और असफल हो जाती है ।

ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास पर आधारित होने के कारण अन्य उपन्यासों से कुछ अतिरिक्त दायित्व की अपेक्षा रखता है । आधुनिक वैज्ञानिक युग ने अपने प्रारम्भिक काल से ही कथा-साहित्य को यथार्थ की ओर तथा इतिहास को वैज्ञानिकता की ओर मोड़ना प्रारम्भ कर दिया था । "इतिहास को वैज्ञानिक बनाना उसकी बहुत बड़ी देन है, किन्तु उससे भी बहुत बड़ी देन है ऐतिहासिक दृष्टिकोण, जिसके विकास ने पुरानी रूढ़ियों एवं अंध आस्थाओं का प्रायः उन्मूलन ही कर दिया । ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि ने विगत जीवन को ऐतिहासिक परिप्रेक्षण में देखने की प्रेरणा दी, जिससे बहुत सी महत्वहीन घटनाएं महत्वपूर्ण हो उठीं और उनमें नए-नए अर्थों की उपलब्धि होने लगी । साथ ही बहुत सी प्रभावोत्पादक एवं अर्थपूर्ण घटनाएं निस्सार प्रतीत होने लगीं । उनका अर्थ खो गया और प्रभाव समाप्त हो गया[१] ।" ऐतिहासिक मूल्यों के इस नवीन निर्धारण के फलस्वरूप ऐतिहासिक उपन्यासकार का दायित्व बढ़ गया और उसका कार्य दुहरा हो गया । एक ओर उसे ऐतिहासिकता की रक्षा और अपनी बात को पुष्ट एवं सशक्त बनाने के लिए अतीत के गर्भ से अज्ञात और विशिष्ट तथ्यों, घटनाओं, पात्रों आदि को प्रमाण रूप में ढूंढ-ढूंढ कर एकत्रित करने की आवश्यकता होने लगी तथा दूसरी ओर सामान्य उपन्यासों की तरह कथावस्तु की परिकल्पना एवं संयोजन, पात्रों में चारित्रिकता तथा उनका सहज स्वाभाविक विकास, तत्कालीन सामाजिक एवं राष्ट्रीय वातावरण का सजीव तथ्य चित्रण आदि की समस्याएं गहन-गम्भीर और जटिल होकर आने लगीं ।

उपन्यास-कला की दृष्टि से यथार्थवादी उपन्यासकार तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार के दायित्व में कोई विशेष अन्तर नहीं है । वर्तमान यथार्थ

१- डा० जगदीश गुप्त: "इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार", आलोचना का उपन्यास विशेषांक, अक्टूबर १९५४ ।

तथा ऐतिहासिक यथार्थ का आभास उत्पन्न करने की कलात्मक विधि प्रायः एक ही है। हाँ, एक बात अवश्य है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन एवं संगठन में विशेष रूप से जागरूक रहना पड़ता है। क्योंकि वे प्रत्यक्ष अनुभूति की सीमा से दूर पड़ जाते हैं और उपन्यासकार को उन तक अपनी कल्पना को ले जाने में विशेष मानसिक एवं बौद्धिक श्रम करना पड़ता है। जो उपन्यासकार स्वाभाविक रूप से इतिहास का प्रेमी है, जिसकी बुद्धि सहज ही इतिहास में रमी है तथा जिसकी कल्पना के पंख अतीत युग के आकाश में परिभ्रमण करने में विशेष आनन्द अनुभव करते हैं, वास्तव में वे ही जीवन्त एवं सफल ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना कर सकते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों तथा अन्य [illegible]पन्यासों के [illegible] में कल्पना का महत्वपूर्ण योग रहता है, किन्तु दोनों में संदर्भानुसार दो प्रकार की कल्पनाएं की जाती हैं। अन्य [illegible] के निर्माण में जहाँ समसामयिक यथार्थ [illegible]ल्पना का योग रहता है, वहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों के निर्माण में इतिहासमूलक कल्पना का। इतिहास मूलक [illegible]ल्पना भी यथार्थ कल्पना की तरह वस्तुसत्य की मर्यादा एवं संभावनाओं का ही अनुसरण करती है, किन्तु दोनों में किंचित् अंतर है और यह अंतर केवल [illegible]त्रागत होता है। इतिहास मूलक कल्पना की सबसे बड़ी कसौटी यह होती है कि वह विगत युग की संवेदन-प्रक्रिया का स्पर्श करके घटित तथ्यों का सार्थक पुनर्गठन करती है और आ[illegible]नुसार पात्रों, प[illegible] और भावभूमि तीनों की [illegible]नानुरूप स्वतंत्र परिकल्पना भी करती है।

ऐतिहासिक[illegible]में कल्पना का प्रवेश एक प्रकार से "सत्याभिज्ञान" है जिसमें भावुकता का अंश कहीं न कहीं अवश्य रहता है। यह भावुकता ऐतिहासिक उपन्यासकार के मन में रोमानी कल्पना को जन्म देती है। इतिहासमूलक कल्पना इस अर्थ में भी यथार्थ कल्पना से कुछ भिन्नता रखती है कि इसमें प्रायः रोमानी तत्त्व भी होते हैं। वाल्टर बेजहॉट के मतानुसार रोमानी कल्पना जो मन का स्वभाव है, ऐतिहासिक उपन्यास में उसकी सफलता के लिए प्रायः [illegible] भी है, इस प्रकार के [illegible]पन्यासों का सबल अथवा प्रभाव ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिक भाव को

गम्भीरतर एवं दृढ़ बनाता है[1]। ऐतिहासिक उपन्यासकार के मन में "प्रत्यभिज्ञान" के जग जाने पर उसके आत्मसंतोष तथा कृतित्व की नयी उपलब्धि के लिए अनेक द्वार खुल जाते हैं ।

वर्तमान कालीन जीवन-दशा, प्रचलित-चिन्तन-पद्धतियाँ, मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्ध, देश की आर्थिक स्थिति, परिवार-कल्याण, तथा व्यक्ति एवं समाज के संतुलन को स्थिर रखने का दावा करने वाली संस्थाओं और जातियों के संबंध आदि ऐसे तत्व हैं जो अनेक प्रकार की समस्याओं और असंगतियों से भरे रहते हैं । और, ये परिस्थितियाँ जो वर्तमान युग की विशिष्ट उपज होती हैं-समसामयिक जीवन को लेकर लिखे जाने वाले सभी उपन्यासों के विचार्य विषयों की साधन-स्रोत होती हैं । इन अवस्थाओं में व्यक्तियों की उलझनें अनुभव की समस्याओं को जन्म देती हैं और मुख्यतः आधुनिक होती हैं इसी प्रकार, परिस्थितियों का प्रत्येक समूह एक विशिष्ट मानवीय समस्याओं के समूह को उपस्थित करता है । प्रत्येक युग की अपनी जीवन-समस्याएं होती हैं, और मानकृत्य-युग पर आधारित उपन्यास उस युग की समस्याओं से भिन्न समस्याओं को लेकर गठित होगा जिसमें कानूनतः विवाह-विच्छेद होता है । औद्योगिक-क्रान्ति का विश्व उन विचार्य विषयों द्वारा शासित जीवन को प्रदर्शित करेगा जो शौर्य-युग की जीवन - समस्याओं से भिन्न होगा । बीसवीं शती, बारहवीं शती से, केवल उसकी भाषा, रहन-सहन और वेश - भूषा में ही भिन्न नहीं है वरन् अपने सम्पूर्ण जीवनानुभव में ही उससे भिन्न है । एक युग से दूसरे युग की भिन्नता मात्र वेश- भूषा और रहन - सहन तक ही सीमित नहीं रहती, वरन् तत्कालीन जीवन के सभी पक्षों का स्पर्श करती है। इस दृष्टि से, ऐतिहासिक उपन्यास, अन्य प्रकार के उपन्यासों से इस अर्थ में भिन्न है कि वह अन्य युग(विगत)के अनुभवों को वर्तमान युग में निरूपित करता·

---

1. The romantic imagination is habit or power (as we may chose to call) of mind which is almost essential to the highest success in the historical novel. The aim, at ~~xkxx~~ any rate the effect of this class of work seems to be to deepen and confirm the received view of historical personage.
-Walter Bagehot: Literary Studies Vol.II page 171.

है और वर्तमान से भिन्न अनुभवों के समूह एवं समस्याओं के बीच में प्रवेश कर मानव-प्रकृति का चित्रण करता है ।

अन्य प्रकार के उपन्यासों की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यास में एक और भी विशेषता होती है । यदि किसी ऐसे स्थान के बारे में, जिससे हम परिचित हैं, कोई कथा कही जाती है (यद्यपि वह पूर्णतः कल्पित ही क्यों न हो) तो हमारा मन बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है और वह हमारे मर्म को कहीं न कहीं अवश्य स्पर्श कर लेती है । कारण कि उसकी वह वास्तविकता में कमी होती है और अपनी ओर आकृष्ट होने के लिए हमें बाध्य करती है । यदि उसी कथा की वह वास्तविक भूमि में न होकर आकाश में होती तो वह हमें उतनी [illegible] नहीं करती । कोई भी कहानी यदि वास्तविकता में अपना एक पाँव आरोपित कर सकती है तो फिर वह कल्पना जगत की नहीं रह जाती और वास्तविकता से कुछ संबंध रहने के कारण अविजित शक्ति प्राप्त कर लेती है । अतिरिक्त प्रभावशालिता उत्पन्न करने की यही शक्ति ऐतिहासिक उपन्यास में होती है जो अन्य उपन्यासों में नहीं पाई जाती ।

(ड०) ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण तथा स्वरूप-भेद

उपन्यास में, ऐतिहासिक घटना, पात्र और वातावरण की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों का एक [illegible] किया जा सकता है । उपन्यासकार अपनी कृति में कहीं कथानक को अधिक महत्व देता है, कहीं चरित्र को और कहीं ऐतिहासिक वातावरण को । इस दृष्टि से सामान्य उपन्यासों की भाँति ऐतिहासिक उपन्यासों के भी तीन वर्ग - घटना प्रधान, चरित्र प्रधान तथा वातावरण प्रधान बनाए जा सकते हैं । किन्तु इस प्रकार का [illegible]रण सामान्य है और ऐतिहासिक उपन्यास के ऐतिहासिक और उपन्यासिक इन दो तत्वों से इसका कोई [illegible] संबंध नहीं जुड़ पाता । फिर, इस प्रकार का वर्गीकरण विविध ऐतिहासिक

उपन्यासों के स्वरूप को स्पष्ट करने में भी समर्थ नहीं सिद्ध हो पाता । एक अन्य प्रकार का वर्गीकरण ऐतिहासिक युगों अथवा घटना काल-क्रम के आधार पर किया जा सकता है । किन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसे सर्वदेशीय नहीं बनाया जा सकता । अनेक देशों की तो बात अलग, एक ही देश की विभिन्न जातियों, संप्रदायों और वर्गों के इतिहास भिन्न-भिन्न युगों और कालों में बंटे रहते हैं । अतएव यह वर्गीकरण सार्वभौम नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त, इस प्रकार का वर्गीकरण महज इतिहास की ही दृष्टि से हो सकता है, उपन्यास-कला की दृष्टि से नहीं, जो एक प्रकार से एकांगी कहा जा सकता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों का सर्वाधिक उपयुक्त और अच्छा वर्गीकरण वह हो सकता है जिसमें इतिहास के साथ समस्त उपन्यास का संबंध परिलक्षित हो । इसप्रकार का वर्गीकरण उपन्यास की शिल्पविधि एवं रचनातंत्र पर ही आधारित होगा और उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होगी कि यह न केवल इतिहास प्रयोग की पद्धति के आधार पर होगा, वरन् साहित्यिक गुणों तथा शिल्पविधि के सामान्य स्वरूपों, कथावस्तु, पात्र तथा वातावरण के पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्रों एवं काल्पनिक तत्वों के आयोजनों को भी अपने में समाविष्ट कर सकेगा । अतः इस दृष्टिकोण से हम ऐतिहासिक उपन्यासों के स्थूल रूप में चार भेद कर सकते हैं-

(१) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास,

(२) मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास,

(३) [illegible] ऐतिहासिक उपन्यास,

(४) स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास ।

(१) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासः

ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास, जिनके मूल कथानक प्रामाणिक इतिहास से लिये गये हों, प्रायः सभी प्रधान पात्र एवं उनके नाम इतिहास विश्रुत हों, तथा घटनाओं की शृंखला और वातावरण भी ऐतिहासिक हो, शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रखे जा सकते हैं । इस कोटि के उपन्यासों में देश, काल, पात्र और वातावरण सभी ऐतिहासिक होते हैं और इतिहास सजग प्रहरी की भांति अपने

अस्तित्व की घोषणा करता हुआ उपन्यास के सम्पूर्ण वातावरण को नियंत्रित करता रहता है । प्रासंगिक रूप में कतिपय अप्रधान पात्रों एवं गौण घटनाओं की उद्भावना भी उपन्यासकार इस कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों में करता है लेकिन इनका कार्य प्रधान पात्रों और मूल कथानक की विशेषताओं को उद्भासित करना मात्र होता है ।

इस कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों को अन्य कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा कुछ प्रारम्भिक सुविधाएं अवश्य मिल जाती हैं । कथाकार के सम्मुख जो सबसे बड़ी समस्या होती है, वह है अपनी कथा के प्रति पाठकों के मन में विश्वास उत्पन्न करने की । और, इतिहास का दृढ़ और ठोस आधार पाकर उसकी यह समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है । जब पाठक देखता है कि कथा के पात्र उसके पूर्व परिचित हैं, घटनाएं तथा वातावरण भी इतिहास द्वारा समर्थित हैं तो कथाकार की सत्यनिष्ठा और कथा की वास्तविकता के प्रति उसका मन विश्वासी बन जाता है और उपन्यास में प्रयुक्त थोड़ी सी कल्पना के प्रति वह किंचित् उदार हो जाता है । किन्तु उपन्यासकार को जहां एक ओर थोड़ी सी सुविधा मिल जाती है, वहां दूसरी ओर उसकी कठिनाइयों में भी वृद्धि हो जाती है । बहुधा देखा जाता है कि ऐतिहासिक घटनाएं अपनी सत्ता की पृथकता तथा अपने स्वरूप की वि[illegible]ता के प्रति इतनी सतर्क रहती हैं कि किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप को शंका दृष्टि से देखती हैं और उसके प्रति विरोध की मनोवृत्ति बनाये रखती हैं । यदि उपन्यासकार ने विषय की [illegible] अथवा किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनके प्रति थोड़ी सी भी असावधानी प्रदर्शित की अथवा उनके स्वरूप में [illegible] करने का प्रयत्न किया, तो वह पाठकों का विश्वास खो बैठता है । ऐतिहासिक [illegible]ओं में उपन्यास के रूप में ढल जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती । यह तो उपन्यासकार की कुशलता है जो उन्हें उपन्यास में ढलने के लिए बाध्य करती है । ऐसी अवस्था में उपन्यासकार को घटनाओं की यथातथ्यता और उनकी वास्तविकता के प्रति [illegible] रहना आवश्यक है ।

हिन्दी में शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या अत्यल्प है । वृंदावन

लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास "झाँसी की रानी", "महादजी सिंधिया" तथा "अहिल्याबाई", वृन्दावननारायण श्रीवास्तव का "बेकसी का मजार", सत्यकेतु विद्यालंकार का "आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य", रांगेय राघव का "चीवर" तथा गोविंद वल्लभ पंत का "अमिताभ" शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। परदेशी कृत "भगवान बुद्ध की आत्मकथा" भी शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है ।

(२) <u>मिश्र ऐतिहासिक उपन्यास:</u>

मिश्र ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार हर प्रकार के मिश्रण से काम लेता है अर्थात् अपनी सुविधानुसार वह वास्तविक तथा काल्पनिक पात्रों एवं ऐतिहासिक तथा [illegible] घटनाओं का सम्मिश्रण कर उपन्यास की रचना करता है। इस वर्ग के उपन्यासों की रचना में उपन्यासकार को प्रथम वर्ग की अपेक्षा में कुछ अधिक स्वतन्त्रता मिल जाती है, क्योंकि वह अपने किसी प्रयोजन या उद्देश्य की सिद्धि के लिए कल्पित घटनाओं और पात्रों की उद्भावना कर सकता है । किन्तु साथ-साथ एक खतरे की स्थिति भी इसके लिये उत्पन्न हो जाती है । यदि उपन्यासकार कल्पित पात्रों और घटनाओं को इस रूप में उपस्थित करता है कि वे ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह से प्रभावित प्रतीत हों, तो यह स्वाभाविक स्थिति है । किन्तु यदि ऐसा न होकर कल्पित पात्र और घटनाएं ही ऐतिहासिक प्रगति को प्रभावित करने लगें तो वह इतिहास से इतना अलग हो जायेगा कि फिर उसे ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा देने में भी संकोच होगा । [illegible] तथा इतिहास उन व्यक्तियों के भी जीवन को बहुत सूक्ष्म ढंग से प्रभावित करता है जो उससे दूर तथा तटस्थ रह कर जीवन व्यतीत करते हैं और जिन्होंने उसका नाम भी कभी नहीं सुना हो । अतः ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों की प्रगति द्वारा काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का प्रभावित होना ही स्वाभाविक स्थिति है ।

इतिहास और कल्पना के प्रयोग की प्रधानता की दृष्टि से इसप्रकार के उपन्यासों के दो भेद किये जा सकते हैं - प्रथम, जिसमें इतिहास प्रधान हो और [illegible] गौण, तथा [illegible], जिसमें कल्पना प्रधान हो और इतिहास गौण । यदि

इतिहास प्रधान हुआ तो कल्पना उसके द्वारा निश्चित और निर्धारित स्वरूप को और भी पुष्टता प्रदान करेगी, उसे अभिभूत करने का प्रयत्न नहीं करेगी, और, यदि कल्पना प्रधान हुई तो इतिहास उसके द्वारा निर्मित चित्र में रंग भर उसके स्वरूप को और भी स्पष्ट कर सम्मुख लाने का प्रयत्न करेगा - कल्पना ने जो रेखायें खींच दी है उसे मिटाने अथवा उसकी सीमा के बाहर जाने का प्रयत्न नहीं करेगा । वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक वर्ग उपन्यासों ("विराटा की पद्मिनी" तथा "कचनार" को छोड़कर) में इतिहास प्रधान है । जितने पात्र कल्पित हैं वे स्थिति को परिपुष्ट बनाते हैं - अधिक सक्रिय होकर घटना-प्रभाव को मोड़ने का प्रयत्न नहीं करते । चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासों की मुख्य विधायिका है कल्पना और इतिहास, कल्पना का सहायक मात्र है ।

इस कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या हिन्दी में सर्वाधिक है । जनार्दन सहाय का "लालचीन", वृन्दावनलाल वर्मा का "गढ़ कुण्डार", "मृगनयनी" तथा "टूटे कांटे", चतुरसेन शास्त्री का "वैशाली की नगरवधू" तथा "सोमनाथ" रामरतन भटनागर कृत "कल्पपाली", अमृतलाल नागर का "शतरंज के मोहरे" आदि उपन्यास इस वर्ग में रखे जा सकते हैं ।

(४) काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास:

यदि उपन्यासकार मूल कथानक इतिहास से ले और कल्पना से प्रधान पात्रों का सृजन कर उनका ऐतिहासिक कथानक पर आरोप करे अथवा ऐतिहासिक चरित्रों को लेकर उन्हें अनेक नूतन परिस्थितियों, परीक्षाओं में ले जाकर नितान्त कल्पित साहसिक कार्यों से सम्बद्ध कर उनकी प्रतिक्रियाओं का चित्रण करें तो ऐसे उपन्यासों को काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रख सकते हैं । इस श्रेणी के ऐतिहासिक उपन्यासकार को कल्पना-प्रसूत वस्तु अथवा पात्र को विश्वासोत्पादक ढंग से उपस्थित करने में बड़े ही कौशल से काम लेना पड़ता है । इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएं घटित होती हैं जो देखने में असम्भव एवं अविश्वसनीय सी लगती हैं किंतु हमें उन पर विश्वास करना ही पड़ता है । क्योंकि, इतिहास की साक्षी का समर्थन उन्हें प्राप्त है । किन्तु कल्पना को तो अपना साक्ष्य स्वयं देना पड़ता है । ऐसी

स्थिति में यह आवश्यक है कि कल्पित घटनाओं अथवा पात्रों को इस रूप में उपस्थित किया जाय कि पाठक सहज ही उस पर विश्वास कर ले । यदि कल्पित घटनाओं और पात्रों को उपन्यासकार ऐतिहासिक सम्भावनाओं के अनुरूप स्वरूप न दे सका तो कृति को ऐतिहासिक उपन्यास कहने का कोई अर्थ ही नहीं होता । वातावरण की ऐतिहासिकता इस श्रेणी के उपन्यासों का प्रधान तत्व है ।

इस सन्दर्भ में एक अन्य बात भी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है । पाठक-वर्ग संस्कारतः परिस्थितिबद्ध होता है । परम्परा से सुनते आने के कारण किसी घटना या पात्र के प्रति उसके भाव दृढ़ तथा मानसिक संस्कार बद्ध-मूल हो जाते हैं । उसको वह एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने के लिए अभ्यस्त हो जाता है और उसकी एक विशिष्ट मूर्ति उसके मानस-पटल पर अंकित हो जाती है । ऐसी अवस्था में उस मूर्ति पर आघात करने वाले तथा उसके स्वरूप को छिन्न-भिन्न करने वाले साहित्य को स्वीकार करने के लिए वह सहज ही तैयार नहीं होता । अतः घटनाओं और पात्रों की कल्पना पाठक के मानस-पटल में स्थित विशिष्ट मूर्ति के अनुकूल ही होनी चाहिए ।

इस श्रेणी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वृंदावनलाल वर्मा का "विराट की पद्मिनी" तथा "कचनार", राहुल सांकृत्यायन का "सिंह सेनापति" तथा "जय यौधेय", हजारी प्रसाद द्विवेदी का "बाण भट्ट की आत्मकथा" उल्लेखनीय कृतियाँ हैं । "विराट की पद्मिनी" तथा "कचनार" की घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और कल्पित पात्रों का उन पर आरोप किया गया है । "सिंह सेनापति" तथा "बाण भट्ट की आत्मकथा" के प्रमुख पात्र (नायक) ऐतिहासिक हैं और घटनाएँ कल्पित हैं ।

(४) <u>स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यास:</u>

स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र और कथानक दोनों ही कल्पना-प्रसूत अथवा "काल्पनिक" होते हैं और कथाकार अपनी सृजनात्मक कल्पना द्वारा उनको इतिहास से भिन्न स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत करता है । किन्तु सारे पात्र काल्पनिक होते हुए भी अपने कार्य किसी विशुद्ध देश-काल और वातावरण में ही करते हैं । इस प्रकार

के उपन्यासों में, वस्तुतः ऐतिहासिक काल और वातावरण ही वह तत्व है जो उन्हें ऐतिहासिक [illegible] की श्रेणी में प्रतिष्ठित करता है । अतः ऐसे उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण प्रधान तत्व रहता है और इनकी सफलता बहुत अंश में ऐतिहासिक वातावरण के उपयुक्त एवं सफल चित्रण पर ही निर्भर करती है ।

इस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासों की संरचना में कथाकार को कुछ सुविधा अवश्य मिल जाती है और उसे घटनाओं तथा पात्रों को मनोवांछित तथा अभीष्ट ढंग से उपस्थित करने की स्वतंत्रता रहती है, किन्तु उसे इस बात का अवश्यमेव ध्यान रखना पड़ता है कि पात्रों का व्यवहार तथा घटनाओं का विकास ऐतिहासिक वातावरण के प्रतिकूल न हो, वरन् अनुकूल हो । इस पद्धति में उपन्यास-कार को इतिहास द्वारा प्राप्त सहज विश्व[illegible]कता एवं सत्यता के बल को खो देना पड़ता है और इस क्षति की पूर्ति के लिए उसे इतिहास का आभास देना पड़ता है अर्थात् उसे पात्रों के नाम ऐसे रखने पड़ते हैं जो कथा-काल के नामों का आभास दें, ऐसी घटनाओं की कल्पना करनी पड़ती है जो कथा-काल की जीवन-दशा में सम्भव हों। इसी प्रकार सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन-दशा के चित्रण द्वारा इतिहासाभास उत्पन्न करना पड़ता है ।

हिन्दी में इस श्रेणी के ऐतिहासिक उपन्यासों की भी संख्या बहुत कम है । यशपाल का "दिव्या", रांगेय राघव का "मुर्दों का टीला" तथा "अँधेरे के जुगनू" निराला का "प्रभावती" आदि [illegible]स इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं ।

[illegible]स में इतिहास और कल्पना के सम्बन्ध तथा प्रयोग के अनुपात और उसके स्वरूप के आधार पर ऐतिहासिक [illegible]पन्यासों के, वस्तुतः, उतने ही भेद हो सकते हैं जितने [illegible]पन्यास । किन्तु सुविधा की दृष्टि से मोटे तौर पर ऐतिहासिक [illegible]पन्यास के जितने भेद ऊपर किये गये हैं, वे अपने आप में स्पष्ट और परिपूर्ण कहे जा सकते हैं । इस सन्दर्भ में यहाँ यह कह देना भी असंगत न होगा कि किसी भी निरन्तर [illegible]पन्यास कथा को किसी एक कोटि अथवा वर्ग के भीतर [illegible] नहीं किया जा सकता । स्वतंत्र रूप से [illegible]नक और पात्रों के कभी-कभी, कई स्वरूप खोजे जा सकते हैं जो ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहास की पूर्ण अनुकृति नहीं कहे जा

सकते । ऐसे स्वरूपों के सूक्ष्म-भेद को भूलकर हम उन्हें भी उपर्युक्त वर्गों के अन्तर्गत रख सकते हैं । कभी-कभी उपन्यासकार इतिहास के दो-तीन या उससे अधिक छोटे-छोटे कथानकों को आवश्यक कार्य-कारण-[illegible]तियों से सम्बद्ध करके एक सूत्र में पिरो देते हैं और उन्हें पूर्ण ऐतिहासिक सम्भाव्यता से अनुप्राणित भी कर देते हैं। "विराटा की पद्मिनी" तथा "कचनार" इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । इसी प्रकार कभी दो-तीनों पात्रों के सम्मिश्रण द्वारा एक चरित्र भी बना दिया जाता है । इसमें संदेह नहीं कि कठोर ऐतिहासिकता की दृष्टि से इस प्रकार का सम्मिश्रण दोष माना जायगा, किन्तु यदि इस प्रकार के पात्र या कथानक उपन्यास की ऐतिहासिक सम्भाव्यता को अक्षुण्ण रखते हों तथा अप्रधान एवं गौण हों अथवा अल्प परिचित एवं अपरिचित हों तो उक्त दोषों को उपन्यासकार की सृजनात्मक प्रतिभा का अंश मानकर, उससे उसे मुक्त किया जा सकता है । इतनी छूट तो कलाकार को मिलनी ही चाहिए ।

अध्याय : चार

इतिहासमूलक कल्पना और इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याएं

(क) इतिहास तथा इतिहासमूलक कल्पना- कल्पना और उसका स्वरूप, कल्पना और स्मृति, इतिहास और इतिहासमूलक कल्पना ।

(ख) इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याएं—ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का संकलन, संगति और सम्बन्ध-निर्धारण, ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं की व्याख्या में सावधानी, ज्ञात घटनाओं एवं तथ्यों के पीछे मानवीय भावनाओं की परिकल्पना, उद्देश्य का आरोप तथा दृष्टिकोण, काल तथा संस्कृति बोध, इतिहास और कल्पना के बीच सन्तुलन ।

(क) इतिहास और इतिहासमूलक कल्पना

कल्पना और उसका स्वरूप:

पीयर्स [illegible] (Pear's Cyclopaedia, 1921) के सम्पादक ने "कल्पना" (Imagination) की परिभाषा देते हुए लिखा है कि -

"Imagination is the creative power and faculty enabling the mind to picture to itself scenes, events, and persons of which a person may hear or read, and in its more intense form constitutes. The genius by which the poet, the novelist, the historian, the painter and the musician attain their idealisation."

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार कल्पना पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना है अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की मानस-क्रिया या शक्ति है । यह शक्ति न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है । मनुष्य के अगणित कार्य-व्यापारों, जैसे विज्ञान-वेत्ता के सिद्धान्त- परिकल्पन, कलाकार के कला-सृजन, इतिहासकार के इतिहास-लेखन आदि में [illegible] का म[illegible]पूर्ण योग रहता है । क्षीर-सागर, कल्पवृक्ष, स्वर्ण-मृग आदि अननुभूत पदार्थ कल्पना द्वारा ही अनुभवगम्य होते हैं । वरन मनोविज्ञान के अनुसार "अचेतन" अनुभूतियों से भी कवि और कलाकार अपनी कृति के लिये [illegible] सामग्री पाते हैं । इस सामग्री का संकलन भी कल्पना के योग की ही वस्तु है । संगीत, मूर्ति, चित्र, स्थापत्य जैसी कलाओं में भी ध्वनि, रूप आदि का नवीन सं[illegible] [illegible]ना पर निर्भर रहता है । सुन्दर वस्तु में अंगों का [illegible] और सन्तुलन तथा [illegible] भाव और भाव की एकता इसी के कारण [illegible] है ।

[illegible] विविध सन्दर्भों में प्रयुक्त होने पर कल्पना के विविध प्रकार हो जाते हैं, जैसे—पौराणिक [illegible]ना, यथार्थ [illegible], [illegible]त्मक [illegible]ना, वैज्ञानिक कल्पना

और [illegible] कल्पना आदि । पौराणिक कल्पना में देव, दानव आदि स्थिर धार्मिक प्रतीकों का माध्यम लिया जाता है । इसमें शाप, वरदान, [illegible], नर्क, स्वर्ग आदि की निश्चित धारणाएं कल्पना द्वारा ही उत्पन्न की जाती हैं अथवा अनुभूत सत्यों को लेकर प्रतीकात्मक कथाएं रची जाती हैं । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से "पुराण मनुष्य की उन कल्पनाओं का जातीय रूप है जो जगत् के व्यापारों को समझने में बुद्धि के कुण्ठित होने पर उद्भूत हुई थी और दीर्घ काल तक जातीय [illegible] के रूप में संचित होकर विश्वास का रूप धारण कर गयी हैं[1] ।"

यथार्थ कल्पना का सबसे बड़ा तत्व सम्भाव्यता है । इसकी [illegible] भी सम्भव से परे नहीं है । इसमें कार्य-कारण [illegible] पर विशेष बल रहता है और अज्ञात वस्तुतत्व कम से कम रखा जाता है । इसके भीतर जो रहस्यात्मकता होती है, उसे भी बौद्धिक संगति और व्याख्या देने की चेष्टा रहती है । यथार्थ कल्पना में प्रत्यक्ष, भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक [illegible] एवं सन्दर्भों का समावेश रहता है और [illegible] जीवन में अनुभव होने वाले परिवेश अथवा परि-स्थिति के समान ही वातावरण कल्पित किया जाता है । यथार्थ कल्पना अनुभव की बेड़ियों से जकड़ी होती है और व्यक्त संसार अथवा बाह्य पदार्थों तथा अनुभवजन्य बौद्धिक क्रिया का प्रतिबिम्ब [illegible] इसका मुख्य धर्म होता है ।

काव्यात्मक कल्पना में भाव पक्ष और संवेदन पक्ष प्रमुख होता है और उनके संयुक्त होने पर ही वस्तु का अस्तित्व माना जाता है, अन्यथा नहीं । इसमें अनुभूति का क्षेत्र [illegible] और परम्परा[illegible] दोनों प्रकार का होता है तथा कवि-समय कवि के लिए प्रत्यक्ष माने जाते हैं । [illegible]त्मक कल्पना, तत्वतः पौराणिक [illegible] के निकट होती है और दोनों में अन्तर केवल यह होता है कि पुराणकार कल्पना में सत्य का आरोप करता है, जबकि कवि सत्य में [illegible] का आरोप करता है । कवि की [illegible]ना जहां विश्वास का रूप धारण कर लेती है, वहां वह काव्य न होकर [illegible] बन जाती है । [illegible] की [illegible] तथा सत्य को गाढ़ भाव से

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृ० ८६ ।

अनुभव करने का साधन बनी रहती है, स्वयं सत्य को आच्छादित करके प्रमुख स्थान पर अधिकार नहीं कर लेती[1] ।"

<u>कल्पना और स्मृति:</u>

कल्पना और स्मृति का संबंध अविच्छिन्न है और दोनों का आधार प्रत्यक्ष ज्ञान है । स्मृति मानस की वह क्रिया या शक्ति है जिसके माध्यम से हमारे मन में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का ज्यों का त्यों प्रतिबिम्ब होता है । स्मृति, प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभव को ठीक उसी रूप में उपस्थित करती है । वह वस्तुओं की अवस्था, उनके रूप, रंग, गति आदि में कोई परिवर्तन नहीं करती । कल्पना भी अनुभूत विषयों की ही पुनर्योजना करती है, किन्तु वह उनकी अवस्था को मनमाना रूप देती है, नया क्रम देती है[2]। स्पष्ट है कि स्मृति अनुकरण मात्र है और कल्पना, सम्भावना या परिष्कार है । स्मृति का प्रवाह अतीत की ओर होता है और कल्पना में अतीत का कोई बन्धन नहीं होता, वह स्वभावतः [illegible] है । कल्पना में सदैव इच्छा का योग रहता है और प्रयोजन की पूर्ति उसका लक्ष्य होता है । मर्फी के अनुसार कल्पना अप्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति की एक कौशलपूर्ण योजना है[3]।

कल्पना और स्मृति का संबंध इन विभिन्नताओं के बावजूद भी अत्यन्त घनिष्ठ है । स्मृत अनुभवों और रूपों का आधार लेकर ही नयी कल्पना नव मूर्ति का विधान और अनागत की योजना करती है । कहा जा सकता है कि स्मृति कल्पना की सीमा-रेखा नहीं, आधार भूमि है ।

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य का साथी, पृ०१६ ।

२- श्री केदारनाथ सिंह: कल्पना और छायावाद, पृ०१५ ।

३- We imagine in order to satisfy needs. Imagination is a mode of adaption arising from tension or want and under going the same process of trial and error activity. Imagination is a device for attaining unattainable goals.
- Murphy (Reproduced from 'Kalpana Aor Chhayabad" p.16)

इतिहास और इतिहासमूलक कल्पना

इतिहास में कल्पना का संबंध इस लोक के मानवीय कार्यों और उनके परिणामों के अवबोधन से रहता है । इतिहास-संरचना में प्रयुक्त कल्पना को विद्वानों ने "इतिहासमूलक कल्पना" नाम दिया है । इतिहासमूलक कल्पना से एम० वाइट का तात्पर्य है "अतीत के भीतर प्रविष्ट होने, उसे समझने तथा उसका पुनर्विधान करने की आकांक्षा ।" टी० रोपर ने "इतिहासमूलक कल्पना" की व्याख्या करते हुए उसे विदेशीय तथा सुदूर अतीत के व्यक्तियों की चेतना में [illegible] हो सकने की क्षमता बताया है । उसके कथनानुसार इसका प्रयोग करने का आशय है ऐसे लोगों की चेतनाओं और भावनाओं में हमें प्रवेश दिला देना जो कि एक विशेष दृष्टि से हमसे अत्यधिक पृथक होते हैं । उनका विश्वास है कि यदि हम अतीत की यथावत उपस्थापना की जगह उसकी अपने संदर्भ में महत्वपूर्ण उपस्थापना चाहते हैं तो यह अनिवार्य है[1] । इतिहास मूलक कल्पना के लिए डिल्थे ने अवबोधन ("[illegible]") शब्द का प्रयोग किया है और जैसा कि एच० पी० रिकमैन का विचार है, रोपर की "इतिहासमूलक कल्पना" की धारणा डिल्थे की "अवबोधन" की धारणा से अभिन्न है[2] । रोपर के अनुसार

---

1. By the 'historical imagination' Mr. Wight means 'the desire to enter the past, to understand it, to re-enact it...Professor T.Roper defines historical imagination as "the capacity to migrate into distant, foreign minds' and he asserts that its use means 'Making (the past) fully intelligible to us, by enabling us to enter, as it were, into the minds and passions of people who, in some way, seem very different from us and this, he believes, is necessary if we are to get, not merely accurate presentation, but significant presentation.

   -Meaning in history (Edited and introduced by H.P.Rickman), page 43.

2. Ibid, page 43-44.

"इतिहासमूलक कल्पना" ही इतिहासकार की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह इतिहास के साक्ष्यों के संचयन, व्यवस्थापन तथा व्याख्या में समर्थ होकर अतीत को बोधगम्य बनाता है ।

ऐतिहासिक अनुसंधान में कल्पना के प्रयोग की बात ऐसी है जो अनेक प्रकार के प्रश्नों को जन्म देती है । क्या यह अनुशासनबद्ध उपागम (डिसिप्लिंड एप्रोच) का आधार बन सकती है ? ऐतिहासिक साक्ष्यों अथवा प्रमाणों के संग्रहण-संचय तथा व्याख्या में यह कौन-सी भूमिका अभिनीत करती है ? ये प्रश्न ऐसे हैं जिन पर, इस संदर्भ में, विचार-विमर्श करना आवश्यक है ।

यों तो कल्पना का क्षेत्र अत्यंत विशाल है किंतु विभिन्न क्षेत्रों में इसका प्रयोग अनुशासन की विभिन्न मात्राओं में किया जाता है । दिवास्वप्न अथवा रोमांस-लेखन में यह प्रायः अनियंत्रित होती है किंतु विज्ञान संबंधी सिद्धांत-परिकल्पन अथवा ऐतिहासिक अनुसंधान में इनके विभिन्न प्रकार की बौद्धिक प्रक्रियाओं से संबद्ध तथा प्राप्त उपकरणों से संबंधित होने के कारण इसका नियंत्रित होना आवश्यक है । दूसरे शब्दों में, वह इतिहासकार, जो कल्पनात्मक रूप से किसी ऐतिहासिक चरित्र के मस्तिष्क में अथवा किसी युग की आत्मा में प्रवेश पा लेने का दावा करता है और किसी व्यक्ति या युग के विचारों, अभिप्रायों अथवा भावनाओं का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण प्रस्तुत करता है, उसके लिए अपने निष्कर्षों की पुष्टि में तत्कालीन पत्रों, व्याख्यानों तथा समसामयिक लेखों के रूप में प्रमाण प्रस्तुत करना आवश्यक है ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐतिहासिक चिंतन एक दृष्टि से ज्ञान की तरह है । अपने [illegible] गौरव के लिए चिंतन का प्रत्येक प्रकार कोई न कोई विशिष्टता रखता है । यहाँ इस क्षण, इस कमरे में बैठे हुए जिस वस्तु का मुझे प्रत्यक्ष बोध होता है, वह यह कमरा है, यह टेबुल है, यह कागज है, यह कलम है । इतिहासकार जिस वस्तु का चिंतन करता है, वह अशोक अथवा अकबर है, उसके क्रिया-कलाप हैं, उसकी नीति है । ऐतिहासिक चिंतन का [illegible] [illegible] से कहना है [illegible] घटित होना समाप्त हो चुका है और घटित होने की

अवस्थाएं अब अस्तित्व में नहीं रह गयी हैं । घटनाएं केवल उसी अवस्था में ऐतिहासिक चिंतन की परिधि में आती हैं जब वे और अधिक प्रत्यक्ष बोधगम्य नहीं रह जातीं । अतः ज्ञान के वे संपूर्ण सिद्धांत, जो प्रत्यक्ष परिचय को ही ज्ञान-तत्व समझते हैं, इतिहास को असंभाव्य बना देते हैं ।

दूसरी दृष्टि से, इतिहास, विज्ञान के सदृश होता है, क्योंकि दोनों में ज्ञान अथवा जानकारी तर्कसिद्ध होती है । किंतु जहां विज्ञान अव्यक्त सामान्य स्थापनाओं के जगत में विचार करता है जो एक अर्थ में प्रत्येक स्थल पर हैं और दूसरे अर्थ में कहीं नहीं है, जो एक अर्थ में सभी समय में है और दूसरे अर्थ में किसी समय में नहीं हैं, वहां इतिहासकार उन्हीं वस्तुओं एवं कार्यों के संबंध में विचार-विमर्श करता है अथवा तार्किक ढंग से निष्कर्ष निकालता है जो अव्यक्त न हो कर यथार्थ और ठोस होते हैं, सार्वजनीन न होकर वैयक्तिक होते हैं । वे काल और स्थान की सीमा से परे न होकर उससे बंधे होते हैं- किन्तु वह काल और स्थान" अब" और "यहां" न होकर "तब" और "वहां" होता है । अतः इतिहास को उन सिद्धांतों के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता जिनके अनुसार ज्ञान का विषय अमूर्त और स्थिर होता है ।

इतिहास के पीछे एक सामान्य ज्ञान- सिद्धांत रहता है जिसके अनुसार इतिहास में दो मूल-भूत बातें होती हैं- स्मृति व तथा प्रमाण पुरुष या आप्त व वचन । यदि कोई घटना या कार्यावस्था ऐतिहासिक रूप में ज्ञात है तो सर्वप्रथम उसे कोई अवश्य ही परिचित हुआ होगा, फिर, उसने उसको अपनी स्मृति में सुरक्षित रखा होगा, फिर उसने उसको किसी अन्य व्यक्ति से कहा होगा अथवा लिपिबद्ध कर दिया होगा, और अंत में उस दूसरे व्यक्ति ने पहले व्यक्ति के कथन को सत्य स्वीकार कर लिया होगा । इस प्रकार इतिहास, किसी अन्य की स्मृति पर विश्वास करना है । विश्वासकरने वाला इतिहासकार है और जिस पर विश्वास किया गया वह उसका प्रमाण-पुरुष और उसका कथन आप्त वचन है ।

यह सिद्धांत ध्वनित करता है कि ऐतिहासिक सत्य, जहां तक वह इतिहासकार को किसी भी दशा में सुलभ है, उसे केवल इसलिए सुलभ है, क्योंकि वह अपने प्रमाण-पुरुषों के पूर्व निष्पन्न कथनों के अंतर्गत बने-बनाये रूप में विद्यमान रहता है । ये कथन अथवा वचन उसके लिए एक पवित्र पाठ सदृश होते हैं जिनका मूल्य पूर्णतः उस पाठ-परंपरा की अखंडता पर आधारित रहता है जिसे वे प्रस्तुत करते हैं । अतः उसको उनमें किसी भी प्रकार का सम्मिश्रण नहीं करना चाहिए, और न परिवर्तन-परिवर्धन करना चाहिए । इस सिद्धांत के अनुसार इसके अतिरिक्त जो सबसे बड़ी बात है वह यह है कि इतिहासकारको कभी भी उनका प्रतिवाद नहीं करना चाहिए । क्योंकि यदि वह अपने आप ही संचयन करने तथा यह निश्चित करने का साहस करता है कि उसके प्रमाण-पुरुषों के कुछ कथन महत्वपूर्ण हैं और कुछ महत्वहीन, तो उसका अभिप्राय यह होता है कि वह अपने प्रमाण-पुरुषों की आलोचना कर रहा है और कोई अन्य निष्कर्ष निकाल रहा है । इस सिद्धांत के अनुसार उसका यह कार्य निश्चित ही ऐसा है जिसको करने का उसको अधिकार नहीं । यदि वह उनमें कुछ जोड़ता है, अपने निर्माण-कौशल के प्रदर्शन हेतु कुछ प्रक्षेप करता है और उन्हें अपने ज्ञान के अतिरिक्त रूप में स्वीकार करता है तो उसका अर्थ यह होता है कि वह किसी कारणवश प्रमाण-पुरुष के कथनों की अपेक्षा किसी अन्य बात पर विश्वास कर रहा है । उसका यह कार्य भी सिद्धांतानुसार ही उसकी अधिकार सीमा के बाहर है । सर्वाधिक चिंतनीय अवस्था तब की है जब कि वह अपने प्रमाण-पुरुषों का प्रतिवाद करता है और यह निश्चय करने का साहस करता है कि प्रमाण-पुरुषों ने वस्तुओं को गलत ढंग से प्रस्तुत किया है, वह उनके कथनों को अविश्वसनीय समझकर उनको स्वीकार करते हुए विपरीत बातों पर विश्वास करता है और अपनी पद्धति के नियमों के विपरीत एक निम्नतम कोटि का अपराध करता है । संभव है कि प्रमाण-पुरुष वाचाल एवं अर्थवादी रहा हो, [illegible], इधर-उधर की कथा [illegible] बातें करने वाला रहा हो, यह भी संभव है कि उसने जान-बूझ कर या अज्ञान में ही वस्तुओं को गलत ढंग से प्रस्तुत किया हो, किंतु इन सब चीजों के सम्मुख इतिहासकार [illegible] है । इस सिद्धांतानुसार जो कुछ उससे प्रमाण-पुरुष ने कह दिया है,

इतिहासकार के लिए वही सत्य है और संपूर्ण प्राप्य सत्य है, और कुछ नहीं ।

सामान्य ज्ञान-सिद्धांत के आधार पर निकाले गये इतिहास के जिन परिणामों की चर्चा ऊपर की गयी है, उसे कोई भी इतिहासकार संभवतः स्वीकार नहीं करेगा । प्रत्येक इतिहासकार यह जानता है कि अवसर पाने पर वह प्रमाण-पुरुष के कथनों में उपर्युक्त तीनों पद्धतियों के अनुसरण-क्रम में अपनी ओर से कुछ न कुछ संपादन करता है । वह उनमें से जिन्हें महत्वपूर्ण समझता है, उनका चयन करता है और शेष को छोड़ देता है । वह उन बातों को अंतर्विष्ट करता है जो प्रमाण-पुरुषों द्वारा स्पष्ट रूप से नहीं कही गयी हैं । वह जिन प्राप्त वचनों को मिथ्या समझता है, उनका संशोधन अथवा अस्वीकरण कर आलोचना करता है । वस्तुतः प्रत्येक इतिहासकार सामान्य ज्ञान-सिद्धांत को स्वीकार करते हुए भी संचयन, निर्माण तथा आलोचनाओं के अपने निजी अधिकारों का प्रयोग करता है । निस्संदेह उसके ये अधिकार तथाकथित सिद्धांत के प्रतिकूल हैं, किंतु प्रमाण-पुरुषों के कथनों की असंगतियों एवं प्रतिवादों को यथासंभव कम करने के लिए उसकी कार्य-पद्धति के ये अनिवार्य अंग हैं । इतिहासकार द्वारा अपने इन निजी अधिकारों का प्रयोग एक प्रकार का बौद्धिक विद्रोह है जिसको करने के लिए वह प्रमाण-पुरुषों की असामान्य अपर्याप्तता द्वारा बाध्य कर दिया जाता है, फिर भी वो उसकी स्वाभाविक, शांतिमय एवं आस्थावान शासन-पद्धति को विशृंखल नहीं बनाता ।

इतिहासमूलक कल्पना अथवा कॉलिंगवुड की शब्दावली में ऐतिहासिक चिंतन की वैयक्तिक स्वतंत्रता अपने सर्वाधिक सहज रूप में संचयन-कार्य में देखी जा सकती है। वह इतिहासकार, जो सामान्य ज्ञान-सिद्धांत के अनुसार कार्य करने तथा अपने प्रमाण-पुरुष के कथनों को ठीक उसी रूप में पुनरुत्पन्न करने का प्रयत्न करता है, एक ऐसे परिदृश्य-चित्रकार के समान होता है जो चित्रकला के उस सिद्धांतानुसार कार्य करने का प्रयत्न करता है । उसका लक्ष्य प्रकृति का अनुकरण करना है। परिदृश्य का अंकन करते समय चित्रकार प्राकृतिक वस्तुओं के वास्तविक रूप-रंग का अनुकरण तो करता है किंतु ऐसा करते समय वह सर्वदा संचयन, सरलीकरण तथा व्यवस्थापन का आधार लेता है । चित्र में जो कुछ अंकित होता है, उसका

उत्तरदायी प्रकृति नहीं, वरन् कलाकार होता है । इसी प्रकार कोई भी इतिहासकार, चाहे वह अति सामान्य ही क्यों न हो, अपने प्रमाण-पुरूषों का केवल अनुकरण ही नहीं करता । यद्यपि वह अपने मन से भी कोई चीज़ नहीं भरता है, किंतु वह उन बातों को हमेशा छोड़ देता है जिन्हें आवश्यक नहीं समझता । अतः जब वह इतिहास लिखता है तो उसमें वर्णित बातों का उत्तरदायी वह होता है न कि प्रमाण-पुरूष । इस प्रश्न पर वह स्वतंत्र है[1] ।

इतिहासकार के संचयन-कार्य के संदर्भ में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि वह अगणित घटनाओं में से, जो काल की अनंत प्रक्रिया में घटित होती हैं, क्या चुने और क्या छोड़ दे, किसे ऐतिहासिक दृष्टि से संगत माने और किसी असंगत । जैसा कि ऊपर हम संकेत कर चुके हैं, इतिहासकार अपने अनुशीलन-विषय में से जो कुछ चयन करता है, उसमें स्पष्ट रूप से व्यक्ति-परकता होती है । वह उनमें से अपनी रूचि, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार तथा प्रकृति के अनुकूल ही चयन करता है और संभवतः अपने युग के पूर्वाग्रह से भी प्रभावित रहता है । यह संचयन देश और काल, अनुसंधान-सीमा तथा अध्ययन पक्ष की ओर संकेत करता है जो व्यवहारतः आवश्यक है, किंतु सिद्धांततः कम महत्व का होता है । यह इतिहासकार की निजी सीमाओं को प्रदर्शित करता है जो इतिहास में विभिन्न घटनाओं के तुलनात्मक महत्व के संबंध में किसी निर्णय की ओर संकेत नहीं करता ।

अब प्रश्न रह जाता है कि इतिहासकार महत्व एवं संगति की दृष्टि से कैसे संचयन करे? जैसा कि डिल्थे ने कहा है, अवबोधन अथवा इतिहासमूलक कल्पना हमें जीवन के भीतर पैठने की अंतर्दृष्टि देती है और संचयन, जो महत्व का निर्धारण करता है, जिये हुए मानव-जीवन का अनुगामी होता है । मानव-जीवन में [illegible] घटना घटित होती हैं, किंतु उनमें जो

- -

१- R.G. Collingwood : Idea of history, page 36-37.

अप्रमुख होती है, उन्हें हम भूल जाते हैं, जो प्रमुख होती हैं, जो व्यक्ति को
विकास के पथ पर आगे बढ़ाती है, जो युग पर अपनी छाप छोड़ जाती है तथा
स्मृति में जम जाती हैं, वे निर्दिष्ट होती है और कभी कभी सिद्ध हो जाती है।
जब हम किसी व्यक्ति, समूह अथवा किसी युग के संबंध में विचार करते हैं तो
हम पाते हैं कि न्यूनाधिक मात्रा में वे उन मूल्यों और आदर्शों के चारों ओर
केंद्रित रहते हैं जो महत्वपूर्ण होने के अधिकारी होते हैं। उक्त कारणों तथा
कारण-समूहों द्वारा विषयी-गत रूप से अधिकृत तथा इतिहासकार की कल्पना
द्वारा गृहीत ये मूल्य और आदर्श तथ्यों की महत्ता और संगति के विषयगत
निर्धारण के लिए कम से कम सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं-हालांकि ये सिद्धांत ही सब
कुछ नहीं है। इस बात को सही ढंग से रखने के लिए यह पूछना कि इतिहास में
अर्थशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र कैसे महत्वपूर्ण है, अति सूक्ष्म तथा संभवतः असंगत प्रश्न
है। किंतु प्राप्य प्रमाणों पर विचारमूलक कल्पना के प्रयोग द्वारा हम यह
निश्चय करने में समर्थ हो सकते हैं कि धर्म ने इतिहास में निश्चित भाग लिया है।
तब, वैयक्तिक धर्म अथवा युग-धर्म की विशेषताओं को जानना तथा धर्म की
कसौटी पर तथ्यों का मूल्यांकन और संचयन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।
एक ऐतिहासिक वातावरण में राजनीतिक दिशा-निर्देश करने वाले सूत्र प्रदान कर
सकती है, तो दूसरे युग में अर्थशास्त्र उसका महत्वपूर्ण भाग सिद्ध हो सकता है।
दूसरे शब्दों में, इतिहासकार तथ्यों के संचयन तथा वर्गीकरण में अप्रसिद्ध घटनाओं
से प्रारंभ नहीं करता है। जिस ऐतिहासिक घटना-धारा के मूल-स्रोत का पता
लगाने का वह प्रयत्न करता है, वह पहले ही उस धारा में भाग लेने वाले व्यक्तियों
द्वारा अभिप्रायपूर्णता के साथ अनुभव किया जा चुका है, उन्होंने पहले ही तथ्यों
का संचयन तथा उनकी व्याख्या एवं अपने कार्यों का मूल्यांकन कर लिया है। ये
व्याख्याएं तथा मूल्यांकन इतिहासकार के लिए केवल आँखों-देखे ऐतिहासिक वर्णन
के रूप में ही यहाँ नहीं है वरन् वैधानिक नियमों, व्यापारिक व्यवहारों,
स्मृतियों, आलेखों, [illegible], कविताओं, चित्रों आदि के रूप में भी सुरक्षित
है। चूंकि इतिहासकार इन प्रमाण-सामग्रियों की व्याख्या कल्पनात्मक रूप से

करता है, अतः वह केवल अपरिचित व्यक्तियों के मस्तिष्क में ही प्रवेश नहीं करता, वरन् घटनाओं के बीच के संबंधों तथा स्वरूपों को भी उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे भाग लेने वाले व्यक्तियों के सम्मुख आये थे[1] ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ऐतिहासिक चिंतन की व्यक्तिक स्वतंत्रता सर्वाधिक सहज रूप में उद्धरणों के संचयन-कार्य में देखी जा सकती है । इतिहासकार की इस स्वतंत्रता का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट प्रदर्शन उसके ऐतिहासिक निर्माण में पाया जाता है । मान लीजिए कि इतिहासकार के प्रमाण-पुरुष किसी ऐतिहासिक प्रक्रिया की बीच की अवस्था को अवर्णित छोड़ देते हैं और केवल इधर और उधर की अवस्था को ही बताते हैं । तब, बीच की अवस्था को वह अपनी कल्पना द्वारा ही पूर्ण कर सकता है । इतिहासकार का यह चित्र-भाग, यद्यपि वह इसमें अपने प्रमाण-पुरुषों के प्रत्यक्ष कथनांशों को रख सकता है, उसके उन निजी कथनों से भी युक्त होता है जो उसके अपने सिद्धांतानुसार, उसकी अपनी पद्धति तथा प्रसंगानुकूलता के नियमों के अनुसार तर्कपूर्ण एवं अनुमानात्मक होते हैं । अपने कार्य के इस भाग में वह अपने प्रमाण-पुरुषों पर कभी भी आधारित नहीं रहता । अपने कथनों का प्रमाण वह स्वयं अपने आप होता है और अपनी ही शक्तियों पर आश्रित रहता है ।

इतिहासकार की व्यक्तिक स्वतंत्रता का सर्वाधिक स्पष्ट रूप उसकी इतिहास-[illegible] आलोचना में पाया जाता है । जिस प्रकार वैज्ञानिक अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए प्रयोग द्वारा प्रकृति को सताता है और तब [illegible] को एक समुचित पद्धति मिल जाती है, उसी प्रकार इतिहास भी तब अपनी एक तर्कसंगत व्यवस्था पा लेता है जबकि इतिहासकार अपने प्रमाण-पुरुषों को कठघरे में खड़ा करके प्रश्नों-[illegible] द्वारा उनसे अनेक ऐसी [illegible] सूचनाएँ निकलवा लेता है जिनको उन लोगों ने अपने आप्त वचनों में इसलिए नहीं व्यक्त किया, क्योंकि वे उनको छिपाना चाहते थे अथवा उनको उनका ज्ञान ही नहीं था ।

१- H.P.Rickman: Meaning in History, page 47-48.

यहाँ इतिहासकार की [illegible] स्वतंत्रता अपने पूर्ण रूप में व्यंजित होती है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि एक इतिहासकार के गुणों से समन्वित होने के कारण उसमें यह सामर्थ्य है कि वह अपने प्रमाण-पुरुषों द्वारा कथित किसी बात को निश्चित रूप से अस्वीकार दे और उसके स्थान पर किसी दूसरी बात को प्रस्थापित कर दे । यदि ऐसा संभव है तो ऐतिहासिक सत्य की कसौटी यह बात नहीं हो सकती कि अमुक बात किसी प्रमाण-पुरुष द्वारा कथित है । प्रमाण-पुरुष की यह तथा-कथित विश्वसनीयता और उसके कथन ऐसे हैं जो विवादास्पद हैं । इतिहासकार के लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रश्न का उत्तर स्वयं दे । अतएव यदि वह अपने प्रमाण-पुरुष द्वारा कथित बात को स्वीकार कर लेता है तो वह अपने बल पर स्वीकार करता है । इसलिए स्वीकार करता है कि वह उसके ऐतिहासिक सत्य की कसौटी पर खरा उतरता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इतिहास को "स्मृति" और "प्रमाण-पुरुष" पर संस्थापित करने वाला सामान्य ज्ञान सिद्धांत कमज़ोर भित्ति पर आधारित और भ्रमपूर्ण है । इतिहासकार के लिए कोई प्रमाण-पुरुष नहीं हो सकता, क्योंकि तथाकथित प्रमाण-पुरुष उसी अभिमत पर दृढ़ रहते हैं जिसे केवल इतिहासकार प्रस्तुत कर सकता है । फिर भी, सामान्य ज्ञान-सिद्धांत किसी विशिष्ट तथा सापेक्ष सत्य के संबंध में [illegible] कह सकता है । और चूंकि इतिहास अपने प्रमाण-पुरुष पर आधारित नहीं होता, अतएव वह स्मृति पर भी आधारित नहीं है । इतिहासकार उन तथ्यों एवं घटनाओं की पुनः खोज कर सकता है, जो इस अर्थ में पूर्णतः विस्मृत कर दी गयी हैं कि उनसे [illegible] कोई भी कथन प्रत्यक्षदर्शियों की अटूट परंपरा द्वारा उसके पास नहीं पहुंचा है । वह उन घटनाओं का भी अनुसंधान कर सकता है जिनके घटित होने का ज्ञान उसके अनुसंधान के पहले किसी को भी नहीं था । यह कार्य वह कुछ तो अपने उपलब्ध [illegible] में आये हुए कथनों की [illegible] व्याख्या द्वारा करता है और कुछ अतिरिक्त साधनों के प्रयोग द्वारा । साध्य कथनों या लिखित साधनों का भी वह विभिन्न प्रकार की [illegible] से वास्तविक अर्थ निर्धारित करता है, क्योंकि उसके बिना उनका या तो कोई अर्थ ही नहीं रहता अथवा उन्हें किसी भी अर्थ में ग्रहण

किया जा सकता है । अर्थ निर्धारण की समस्या यद्यपि भाषा की समस्या है तथापि उसका समाधान इतिहासकार को ही करना पड़ता है । निश्चित रूप से उसके ये कार्य इतिहासमूलक कल्पना के ही अधीनस्थ रहते हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि ऐतिहासिक सत्य की कसौटी क्या है ? सामान्य ज्ञान-सिद्धांतानुसार यह इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत कथनों तथा उसके प्रमाण-पुरुषों एवं मान्य वचनों का पारस्परिक ऐक्य है, किंतु जैसा ऊपर हम देख चुके हैं, यह उत्तर भी भ्रमपूर्ण है । प्रसिद्ध दार्शनिक ब्रेडले ने "दि प्रीसपोजीशन आफ क्रिटिकल हिस्ट्री" नामक अपने एक प्रारंभिक निबंध में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है । यद्यपि बाद में वे उस उत्तर से संतुष्ट नहीं रहे, फिर भी वह उत्तर ऐसा नहीं है, जिसे विवेकरहित कहा जा सके । प्रस्तुत प्रश्न के संबंध में ब्रेडले महोदय का उत्तर था कि हमारा सांसारिक अनुभव यह शिक्षा देता है कि कुछ घटनाएं घटित होती हैं और कुछ नहीं घटित होतीं । यह अनुभव ही वह कसौटी है जिसपर इतिहासकार अपने प्रमाण-पुरुषों के कथनों को कस कर उनकी सत्यता की परख करता है । यदि उसके प्रमाण-पुरुष उससे कहते हैं कि अमुक प्रकार की घटनाएं घटित हुईं जो इतिहासकार के अनुभव के अनुसार नहीं घटित होती हैं, तो वह उन पर अविश्वास करने के लिए मजबूर है, और वे घटनाएं, जिनकी सूचना वे देते हैं, ऐसी हैं जो उसके अनुभव के अनुसार घटित होती हैं तो वह उनको स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है* ।

ब्रेडले महोदय के इस मत के विरोध में कई आपत्तियां उठायी जा सकती हैं। जैसा कि कॉलिंगवुड ने संकेत किया है, प्रस्तावित मापदंड अथवा कसौटी यह नहीं है कि क्या घटित हुआ, वरन यह है कि क्या घटित हो सका । वास्तव में यह काव्य में स्वीकरणीय अरस्तू के माप-दंड के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । अतएव यह इतिहास और कथा के भेद को स्पष्ट करने की क्षमता नहीं रखता । इस प्रकार यह मानदंड एक इतिहासकार के लिए जितना उपयोगी है, उतना ही एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए भी है । अतः यह वास्तविक इतिहास की कसौटी अथवा मानदंड नहीं हो सकता ।

---

* R.G.Collingwood: Idea of History,p238-39

दूसरी बात जिसकी ओर कालिंगवुड ने संकेत किया है वह यह है कि चूँकि यह मापदंड या कसौटी यह नहीं बता सकती कि क्या घटित हुआ, अतः उसके लिए हमें सूचना देने वाले के आधारभूत कथनों पर ही विश्वास करना रह जाता है। जब हम इसका उपयोग करते हैं तो उन सभी बातों को स्वीकार कर लेते हैं जिसे सूचना देने वाला बतलाता है, बशर्ते कि उनमें संभावना की तनिक भी गुंजाइश हो। यह अपने प्रमाण-पुरुषों पर अपराध लगाना नहीं है, वरन् उनकी बातों को आँख मूँद कर स्वीकार कर लेना है जो इतिहास की आलोचनात्मक प्रकृति के विपरीत है।

कालिंगवुड ने एक तीसरी बात भी ब्रेडले महोदय के मत के विरोध में प्रस्तुत की है। उसके मतानुसार इतिहासकार का उस संसार का अनुभव जिसमें वह रहता है उसे उसके प्रमाण-पुरुषों के केवल उन्हीं कथनों के परीक्षण में (निषेधात्मक रूप में भी) सहयोग दे सकता है, जहाँ तक वे इतिहास से संबंधित नहीं हैं, वरन प्रकृति से संबंधित हैं जिसका कोई इतिहास नहीं। [illegible] नियम हमेशा से यथावत रहे हैं। आज जो कुछ प्रकृति के विपरीत है वह दो हजार वर्ष पूर्व भी प्रकृति के विपरीत था। किंतु मनुष्य जीवन की प्राकृतिक परिस्थितियों से भिन्न, ऐतिहासिक परिस्थितियाँ विभिन्न युगों में एक दूसरे से इतनी भिन्न होती हैं कि प्रत्येक युग की परिस्थितियों पर एक ही सिद्धांत लागू नहीं हो सकता[1]। अतएव ब्रेडले महोदय की ऐतिहासिक सत्य की कसौटी पूर्णतया तर्कसम्मत नहीं कही जा सकती।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, इतिहासकार को अपने प्रमाण-पुरुषों के कथनों में से महत्वपूर्ण एवं प्रमुख कथनों के चयन के अतिरिक्त दो पद्धतियों से अपने प्रमाण-पुरुषों के कथनों की सीमा का आलोचन करना चाहिए। प्रथम पद्धति आलोचनात्मक है, जिसकी व्याख्या का प्रयत्न ब्रेडले महोदय ने किया है तथा दूसरी पद्धति रचनात्मक है। जैसा ऊपर हम कह चुके हैं, रचनात्मक इतिहास, प्रमाण-पुरुषों के कथनों तथा उनके द्वारा संकेतित अन्य

१- R.G.Collingwood: Idea of History, page 239.

कथनों के बीच प्रक्षेप (इंटरपोलेशन) है । तदनुसार, यदि हमारे प्रमाण-पुरुष यह कहते हैं कि महात्मा बुद्ध एक दिन वैशाली में थे और बाद के किसी दिन राजगृह में थे और इन दोनों स्थानों के बीच उनकी यात्रा के संबंध में कुछ नहीं बताते, तो हम अपने विवेक से उस बीच की उनकी यात्रा की कल्पना से पूरा कर सकते हैं ।

प्रक्षेप के इस कार्य में दो महत्वपूर्ण विशेषताएं होती हैं । प्रथमतः, यह किसी प्रकार, स्वच्छंद अथवा मात्र काल्पनिक नहीं है वरन अपरिहार्य है । कांट की शब्दावली में इसे "प्रागनुभव" (अ प्रायराइ) कह सकते हैं । यदि हम महात्मा बुद्ध के कार्यों के वृत्तांतों को अपने काल्पनिक विवरणों, जैसे उन मनुष्यों के नाम जिनसे बुद्ध मार्ग में मिले थे, उनके पारस्परिक संवाद आदि से भरते हैं तो यह संरचना स्वच्छंद होगी । वास्तव में यह ऐसी संरचना होगी जो ऐतिहासिक उपन्यासकार द्वारा की जाती है । किंतु यदि इतिहासकार की संरचना में ऐसी ही बातें सम्मिलित हैं जिनको साक्ष्य के आधार पर मान लेना अनिवार्य हो जाता है तो यह एक प्रकार का यथार्थ ऐतिहासिक निर्माण है जिसके बिना इतिहास हो ही नहीं सकता । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इतिहास के रचनाक्रम में साक्ष्य स्वयं अपने को विस्तारित और संगठित करने की प्रेरणा इतिहासकार को देता है । जो इतिहासकार साक्ष्य का जितना अनुसरण करता है, वह उतना ही प्रामाणिक माना जाता है ।

द्वितीयतः, इस पद्धति में जो कुछ निर्णीत है वह अनिवार्यतः [illegible] है । यदि हम समुद्र की ओर दृष्टिपात करते हैं और एक पोत को देखते हैं, और पांच मिनट पश्चात पुनः दृष्टिपात करते हैं और एक अन्य स्थान पर उसे देखते हैं तो हम उस बीच की अवस्था की, जिसे हम नहीं देख रहे थे, कल्पना करने के लिए बाध्य हो जाते हैं । इसी प्रकार यदि हमसे कहा जाता है कि बुद्ध अमुक क्रमिक कालों में अमुक-अमुक स्थानों पर रहे तो हम एक स्थान से दूसरे स्थान की

उनकी मात्रा की कल्पना करने के लिए बाध्य हो जाते हैं ।

कालिंगवुड ने उपर्युक्त दोनों विशेषताओं से समन्वित इतिहासकार की इस क्रिया शक्ति को "प्रागनुभव कल्पना" नाम दिया है । वस्तुतः यह "प्रागनुभव कल्पना" ही इतिहासकार की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह प्रमाण-पुरुष के कथनों के बीच के रिक्त स्थानों को भर सकता है और ऐतिहासिक वर्णनों अथवा वृत्तांतों के नैरंतर्य को बनाये रख सकता है । इतिहासकार को अपनी कल्पना का प्रयोग करना चाहिए, यह एक सामान्य प्रकथन है । प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मैकाले ने अपने "इतिहास" शीर्षक एक निबंध में लिखा है: "अपने वर्णन को प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाने के लिए एक कुशल इतिहासकार में सशक्त कल्पना का होना अति आवश्यक है[1]" । किंतु इस प्रकार का कथन इतिहास-संरचना में [illegible] कल्पना के योगदान का अल्पमूल्यांकन करता है जो वास्तव में आलंकारिक नहीं वरन [illegible] होती है । इसके बिना इतिहासकार के पास अलंकृत करने के लिए कोई वृत्तांत ही नहीं रह जाता । इतिहास-संरचना में यह कल्पना अनिवार्य है जो स्वच्छंद कल्पना की भांति चंचल एवं अस्थिर न होकर अपने "प्रागनुभव" रूप में इतिहास [illegible] का संपूर्ण कार्य संपादित करती है ।

इस संबंध में यहां दो भ्रांत धारणाओं के उत्पन्न हो जाने की संभावना है । प्रथम तो यह सोचा जा सकता है कि कल्पना द्वारा हम केवल उसी को अपने समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं जो अवास्तविक और काल्पनिक है । यह धारणा एकांगी और एकपक्षीय है । इतिहास-संरचना में इस प्रकार की कल्पना का न तो कोई महत्व है, न कोई उपयोग । यदि मैं यह [illegible] करता हूं कि मेरा एक मित्र, जो थोड़े समय पहले मेरे घर से गया, अब अपने घर में प्रविष्ट हो रहा है तो मेरी यह कल्पित बात घटना की यथार्थता पर अविश्वास करने का कोई कारण उपस्थित नहीं करती ।

द्वितीयतः "प्रागनुभव [illegible]" का उल्लेख अर्थहीन या असत्याभासपूर्ण प्रतीत

1- [illegible]ulay's Essay on History (Varieties of History, p.72)

हो सकता है । क्योंकि यह सोचा जा सकता है कि कल्पना मूलतः चंचल, उच्छृंखल एवं अस्थिर मन की अस्थिर उपज है । यह धारणा भी एकांगी है । इतिहास सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त "प्रागनुभव कल्पना" के दो अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं । एक कार्य स्वतंत्र है किन्तु किसी भी अर्थ में उच्छृंखल नहीं है, जैसे कलाकार का परिकल्पन । एक उपन्यासकार उपन्यास-लेखन में किसी कहानी की रचना करता है जिसमें विविध पात्र विविध रूप में आ कर कहानी में भाग लेते हैं । यद्यपि सभी पात्र और घटनाएं सामान्य रूप से काल्पनिक होती हैं तथापि उपन्यासकार का संपूर्ण उद्देश्य कार्यरत चरित्रों तथा विकसित होती हुई घटनाओं को उनकी आंत-रिक आवश्यकता द्वारा निश्चित क्रम में प्रदर्शित करना होता है । कथा, यदि वह एक अच्छी कथा है तो, जिस रूप में विकसित होती है उसकी अपेक्षा किसी अन्य रूप में वह विकसित हो ही नहीं सकती, और जिस प्रकार उसका विकास होता है उससे भिन्न प्रकार के [illegible] की कल्पना उपन्यासकार कर ही नहीं सकता । इस विषय में इसी के सदृश अन्य दूसरी कलाओं में भी "प्रागनुभव-कल्पना" कार्य करती है । प्रागनुभव कल्पना का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है संभव बोधक्षमता के विषयों का, जो वास्तव में अनुभूत नहीं हैं, प्रस्तुतीकरण तथा संपूर्ति । इसे हम प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक [illegible] कह सकते हैं । जैसे पृथ्वी के अंतर्भाग अथवा चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के प्रत्यक्ष दर्शन की कल्पना करना । इतिहास-मूलक कल्पना, इन कल्पनाओं से प्रागनुभव होने के अर्थ में भिन्न नहीं है, वरन् इस अर्थ में भिन्न है कि उसका विषय अतीत है जो हमारी संभव बोधक्षमता से परे है । यद्यपि अब उस अतीत का अस्तित्व नहीं है, किन्तु कल्पना द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है ।

इस प्रकार, इतिहासकार द्वारा निर्मित अपने विषय का चित्र, चाहे वह घटनाओं की शृंखला का हो अथवा कार्यों की अतीतावस्था का, उसके [illegible]-[illegible]लकों के कथनों द्वारा प्रस्तुत निश्चित रूप से निर्धारित बिन्दुओं के बीच फैले हुए [illegible]नात्मक रचना के एक जाल की तरह प्रतीत होता है, और यदि ये बिंदु [illegible] है तथा प्रत्येक से उसके आसन्न बिन्दु पर जाते हुए धाग-सूत्र

सतर्कता के साथ प्रागनुभव कल्पना द्वारा —कभी भी केवल स्वच्छंद कल्पना द्वारा नहीं—बनाये जाते हैं तो संपूर्ण चित्र इन सामग्रियों पर पुनर्विचार करने से निरन्तर सत्य प्रमाणित होता है और यथार्थ का प्रदर्शन अधिक स्पष्टता से करता है। इस सन्दर्भ में यह बात स्मरणीय है कि प्रमाण-पुरुषों के कथनों द्वारा निर्धारित बिंदु, जिन पर इतिहासकार अपनी रचनात्मक कल्पना का जाल बनाता है, तभी तक यथार्थ एवं वास्तविक हैं जब तक कि वे उसके आलोचनात्मक चिंतन की सीमा में आते हैं। उसके बाहर उनका कोई महत्व नहीं, अतः वे असत्य से भिन्न नहीं हैं।

स्वयं ऐतिहासिक चिंतन के अतिरिक्त अन्य ऐसा कुछ नहीं है जिस पर पुनर्विचार करने से उसके परिणाम या निष्कर्ष सत्य प्रमाणित हो सकते हैं। इतिहासकार ठीक उसी ढंग से सोचता है जिस ढंग से जासूसी उपन्यास का नायक सोचता है। जिस प्रकार जासूसी उपन्यास का नायक विविध प्रकार के प्राप्त संकेतों द्वारा अपराध-घटना का एक काल्पनिक चित्र निर्मित करता है और अपराधी का निश्चय करता है, उसी प्रकार इतिहासकार भी इतिहास की प्राप्तव्य सामग्री द्वारा इतिहास के संपूर्ण चित्र का अपनी कल्पना से निर्माण कर उसकी सत्यता को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भ में यह सत्य समर्थन की प्रतीक्षा करता हुआ एक व सिद्धान्त मात्र होता है जो शून्य से उद्भूत होता है। जासूस के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उस साहित्यिक रूप (जासूसी उपन्यास) की स्वीकृत पद्धतियाँ आदेश देती हैं कि जब उसकी रचना पूर्ण हो जाएगी तब अपराधी किसी परिस्थिति विशेष में आ कर अपना अपराध स्वीकार कर लेगा और उस परि-स्थिति विशेष का औचित्य शंका से परे हो जाता। किन्तु इतिहासकार जासूस की अपेक्षा कम भाग्यशाली होता है। यदि अब तक के प्राप्तव्य सूचनाओं एवं प्रमाणों के अध्ययन के पश्चात उसे यह निश्चय हो जाय कि कालिदास के नाटकों को भास ने लिखा अथवा अशोक ने अपने पिता की हत्या के पश्चात् शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया तो उसे इस तथ्य को स्वीकार करने वाला उनका कोई स्वहस्तलिखित प्रमाण पाना आवश्यक है। अन्यथा वह अपने निष्कर्षों को किसी भी प्रकार सिद्ध

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इतिहासकार प्रमाण-पुरुषों द्वारा निर्धारित घटना-बिंदुओं के बीच की दूरी को अपनी कल्पनात्मक संरचना- जाल से भरता है । कल्पनात्मक संरचना का संपूर्ण दायित्व तो उस पर रहता ही है, प्रमाण-पुरुषों द्वारा कथित घटना-बिंदुओं के निर्धारण का दायित्व भी अपरोक्ष रूप से उसी पर रहता है । अपने तथाकथित प्रमाण-पुरुषों के कथनों को चाहे तो वह स्वीकार करे या अस्वीकार करे, उन्हें संशोधित करे, या उनकी पुनर्व्याख्या करे, वास्तव में प्रमाण-पुरुषों के कथनों की सम्यक आलोचना करने के पश्चात जिस वर्णित वस्तु की रूपरेखा वह तैयार करता है, उसका दायित्व उसी पर होता है । उसकी वर्णित वस्तु या कथन की कसौटी यह बात कदापि नहीं हो सकती कि वह प्रमाण-पुरुष द्वारा प्रस्तुत की गयी है ।

इस प्रकार, इतिहासकार द्वारा निर्मित अतीत का चित्र उसकी निजी प्राग-नुभव कल्पना की उपज है जिसकी अपनी संरचना में प्रयुक्त साधनों का औचित्य-प्रदर्शन आवश्यक है । ये साधन वस्तुतः मूल स्रोत होते हैं, अर्थात् इन पर केवल इसलिए स्वीकार किया जाता है कि वे इतिहासकार की दृष्टि में न्यायसंगत हैं । क्योंकि कोई भी साधन या स्रोत दोषपूर्ण हो सकता है, हो सकता है कि अभिलेख पढ़ने वाले ने गलत पढ़ा हो अथवा असावधान लेखक ने गलत लिख दिया हो । कुशल इतिहासकार को इसी प्रकार के दोषों तथा अन्य भ्रांत कथनों का निराकरण एवं संशोधन करना होता है । वह ऐसा केवल तभी कर सकता है जबकि इस बात पर वह विचार करे कि अतीत का वह चित्र वि[illegible] और साक्ष्य से बने हैं, तर्कसंगत, समुचित, अविच्छिन्न तथा सार्थक है । प्रागनुभव कल्पना, जो इतिहास की संरचना करती है, इतिहास की समालोचना के साधन भी प्रस्तुत करती है ।

बाह्य साधनों से संगृहीत किन्तु स्वतंत्र, इतिहासकार द्वारा निर्मित अतीत का चित्र इस प्रकार प्रत्येक विवरण में एक कल्पनात्मक चित्र होता है और प्रत्येक बिन्दु पर उसका प्रयोजन प्रागनुभव कल्पना का प्रयोजन होता है । जो कुछ भी इसके भीतर समाविष्ट होता है, वह इसलिए नहीं कि उसकी कल्पना निरपेक्ष रूप से इसे स्वीकार कर लेती है, वरन् इसलिए कि वह उसकी सक्रिय रूप से

चाहती है, उसकी मांग करती है ।

यहां इतिहासकार और उपन्यासकार के बीच का सादृश्य, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है । दोनों के कार्य-व्यापार का लक्ष्य एक ऐसा चित्र बनाना होता है जो कुछ अंशों में घटनाओं का विवरण होता है, तथा कुछ अंशों में परिस्थितियों का वर्णन, भावनाओं का प्रदर्शन एवं चरित्रों का विश्लेषण । प्रत्येक का लक्ष्य अपने चित्र को पूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण एवं सुसंगत बनाना होता है जहां प्रत्येक चरित्र और प्रत्येक परिस्थिति लेख से ऐसी बंधी हुई होती है कि यह चरित्र उस परिस्थिति में वैसा कर ही नहीं सकता वरन् करता है । हम दूसरे रूप में उसके करने की कल्पना भी नहीं कर सकते । उपन्यास तथा इतिहास दोनों ही बोधगम्य और सार्थक होने चाहिए । दोनों के लिए जो कुछ आवश्यक है उसके अतिरिक्त कुछ भी स्वीकार्य नहीं होना चाहिए । दोनों अवस्थाओं में इस आवश्यकता की निर्णायिका है कल्पना-शक्ति । उपन्यास और इतिहास दोनों के ही [illegible]-व्याख्यात्मक, [illegible] चित्रविधायक तथा आत्मशासित सक्रियता की उपज है और दोनों स्थिति में यह सक्रियता प्रागनुभव कल्पना है ।

जहां तक [illegible] के कार्य का संबंध है, इतिहासकार तथा उपन्यासकार के कार्यों में कोई भेद नहीं है । भेद इनमें यह है कि इतिहासकार का चित्र सत्य का प्रकाशन करता है । उपन्यासकार के सम्मुख केवल एक कार्य होता है । वह कार्य है ऐसे सामंजस्यपूर्ण एवं संश्लिष्ट चित्र का निर्माण जो बोधगम्य एवं सार्थक हो। इतिहासकार का दुहरा कार्य होता है और दोनों को उसे करना पड़ता है । उसे उन परिस्थितियों तथा घटनाओं का चित्र निर्मित करना होता है जैसा वे वस्तुतः रहीं तथा घटित हुई थीं । यह अतिरिक्त अनिवार्यता उस पर रचना-प्रणाली के कुछ विशिष्ट नियमों के पालन का दायित्व आरोपित करती है जिससे [illegible]कार या [illegible]कार मुक्त रहता है । हां, यदि उपन्यासकार ऐतिहासिक कथावस्तु को लेता है तो उसे भी कुछ अंशों में दुहरा दायित्व निभाना पड़ता है ।

इतिहास में (अन्य गंभीर विषयों में भी) कोई भी उपलब्धि अंतिम नहीं होती । किसी भी [illegible] की [illegible] के निमित्त प्राप्तव्य प्रमाण ऐतिहासिक

पद्धति के प्रत्येक परिवर्तन तथा इतिहासकारों के सामर्थ्य-सीमा के उतार - चढ़ाव के साथ बदलते रहते हैं । जिन सिद्धान्तों की कसौटी पर प्रमाण परखे तथा व्याख्यापित किये जाते हैं, वे भी बदलते रहते हैं, क्योंकि प्रमाण की व्याख्या करना एक ऐसा कार्य है जिसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य तत्संबंधी अपने संपूर्ण ज्ञान अर्थात् इतिहास विषयक ज्ञान, मानव और प्रकृति के ज्ञान, गणित के ज्ञान, दर्शन के ज्ञान आदि को प्रस्तुत करें । और, मात्र ज्ञान ही क्यों, प्रत्येक प्रकार की की मानसिक प्रवृत्तियों और स्वत्वों का प्रस्तुतीकरण भी आवश्यक है, और ये सब चीज़ें ऐसी हैं जो निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं ।

किन्तु न तो इतिहासविषयक ज्ञान का उपादान अर्थात् बोधक्षमता की सीमा में आने वाला वर्तमान काल । का [illegible] और न [illegible]णा की व्याख्या में सहयोग देने वाली इतिहासकार की प्रतिभा ही उसके ऐतिहासिक सत्य की कसौटी प्रस्तुत कर सकती है । जैसा कालिंगवुड ने संकेत किया है, इस सत्य की कसौटी वस्तुतः अतीत के कल्पनात्मक चित्र का निदर्शन, [illegible] का प्रत्यय स्वयं ही है । [illegible] का यह प्रत्यय या विचार अंतर्वर्ती एवं प्रागनुभव है । यह मनो[illegible]निक कारणों की एक आकस्मिक उपज नहीं है । यह एक ऐसी भावना है, एक ऐसी [illegible] व्यवस्था है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान का अंग बनाकर रखता है । इस कोटि की अन्य भावनाओं अथवा विचारों की भाँति यह एक ऐसा विचार है जो अनुभूत वस्तुओं के ठीक-ठीक अनुरूप नहीं होता । कोई भी इतिहासकार, चाहे वह कितना भी निष्ठापूर्वक और दीर्घ अवधि तक कार्य करे, यह नहीं कह सकता कि उसका कार्य अंतिम रूप से पूर्ण हो गया है और उसके द्वारा नि[illegible] अतीत का चित्र ठीक वैसा ही है जैसा उसे होना चाहिए । किन्तु यह भावना अथवा कल्पना, जो इतिहास की धारा को आश्रित करती है, स्पष्ट, [illegible]निपुण एवं सार्वभौमिक होती है, हालांकि इतिहासकार के कार्य के [illegible], दोषपूर्ण एवं अपूर्ण हो सकते हैं वस्तुतः यह भावना [illegible] कल्पना का एक आदर्श है जो चिंतन के [illegible] संबंधी, [illegible] एवं आत्म[illegible] रूप की भाँति होती है।[1]

---

1. R.G.Collingwood: Idea of History page 248-49.

(ख) इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याएं

इतिहास की संरचना में कल्पना किस सीमा तक अपनी भूमिका अभिनीत करती है, इस पर पीछे हमने काफी विचार-विमर्श किया है । इतिहास-संरचना में प्रयुक्त यह कल्पना अथवा इतिहासमूलक कल्पना ऐतिहासिक उपन्यास के निर्माण में भी एक प्रमुख भाग अदा करती है और इतिहासकार की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासकार को किंचित् अधिक विस्तृत पंख प्रदान करती है । ऐतिहासिक उपन्यास में प्रयुक्त इतिहासमूलक कल्पना, इतिहास में प्रयुक्त कल्पना की अपेक्षा कुछ अधिक स्वतंत्र और मुक्त भी रहती है, किन्तु किसी अर्थ में अनियंत्रित एवं उच्छृंखल नहीं होती ।

"ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास" के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करते समय पीछे जैसा कि कहा गया है ऐतिहासिक उपन्यासकार, इतिहास को उपन्यस्त करने के लिए दो प्रकार की पद्धतियों का आश्रय ग्रहण करता है । पहली पद्धति में इतिहास केवल सामग्री प्रस्तुत करता है जिसका कथा में वैसे ही संगुम्फन होता है जैसे अवयवों का शरीर में । यह पद्धति एक प्रकार से [illegible] होती है और केवल इसी अर्थ में उपन्यासकार की सीमा निर्धारित करती है कि उसे अपने निर्माण में अतीत के जीवन के प्रति निष्ठावान् रहना होगा अर्थात् अतीत के जिस काल-खण्ड में उसकी कथा प्रवाहित होती है, उस काल-खण्ड के सुनिश्चित घटना[illegible] के प्रति नहीं वरन् रहन-सहन की पद्धतियों, आचार-विचारों, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों [illegible] के आन्तरिक और बाह्य कारणों तथा उनको नियंत्रित करने वाली शक्तियों आदि के प्रति निष्ठावान् रहना आवश्यक है । अतः इस पद्धति में उपन्यासकार उन सभी बातों को छोड़ देने के लिए स्वतंत्र है जो [illegible] प्रभावों अथवा कथा-सृष्टि में किसी प्रकार का योग नहीं देते । इस पद्धति में इतिहास वस्तु प्रदान करता है और उपन्यासकार उससे अपनी मनोनुकूल मूर्ति गढ़ता है, बशर्ते कि उसकी कल्पनाग्नि में इतना ताप हो कि वह कठोर तथ्यों को सार्थक सम्भावनाओं के तरल द्रव में परिवर्तित कर दे । निःसंदेह यह कार्य कठिन है । अपने इस प्रयत्न में वह चरित्रों की [illegible] कर सकता है, [illegible] की कल्पना कर सकता है, घटनाओं की इस [illegible]

स्थिति और विस्तार की कल्पना कर सकता है जिसके माध्यम से इतिहास अपनी कथा कहने में स्वयं समर्थ हो उठे । लेकिन इन सबके बावजूद भी वह कथा में ऐतिहासिक व्यक्तियों को सुसंगत ढंग से बैठाने के लिए उनके वास्तविक चरित्रों को विकृत करने अथवा अपने कथानक के सूत्रों को परस्पर गुम्फित करने के लिए काल-क्रमिक सरणि में परिवर्तन करने का अधिकारी नहीं । यह पद्धति एक ऐसा स्वर प्रस्तुत करती है जिसमें उपन्यासकार भी अपना स्वर मिला सकता है । इस पद्धति के प्रमुख उदाहरण हैं--- यशपाल की "दिव्या" एवं "अमिता", हजारी प्रसाद द्विवेदी की "बाण भट्ट की [illegible]", वृन्दावनलाल वर्मा की "कचनार", "विराटा की पद्मिनी" तथा रांगेय राघव की कृति "मुर्दों का टीला" ।

दूसरी पद्धति में इतिहास केवल सामग्री ही नहीं प्रस्तुत करता, उपन्यास के लिए एक सुदृढ़ कथानक भी प्रस्तुत करता है जिसको काट-छांट कर उपन्यासकार अपने उद्देश्य के अनुकूल बनाता है और फिर अपनी कल्पना और वर्णनाशक्ति द्वारा उसे सुगठित एवं मांसल बनाकर उसमें प्राण संचार करता है । इस पद्धति में उपन्यासकार को दो प्रधान कार्य करने पड़ते हैं- प्रथम, कथानक का अनुभावन तथा दूसरा, उसका कलात्मक संगठन । ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना की इस पद्धति में [illegible], चरित्र यहां तक कि ऐतिहासिक परिस्थितियों को भी इतिहास से ग्रहण करता है । इस प्रकार, इतिहास उपन्यासकार को कथानक क देता है, [illegible] देता है, और उपन्यासकार की कल्पना कमभंगों को भरती है । यहां उपन्यासकार को अतीत के जीवन तथा कालक्रमिक सरणि के प्रति ही निष्ठावान नहीं रहना पड़ता वरन् इति[illegible] के अन्य ज्ञात तथ्यों तथा लोक प्रसिद्ध भावाधारित घटना[illegible] के प्रति भी सत्यवान [illegible] रहना पड़ता है । तुलनात्मक दृष्टि से यह पद्धति इस अर्थ में मौलिक कही जा सकती है कि इसमें इतिहास से ली गयी कथा को उपन्यासकार अपनी कल्पना में गुम्फित तथा सम्पृंफित कर सामंजस्य स्थापित करता है और उपन्यास की मांग के अनुसार इतिहास की [illegible] और वास्तविकता को स्वाभाविक बनाने के लिए कभी-कभी उसमें मोड़ भी ला देता है । [illegible]-प्रयोग की इस पद्धति के [illegible] वृन्दावन लाल वर्मा की

"झाँसी की रानी—लक्ष्मी बाई" तथा "माधव जी सिंधिया", प्रतापनारायण श्रीवास्तव की "बेकसी का मज़ार" तथा रांगेय राघव की कृति "चीवर" को रखा जा सकता है । यद्यपि ऐसा कदाचित् ही कोई ऐतिहासिक उपन्यास होगा जिसमें केवल एक ही पद्धति का पूर्ण रूप से अनुसरण किया गया हो, फिर भी दोनों के दो विभिन्न आदर्श हैं जो ऐतिहासिक उपन्यास के दो विभिन्न रूपों का निर्माण करते हैं ।

एक स्थल पर, जैसा कि संकेत किया गया है, ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास की भावभूमि की समानता के कारण एक अर्थ में इतिहास का एक रूप है, अतीत को निरूपित करने का एक ढंग है । इस दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासकार भी, इतिहासकार ही है और उसके अध्ययन तथा विवेक की सीमाएं इतिहासकार से तनिक भी घटकर नहीं है । किन्तु दूसरी दृष्टि से वह इतिहासकार से अधिक है, क्योंकि वह कलाकार है, उपन्यासकार है और अतीत जीवन को प्रस्तुत करने का ऐसा शिल्प उसके पास है जो इतिहास की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली, अधिक सजीव और अधिक व्यंजक होता है । इसप्रकार, ऐतिहासिक उपन्यासकार को अपनी शिल्पविधि में दो प्रकार के दायित्वों को वहन करना पड़ता है – एक इतिहासकार का तथा दूसरा उपन्यासकार का । जो इस कठिन कार्य में सफल नहीं होते, वे न तो इतिहासकार का ही दायित्व निभा पाते हैं और न उपन्यासकार का ही, क्योंकि रचना-क्रम में वे कार्य विभाजित नहीं रह जाते । दोनों के व्यक्तित्वों के योग से ही उपन्यासकार इस कार्य में सफल हो सकता है ।

इतिहास को उपन्यस्त करने का प्रश्न ऐसा है जो अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देता है और जिसका समाधान ऐतिहासिक उपन्यासकार को ही करना पड़ता है । जिस प्रकार घटना और तिथियों को एक स्थान पर एकत्रित कर देने मात्र से इतिहास नहीं बन जाता, उसी प्रकार इतिहास के कुछ पात्रों और घटनाओं को लेकर एक स्थान पर रख देने से ऐतिहासिक उपन्यास नहीं बन सकता । इतिहास को वास्त-विक उपन्यास बनाने के लिए ऐतिहासिकता की आवश्यकता होती है । काल की धारा अविरल और अनन्त है । इसमें निरन्तर जीवन की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती है । [illegible] को जिस काल का [illegible] होता है, वह उस काल की [illegible]

और तिथियों को उसकी पृष्ठभूमि में रख कर ही उनके कार्य-कारण की स्थापना करता है । यही ऐतिहासिकता है । इसी ऐतिहासिकता में इतिहासकार का दृष्टि-कोण लक्षित होता है और यही इतिहास के मूल्यों को स्थापित करता है । इतिहास को इतिहास बनाने के लिए जिस प्रकार ऐतिहासिकता अनिवार्य होती है, उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना के लिए "ऐतिहासिक [illegible]सिकता" आवश्यक है । ऐतिहासिक उपन्यास के इतिहास और उपन्यास इन दोनों अंगों के कलात्मक समन्वय की जो श[illegible] पाठकों के हृदय में भावोद्रेक करने अथवा उसे रसदशा तक पहुँचाने में समर्थ होती है, उसे ही हम "ऐतिहासिक औपन्यासिकता" कह सकते हैं ।

इ[illegible]ास को उपन्यस्त करते समय उपन्यासकार को दो प्रकार के कार्य निष्पादित करने पड़ते हैं । निश्चि[illegible] रूप से प्रथम प्रकार का कार्य उसके इतिहासकार के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता है, जबकि दूसरे प्रकार का कार्य उसके [illegible]कार अर्थात् [illegible]पन्यासकार के व्यक्तित्व से । इस [illegible]कार, ऐतिहासिक [illegible]पन्यास की रचना-प्रक्रिया तथा इस सन्दर्भ में उत्पन्न समस्याओं की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासकार की कार्य-पद्धति को दो स्तरों में विभाजित किया जा सकता है :-

प्रथम, ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन, उनमें पारस्परिक संगति एवं संबंध निर्धारण, ऐतिहासिक अनुक्रमण (काल की दृष्टि से - सम्पूर्ण एवं खण्ड दोनों को दृष्टि में रखते हुए) और संगठन ।

द्वितीय, घटनाओं और तथ्यों की कथा में [illegible]ति-कुतूहल, रहस्य आदि के द्वारा, शुष्क घटनाओं और तथ्यों के पीछे निहित मानवीय भावनाओं की पारस्परि[illegible] - ऐतिहासिक सन्दर्भ के अनुकूल तथा प्रतिकूल, चरित्र का आरो[illegible]द, आर[illegible], देशप्रेम, स्वाभि- भावना आदि - तथा [illegible]ष्टिकोण, दृष्टिबिन्दु का निर्धारण, काल तथा [illegible]त सीमा- वातावरण, भाषा आदि के द्वारा, इ[illegible]ास और [illegible]ना के बीच [illegible] ।

होती है । प्रश्न उठता है कि ऐतिहासिक उपन्यास के बीज को अंकुरित करने तथा विकसित करने के निमित्त अगणित घटनाओं और चरित्रों के समूह में से उपन्यासकार क्या चुने और क्या छोड़ दें, किसे प्रमुखता दे और किसे गौण रूप में स्वीकार करें[१] ।

कथावस्तु के संगठन तथा निर्मिति हेतु प्रयुक्त इतिहास की अगणित घटनाओं तथा चरित्रों में से उपन्यासकार क्या ले और क्या छोड़ दे, इस संबंध में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता । यह बहुत कुछ उपन्यासकार के विवेक और उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जिसमें उसका उद्देश्य भी सम्मिलित रहता है । किन्तु यह आवश्यक है उसका विवेक और अनुशासन ठीक वैसा ही हो वैसा इतिहासकार का होता है । ऐतिहासिक विवेक तथा अनुशासन के अभाव में उपन्यस्त करने के लिए अगणित घटनाओं के अंबार में से न तो वह उचित और प्रासंगिक घटनाओं का चुनाव कर सकता है और न विवेच्याधीन काल के जन-जीवन तथा इतिहास की भावभूमि को ही सजीव रूप में उपस्थित कर सकने में समर्थ हो सकता है । सामान्य इतिहासकार की भाँति, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि वह समस्त इतिहास का अध्ययन करे अथवा [illegible]काल की सामग्री का अवगाहन करे, किन्तु इतना तो आवश्यक है कि जिस कालखण्ड पर उसकी कथा आधारित हो उस काल-खण्ड के इतिहास का पूर्णता से अध्ययन-मनन करे और इतिहास की वास्तविकता में प्रवेश करे, तथा उपन्यास में उद्देश्य के आरोप के अनुकूल ही घटनाओं एवं तथ्यों का संकलन-संचयन करे । [illegible]पन्यासकार की कार्य[illegible] का यह भाग लगभग वैसा ही होना चाहिये जिसकी चर्चा इ[illegible]ास और ऐतिहा[illegible]क [illegible]चना के सन्दर्भ में की जा चुकी है ।

१- In every period of history, in every episode, in a fragment of stone in an old weapon, in a name on a desolate grave, in a scrap of verse, is the germ of an historical novel. The difficulty is, or should be selection. The selection of title is difficult. The selection of character and incident is a difficulty. And it is important to know what reject and what select.

-A.T.Sheppard: The Art and Practice of Historical Fiction p.85.

काल, पात्र तथा घटनाओं के संचयन के सन्दर्भ में प्रायः तीन प्रकार के प्रश्न उठाये जाते हैं । काल-चयन के सम्बन्ध में जार्ज लूकाच की धारणा है कि ऐतिहासिक उपन्यास में चित्रित ऐतिहासिक काल तथा उसके पात्रों की जीवन-दशा जितनी ही दूर होगी कार्य-व्यापार की निजी चेतना उन जीवन-दशाओं को हमारे सामने अपेक्षाकृत अधिक कमनीयता से प्रस्तुत कर सकने में सक्षम होगी और हम उनसे उत्पन्न किसी विशिष्ट मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र को किसी ऐतिहासिक वैचित्र्य के रूप में समादृत नहीं कर सकेंगे, वरन् मानव विकास के एक पार्श्व के रूप में उन्हें पुनः अनुभव कर सकेंगे जो हमसे सम्बद्ध है तथा हमें संचिलित कर देता है[1]। इसी प्रकार ए० टी० शेपर्ड का विचार है कि सुदूर अतीत काल के इतिहास पर आधृत उपन्यास की रचना प्रक्रिया तुलनात्मक दृष्टि से अधिक सुगम तथा सुविधाजनक होती है, क्योंकि वहाँ उपन्यासकार नामों की कल्पना कर सकता है, वातावरण की कल्पना कर सकता है, ऐसी जीवन-दशाओं की कल्पना कर सकता है जो इतिहास में अज्ञात रही हैं । वहाँ इतिहास इतना कमनीय रहता है कि उपन्यासकार उसे जिधर चाहे मोड़ सकता है और अपने अनुकूल बना सकता है । उसके द्वारा प्रस्तुत नामों, घटनाओं, विवरणों आदि को चुनौती देने वाला भी सम्भवतः कोई नहीं रहता, क्योंकि जिन स्वल्प तथ्यों पर सम्पूर्णाकृति आधारित होती है वे निश्चय ही स्थापित नहीं रहते । अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास के सुदूर काल का ही चयन करना चाहिये[2] ।

---

1. It is clear that more remote an historical period and conditions of life of its actors, the more the action must concern itself with bringing these condition plastically before us so that we should not regard. The particular psychology and ethics which arises from them as an historical curiosity, but should re-experience them as a phase of man's kind development which concerns and moves us.
   —George Lukacs: The Historical Novel, page 42.

2. It is comparatively easy to write about the very remote past, to invent names, perhaps which probably were land or sea, but you do at your own risk.... You may invent names, invent environment, even make your clock in Roman halls and years with impunity and with ease- untill you found out.
   —A.T.Sheppard: The Art and Practice of Historical Fiction page,116.

बुकानन तथा शेपर्ड की बात कि सुदूर कालीन अल्प ज्ञात तथा कमनीय इतिहास को लेकर उपन्यास की संरचना अधिक महत्वपूर्ण और सुविधाजनक होती है, जहाँ एक अर्थ में सही है, वहाँ दूसरे अर्थ में उतना सुकर और आसान नहीं है, जितना दृष्टिगत होता है । सुदूर अतीत काल का चुनाव किन्हीं अर्थों में उपन्यासकार के कार्य को अपेक्षित रूप से आसान बना देता है, क्योंकि जहाँ जानकारी अपूर्ण अथवा संदिग्ध है वहाँ कल्पना को खुलकर खेलने के लिए अधिक छूट और विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है, किन्तु, जहाँ इस प्रकार की सुविधा मिलती है वहाँ नीरसता तथा सत्याभास की कमी का खतरा भी रहता है । आदिम सभ्यता की जीवन-दशा को लेकर उपन्यास लिखने वाले लेखक के लिए यह आवश्यक है कि आदिम मनुष्य की प्रकृति, उसकी जीवन-प्रणाली, उसके भय, प्रेम, घृणा, द्वेष, संघर्ष आदि का उसकी आदिम अवस्था में ही चित्रण करे । इसके लिए आदिम मनुष्य की सूक्ष्म प्रकृति एवं रहन-सहन की पद्धति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, अन्यथा पथ से स्खलित हो जाने की सम्भावना बनी रहती है । जैसा कि डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है "इतिहास का सारा अतीत अज्ञान भाव से अज्ञात या ज्ञात नहीं होता । साधारणतः सुदूर अतीत के बारे में तथ्यों की जानकारी कम होती है और निकट अतीत के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक । ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक अल्पज्ञात तथ्यवाले सुदूर अतीत काल की [illegible] के सूत्र मिलाने के लिए कल्पना का अधिक आश्रय लेता है और निकट अतीत का कम । उपन्यास का लेखक वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकता । वह अतीत का चित्रण करते समय भी पुरातत्व, मानवतत्व और मनोविज्ञान आदि की आधुनिक प्रगति से अनभिज्ञ रहकर कोरी कल्पना का आश्रय ले उपहासास्पद बन जाता है । इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की चेष्टा करता है वह कल्पित पात्रों की रचना करके भी वस्तुत [illegible] से रसबोध की आशा नहीं रख सकता । छोटी-छोटी बातों में भी उसे सावधान रहना पड़ता है । सामान्य सम्बोधन, शिष्टाचार के लिए प्रयुक्त शब्द और लोकाचार एवं रिवाजों के विरुद्ध जाने वाले वाक्यांश भी [illegible] में बाधक हो जाते हैं । अतः सुदूर काल के चयन में जहाँ सुविधा है, वहाँ

१- डा० [illegible] लिखित "ऐतिहासिक उपन्यास में [illegible] और कल्पना" का भूमिका भाग ।

असुविधा भी है । अतएव मूलभूत प्रश्न यह नहीं है कि किस काल-खण्ड के इतिहास
को उपन्यास का आधार बनाया जाय, वरन् प्रश्न यह है कि उस काल-खण्ड के
इतिहास को किस प्रकार उपन्यस्त किया जाय कि तत्कालीन जीवन-पद्धति उसके
माध्यम से जीवन्त हो उठे । अनेक उपन्यासकारों ने निकट अतीत के इतिहास को
आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं और उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है ।
झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, मृगनयनी, माधवजी सिंधिया (वृंदावन लाल वर्मा),
बेकसी का मजार" (प्रतापनारायण श्रीवास्तव), शतरंज के मोहरे" (अमृतलाल नागर),
आदि अनेक [illegible] निकट अतीत के इतिहास को लेकर लिखे गये हैं और ये पर्याप्त
सफल उपन्यास कहे जा सकते हैं ।

पात्रों और [illegible] के चयन के सम्बन्ध में भी प्रायः समीक्षकों द्वारा
इसी प्रकार के प्रश्न उठाये जाते रहे हैं । कुछ समीक्षकों की धारणा है कि
इतिहास-विश्रुत घटनाएं और पात्र ही ऐतिहासिक उपन्यास-रचना के लिए अधिक
उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण होते हैं । इस मत के विपरीत कतिपय आलोचकों का मत है
कि ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इतिहास-प्रसिद्ध घटनाओं तथा पात्रों की अपेक्षा
कम प्रसिद्ध प्रासंगिक घटनाएं तथा पार्श्व चरित्र ही अधिक उपयुक्त होते हैं । एच०
बटरफिल्ड ने "इतिहास विश्रुत" घटनाओं के महत्व को प्रतिपादित करते हुए
लिखा है -- "ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए एक महान इतिहास विश्रुत घटना,
उन रोमांचक कथाओं की अपेक्षा जो सामान्य इतिहास से ली जाती है, अधिक
विस्तृत कथासूत्र प्रस्तुत करती है । जब ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत के एकान्तिक
पथों में विचरण करने तथा मार्ग से दूर भटक जाने की रोमांचक घटनाओं के
चित्रणों को प्रारम्भ करने के बदले, प्रसिद्ध घटनाओं की पूर्णता के साथ सामना
करता है तथा महान व्यक्तियों की नियति में [illegible] होता है तो ऐतिहासिक
उपन्यास दूरस्थ प्रसिद्ध घटना के अर्थ में इतिहास विश्रुत कार्य-कलाप का प्रतिरूप ही

जाता है और इसकी सीमाएं अधिक विस्तृत हो जाती हैं[1]।" इसके विपरीत सेन्ट्सबरी का कथन है कि उपन्यास की विषयवस्तु के लिए ऐतिहासिक घटनाएं अनुपयुक्त और घटिया होती हैं और यदि महत्व की होती भी हैं, तो तभी होती हैं जब वे किसी कल्पित चरित्र अथवा कम ज्ञात चरित्र से जुड़कर कथा के विकास एवं पात्रों के अदृष्ट को सुलझाने में सहायता करती हैं[2]। इसी प्रकार लेस्ली स्टेफिन का कथन है कि किसी उपन्यास में ऐतिहासिक चरित्र प्रायः हमेशा ही आपत्तिजनक एवं अनुपयुक्त होता है[3]। सर वाल्टर रेले ने अपनी पुस्तक "इंगलिश नावेल" में लिखा है कि ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रधान पात्र स्वयं ऐतिहासिक नहीं होने चाहिये[4]।

---

1. This arena of great 'historic' event provides a more spacious theme for the novelist than mere episodes abstracted from universal history can do. Instead of wandering in the interesting bye-ways of past and finding surprises of thrilling episode in out of the way corners, the novelist may boldly face the full course of important events and plunges into the fate and fortunes of great, the historical novel then becomes an embodiment of historic things in the sense of far-reaching loud-sounding issues and it has a wider canvass and ampler scope.
   -H.Butterfield: The Historical Novel, page 67.

2. All who have studied the philosophy of novel writing at all closely know that great historical events are bad subject or are only good subject on one condition- condition the steady observance of which constitutes one of the great merits of Sir Walter Scott. The centeral interest in all such cases must be connected with wholly fictitious personage, or one of whom sufficiently little is known to give the romancer free play. When this condition is complied with, the actual historical events may be and constantly have been used with effect as aids in developing the story and working out the fortunes of the actors.

   -George Saintsbury (Reproduced from 'The Art and Practice of Historical Fiction by A.T.Sheppard, page 132-133).

3. I think that an historical character in novel is almost always a nuisance; but I like to have a bit history in the background. - Leslie Stephen (Reproduced from 'The Art and Practice of Historical Fiction, page 133).
4. The principal characters of a historical novel should not be themselves historical (Reproduced from 'Aitihasik Upanyas Aur Upanyaskar) by Dr. Gopi Nath Tewari p.7-8.)

महान ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों एवं पार्श्व चरित्रों तथा प्रासंगिक घटनाओं संबंधी जो समस्याएं उठायी गयी हैं, वे एक सीमा तक सही होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखती । ऐतिहासिक उपन्यासकार का लक्ष्य होना चाहिये कि वह [illegible] युग की ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए व्यक्ति और समूह के जीवन तथा उनके पारस्परिक प्रभावों की सम्पन्नता से चित्रित करे । इस दृष्टि से प्रासंगिक घटनाओं और पार्श्व चरित्रों का भी उतना ही महत्व है जितना इतिहास विश्रुत घटनाओं और चरित्रों का । वस्तुतः ऐतिहासिक घटनाएं और चरित्र अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होते, वे महत्व के तभी होते हैं जब इतिहास में कोई गम्भीर मोड़ उपस्थित करते हैं अथवा जन-जीवन में कोई विशिष्ट गतिशीलता पैदा करते हैं । इस दृष्टि से ऊपर ऊपर से छोटी दीख पड़ने वाली घटना भी महत्वपूर्ण हो सकती है और बड़ी से बड़ी घटना भी किसी संगति के अभाव में महत्वहीन हो सकती है । अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए जो इतिहास की जीवन्त प्रक्रिया को चित्रित करने का लक्ष्य रखता है, छोटी और बड़ी, तुच्छ और महान् दोनों प्रकार की घटनाओं और चरित्रों का समान रूप से महत्व है । वास्तविकता तो यह है कि घटनाओं और पात्रों की प्रसिद्धि और इतिहास-ज्ञात रूप-रेखा ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती जितनी की उन घटनाओं को घटित करानेवाली मनःस्थिति और परिचालित करने वाली परिस्थिति मानसिक संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व आदि । और ये दोनों प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध दोनों प्रकार के पात्रों और घटनाओं पर आरोपित की जा सकती है । अतः ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मात्र महान ऐतिहासिक घटना और पात्र अथवा मात्र पार्श्व चरित्र और प्रासंगिक घटना ही महत्वपूर्ण होती है । ऐतिहासिक उपन्यास रचना के लिए दोनों प्रकार की घटनाओं और चरित्रों का समान रूप से महत्व है और किसी भी महान कलाकार की रचना का संस्पर्श पाकर वे जीवन्त हो उठते हैं । इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं और पात्रों पर आधारित "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" [illegible], "अहल्याबाई" [illegible], [illegible] का [illegible], [illegible], "मृगनयनी", आदि उपन्यास जिस

जिस रूप में सफल कहे जाते हैं उससे तनिक भी कम सफल पार्श्वचरित्रों एवं प्रासंगिक घटनाओं पर आधारित, 'टूटे कांटे', "गढ़कुण्डार", "बाणभट्ट की आत्मकथा", "सिंह सेनापति", "जयवौधेय", "वैशाली की नगरवधू", आदि नहीं हैं ।

हाँ, इस सन्दर्भ में एक बात अवश्य कही जा सकती है कि इतिहास में कुछ ऐसे काल, पात्र, घटनाएं तथा अवस्थाएं होती हैं जो उपन्यस्त करने के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं और उपन्यासकार को आमंत्रित करती हैं । उपन्यस्त करने के लिए उच्छृंखल अहंवाद का युग तथा आ[illegible]शील व्यक्तित्वों का युग, उस युग की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होता है जिसमें संबद्ध कार्य घटनाओं का निरूपण करते हैं । वह युग जिसमें युद्ध एक क्रीड़ा और विलास की वस्तु है तथा परिहास, व्यंग्य और लड़ाई-झगड़ा सामान्य जीवन के अंग हैं, अधिक उपयुक्त होता है अपेक्षाकृत उस युग के जिसमें युद्ध एक जटिल और व्यवस्थित क्रिया है । अपने मन की तरंग से शासित सम्राट ऐतिहासिक उपन्यास के मुख्य चरित्र के रूप में अधिक सजीव एवं अनुकूल हो सकता है अपेक्षाकृत उस राजनीतिज्ञ के जो किसी पार्टी का मुख मात्र होता है । इस प्रकार, यद्यपि हम काल और चरित्र के चयन के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बना सकते, फिर भी इस प्रकार का चयन कर सकते हैं कि वह [illegible]जीकरण के लिए उपयुक्त हो और जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति कर सके । भारतीय इतिहास का मध्य युग तथा उसके [illegible] ऐतिहासिक चरित्र इस दृष्टि से उपन्यस्त करने के लिए अधिक उपयुक्त हो सकते हैं ।

ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन और संचयन के सन्दर्भ में जो सबसे [illegible] बात है वह है [illegible]कालीन काल के इतिहास और तत्कालीन जीवन-दशा का गम्भीर अध्ययन । यदि उपन्यासकार सही अर्थों में कोई गम्भीर और [illegible] कृति प्रस्तुत करना चाहता है तो उसके कार्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश यह है कि वह अभीष्ट काल में अपने आपको [illegible] हुआ है, प्रत्येक वस्तु और

प्रत्येक स्थल का गम्भीरता से अध्ययन करे, सम्पूर्ण उपलब्ध प्रमाणों और आप्तवचनों को जांचे-परखे, परस्पर विरोधी तथ्यों पर अपना कोई स्वतंत्र निर्णय दे, यह निश्चय करे कि किस तथ्य का प्रयोग किया जाय और किसे छोड़ दिया जाय आदि आदि ।

संगति और सम्बन्ध-निर्धारण

ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन और चयन के पश्चात उनकी पारस्परिक संगति और सम्बन्ध-निर्धारण का प्रश्न आता है । इतिहास में घटनाएं एवं तथ्य परस्पर इतने विशृंखल, असम्बद्ध और संगतिविहीन होते हैं कि उनके प्रकृत रूप को पढ़कर न तो किसी रसदशा तक पहुंचा जा सकता है और न उनके उस रूप मात्र को लेकर किसी सजीव चित्र की कल्पना की जा सकती है । घटनाएं एवं तथ्य वस्तुतः शरीर कंकाल के उन विभिन्न अंगों की भांति हैं जो अपने आप में महत्वपूर्ण होते हुए भी स्वतंत्र रूप से (शरीर से विच्छिन्न होकर) निष्क्रिय और निष्प्राण हैं । वे हमारे सम्मुख कोई सजीव चित्र, कोई आकर्षक परिदृश्य, कोई प्राणवन्त कलाकृति प्रस्तुत करने में तभी सक्षम हो सकते हैं जबकि परस्पर सूत्रबद्ध से गुम्फित होकर अपनी स्वतंत्र स्थिति रखते हुए भी सम्पूर्ण की निर्मिति में योग दें ।

ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं में पारस्परिक संगति और सम्बन्ध निर्धारण की समस्या वस्तुतः उपन्यास के कथावस्तु के निर्माण की समस्या है जो पूरे उपन्यास का मूलाधार है । यदि उपन्यास में प्रयुक्त तथ्यों में संगति का अभाव है, ऐतिहासिक घटनाओं के बीच कोई पारस्परिक संबंध नहीं है तो सम्पूर्ण कृति बिखरी हुई ऐतिहासिक घटनाओं का संग्रहमात्र प्रतीत होगी, जिससे न तो हमारी कल्पना में कोई चित्र उभर सकेगा और न इतिहास की भावभूमि (ऐतिहासिक रस) ही हमारे भीतर उत्पन्न हो सकेगी । ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों में पारस्परिक संगति एवं सम्बन्ध निर्धारण हेतु उपन्यासकार के पास उस उत्कट चिंतनशक्तिनी एवं निर्माणी कल्पना-शक्ति प्रातिभ रचना का होना आवश्यक है जिसकी चर्चा इतिहास और इतिहास मूलक कल्पना के प्रसंग में की जा चुकी है । इस कार्य में उपन्यासकार की कल्पना की ही

भाँति तथ्यों एवं घटनाओं को एक सूत्रजाल में संग्रथित कर तथा उन्हें कार्य-कारण-सम्बंधों में बाँधकर ऐसे सामन्जस्यपूर्ण एवं [illegible] चित्र का निर्माण करना होता है जो औचित्य और सार्थक हो ।

काल की धारा अनन्त है और सम्पूर्ण काल के इतिहास को एक ही जगह उपन्यस्त करने की बात कठिन ही नहीं असम्भव है । अतः तथ्यों एवं घटनाओं के सम्बन्धनिर्धारण के सन्दर्भ में एक अन्य प्रश्न यह भी उठता है कि उपन्यासकार उन्हें काल की दृष्टि से इतिहास के काल खण्ड में उपस्थित करे अथवा उप काल-खण्ड में । अपने विवेक-बुद्धि से वह दोनों रूपों में उपस्थित करने के लिए स्वतंत्र है । उदाहरणार्थ मान लीजिये कि उपन्यासकार ने गुप्तकाल सम्बन्धी तथ्य एवं घटनाएं संकलित कीं । इन संकलित तथ्यों एवं घटनाओं को उपन्यासकार चाहे तो [illegible] गुप्तकाल के सन्दर्भ में उपस्थित कर उस काल की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी प्रकार की गतिविधियों को प्रकाश में ले आये अथवा चाहे तो उन्हें केवल समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त या स्कन्दगुप्त के राज्यकाल और व्यक्तित्व से जोड़कर तत्कालीन जीवन-दशा को उजागर करे । पहली अवस्था में जहाँ उसकी दृष्टि मुख्यतः तत्युगीन वातावरण पर केन्द्रित रहती है, वहाँ दूसरी अवस्था में वातावरण के अतिरिक्त कथा के नायक के व्यक्तित्व पर भी । इसी प्रकार वह संकलित तथ्यों एवं घटनाओं को समस्त देशीय इतिहास से जोड़कर [illegible] कर सकता है अथवा मात्र क्षेत्रीय इतिहास से जोड़कर । जैसे १८५७ की घटना को झाँसी, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, मेरठ आदि की घटनाओं से जोड़कर इसे जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में उपस्थित किया जा सकता है, वहाँ इसे केवल झाँसी अथवा दिल्ली, अथवा लखनऊ की घटनाओं से जोड़कर एक क्षेत्रीय इतिहास के रूप में संगठित किया जा सकता है ।

ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं की "कथा" में परिणति

ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं के [illegible]-चयन तथा संगति एवं सम्बन्ध-[illegible] के पश्चात् उपन्यासकार की कार्य-पद्धति का द्वितीय भाग- उनको

कला में परिणत करने की क्षमता आती है और वास्तव में यह कलाकार की उपन्यासत करने की मूलभूत आवश्यकताओं में प्रमुखतम है तथा उसके शिल्पगत विशेष-ताओं से संबंधित है । एक साथ सभी उपन्यासकारों को अपने उपन्यास में सीधे जीवन से ली गयी तथा तथ्यों पर आधारित घटनाओं और परिस्थितियों को समाविष्ट करना यथार्थ लगता है, कभी-कभी उपन्यासों में जो अस्वाभाविक तथा अविश्वसनीय बातें आ जाती हैं, उनके पक्ष में लेखक यह दलील देता है कि ये चीजें सीधे जीवन या प्रकृति से ली गयी हैं । फिर भी कोई आलोचक इस बात को गम्भीरता से नहीं स्वीकार करेगा कि इस प्रकार के वक्तव्यों का प्रभाव किसी भी उपन्यास के उचित मूल्यांकन पर पड़ता है । किसी घटना का प्रकृत सत्य उपन्यास में उसके समावेश के लिए यथेष्ठ समर्थन नहीं होता और न यह उपन्यास को अधिक मूल्यवान ही बनाता है । इतना ही नहीं, वह उपन्यास की प्रभावान्विति तथा सत्यता को भी कम कर देता है । उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं के सम्मिश्रण की भी यही स्थिति है । उपन्यास में सत्य घटनाओं अथवा तथ्यों का मात्र समावेश, इतिहास के किसी अंश को येन-केन-प्रकारेण लेकर पैबन्द की तरह जोड़ देने का प्रयत्न, पाद टिप्पणी में मात्र यह लिख देने से कि "अमुक घटना वास्तविक रूप में घटित हुई" न्यायसंगत नहीं माना जा सकता । कोई भी ऐतिहासिक तथ्य किसी पाठक की उत्सुकता जागृत कर सकता है, अपने में अभिरुचि उत्पन्न कर सकता है, किन्तु यह उत्सुकता अथवा अभिरुचि किसी अन्य प्रकार की होगी और एक बिल्कुल संश्लिष्ट वस्तु की भाँति उपन्यास के सम्पूर्ण मूल्यांकन को प्रभावित नहीं कर सकती । इतिहास की [illegible] का सामयिक और स्वतंत्र प्रयोग सम्पूर्ण उपन्यास की रूपगत एवं प्रकृतगत विशेषताओं में कोई परिवर्तन नहीं करता और न उपन्यास को सत्यकथा तथा वास्तविक जीवन से समन्वित ही बनाता है । ऐतिहासिक [illegible] और तथ्यों का महत्व और उनके प्रयोग की सार्थकता उपन्यास में तभी है जब वे कला में परिणत होकर [illegible] की सम्पूर्ण स्थिति को कलात्मक एवं प्रभावशाली बनावें ।

इतिहास, घटनाओं से परिपूर्ण होता है और घटनाएं उससे इस प्रकार निःसृत होती हैं कि उनसे कथा बनाई जा सके । घटनाएं स्वयं कथा नहीं होतीं, किन्तु प्रतिभावना कथाकार द्वारा वे कथा में परिवर्तित की जा सकती हैं । इतिहास में ऐसी भी अप्राप्य घटनाएं या बातें होती हैं जिनको इतिहास कोई कि विशेष महत्व महत्व नहीं देता, किन्तु कथा के लिए उन बातों का अत्यधिक महत्व है और उन्हीं के कारण कथा "कथा" है और इतिहास "इतिहास" । इस प्रकार की बातें अत्यन्त घनिष्ट और वैयक्तिक होती हैं और प्रत्यक्ष अनुभव संस्पर्शों से परिपूर्ण होती हैं । वास्तविकता तो यह है कि अत्यन्त घनिष्ट और वैयक्तिक बातें तथा ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों के मानवीय संस्पर्श ही ऐसे तत्व हैं जो कुतूहल, रहस्य, रोचकता आदि औपन्यासिक गुणों से मिलकर घटनाओं और तथ्यों में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं तथा उन्हें जीवन्त कथा का रूप देते हैं । अतीत के जीवन में इन बातों को ग्रहण करने तथा अतीत के युग को पुनरुज्जीवित करने के लिए कल्पना द्वारा इतिहास को केवल सम्वर्द्धित करना तथा आविष्कृत उपकथाओं से उसे विस्तृत करना ही आवश्यक नहीं है वरन् यह भी आवश्यक है कि उसे कथा में परिणत करते हुए उपन्यस्त किया जाय ।

उपन्यास में इतिहास-प्रयोग का सबसे सहज रूप उस कथा का है जिसमें नायक किसी सुदूर अतीत युग में भ्रमण करता है और पाठक उसका अनुसरण करता है, मानो किसी नये विश्व में आ गया हो । नायक उस सुदूर अतीत में जो कुछ भी देखता है, उसी को देखने के लिए पाठक उत्सुक रहता है । यह अतीत युग तथा उस युग के कार्यों एवं परिस्थितियों की सम्पूर्ण योजना उस भ्रमणशील नायक से सम्बद्ध व नाना तथा उसके जीवन के स्वानि- पर आश्रित होती है । कुछ अंशों में यह प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में होता है । अपनी कथा की पृष्ठभूमि के किसी सजीव वर्णन के अतिरिक्त ऐतिहा- सिक उपन्यासकार को किसी विशिष्ट युग की विशिष्ट अवस्था का [illegible] आह्वान हमेशा आवश्यक होता है, क्योंकि उसकी कथा के पात्रों के भावुक और [illegible], किसी विशि[illegible] [illegible] के कार्य-कलाप तथा अन्य

के व्यापारों में उनकी उलझनों के परिणाम होते हैं । अतीत को निरूपित करने की इस पद्धति का अनुसरण यदि किसी उपन्यास में किया जाता है तो उसका अभिप्राय यह होता है कि एक युग की परिस्थितियों का व्यवस्थित रूप माना जाता है और किसी व्यक्ति के जीवन द्वारा उसके स्पर्श-बिन्दु पर ही वर्णित किया जाता है । यह व्यक्ति या पात्र ऐतिहासिक भी हो सकता है अथवा उपन्यासकार की अपनी सृष्टि भी हो सकता है । उसका जीवन उस दीपक की भाँति होता है जो उस विशिष्ट कालीन सीमाओं – देश तथा काल को जहाँ पर छूता है, प्रकाशित कर देता है । इस अर्थ में उसका जीवन उसके युग का निष्कर्ष होता है और युग की सभी विशेषताएँ उसमें सन्निहित रहती हैं ।

इतिहास को उपन्यास में परिवर्तित करने का एक अन्य प्रत्यक्ष और प्रभावशाली पद्धति है । यह पद्धति एक कथानक को प्रस्तुत करती है जो वास्तविकता से बँधा रहता है । किसी भी उपन्यास में साहसपूर्ण कार्यों एवं घटनाओं, पराक्रम, छल, अभिसन्धि, तथा विशिष्ट-कार्य-कलापों आदि की कल्पना समुचित तथा नियोजित ढंग से की जा सकती है किन्तु यदि ये बातें सीधे इतिहास से आवें, तो ये उन सूत्रों की भाँति हो सकती हैं जो परस्पर एक दूसरे को बाँधती हैं तथा उपन्यास को ऐतिहासिक यथार्थता और वास्तविकता प्रदान करती हैं । यहाँ इतिहास, कथाकार को कथा-संसार ही नहीं प्रदान करता वरन् वास्तविक कथाएँ प्रदान करता है, यह पूर्व घटित घटनाओं का चित्र मात्र नहीं होता वरन् प्रासंगिक कथाओं, घटनाओं और विवरणों का कोश होता है ।

पीछे एक स्थल पर जैसा कि संकेत किया गया है किसी भी युग की परिस्थितियाँ और अवस्थाएँ असंख्य कथाओं से भरी होती हैं और किसी व्यक्ति की कथा कहने की प्रवृत्ति को उकसाने के लिए पर्याप्त होती हैं । अतः इतिहास उपन्यासकार को प्रायः कथा का संकेत दे देता है । अधिक व्यापक और प्रत्यक्ष रूप में वह उपन्यासकार को एक कथासूत्र भी प्रदान कर सकता है ।

प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन चरित के रूप में वह एक बना बनाया उपयुक्त कथानक तो नहीं, किन्तु उपन्यास रचना के लिए एक उपयुक्त विषय, विकसित करने तथा समाधान प्रस्तुत करने के लिए कोई समस्या दे सकता है, क्योंकि ये चीजें उनके जन-जीवन को ही लेकर नहीं वरन् उनके व्यक्तिगत जीवनपक्ष को भी लेकर कथा को आमंत्रित करती रहती हैं । इसके अतिरिक्त इतिहास स्वयं भी उनके सम्बन्ध में अनेक प्रसिद्ध -अप्रसिद्ध घटनाओं का एक, सामान्य रूप रेखा प्रस्तुत करता है जो उपन्यास के लिए एक आधार प्रस्तुत करते हैं तथा एक सीमा-रेखा निर्धारित कर देते हैं जिसके भीतर उपन्यासकार रचना-कार्य करता है । किन्तु इन सबके परे मानवीय अनुभवों का, जीवन की विस्तृत परिधि का, जन साधारण के सम्पूर्ण संसार का एक विशाल समूह भी है जिनके विषय में इतिहास मात्र एक अपर्याप्त कथा कहकर रह जाता है । ये सब तो ऐसी बातें हैं जिनके बारे में उपन्यासकार को निश्चित रूप से स्वयं चिन्ता करनी पड़ती है और सच बात तो यह है कि यही बातें इतिहास को संवेदनमय एवं रसात्मक बनाकर कथा में परिवर्तित होने के लिए बाध्य करती हैं । वह उपन्यासकार जो राजाओं का तो कदाचित ही वर्णन करता है वरन् सामान्य योद्धाओं तथा नागरिकों का चित्रण करता है, जो हृदय और घर को छोड़कर कभी-कभी ही किसी कोर्ट या पार्लियामेण्ट को चित्रित करता है, इतिहास को वृत्तान्तों का भंडारागार मानकर वास्तविक [illegible] के लिए ही उसकी ओर दृष्टिपात करता है और वहाँ केवल प्रासंगिक कथाएं ही पाता है । अल्पकालीन अवसरों पर बातें अंधकार में से ही आती हैं । बहुत सी बातें केवल इंगित भर रहती हैं और कथा के बहुत से सूत्र थोड़ी दूर जाकर ही टूट जाते हैं । इतिहास, कथा के कुछ सुन्दर स्फुरणों में इधर-उधर फूट तो पड़ता है किन्तु उसमें कथा का वह [illegible] प्रवाह बहुत कम पाया जाता है जो किसी भी उपन्यास को सत्य, संश्लिष्ट एवं गतिशील बनाने के लिए आवश्यक होता है । उपन्यास में समाविष्ट होने से पूर्व वह विवरणात्मक और कथात्मक इतिहास खण्डित रूप में आता है और उपन्यासकार की कल्पना द्वारा ही परस्पर [illegible] हो पाता है । उस उपन्यासकार को जो ऐसी बातों के कहने का इच्छुक हो जो वास्तव में घट चुकी हैं, [illegible]संगिक घटनाओं पर

टूट पड़ना चाहिये ।

उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं का एक महत्वपूर्ण उपयोग है और यह इतिहास की घटनाओं और प्रासंगिक कथाओं को उपन्यास में परिवर्तित करने की एक अधिक प्रभावशाली पद्धति है । इस पद्धति में उपन्यासकार इतिहास के किसी वि[illegible] को कठोरता से स्पर्श नहीं करता और न कथा-संकेत के रूप में तत्कालीन परिस्थितियों का प्रयोग ही करता है । वह न तो किसी विशि[illegible] जनान्दोलन की लहर से अपने को अनुरक्त रखता है और न किसी विशिष्ट ऐतिहासिक चरित्र पर अपने ध्यान को केन्द्रित ही रखता है । यद्यपि वह इन चीजों की कभी उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु ये सब उसके चिन्तन के प्रमुख विषय नहीं होते और न उनके चारों ओर उसके कार्य का रूप गठित होता है । वास्तव में उसके कार्य का केन्द्र वे घटनाएं होती हैं जो वस्तुतः घट चुकी हैं, [illegible] पर ही उसकी आंख लगी रहती है और उन्हीं को लेकर वह रचना-कर्म में प्रवृत्त होता है । इस पद्धति का अन्तिम परिणाम यह होता है कि उपकथात्मक उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार अस्तित्व में आ जाता है जिसमें ऐतिहासिक उपाख्यान परस्पर असम्बद्ध रूप से कल्पना के एक क्षीण सूत्र द्वारा बंधे रहते हैं । इस योजना में एक कथा अपने पहले वाली कथा का ऐसे विच्छिन्न रूप से उत्तराधिकार ग्रहण करती है कि कभी-कभी आवयविक एकता को खोजना बड़ा कठिन हो जाता है । इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास कथा के विभिन्न खण्डों में विभाजित रहता है और एक कथा-समूह सम्भवतः [illegible] रूप से ही किसी अन्य कथा-समूह से सम्बद्ध रहता है तथा प्रायः अपने आप में पूर्ण रहता है । चतुरसेन शास्त्री कृत 'वैशाली की नगरवधू' तथा 'सोमनाथ' और [illegible] इसी प्रकार के उपन्यासों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें आवयविक एकता के सूत्रों का प्रायः अभाव है ।

इस प्रकार का उपन्यास [illegible] प्रासंगिक कथाओं से सम्पन्न इतिहास से ही उद्भूत हो सकता है । ऐसा देखा गया है कि विश्व-इतिहास में कुछ ऐसे विशिष्ट देश, काल तथा अंचल हैं जो उपन्यास में [illegible] की रच

पद्धति के विशेष अनुकूल पड़ते हैं, क्योंकि वे अपने इतिहास को प्रासंगिक कथाओं में ही सुरक्षित रखते हैं जो उपन्यास में परिवर्तित होने की अपेक्षा रखती हैं। जब जीवन, संकट और दुख-सुख के रंगों से परिपूर्ण तथा प्रभावशाली घटनाओं से संकुल हो, जब रोमांटिक पृष्ठभूमि पर ओजस्वी व्यक्तित्व की ऐसी प्रतिभा हो जो कार्य को नवीन गति दे तथा परिस्थितियों के संघात को प्रोद्दीप्त करे, और सबसे बड़ी बात कि जब वे पीढ़ी गीतों, कथाओं तथा परम्पराओं में सुरक्षित हो तब इतिहास सामाजिक विकास तथा जन-घटनाओं के शुद्ध विवरण की अपेक्षा घटनाओं, साहस एवं वीरतापूर्ण कार्यों, तथा कारनामों और वृतान्तों का कोश हो जाता है। ऐसी स्थिति मे उपन्यासकार को अपने ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इतिहास को सामग्रियों के कोशागार के रूप में ग्रहण करना चाहिये जो किसी महान कथासूत्र अथवा किसी लम्बी प्रक्रिया की अपेक्षा [illegible] घटनाओं का एक अनुक्रम होगा। पथ-विच्छिन्न घटनाओं तथा कहानियों द्वारा, जिन्हें इतिहास की पुस्तकों मे अपनी विस्तार-सीमा से अलग कर दिया है, महान [illegible] क्रान्तियों और प्रसिद्ध घटनाओं की मुख्यधारा से दूर इतिहास के एकान्तिक पथ तथा अतीत के धूमिल कोने भी प्रकाशमान हो उठते है। वे सब चीजें, हालांकि तथ्यों पर आधारित रहती हैं, ऐसी है जिनको कथाकार आविष्कृत करने का आकांक्षी होता है तथा उन्हें कथा में ले आता है। ऐतिहासिक उपकथात्मक उपन्यास का वस्तुतः यही कोष है।

पूर्ण रूप से व्यवस्थित और [illegible] ऐतिहासिक [illegible]पन्यास मे प्रासंगिक कथाएं एक दूसरे में से ही निकलती है और परस्पर इस प्रकार निबद्ध रहती हैं कि यदि एक भी प्रासंगिक कथा को निकाल दिया जाय तो [illegible] का समूचा ढांचा विशृंखल हो जाता है। ऐसे [illegible]पन्यास में सभी [illegible] कथाएं मिल कर एक ऐसा धारणा [illegible] उत्पन्न करती है जिससे और समूचा [illegible]पन्यास प्रसूत होता है तथा पाठक के सम्मुख स्वयं प्रकट होती हुई एक प्रक्रिया, एक नियोजित कथासूत्र के रूप मे आता है। शिथिल ऐतिहासिक [illegible]पन्यास में [illegible] कथाएं [illegible]रस्पर [illegible] रहती हैं और इसी अर्थ में केवल एक इकाई होती है कि वे सभी एक ही [illegible] नायक-से [illegible] होती हैं तथा समूचा उपन्यास कथा-सूत्र की अपेक्षा नायक के इर्द गिर्द अपने रूप का

निर्माण करता है, किन्तु उपकथात्मक ऐतिहासिक उपन्यास में ऐसा कोई एकीभूत कथासूत्र नहीं होता जो कथा का केन्द्र-बिन्दु हो, और न कोई विशिष्ट चरित्र होता है, वरन सम्पूर्ण उपन्यास उपाख्यानों अथवा उपकथाओं में विभाजित होता है और उसका प्रत्येक अध्याय एक प्रकार से स्वस्फूर्तिमय होता है तथा उसका स्रोत एक स्वतंत्र ऐतिहासिक तथ्य होता है । इतिहास, पूरे [illegible] के लिए विवरणों या वृत्तान्तों का उतना दीर्घ क्रम नहीं प्रस्तुत करता जितना असम्बद्ध प्रासंगिक कहानियां, जो कल्पना द्वारा परस्पर निबद्ध की जा सकती है, फिर भी जो अपने मूलभूत ऐतिहासिक परिवेश में स्वतंत्र रहती हैं । निश्चित और घटित घटनाओं के पुनर्गठन में अपनी मार्मिकता के बावजूद भी ऐतिहासिक विवरणों को सीधे इतिहास से लिये जाने की सम्पूर्ण पद्धति स्वयं इतिहास के खंडात्मक प्रकृति, अथवा, कम से कम कथाभिरुचि उत्पन्न करने वाले मानवीय व्यापारों से सम्बन्धित इतिहास की खंडात्मक प्रकृति से सीमित होती है[1] । आम तौर पर, ऐसा इतिहास मात्र उपाख्यानों या प्रासंगिक कथाओं तक अपना विस्तार बढ़ा सकता है, और तब एक ऐसी कृति के निर्माण का खतरा पैदा हो जाता है जो उपन्यास नहीं होता, वरन ऐतिहासिक रेखा-चित्रों का संकलन अथवा अतीत की पृष्ठभूमि में [illegible]त्मक आमोद-प्रमोद का प्रसूह बन जाता है । यहां, ऐतिहासिक उपन्यास में [illegible]ओं का संघर्ष अंकित किया जा सकता है । ऐतिहासिक उपन्यास की संरचना न तो अकेले इतिहास द्वारा की जा सकती है, और न चुने हुए इतिहास खण्डों से । उपकथाओं या उपाख्यानों का कोई समूह असम्बद्ध विवरण होता है तथा एक कुशल लेखक की कल्पना और निर्माण कौशल से प्रवाहशील कथा में एक[illegible] किया जा सकता है, अथवा वह असम्बद्ध विवरण में भी रह सकता

---

1. History supplies not so much a run of narrative for the whole novel, as unrelated episodes which fiction may fasten together, but which stand alone in their original historical setting. The whole method of taking narrative itself straight from the history-book, inspite of its pointedness in reproducing definite incidents that actually happened, has its limitations in the fragmentary nature of history itself, or atleast of the history that deals with personal human things of story interest.

—H.Butterfield: The Historical Novel, page 61.

है तथा उसके बावजूद भी उपन्यास में एक ऐसे भिन्न प्रकार का एकत्व प्राप्त कर सकता है जो किसी वर्णन से अधिक कुछ और हो । किन्तु दोनों अवस्थाओं में यह आवश्यक है कि कल्पना इतिहास की सहायता करे ।

ज्ञात घटनाओं एवं तथ्यों के पीछे मानवीय भावनाओं की परिकल्पना :

इतिहास की प्रकृत घटनाएं एवं तथ्य हमें देता है उनमें न तो कार्य-कारण-सम्बन्धों का कोई सुस्पष्ट सूत्र दृष्टिगत होता है और न उनके पीछे किसी ऐसी मानवीय-भावना या भावनाओं का समूह दिखाई देता है जो मूक घटनाओं एवं तथ्यों में प्राण-प्रतिष्ठा कर उन्हें जीवन्त बना सके । यद्यपि इतिहासकार प्रकृत घटनाओं और तथ्यों की विवेचना तथा सम्बन्धसूत्र स्थापित कर उनके कार्य-कारण सम्बन्धों की परिकल्पना करता है, किन्तु अपने सब प्रयत्न के बावजूद भी वह एक स्पष्ट, सजीव एवं मनोरम चित्र देने में सफल नहीं हो पाता । कारण कि उसकी अपनी सीमाएं होती हैं जिनके अन्तर्गत रहकर ही उसे अपने कार्य करने पड़ते हैं । किन्तु उन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों से कोई उपन्यासकार उपन्यास-संरचना में प्रवृत्त होता है तो उसके लिए मात्र यही आवश्यक नहीं है कि वह घटनाओं और तथ्यों के सम्बन्ध-सूत्रों और कार्य-कारण-सम्बन्धों की स्थापना करे वरन् यह भी आवश्यक है कि वह उन घटनाओं और तथ्यों के पीछे निहित मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं की कल्पना करे । क्योंकि इतिहास की प्रायः हर घटना के पीछे कुछ ऐसी मानवीय भावनाएं एवं संवेदनाएं रहती हैं, ऐसे व्यक्तिगत राग-द्वेष रहते हैं, ऐसे व्यक्तिगत स्वार्थ रहते हैं जो इतिहास की संपूर्ण धारा को गतिशील बनाते हैं । और सच बात तो यह है कि मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं से समन्वित होकर ही इतिहास के प्रकरण या इतिहास वास्तविक और सार्थक बन सकता है और उपन्यास का रूप ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है ।

इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएं और तथ्य मिल जायेंगे जिनके मूल कारण के सम्बन्ध में इतिहास बिल्कुल मौन है । ऐसी घटनाओं की व्याख्या के लिए इतिहासकार के पास न तो कोई कारण है और न कोई ऐसी सामग्री ही है

जिसके आधार पर वह ज्ञात घटनाओं की विवेचना कर सके । उदाहरण के लिए हम [illegible] प्रसिद्ध कलिंग की घटना को ले सकते हैं । इस घटना के संबंध में इतिहास हमें मात्र इतनी सूचना देता है कि सम्राट् अशोक ने कलिंग पर विजय प्राप्त करने के लिए आक्रमण किया और इस आक्रमण के विरुद्ध कलिंगवासियों ने पूरी तत्परता दिखाई तथा उसका सामना करने के लिए एक विशाल सेना रणक्षेत्र में उतर पड़ी । भयंकर युद्ध हुआ जिसमें "डेढ़ लाख कलिंग वासी बन्दी हुए, एक लाख मारे गये तथा उनसे कई गुना मर गये ।"[1] इस युद्ध की नृशंसता ने अशोक के हृदय पर इतना गहरा आघात किया कि उसने रक्तपात कभी न करने की शपथ ली ।

कलिंग-विजय तथा अशोक के हृदय-परिवर्तन का जो कारण इतिहास हमें देता है वह इतना क्षीण और कमजोर है कि इतने बड़े महान परिवर्तन के कारण रूप में हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते । कलिंगयुद्ध से पूर्व भी अशोक ने अनेक लड़ाइयां लड़ी होंगी, अनेक हत्याएं भी देखी होंगी, किन्तु उसका हृदय परिवर्तन क्यों नहीं हुआ ? कलिंग युद्ध के संदर्भ में अवश्य ही किसी वैयक्तिक एवं मानवीय घटना ने उसके मन को आन्दोलित तथा विवेक को भावुक बनाया होगा और तब उसने युद्ध से विरत होने तथा कभी न युद्ध करने का संकल्प लिया होगा । इस आधार पर उपन्यासकार स्वतंत्र है कि वह अशोक के हृदय परिवर्तन की महान् घटना के कारण स्वरूप किसी ऐसी मानवीय तथा उसके हृदय पर आघात करने वाली संवेदनशील, भावनात्मक घटना की कल्पना करे जो सहज सम्भाव्य भी हो और हमें सहज ही प्रतीति करा सके । "अमिता" में यशपाल ने इस महान घटना के पीछे निहित ऐसी ही मानवीय भावना की परिकल्पना की है और अशोक के [illegible] और इस महान घटना के [illegible]रण का उद्घाटन किया है ।

ज्ञात घटनाओं और तथ्यों के पीछे निहित मानवीय भावनाओं की [illegible] [illegible]कार दो रूपों में करता है अथवा कर सकता है -ऐतिहासिक

१- डा० रमाशंकर [illegible] प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १२६ ।

सन्दर्भ के अनुकूल तथा ऐतिहासिक सन्दर्भ के प्रतिकूल । पहली अवस्था में वह मानवीय भावनाओं की परिकल्पना इस रूप में कर सकता है कि वे ऐतिहासिक घटनाओं और उनकी भी प[illegible] हों और ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि में सहयोग दें । दूसरी [illegible] में वह ऐतिहासिक सत्य के प्रतिकूल मानवीय भावनाओं की परिकल्पना कर सकता है । इतिहास बहुधा चरित्रों को स्थिर रूप में सामने रखता है और उनका व्यक्तित्व बहुत कुछ रूढ़ हो जाता है । उनमें अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए केवल ऐतिहासिक घटनाएं ही सहारा देती हैं । किन्तु जब उपन्यासकार पात्रों को तरल बना देता है और चरित्र को अद्‌भुत दिशाओं में ले जाता है तो कुतूहल और अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी इतिहास-प्रसिद्ध भावनाओं के प्रतिकूल भावनाओं से उन्हें समन्वित कर देता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि अन्त तक वह उन प्रतिकूल भावनाओं को बनाये ही रखे । बहुधा नाटकीय विधि से परिवर्तन दिखाकर वह इतिहास के अनुकूल भावनाओं [illegible] चित्रण करने लगता है । अशोक को पहले अति क्रूर चित्रित करना, फिर किसी कल्पित घटना के द्वारा हृदय परिवर्तन [illegible] अति उदार और अति कोमल [illegible] करना ऐसा ही कहा जायेगा । जयचन्द ने विश्वासघात और देश के प्रति गद्दारी की थी यह इतिहास प्रसिद्ध है और ऐतिहासिक सत्य तथा लोक प्रतीति दोनों के अनुकूल माना जाता है, किन्तु डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने "पुनर्नवा/चारु चन्द्र लेख" में जयचन्द को इसके विपरीत पृथ्वीराज के समान ही देश-प्रेमी दर्शाया है और विश्वासघात का दायित्व उनकी रानी पर डाल दिया है जिसका ऐतिहासिक स्वरूप ज्ञात नहीं है ।

उद्देश्य का आरोप तथा दृष्टिकोण:

किसी भी कलाकृति के सृजन के पीछे कुछ प्रेरक शक्तियां होती हैं जिनके कारण कलाकार उसकी संरचना में प्रवृत्त होता है और अपने उद्देश्य तथा दृष्टिकोण का उन पर आरोप करता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए इतिहास मात्र मात्र इतिहास नहीं रह गया है वरन् एक प्रतीकात्मक महत्व की वस्तु बन गया है ।

प्राचीनता के मोह के अतिरिक्त भी कुछ ऐसा है जो उपन्यासकार को अतीत की ओर ले जाता है । डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार निम्नलिखित उद्देश्यों, भावनाओं और दृष्टिकोणों से प्रेरित होकर उपन्यासकार इतिहास की ओर प्रवृत्त हो सकता है और इतिहास को उपन्यस्त करते समय उनका आरोप कर सकता है:-

(१) वर्तमान से पराजित अथवा असन्तुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना ।

(२) अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण समझते हुये उसके पुनर्संस्थापन की भावना ।

(३) वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य खोजने की भावना ।

(४) कतिपय ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं के प्रति न्याय की भावना ।

(५) इतिहास-रस में लिप्त रहने की भावना ।

(६) जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापन तथा वीर पूजा की भावना ।

(७) जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना[1]।

इन भावनाओं में से कोई एक अथवा कई संयुक्त होकर प्रमुख अथवा गौण रूप से प्रेरणा देते हुए ऐतिहासिक उपन्यास का बीज वपन कर सकती है ।

उपर्युक्त उद्देश्यों, भावनाओं तथा दृष्टिकोणों से प्रेरित होकर हिन्दी उपन्यासकारों ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों की संरचना की है । चूंकि भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन का सूत्रपात राष्ट्रीय जागरण और स्वतंत्रता -आन्दोलन के साथ ही हुआ, अतः उनमें अतीत की गौरवगाथा, विगत वैभव का भावुक चित्रण और देश पर बलिदान हो जाने तथा प्राण देकर भी आत्म सम्मान की रक्षा करने का भाव प्रधान रूप से मिलता है । इसे पलायन प्रवृत्ति नहीं कहा जा सकता । विदेशी इतिहासकारों ने ऊपर से तटस्थता का भाव

१- आलोचना, उपन्यास विशेषांक, अक्टूबर, १९५४, पृष्ठ १०८ ।

प्रदर्शित करते हुए भी भारतीय इतिहास के चित्रण में अत्यधिक पक्षपात का सहारा लिया है और उसे पर्याप्त रूप में विकृत करके सामने रखा है जिसके पीछे भारतीय गौरव,वीरता, सभ्यता और संस्कृति को अपने सम्मुख हीनतर सिद्ध करने की चेष्टा है । कतिपय मनस्वी एवं प्रतिभाशाली उपन्यासकारों को यह बात उचित नहीं प्रतीत हुई और उसका उन्होंने सशक्त प्रतिवाद किया । कन्हैयालाल मुन्शी का "जय सोमनाथ"(गुजराती), वृन्दावनलाल वर्मा का "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" तथा प्रताप नारायण श्रीवास्तव का "बेकसी का मज़ार" इसी मनोभावना से लिखे गये उपन्यास हैं । मुन्शी की कृतियों में आंशिक रूप से प्राचीनता की [illegible]पना का भाव भी निहित प्रतीत होता है । वृंदावनलाल वर्मा कृत"मृगनयनी" तथा "माधव जी सिंधिया" एवं सत्यकेतु विद्यालंकार का उपन्यास "आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य" वीरपूजा की भावना से लिखे गये [illegible]पन्यास हैं । मुन्शी तथा वर्मा की कृतियों में भारतीय [illegible] गौरव और जातीय शौर्य की प्रतिष्ठा का प्रयत्न लक्षित होता है । राष्ट्रीयता और आत्मगौरव की भावना बंकिमचन्द्र के "आनन्द मठ" -जैसी कृतियों में अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है । बंगाल के यशस्वी ऐतिहासिक उपन्यासक[illegible]र राखाल बाबू के "करुणा" और "शशांक "- जैसे [illegible]पन्यासों में सांस्कृतिक चेतना अधिक उभर कर आई है ।हरिनारायण आप्टे ने महाराष्ट्र में और बकी नरसिंह ने दक्षिण में राष्ट्रीय चेतना को उद्दीप्त और जागृत करने वाले उपन्यासों का प्रणयन किया । उधर कतिपय उपन्यासकारों ने साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होकर विशिष्ट ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है जिनमें वर्तमान विचारधारा को सम्पोषित करने के लिए अतीत का आश्रय लिया गया है । राहुल सांकृत्यायन कृत "सिंह सेनापति" तथा "जय यौ[illegible]", यशपाल कृत "दिव्या", रांगेय राघव कृत "मुर्दों का टीला" एवं परदेशी कृत "गौतम बुद्ध की [illegible]" इसी [illegible]ष्टिकोण से लिखे गये [illegible]पन्यास हैं । इन [illegible] में प्राचीन भारत के गणराज्यों की [illegible] अंकित है तथा गणतंत्रात्मक राज्य-[illegible] की [illegible]स्थाओं को प्रका[illegible]र से उठाया गया है एवं पूँजीवाद की परंपरा को अतीत के गौरव से [illegible] किया गया है । जीवन की किसी सर्वथा नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने वाला एक मात्र ऐतिहासिक [illegible]पन्यास भगवतीचरण वर्मा का

उपन्यास "चित्रलेखा" है जिसमें पाप-पुण्य की समस्या को उठाया गया है । मध्य-काल के प्रति सहज साहित्यिक आकर्षण तथा नारी-प्रतिष्ठा की भावना से प्रेरित होकर लिखे गये ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारी प्रसाद द्विवेदी "बाणभट्ट की आत्मकथा" महत्वपूर्ण कृति है ।

उद्देश्य के आरोप के अन्तर्गत ही दृष्टि-बिन्दु के निर्धारण की समस्या आती है । ऐतिहासिक उपन्यास की प्रकृति एवं स्वरूप-विवेचन के सन्दर्भ में जैसा कि उल्लेख किया गया है जब किसी घटना या घटनाओं अथवा पात्रों के देखने का कोई नवीन दृष्टि-बिन्दु अपनायाजाता है तो उनसे निर्मित कथा का सम्पूर्ण रूप ही बदल जाता है और वही घटनाएं भिन्न रूप में अपने विभिन्न अभिप्रायों सहित सम्मुख आने लगती हैं । यदि किसी घटना अथवा पात्र अथवा कथा का सहानुभूति केन्द्र बदल जाता है तो उससे सम्बन्धित प्रत्येक बात का रूप ही कुछ अन्य हो जाता है । किसी घटना का अपराधी, घटनाग्रस्त व्यक्ति तथा नायक के दृष्टिकोण से वर्णन करना एक ही कथा को विभिन्न प्रकार से वर्णन करना मात्र नहीं, वरन् दो नयी कथाओं को प्रस्तुत करना है । जैसा कि एच०बटरफिल्ड ने उल्लेख किया है [illegible] ने एक ही घटना के प्रधान उपकरणों को लेकर भी विभिन्न प्रकार से वर्णित किया है - प्रत्येक वर्णन विभिन्न सम्बन्धित व्यक्तियों की दृष्टि-बिन्दु पर रख कर किया गया है । इस प्रकार उसने दिखाया है कि किसी भी घटना या कथा का एक भिन्न विचार-बिन्दु से पुनर्कथन वस्तुतः एक नयी कथा को कहना है[1] । बंगला के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यासकार राखालदास बन्द्योपाध्याय का उपन्यास "शशांक" तथा हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार रांगेय राघव का उपन्यास "चीवर" मूलतः एक ही घटनाक्रम को लेकर लिखे गये उपन्यास हैं किन्तु दृष्टिबिन्दु में अन्तर होने से दोनों के कथाक्रम में पर्याप्त अन्तर है । "शशांक" का नायक [illegible] अर्थात् नरेन्द्रादित्य जहां वीर, धीर एवं [illegible] है वहां "चीवर" का प्रतिनायक "शशांक" क्रूर, खल तथा विलासी है । दृष्टि-बिन्दु के बदल जाने से दोनों [illegible] की सम्पूर्ण कथा का रूप ही कुछ भिन्न हो गया है ।

---

1. H.Butterfield: The Historical Novel, page 77.

काल तथा संस्कृति-बोध:

ऐतिहासिक उपन्यास में काल तथा संस्कृति-बोध की समस्या वस्तुतः वातावरण के निर्माण तथा भाषा की समस्या है । किसी विशेष ऐतिहासिक काल की सभ्यता, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, जीवन-पद्धति, रहन-सहन, सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक स्थिति तथा उस काल के जन-जीवन का ऐतिहासिक स्वरूप ही ऐतिहासिक वातावरण है । वास्तव में ऐतिहासिक वातावरण ही वह तत्व है जो किसी भी उपन्यास को अन्य उपन्यास-प्रकारों से अलग करके ऐतिहासिक उपन्यास के पद पर प्रतिष्ठित करता है और इतिहास की गरिमा प्रदान करता है । मात्र तिथियों के उल्लेख और ऐतिहासिक पात्रों के नाम का समावेश कर देने से ही कोई उपन्यास ऐतिहासिक नहीं बन सकता । ऐतिहासिक उपन्यास के लिए पहली शर्त है कि उसका वातावरण, उसका परिवेश, उसकी वह आधारभूमि ऐतिहासिक हो जिसमें घटनाएं घटती हैं और पात्र विहार करते हैं । यदि किसी उपन्यास में इस शर्त को पूरा करने का लक्ष्य नहीं है तो स्थात ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के होने के बावजूद भी वह सही माने में ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है - और चाहे जो कुछ हो । अतएव, ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिये यह अधिक आवश्यक और म[illegible] है कि वह अतीत का चित्रण, अपने समसामयिक विश्व से भिन्न रूप में करे और उस अतीत के विश्व के किसी विशि[illegible] मार्ग का आलेखन तथा प्रसिद्ध जन-घटनाओं की किसी विशिष्ट धारा का परिमार्जन करने की अपेक्षा उसके सम्पूर्ण वैशिष्ट्य और रीतिनियों को प्रदर्शित करे । इसके लिए सूक्ष्मता, यथातथ्यता तथा [illegible] से घटनाओं का वर्णन एवं महान् राजनैतिक घटनाओं के प्रति रुद्ध रहने की अपेक्षा अतीत युग की आत्मा को अभिव्यक्ति करने तथा उसकी विचार-[illegible] एवं जीवन-पद्धति को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने की बात अधिक महत्वपूर्ण है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है, वह है संश्लेषणात्मक ढंग से युग की [illegible]ना, संसार के प्रति युग की दृष्टि तथा जीवन-आस्था एवं अनुभव की वि[illegible]ताओं की पुनः-प्रस्तुति, अपेक्षाकृत घटित घटनाओं के पुनः [illegible]न के । अर्थात् किसी सुदूर अतीत काल

की ओर दृष्टिपात करते समय उसे (ऐतिहासिक उपन्यासकार) विभिन्न जीवन-स्तरों और उनके सम्बन्धों को नहीं देखना चाहिए वरन् जीवन की सम्पूर्ण स्वर-संगति को ही पकड़ने का लक्ष्य रखना चाहिए, तथा उसका मूल्यांकन तथ्यों और घटनाओं की राशि के रूप में न कर एक विशिष्ट जीवन-प्रवाह या जीवन-दशा के रूप में करना चाहिए । वह घटनाओं की परिगणना कर सकता है, उनका वर्णन तथा उन पर टीका-[illegible] भी कर सकता है, किन्तु उसकी कला का वास्तविक रहस्य इस बात में निहित है कि वह युग की आत्मा को प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखता है । इस प्रकार, जब वह वर्णन करने लगता है तो ज्ञात होता है कि युग स्वयं उसकी योजना में सम्मिलित है और अपने "वातावरण" में ही अपने आपको प्रस्तुत कर रहा है ।

इतिहास के विभिन्न युगों का अपना निजी "वातावरण" होता है, जैसे वैदिक युग, बौद्ध युग, मध्य युग, मुस्लिम [illegible] काल आदि आदि, किन्तु वह इतिहास के साथ पैर मिलाकर गतिशील नहीं होता और न मात्र युग अथवा काल से ही सम्बद्ध होता है । देशों और अंचलों का भी अपना वातावरण होता है और उनमें कुछ ऐसे [वि]शिष्ट तत्त्व होते हैं जो उन्हें अन्यों से अलग करते हैं, उदाहरणार्थ बुन्देलखण्ड या गुजरात अथवा स्काटलैण्ड का हाईलैंड या हंग्री । बौद्ध-कालीन [illegible] का वातावरण वही नहीं है जो आज की दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता या लखनऊ का है । स्काट का कृषक-समुदाय अथवा वृंदावनलाल वर्मा का बुन्देलखण्डी जीवन अपने "वातावरण" के साथ ही हमारे सम्मुख आता है । इसी प्रकार एक ग्राम अथवा एक [ऐति]हासिक [illegible] या [रा]ज दरबार का अपना निजी "वातावरण" होता है । ये ऐसे निर्धारित क्षेत्र हैं जो [म]नुष्यों के जीवन को घेरते हैं और मात्र उनमें विशिष्टताएं ही नहीं होतीं वरन् उनके अपने निज के चरित्र भी होते हैं और वे महज़ एक दूसरे के रूपान्तर मात्र नहीं होते । प्रत्येक क्षेत्र अपने आप में नवीन चित्र होता है और विश्व की ओर देखने की उसकी विशिष्ट पद्धति होती है – "वातावरण" किसी एक भू-भाग से सम्बद्ध होता है जो अपने आप में एक जीवन होता है, एक पहचान होता है और एक ऐसा विशिष्ट [illegible] होता है जिसकी [illegible] रचना एक अलग विश्व का निर्माण करती है ।

जीवन के ये विविध क्षेत्र – इतिहास के युग, कार्य-व्यापारों के क्षेत्र और अंचल- अपने आप में एक विश्व के रूप में देखे जा सकते हैं जिनका एक अपना जीवन होता है । किन्तु यह जीवन केवल अपने पात्रों के द्वारा ही अपने को व्यक्त करता है, अर्थात् वह अपने को इन व्यक्तियों के पूर्वग्रहों, विचार-पद्धतियों, प्रवृत्तियों, आदतों और बोली की विशिष्टताओं के माध्यम द्वारा व्यक्त करता है जो उस विश्व में भाग लेते हैं । और जिस प्रकार एक शिशु पढ़ना सीखते समय पहले केवल अक्षरों का उच्चारण करता है, फिर सतर्कता से उन्हें शब्दों में जोड़ता है और तब उसे धीरे-धीरे शब्दों की पूर्णता का बोध होता है – उसी प्रकार इतिहास का विद्यार्थी पहले केवल इतिहास के विच्छिन्न विवरणों और तथ्य-खण्डों को देखता है और फिर धीरे-धीरे वह एक ऐसे बिन्दु पर आता है, जहाँ से उसका मस्तिष्क एक संश्लेषण पर छलांग मारता है और एक ऐसा जीवन देखता है जो कि तथ्यों और विवरणों की विविधता का स्रोत होता है । उपन्यासकार जो सतर्कतापूर्वक इतिहास के तथ्यों को पुनर्प्रस्तुत करता है, शब्दशः उनका अनुकरण करता है तथा किसी जन-जीवन के विवरणों की यथार्थ-प्रस्तुति के लिए उनका संग्रह कर जबरदस्ती अर्थ निकालता है, वह अपने कथा-विन्यास का भेद खोलने से कदापि बच नहीं सकता । किन्तु सत्उपन्यास लेखक जिसने इन सभी तथ्यों के पीछे रहने वाले सिद्धान्त को पकड़ लिया है, केवल पात्रों, कार्य-व्यापारों अर्थपूर्ण कथनों को ही नहीं देखता, वरन् इन सभी के भीतर एक जीवन देखता है और इस जीवन के चित्रण के लिए वह अपने दावे को त्याग भी सकता है । ऐसे उपन्यासकार के लिए इतिहास का युग सूचनाओं का समवाय मात्र नहीं रह जाता, अपितु एक ऐसा विश्व हो जाता है जिसको उपन्यासकार ने आत्मसात कर लिया है । उपन्यासकार द्वारा संगृहीत और भी अधिक विवरण तथा तथ्य उस विश्व में अपना चरित्र, अपनी महत्ता तथा अपना एक सन्दर्भ बड़ी आसानी से पा सकते हैं । ये विवरण तथा तथ्य उपन्यासकार की स्वीकृति तथा निर्णय को भी [illegible] अथवा परिवर्तित-परिवर्धित कर सकते हैं, किन्तु इतिहास का वह युग उसके मस्तिष्क में कल्पना के अर्द्धस्फुट कुसुम की भाँति स्थित रहता है । वह चाहे तो उससे अपना हाथ खींच सकता है अथवा अपनी रचना-प्रक्रिया को

की सीमा में उसे समेट कर पुनः पुनः उस पर तर्क-वितर्क कर एक नयी अथवा संशोधित आकृति भी गढ़ सकता है ।

उपन्यासकार, जो इतिहास की अनेक शताब्दियों के अनुभवों को अपनी कल्पना में धारण करने की शक्ति रखता है और इतिहास के किसी विशिष्ट विश्व या वातावरण में अपने आपको सहज अनुभव करता है, जो अपने आपको किसी युग की आत्मा से सम्पृक्त रखता है तथा तत्कालीन जीवन-पद्धति एवं युग-वैशिष्ट्य के साक्षात्कार की क्षमता रखता है, वही उस काल में प्रचलित विचार-सरणियों तथा उनके अप्रत्याशित परिवर्तनों को पहचान सकता है और अतीत की जीवन-पद्धति एवं रीति-रिवाजों को प्रस्तुत कर सकता है, तथा तत्कालीन बोली (भाषा) की विशेषताओं में बिना प्रयास के ही प्रविष्ट हो सकता है । सीधे इतिहास की पुस्तक के विवरणों तथा तथ्यों को कथा-पुस्तक में पुनरारोपित करने के बदले वह उस जीवन के लिए अभिव्यंजन-शैली की खोज करता है जिसको उसने अपना बना लिया है । "वातावरण" यद्यपि मात्र स्वाभाविकता का परिणाम नहीं होता, किन्तु यह उसकी अनिवार्य आवश्यकता है जैसे विद्युत प्रवाह के लिए "सर्किट" का पूरा होना । सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि वातावरण उन विवरणों के षड्यंत्र का परिणाम होता है जो खोज के सिलसिले में हमारे अनुभवों के बीच सहज रूप में आ जाते हैं और इतिहास में किसी युग के विश्व को अधिकृत कर लेते हैं[1]। किन्हीं अर्थों में यह अतीत से सम्बन्धित है, किन्तु उपन्यासकार के व्यक्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता । "ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत के बारे में केवल धारणाएं ही प्राप्त नहीं करता, वरन् उन्हें

---

1. Atmosphere, though not merely the result of spontaneity, any more than the electricity is the result of the wire, demands this as its necessary concomitant, as electricity demands the complete circuit. Perhaps it may be said the atmosphere is the result of a conspiracy of details that come in an effortless way from a find that has entered into the experience and made appropriation of the 'World' of some age in history.

—H.Butterfield: The Historical Novel, page 106-107.

आत्मसात भी करता है । उसके उपन्यास में वातावरण उसके व्यक्तित्व के उत्प्रवाह की भांति आता है जिसने इतिहास को अभिभूत कर लिया है ।

किन्तु प्रत्येक अवस्था में, वातावरण में एक ऐसा विशिष्ट तत्व होता है जो अतीत से सम्बन्धित है और वह ऐसे कथाकार द्वारा जो अतीत को पुनर्निर्मित करना चाहता है, बीते युग में अध्यारोपित किया जा सकता है । उसका अतीत का अपना अनुभव, उसकी अपनी भावनाएं और महत्वाकांक्षाएं बीती शताब्दियों में स्थानान्तरित की जा सकती हैं । किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास में उपन्यासकार अतीत को केवल पुनर्प्रस्तुत ही नहीं करता, किन्तु वह अपने व्यक्तित्व के किसी पक्ष अथवा विचारधारा को भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में मिला देता है । और सच बात तो यह है कि उसके (अतीत) प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रकट किये बिना वह उसका वर्णन ही नहीं कर सकता । यही बात उस इतिहासकार के लिए भी सही है जो अतीत तथा उसके वास्तविक वातावरण के पुनर्निर्माण का लक्ष्य रखता है ।

जैसा कि प्रारम्भ में ही संकेत किया गया है काल तथा संस्कृति-बोध की अवस्था से ही अन्तर्गत भाषा की भी अवस्था आती है । वातावरण के निर्माण में प्रयुक्त भाषा का भी महत्वपूर्ण योग रहता है । किसी भी भाषा और उसके व्यवहृत शब्दों के पीछे एक सांस्कृतिक परिवेश होता है जो सम्बद्ध समाज की संस्कृति एवं उसकी प्राचीनता की ओर संकेत करता है । "भन्ते" शब्द के उच्चारण मात्र से जैसे हम बौद्ध काल एवं बौद्ध संस्कृति में पहुंच जाते हैं, वैसे ही "आर्य" शब्द हमें हिन्दू-काल का बोध कराता है । मुस्लिम काल में प्रयुक्त होने वाली अरबी-फारसी शब्दावली हमें मुस्लिम एवं काल का निरूपण कराती है । तो इस प्रकार भाषा का सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण योग रहता है ।

यह कहने के लिए साहस चाहिए कि वातावरण की स्वाभाविकता के लिए ऐतिहासिक उपन्यास तथा उसके पात्रों की भाषा उसी काल की होनी चाहिए, जिस काल से सम्बन्धित उपन्यास हो । यह तो उसी प्रकार की बात हुई

कि कोई उपन्यासकार अपने बचपन की पुनर्गणना करते समय अपने जीवन के प्रारम्भिक प्रयत्नों, अन्धवत् अन्वेषणों, वार्तालापों आदि को समझने के लिए बच्चों की भाषा का प्रयोग करे । कलात्मकता तो इसमें है कि बाल्यावस्था की भावनाओं, विचारों और चिन्तनाओं को ऐसी भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाय कि वयस्क पाठक तत्काल समझ ले । सिद्धान्ततः ऐसा कोई विशेष कारण नहीं जिससे यह कहा जाय कि मध्यकालीन चरित्र और वातावरण आधुनिक भाषा के प्रयोग से अधिक सजीव और यथार्थ चित्रित किये जा सकते हैं । इस कारण से सिद्धान्त रूप में ऐतिहासिक उपन्यासों के भाषा-विषयक माध्यम तथा समसामयिक उपन्यासों के भाषा-विषयक माध्यम में कोई अन्तर नहीं ।

किन्तु जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है किसी भी भाषा के शब्दों का अपना सांस्कृतिक परिवृत्त होता है जो वातावरण की विशेषताओं को प्रकट करता है । प्राचीन हिन्दू काल पर उपन्यास लिखते समय संस्कृत-प्रधान भाषा का प्रयोग ही समीचीन और संस्कृति-बोध के लिये उपयुक्त होगा । यदि कोई उपन्यासकार यह चाणक्य के जीवन पर उपन्यास लिख रहा हो और किशोरीलाल गोस्वामी अथवा [illegible] जी द्वारा प्रयुक्त भाषा को अपनाये जिसमें उर्दू-फारसी शब्दों की बहुलता है तो वातावरण निर्मित करने की बात तो अलग, एक अजीब हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जायेगी । इसी प्रकार मुस्लिम काल से सम्बन्धित उपन्यास में [illegible], संस्कृत, प्रधान भाषा का प्रयोग काल तथा संस्कृति बोध में व्यवधान उपस्थित करेगा । "आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य" में डॉ॰ सत्यकेतु विद्यालंकार ने खेमे के लिए पटकुटक, मजदूर के लिए कर्मकार, छावनी के लिए स्कन्धावार, काफिले के लिए सार्थ, रसोईघर के लिए महानस आदि प्राचीन संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर तत्कालीन वातावरण को उपस्थित करने का प्रयत्न किया है । इसी प्रकार डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "बाणभट्ट की आत्मकथा" नाम अपने उपन्यास में हर्षकालीन [illegible] एवं वातावरण की रक्षा के लिए तथा बाणभट्ट के व्यक्तित्व चरित्र को उभारने के लिए संस्कृत प्रधान भाषा का प्रयोग किया है और सरिताओं, नगरों, दुर्गों, पर्वतों आदि तक के नाम भी प्राचीन रखे हैं ।

ऐतिहासिक वातावरण को उपस्थित करने के लिए उपन्यासकार को सांस्कृतिक इतिहास का गम्भीर ज्ञान होना अपेक्षित है और किसी युग की रीति-नीति, रहन-सहन, आचार-विचार, आमोद-प्रमोद, धर्म-दर्शन, काव्य-कला आदि का सम्यक् ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त ही उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त होना चाहिए। पात्रों की वेश-भूषा, बोल-चाल, प्रकृति और स्वभाव तथा जीवन-रीति के विभिन्न पक्षों का वर्णन करते समय युगीन मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि कोई उपन्यासकार मुगल सम्राटों को वर्तमान वेशभूषा में चित्रित करे अथवा उनके अन्तःपुरों में आज की सजावट दिखावे तो वह वातावरण का दोष कहा जायगा। प्रत्येक युग में जन-रुचि भिन्न होती है। निवास-स्थान, उपवन, [illegible], वस्त्राभूषण, पारिवारिक-सामाजिक मर्यादा शासन-नीति आदि के युगानुरूप चित्रण से ही अनुकूल ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि सम्भव है। अतएव काल तथा संस्कृति-बोध के लिये इनका सूक्ष्म एवं विस्तृत ज्ञान अपेक्षित है।

इतिहास और कल्पना के बीच सन्तुलनः

ऐतिहासिक उपन्यास मूलतः बुद्धि-कल्पना का ही चातुर्य है और ऐतिहासिक उपन्यासकार की कल्पना किस सीमा तक इतिहासकार की कल्पना से साम्य रखती है और कहाँ उसमें विभेद है, इस पर हमने इतिहास मूलक कल्पना के विवेचन के प्रसंग में विचार किया है। इसमें सम्भवतः दो मत नहीं हो सकते कि ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यतः इतिहास और कल्पना का कलात्मक समन्वय है और यही समन्वय उसके विभिन्न भेदों और कोटियों का निर्धारण करता है।

इतिहास को उपन्यस्त करने के सन्दर्भ में यह समस्या भी आती है कि उसमें इतिहास और कल्पना का ऐसा सामंजस्य रहे जिससे कृति अपनी कलात्मक संरचना में उत्कृष्ट हो सके। दूसरे शब्दों में इसे यों कह सकते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यासकार वस्तु, पात्र और वातावरण के चुनावों में किस सीमा तक इतिहास का अनुसरण करे और कहाँ तक अपनी स्वतंत्र कल्पना का प्रयोग करे। यह प्रश्न ऐसा है जिसके लिए कोई नियम अथवा सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। वस्तुतः

इतिहास और कल्पना के सामंजस्य की बात बहुत कुछ उस इतिहास और उसकी पृष्ठभूमि पर निर्भर है जिसको उपन्यस्त किया जाता है । यदि इतिहास की जानकारी अधिक है तो कल्पना के लिए स्थान कम रह जाता है, किन्तु यदि इतिहास कम ज्ञात है तो कल्पना के प्रयोग की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं । इतिहास और कल्पना के सामंजस्य के सम्बन्ध में डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा का यह कथन कि "जहां तक सच्चा इतिहास प्राप्त हो, उसको बिना किसी हेर-फेर के ज्यों का त्यों रखा जाय । जहां इतिहास अस्पष्ट या अप्राप्त है, शृंखला मिलानी है अथवा प्रधान पात्र के चरित्र को आगे बढ़ाने या उभारने के लिए गौण पात्रों की आवश्यकता है वहां आधुनिक मानव-जीवन के जीवित पात्रों का मेल अपनी कल्पना शक्ति के सहारे मिला लेना चाहिए । समय बदल सकता है, मानव स्वभाव वही रहेगा[1] ।" अधिक संगत और उचित प्रतीत होता है । इस सन्दर्भ में उनका प्रस्तुत मन्तव्य भी द्रष्टव्य है--"इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु क वह केवल इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है । चाहे तो केवल युद्धों की मार-काट, राजनीतिक चालों की दौड़-धूप किसी प्रेम कहानी से जोड़कर उपन्यास को घटना प्रधान कर दे, चाहे तो मनोविज्ञान के विश्लेषण की सहायता से [illegible] रचित घटनाओं को पूर्ण विश्वसनीय बना दे । परन्तु वह प्रयत्न सत्य और सुन्दर की परिधि में ही बन्द रहता है । जब तक वह शिव के क्षेत्र में कल्पना को न दौड़ाये उसका चरित्र उतना सराहनीय नहीं हो सकता ।--------जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता है, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास लेखक छूटी हुई या छोड़ी हुई कथा का निर्माण करता है । उनमें वही चमक-दमक आ जाती है जो इतिहास के जाने-माने तथ्यों में अवस्थित होती है, पर शर्त यह

१- डॉ०गोविन्द प्रसाद शर्मा: के अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन" (नागपुर विश्वविद्यालय) के परिशिष्ट, पृ०४९४ पर प्रयुक्त ।

है कि इन तथ्यों या परम्पराओं को ताश के पत्तों का महल या रबड़ घर न बना दिया जाय ।"[1] श्री राहुल सांकृत्यायन[2] तथा डॉ० रांगेय राघव[3] भी सिद्धान्ततः वर्मा जी के इस मत के पोषक हैं ।

इसी सन्दर्भ में यह प्रश्न भी उठता है कि क्या ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक घटनाओं, चरित्रों आदि में परिवर्तन करने की स्वतंत्रता है ? कतिपय समालोचकों और उपन्यासकारों की धारणा है कि ऐतिहासिक उपन्यास प्रधानतः उपन्यास है, इतिहास नहीं । अतः उसमें इतिहास की रक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता । इतिहास की पृष्ठभूमि में उपन्यास लिखा जाता है, इतिहास होता नहीं दिखलाया जाता है । इतिहास तो पर्दा है, बहाना है, लक्ष्य तो उपन्यास लिखना है । अतः लेखक को अधिकार है कि लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह इतिहास की घटनाओं और पात्रों में जैसा चाहे परिवर्तन कर दे । हिन्दी में श्री चतुरसेन शास्त्री इस मत के विशेष पोषक हैं। इसके विपरीत कुछ अन्य समीक्षकों का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक चरित्रों और घटनाओं में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं[4] । ऐसा करके न

१- डॉ० वृंदावन लाल वर्मा: नये पत्ते, जनवरी-फरवरी १९५३ पृष्ठ ४४-४६ ।

२- डॉ० गोविन्द प्रसाद शर्मा के अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन (नागपुर वि० वि०) के परिशिष्ट, पृ० ४७४ पर उद्धृत ।

३- वही, पृ० ४७७ ।

4. "To falsify historical facts and characters, is a kind of sacrilege against those great names upon which history has affixed the seal of truth. The consequences are mischievous; it misleads young minds eager in the search of truth, and enthusiasts in the pursu t of those virtues which are the object of their admiration, upon whom one true character has more effect than a thousand fictions."

—C.Reeve (Reproduced from The Popular Novel in England by J.M.S.Tompkins,1932).

केवल वह ऐतिहासिक सत्य अथवा युग सत्य को नकारता है, अपितु काव्य अथवा साहित्य के सत्य को भी अस्वीकारता है और सर्वजनविदित सत्य को उल्टा करके एकदम रसभंग कर देता है[1] । जार्ज लूकाक्स के मतानुसार एक लेखक जो इतिहास का उपयोग करता है वह अपने इच्छानुसार न तो ऐतिहासिक सामग्री में परिवर्तन कर सकता है और न उसमें काट-छांट कर सकता है । घटनाएं अथवा घटना-धाराएं अपना स्वाभाविक वस्तुपरक गुरुत्व तथा सापेक्ष सम्बन्ध रखती हैं और यदि कोई लेखक ऐसी सफल कथा प्रस्तुत करता है जो इन गुरुत्वों और सम्बन्धों को सही ढंग से पुनर्प्रस्तुत करती है तो मानवीय और कलात्मक सत्य ऐतिहासिक परिपार्श्व से ही उद्भूत होगा । इसके विपरीत यदि उसकी कहानी इन [illegible] और महत्वों को गलत ढंग से प्रस्तुत करती है अथवा उनको विद्रूप बनाती है तो वह कलात्मक चित्र को भी विकृत कर देगी[2] ।

किसी इतिहासकार में दोष निकाला जाना सम्भव है । किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार तो स्वयं ही एक शीशमहल के भीतर निवास करता है जहां से वह किसी बड़े [illegible] खण्ड को बाहर नहीं फेंक सकता । किसी भी [illegible] कथाकार को जो अपनी कथा की पृष्ठभूमि के लिये इतिहास को ग्रहण करता है, यत्किंचित कार्य स्वातंत्र्य की अनुमति तो प्रदान की जा सकती है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं को आवश्यक रूप से विकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती । कथाकार ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों का जितना ही अनुसरण करेगा, उसकी कृति उतनी ही उत्कृष्ट होगी । ए० टी० शेपार्ड का भी कथन है कि किसी भी ऐतिहासिक उपन्यासकार को घटनाओं के काल क्रम में परिवर्तन नहीं करना चाहिये, जब तक कि उसकी कथावस्तु के लिए यह

१- श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर:"साहित्य" (अनु० श्रीधर [illegible]) में [illegible] उपन्यास" शीर्षक लेख ।

२- G.Lukacs: The Historical Novel, page 290.

बिल्कुल अनिवार्य न हो जाय । ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर वह किंचित परिवर्तन (घण्टा अथवा दिन मात्र का) भी तभी कर सकता है जब स्वयं इतिहासकार भी अनिश्चित और शंकाशील हो । महान ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों में परिवर्तन करने का तो उसे बिल्कुल अधिकार नहीं[1] । ए० बी० गुथरे[2] तथा हेनरिटा मासे[3] की भी यही धारणा है ।

यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासकार को कल्पना के प्रयोग की पूरी स्वतंत्रता है किन्तु उसकी यह कल्पना इतिहास की विरोधिनी बनकर नहीं आ सकती । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए उन घटनाओं, चरित्रों तथा तथ्यों के प्रति पूर्णरूपेण सत्यनिष्ठ रहना आवश्यक है जिन्हें वह उपन्यस्त करना चाहता है ।

---

1. A.T.Sheppard: The Art and Practice of Historical Fiction, page, 160-161.

2. I do not like to tinker with the facts. I do not like to assume, no matter if counter evidence is waiting, that an actual mouth said something or that an actual body did something. That has no support in the record. Liberties like these tend to muddy history as little story of George Washington and Cherry tree has muddied history. And they seem to me to be almost acts of disrespect like disfigurement of head stone. If the record is used, let the user be prisioner of it.

   - A.B.Guthrie Jr.: Fiction withhold on History. (High Lights of modern literature, edited by Francis Brown, page 20,(1954).

3. No small portion of moral culpability attaches to that writer who for the convenience of his own pen wilfully represents as true what he knows to be false.

   - H Haritta Mosse (Reproduced from the book"Aitihasik Upanyas and aur Upanayaskar" written by Dr.Gopinath Tewari.)

सूक्ष्म विवरणों में भी उसे यथातथ्यता को नहीं छोड़ना चाहिये । काल्पनिक प्रसंगों तथा चरित्रों की उद्भावना उन्हीं स्थलों पर करनी चाहिये जहां इतिहास मौन हो । ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का प्रयोग इतिहास के पूरक रूप में ही किया जा सकता है । यदि कोई ऐतिहासिक चरित्र इतिहास द्वारा क्रूर, नृशंस और अत्याचारी सिद्ध हो चुका है तो उसको सदय, उदार और प्रजापालक रूप में चित्रित करना इतिहास विरुद्ध बात होगी । इसी प्रकार भिन्न-भिन्न युगों के प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों को एक ही युग के भीतर समकालीन चित्रित करना भी उचित नहीं होगा । कल्पना का उचित प्रयोग यह होगा कि किसी पात्र के चरित्र के विषय में इतिहास द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है उसी को पुष्ट करने के लिए काल्पनिक प्रसंगों की उद्भावना की जाय । यदि इन काल्पनिक प्रसंगों से ऐतिहासिक चरित्रों के गुण-दोषों का विकास होता हो तो इनकी उद्भावना उचित ही कही जायेगी, चाहे इनका उल्लेख इतिहास में कहीं नहीं भी हो तो क्या । "बाणभट्ट की आत्मकथा" में लेखक ने प्रचुरता से मनोरंजक काल्पनिक प्रसंगों की अवतारणा की है । इनके द्वारा बाणभट्ट के चरित्र पर जो प्रकाश पड़ता है वह "हर्ष चरित" में वर्णित कवि के शील स्वभाव का पोषक है । किन्तु, यदि कोई वास्तविक इतिहास-प्रसिद्ध घटना उपन्यास के वृत्त में आती है तो उसके वर्णन में लेखक को ऐतिहासिक सत्यता का आधार लेना अनिवार्य है । ऐतिहासिक सत्य को विकृत करने का अधिकार लेखक को कदापि नहीं ।

इतिहास को उपन्यस्त करने के सन्दर्भ में जिन समस्याओं की चर्चा ऊपर की गयी है, वे ऐसी समस्याएं है जो लगभग सभी ऐतिहासिक उपन्यासकारों के सम्मुख आती है और जिनका समाधान उन्हें अपने ढंग से करना पड़ता है । इन समस्याओं के समाधान करने का उत्कृष्ट कलात्मक ढंग ही किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास की उत्कृष्टता का मापदण्ड है । किसी भी

ऐतिहासिक उपन्यास में यदि अतीत सजीव लगे, इतिहास के पात्र और घटनाएं अपनी विशिष्टताओं में जीवन्त एवं गतिशील दृष्टिगत हों, कथा का आनंद उपलब्ध हो और ऐसा लगे कि युग अपनी कथा स्वयं ही कह रहा है तो यह उपन्यास की सफलता का द्योतक है ।

अध्याय : पाँच

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का प्रारम्भ और विकासक्रम

(क) हिन्दी उपन्यास का जन्म तथा उसमें ऐतिहासिक उपन्यास की स्थिति ।

(ख) हिन्दी का प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास "हृदय-हारिणी वा आदर्श रमणी" ।

(ग) हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का काल-विभाजन- प्रथम उत्थान काल (सन् १८९०–१९१५), द्वितीय उत्थान काल (सन् १९१६–१९२८), तथा तृतीय उत्थान काल (सन् १९२९–१९६०) ।

(घ) प्रथमोत्थान कालीन (सन् १८९०–१९१५) ऐतिहासिक उपन्यासकार और उनके ऐतिहासिक उपन्यास -किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार ।

(ङ०) द्वितीय उत्थान कालीन(सन् १९१६–२८) ऐतिहासिक उपन्यासकार और उनके ऐतिहासिक उपन्यास - ब्रजनन्दन सहाय, मिश्रबंधु तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार ।

(च) तृतीय उत्थान काल(सन् १९२९–६०) ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यास- वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अमृत लाल नागर तथा अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार ।

(क) हिन्दी उपन्यास का जन्म तथा उसमें ऐतिहासिक उपन्यास की स्थिति

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध अनेक दृष्टियों से भारतीय इतिहास का नवोत्थान काल कहा जा सकता है । इसी काल में पाश्चात्य सभ्यता के संस्पर्श तथा विविध सुधारवादी आन्दोलनों, जैसे ब्रह्म समाज(सन् १८२८), आर्य समाज (सन् १८७५), थियोसोफिकल सोसायटी (१८७५) आदि के उठ खड़े होने से भारतवर्ष में नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ और देश ज्ञान-विज्ञान तथा पुनरुत्थान की एक नवीन दिशा की ओर गतिशील हुआ । अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा अंग्रेजों के सम्पर्क से एक ओर रूढ़ि ग्रस्त, धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक [illegible] शिथिल पड़ने लगीं तो दूसरी ओर देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, समाजसुधार आदि की भावनाओं का विकास हुआ । उत्थान कालीन व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने [illegible]वर्तियों की अपेक्षा बिल्कुल बदल गया और वह अपनी निजी कुतूहलताएं, सुधार-प्रवृत्ति, बौद्धिक [illegible] तथा [illegible] का स्वभाव लेकर अवतरित हुआ । वह ज्ञान-प्राप्ति के विविध साधनों के सम्पर्क में आया तथा उसके अध्ययन-मनन के अनेक द्वार खुल गये । उसने नये-नये विषय और उपादान खोजे और नयी दृष्टि के आलोक में उनका [illegible] करना प्रारम्भ किया । हिन्दी का साहित्यकार भी इस युग के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका । नवयुग से प्रभावित होकर उसने भी साहित्य को एक नया मोड़ दिया और उसे गतिशील बनाया । हिन्दी गद्य-साहित्य की आश्चर्य जनक रूप से वृद्धि हुई । हिन्दी के नाटक और उपन्यास इसी नवोत्थान काल की देन हैं ।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में देश में सुधार की भावना अत्यन्त प्रबल थी और इसी सुधार-भावना से प्रेरित होकर ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, राम कृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने अपने प्रचार एवं आन्दोलन द्वारा परम्परागत [illegible] रीतियों तथा रूढ़ियों के उन्मूलन तथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप समाज के नवसंगठन का प्रयत्न किया । हिन्दी उपन्यास का जन्म इन विविध सुधारवादी आन्दोलनों की

गोद में ही हुआ । जिस समय नवीन शिक्षा से भारतवासियों में नवीन चेतना का जन्म हुआ, उस समय उपन्यास द्वारा उस चेतना को प्रभावित करने का सफल प्रयास हुआ । अतः उन्नीसवीं शती का उपन्यास - साहित्य मुख्य रूप से सुधारवादी भावना से ओत-प्रोत है । इन उपन्यासों में वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की सुधारवादी भावनाएं पाई जाती हैं । प्रारम्भ में इन सुधार-वादी भावनाओं से प्रेरित होकर ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् १८५०-१८८५) ने बंगला और मराठी से कई उपन्यासों के अनुवाद कराये । बंगला से "दुर्गेश-नन्दिनी" और मराठी से "चन्द्र -प्रभा-पूर्ण प्रकाश" हिन्दी में उपन्यास के प्रथम अनुवाद हैं । "चन्द्रप्रभा -पूर्ण प्रकाश" का अनुवाद श्रीमती मल्लिकादेवी "चंद्रिका" ने किया था और भारतेन्दु ने स्वयं उसे संशोधित किया था[1]। "दुर्गेशनन्दिनी" का अनुवाद बाबू गदाधर सिंह ने भारतेन्दु के अनुरोध पर किया था[2]। "चन्द्रप्रभा-पूर्णप्रकाश" एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें वृद्ध-विवाह के विरुद्ध आवाज उठाई गयी है और वृद्ध-विवाह को हिन्दू धर्म का कलंक घोषित किया गया है । भारतेन्दु की प्रेरणा से कुछ अन्य [illegible] भी बंगला से अनूदित हुए जिनमें बाबू राधाकृष्ण दास द्वारा अनूदित "स्वर्णलता"(तारकनाथ गंगोपाध्याय कृत), मल्लिका देवी द्वारा अनूदित "राधारानी" तथा "सौन्दर्य मयी", ग[illegible]मी राधाचरण द्वारा अनुवादित "सरोजनी", "दीप निर्वाण" प्रमुख हैं । इन अनु-वादित उपन्यासों में अधिकांश का स्वर सुधारवादी है और उनमें समाज-सुधार की भावना भरी हुई है ।

यद्यपि भारतेन्दु ने स्वयं कोई मौलिक उपन्यास नहीं लिखा, किन्तु उनकी [illegible]रणा एवं अनुर[illegible] से तथा अनुवादित [illegible] से भी प्रेरणा ग्रहण करके उनके कई सहयोगियों ने मौलिक [illegible]न्यासों का भी प्रणयन किया । "भारतेन्दु मण्डल"

१- श्री [illegible]रत्नदास: हिन्दी [illegible]न्यास साहित्य, पृ० १९९ ।

२- डा०[illegible] वार्ष्णेय: [illegible] हिन्दी साहित्य, तृतीय संस्करण,
पृ० १७७ ।

के प्रमुख सदस्य लाला श्रीनिवास दास ने "परीक्षागुरु"(१८८२), नामक सामाजिक उपन्यास लिखा जो अंग्रेजी ढंग का हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है । १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध की अन्य कृतियों में बालकृष्ण भट्ट रचित "नूतन ब्रह्मचारी"(१८८६), "सौ अजान एक सुजान"(१८९२), राधा चरण गोस्वामी कृत "विधवा विपत्ति"(१८८८), लज्जाराम शर्मा कृत "धूर्त रसिक लाल" (१८९९), तथा "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी"(१८९९), राधाकृष्ण दास कृत "निस्सहाय हिन्दू"(१८९०), किशोरी लाल गोस्वामी रचित "त्रिवेणी"(१८८८) "स्वर्गीय कुसुम या कुसुमकुमारी"(१८८९) तथा गोपाल राम गहमरी कृत "नए बाबू" (१८९४) एवं "सास पतोहू" (१८९९) उल्लेखनीय हैं । यहाँ यह स्मरणीय है कि इनमें से अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं और समाज-सुधार की भावना तथा सामाजिक कुरीतियों के मूलोच्छेदन का स्वर ही प्रधान है ।

इस सन्दर्भ में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त प्रकार के सामाजिक एवं सुधारवादी उपन्यासों के लेखन के पूर्व हिन्दी जनता में "सिंहासन बत्तीसी", "बैताल पचीसी", "किस्सा-चहार दरवेश","दास्तान-ए-अमीर हमजा", "किस्सा तोता मैना" आदि तांत्रिक, जादूभरी तथा ... से परिपूर्ण कथा-कहानियों का अधिक प्रचार था[1]। इनका उद्देश्य मात्र मनोरंजन तथा कुतूहल-वृत्ति की शान्ति करना था । १९वीं शताब्दी में जब उपन्यास का जन्म हुआ तो इनका प्रभाव इस पर पड़े बिना नहीं रह सका और मध्यवर्ग के मनोरंजनार्थ तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास भी लिखे जाने लगे । देवकी नंदन खत्री तथा गोपाल राम गहमरी इस उपन्यास धारा के प्रमुख लेखक हैं । खत्री जी ने जहाँ, एक ओर "चंद्रकान्ता" (१८९१), "चन्द्रकान्ता संतति", "नरेन्द्र मोहिनी"(१८९३), "कुसुम कुमारी"(१८९९-१९००), "वीरेन्द्र वीर"(१८९८ ई०) आदि तिलस्मी तथा ऐयारी सम्बन्धी उपन्यास लिखकर हिन्दी जगत में धूम मचा दी, वहाँ दूसरी ओर गोपालराम गहमरी ने "अद्भुत लाश"(१८९६), "गुप्तचर"(१८९९) "बेकसूर की फाँसी" आदि

1- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय: आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १८३,
(तृतीय संस्करण, १९५४) ।

अनेक जासूसी उपन्यास लिखकर उपन्यासों का एक ढेर खड़ा कर दिया । हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल में इस प्रकार के तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासों का प्रचार इतना अधिक बढ़ा कि सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में भी तिलस्मों और जासूसियों का प्रयोग किया जाने लगा[1]। किशोरी लाल गोस्वामी के सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं ।

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का जन्म सामाजिक तथा तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों के जन्म के समानान्तर ही हुआ । १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक उपन्यास के लिए उपयुक्त भी था । सन १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी और नये ज्ञान-विज्ञान तथा शिक्षा के प्रचार से देश में राष्ट्रीयता तथा अतीत-गौरव की भावना भर रही थी तथा अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम, देश-भक्ति तथा प्राचीन वीरों के प्रति श्रद्धा की भावना शिक्षित वर्ग में उत्तरोत्तर व्याप्त हो रही थी । इस प्रकार की भावनाओं से प्रभावित होकर तथा बंगला ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रभाव में आकर प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास लेखकों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखना भी प्रारम्भ कर दिया । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी में मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास के जन्म के पूर्व बंगला में ऐतिहासिक उपन्यास का एक विशाल साहित्य वर्तमान था । भूदेव मुखर्जी कृत "अंगुरीय विनिमय" बंगला का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है जो सन् १८५७ में प्रकाशित हुआ । उसके पश्चात बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय रचित "दुर्गेशनंदिनी" नामक उपन्यास सन् १८६५ में निकला जो अत्यन्त लोकप्रिय हुआ तथा कई भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित हुए । फिर इस दिशा में बंगला में अनेक प्रयत्न हुए और कई श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाश में आये । उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के बंगला ऐतिहासिक उपन्यासों में बंकिम कृत "मृणालिनी"(१८६९), "चंद्रशेखर" (१८७५), "राजसिंह" (१८८१), तथा "आनंद मठ"(१८८२), प्रताप चन्द्र घोष कृत

१- डा० श्रीकृष्ण लाल: आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ २९१ ।

"बंगाधिप पराजय"(१८६९), तथा "चित्त विनोदिनी"(१८७४), स्वर्ण कुमारी देवी कृत "दीप निर्वाण"(१८७६), रमेशचन्द्र दत्त कृत "महाराष्ट्र जीवन प्रभात" (१८७८) तथा "राजपूत जीवन संध्या"(१८७९), और चण्डी चरण सेन कृत "महाराज नंदकुमार"(१८८५) अधिक महत्वपूर्ण हैं[1]। बंगला के इन ऐतिहासिक उपन्यासों से प्रभावित होकर ही सर्वप्रथम भारतेन्दु ने इनके अनुवाद की ओर ध्यान दिया। भारतेन्दु के "अनुरोध" और "आग्रह" से बाबू गदाधर सिंह ने बंकिम कृत "दुर्गेशनन्दिनी" (अनुवाद काल १८८२) तथा राधाचरण गोस्वामी ने स्वर्णकुमारी देवी कृत "दीप निर्वाण" नामक ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किये[2]।

भारतेन्दु ने बंकिम चन्द्र के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "राजसिंह" का भी अनुवाद किसी से करवाया था तथा प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखकर आगे कुछ शुद्ध भी किया था[3]। किन्तु यह अनुवादित उपन्यास उनके जीवन-काल में नहीं छप सका और उनकी मृत्यु के पश्चात खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर से सन १८९४ में प्रकाशित हुआ[4]।

यद्यपि भारतेन्दु के जीवन काल में हिन्दी में एक भी मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास का प्रणयन नहीं हो सका, किन्तु बंगला के कुछ प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद कराकर भारतेन्दु ने हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यासकारों के लिए एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत की और ऐतिहासिक उपन्यास की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। फिर तो उनकी मृत्यु के कुछ ही काल पश्चात मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी आरम्भ हो गयी। अब

१- भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास, पृष्ठ ५५-६०।

२- ब्रजरत्नदास: हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ १२९।

३- वही, पृष्ठ १२९।

४- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय: आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १७७।

दिशा में पं० किशोरीलाल गोस्वामी का प्रयत्न श्लाघनीय है और ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में वे हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। आरम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बाबू गंगा प्रसाद गुप्त तथा जयराम दास गुप्त के नाम भी महत्वपूर्ण हैं।

(ख) हिन्दी का प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास "हृदय हारिणी वा आदर्श [illegible]:"

हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास-निर्णय के सन्दर्भ में किशोरीलाल गोस्वामी रचित तीन [illegible] :- स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी, हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी तथा लवंगलता वा आदर्श बाला- की चर्चा प्रायः की जाती है। डा० माता प्रसाद गुप्त ने "हिन्दी पुस्तक साहित्य" में ऐतिहासिक [illegible] की चर्चा के प्रसंग में "लवंगलता" को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास मानते हुए उसका रचनाकाल १८९० ई० लिखा है[1]। इसी प्रसंग में डा० गुप्त ने "कुसुम कुमारी" को भी ऐतिहासिक उपन्यास बताया है और उसका रचनाकाल १९०१ ई० दिया है[2]। आगरा विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग से प्रकाशित "भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास" नामक पुस्तक में संकलित "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास" शीर्षक लेख में लिखा गया है कि "किशोरीलाल गोस्वामी की कुसुम कुमारी" हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। "हिन्दी ग्रन्थ साहित्य" के रचयिता माता प्रसाद गुप्त ने सन् १८९० में लिखित "[illegible]" को प्रथम हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास माना है। सम्भवतः १९०१ में प्रकाशित "कुसुम कुमारी" का दूसरा

१- डा० माता प्रसाद गुप्त: हिन्दी पुस्तक साहित्य, (प्रथम संस्करण), पृ० १० ।

२- वही, पृ० १० ।

संस्करण ही उनके हाथ लगा हो और इस कारण से उन्होंने यह भ्रमपूर्ण धारणा अपनायी हो[1]।" उक्त लेख में "कुसुम कुमारी" का रचनाकाल सन् १८८९ माना गया है[2]। डा० गोपीनाथ तिवारी ने "हृदयहारिणी" को हिंदी का ऐतिहासिक उपन्यास निर्धारित करते हुए उसका रचनाकाल १८९० माना है[3]। डा० तिवारी ने "कुसुम कुमारी" को ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखते हुए उसका रचनाकाल १९०१ माना है[4]। इस प्रकार डा० गुप्त ने "सर्वांगलता" को, "भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास" के सम्पादकों ने "कुसुम कुमारी" को तथा डा० तिवारी ने "हृदयहारिणी" को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास स्वीकार किया है।

"स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी" के संबंध में यहाँ एक मूलभूत प्रश्न उठता है कि इस उपन्यास को "ऐतिहासिक उपन्यास" क्यों माना जाय ? सिवाय इसके कि यह उपन्यास सन् १८७० में घटित एक सत्य घटना पर आधारित है,[5] ऐतिहासिक उपन्यास की एक भी विशेषता इसमें नहीं है। घटनाओं तथा कुछ पात्रों के नाम सत्य हो जाने से ही तो कोई उपन्यास "ऐतिहासिक उपन्यास" की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। सत्य घटनाओं तथा पात्रों में ऐतिहासिकता के

१- भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास (आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, आगरा १९६८), पृ० ८६।

२- वही, पृ० ८६।

३- डा० गोपीनाथ तिवारी: ऐतिहासिक उपन्यास तथा उपन्यासकार, पृ०८१।

४- वही, पृ० ८१।

५- देखिये किशोरीलाल गोस्वामी लिखित: स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी, (द्वि०सं० १९१६) में प्रथम संस्करण की भूमिका।

आरोप के लिए जिस [illegible] ऐतिह्य की आवश्यकता होती है उसका पूर्ण अभाव इस उपन्यास के पात्रों एवं घटनाओं में लक्षित किया जा सकता है । लेखक ने इस उपन्यास में न तो "इतिहास की भावभूमि" को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है और न ऐतिहासिक वातावरण ही उपस्थित किया है । संभवतः ऐसा करना लेखक का उद्देश्य भी नहीं था । इसलिए तो उसने अपने अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति इसके मुख पृष्ठ पर "ऐतिहासिक उपन्यास" न लिखकर "सत्य घटना समन्वित अद्वितीय उपन्यास"[1] ही लिखा है । वास्तविकता तो यह है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक न होकर सामाजिक है जिसका मूल स्वर है देवदासी प्रथा का मूलोच्छेदन[2] । लेखक ने इस उपन्यास में बताया है कि किस प्रकार आरा (बिहार) के एक सामान्य राजा कर्णसिंह (कल्पित नामधारी वास्तविक पात्र) की पुत्री ६ मास की अवस्था में जगदीश को भेंट चढ़ा दी गयी, ९ वर्ष की अवस्था में देवदासी बनी, मंदिर के पंडे द्वारा एक वेश्या को बेची गयी, युवावस्था में कार्तिकी पूर्णिमा के हरिहर-क्षेत्र मेले में नाव डूब जाने से बह गयी और बसन्त कुमार नामक एक युवक द्वारा बचायी जा कर उससे प्रेम करने लगी तथा अन्त में विभिन्न घटनाचक्रों के फेर में पड़कर आत्महत्या करके मर गयी । लेखक ने इस उपन्यास की नायिका कुसुम कुमारी तथा अन्य पात्रों के माध्यम से अवसरानुकूल कई स्थलों पर देवदासी प्रथा का तीव्र विरोध प्रदर्शित किया है और सामाजिक कुरीतियों तथा अत्याचारों की ओर इंगित किया है । इस उपन्यास में लेखक का इस बात पर ही बल है कि घटना सत्य है, किन्तु वह उसे ऐतिहासिक परिवेश प्रदान नहीं कर पाया । जहाँ तक दासी प्रथा के विरोध का प्रश्न है यह प्रथा अवश्य ऐतिहासिक है किन्तु उसे भी इस उपन्यास में एक समकालीन सामाजिक समस्या के रूप में प्रकट किया गया है, तदन्य ऐतिहासिक सन्दर्भ में नहीं ।

१- "स्वर्गीय कुसुम"(द्वि०सं०१९१६), के मुख पृष्ठ पर उल्लिखित ।

२- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय: आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १०० ।

इसीकारण इसमें सामाजिक तत्व प्रधान हो जाता है, ऐतिहासिक नहीं । अतः इस उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास कहना या ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखना नितान्त भ्रमपूर्ण है और प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहना तो अत्यन्त हास्यास्पद है । जहाँ तक इस उपन्यास की रचना तिथि का प्रश्न है यह सन १८८९ में लिखा गया था और उसी सन में "सार सुधानिधि" तथा "मित्र-वृंदावन" नामक पत्रों में प्रकाशित हुआ था । किन्तु १९०१ ईसवी के पहले पुस्तक रूप में नहीं प्रकाशित हो सका । सन १९१६ में इसका द्वितीय संस्करण परि-वर्द्धित रूप में प्रकाशित हुआ[1] ।

ऐतिहासिक अनुक्रम की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में "हृदयहारिणी" तथा "लवंगलता" का [illegible] स्थान है और जैसा कि संकेत किया गया है प्रथम हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास निर्णय के संदर्भ में दोनों का नाम लिया जाता है । डा० माता प्रसाद गुप्त ने "लवंगलता " को सन १८९० की रचना मानते हुए ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इसे प्रथम स्थान दिया है । किन्तु डा० गुप्त का यह मत भी भ्रमपूर्ण है । "ल[illegible]" का

१- देखिये: "स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी"(द्वितीय [illegible], १९१६) में प्रथम संस्करण का भूमिका भाग ।

रचनाकाल १८९० ईसवी[1] है अवश्य, किन्तु पहली बार १९०४ के पहले यह प्रकाशित नहीं हो सका[2]। इस उपन्यास के पूर्व "हृदयहारिणी" उपन्यास १८९० में ही लिखा गया था और उसी वर्ष "हिन्दोस्थान" नामक दैनिक पत्र के कई अंकों में प्रकाशित हुआ था तथा सन् १९०४ में "लवंगलता" के प्रकाशन के पूर्व ही पुस्तक

१-"तेरह बरस के लगभग हुआ, जबकि—सन् १८९० ई० में, हमारे अन्तरंग मित्र, "ब्राह्मण" सम्पादक, स्वर्गीय प्रियवर पंडित प्रतापनारायण मिश्र(कानपुर-निवासी) सुप्रसिद्ध "हिन्दोस्थान" दैनिक पत्र के सम्पादक हुए थे, तो उन्होंने उक्त पत्र में लेख और आख्यायिका लिखने के लिए हमें बहुत ही अनुरुद्ध किया और हमारे लेखों को "स्वतंत्रस्तम्भ" में स्थान देने की प्रतिज्ञा की, अतएव हमने उक्त प्रिय मित्र का अनुरोध पालन करने के लिए कलम उठाई और दो-तीन महीने तक लगातार उक्त पत्र के लिए कई लेख लिखे जो उक्त पत्र में छपे हैं। उन्हीं दिनों प्यारे प्रताप की प्रेरणा से हमने "हृदयहारिणी" उपन्यास लिखा और यह(उपन्यास) ज्यों अक्तूबर सन् १८९० में हिन्दोस्थान में छपना आरम्भ होकर कई संख्याओं में समाप्त हुआ।
यद्यपि इसका उपसंहार भाग(लवंगलता उपन्यास) भी "हिन्दोस्थान" में छपने के लिए हमने उसी समय (उसी सन् में) लिख डाला था, पर स्वाधीनचेता प्रताप मिश्र तीन-चार महीने से अधिक सम्पादकता की पराधीनता को न झेल सके और कानपुर वापस चले आये, अतएव हमारा उत्साह भी भंग हो गया और दूसरा उपन्यास(इसका उपसंहार भाग अर्थात् लवंगलता उपन्यास) बस्ते ही में आज तक बंधा पड़ा रहा। अस्तु-अब हम "हृदयहारिणी" उपन्यास को अपनी "उपन्यास मासिक पुस्तक" द्वारा प्रकाशित कर उपन्यास-प्रेमियों के आगे धरते हैं और इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि इस उपन्यास के समाप्त होने पर इसके उपसंहार भाग(लवंगलता उपन्यास) को भी उक्त "उपन्यास मासिक पुस्तक" द्वारा प्रकाशित करेंगे।"
—श्री किशोरीलाल गोस्वामीः "हृदयहारिणी" के प्रथम संस्करण(१।३।१९०४)का निवेदन भाग(द्वितीय संस्करण,१९१५ में उद्धृत)]

२- देखिये:"लवंगलता"(द्वितीय संस्करण,१९१५) में प्रथम संस्करण का निवेदन।

रूप में आ गया था[1]। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि "लवंगलता" "हृदय-हारिणी" का उपसंहार भाग है और लेखक ने इसे स्वयं निर्दिष्ट किया है[2]। ऐसी दशा में "हृदय-हारिणी" के पूर्व "लवंगलता" के रचना की कल्पना अनुपयुक्त है। अतः "हृदयहारिणी" को ही हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास माना जा सकता है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव[3] तथा डा० गोपीनाथ तिवारी[4] ने ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इसी उपन्यास को प्रथम स्थान दिया है।

(ख) हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का काल विभाजनः

किशोरीलाल गोस्वामी रचित हिन्दी का प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास "हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी" सन् १८९० ई० में प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी उपन्यास के आविर्भाव का युग था। इस उपन्यास के पश्चात गोस्वामी जी ने "लवंगलता", "तारा", "कनक कुसुम", "हीरा बाई", "लखनऊ की कब्र", "रजिया", "मल्लिका देवी" आदि अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन किया और ऐतिहासिक वस्तु को उपन्यास में ढालने का प्रयत्न किया। अपने

१- देखिये, पृष्ठ २८६ का संदर्भ-संकेत संख्या ६ ।

२- वही ।

३- शिवनारायण श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास (परिवर्द्धित संस्करण, सं०२०१६), पृ० ४४ ।

४- डा० गोपीनाथ तिवारी: ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ०८१ ।

युग में ये ऐतिहासिक उपन्यास अत्यन्त ही लोकप्रिय हुए और इनसे हिन्दी के अनेक उपन्यास लेखकों को प्रोत्साहन मिला । गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की लोकप्रियता से प्रभावित होकर उनके समकालीन उपन्यासकार गंगाप्रसाद गुप्त तथा जयरामदास गुप्त ने भी ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की । और, तभी से उपन्यास के विविध प्रकारों की भांति ऐतिहासिक उपन्यासों की संरचना भी हिन्दी में निरन्तर होती चली आ रही है । आज हिन्दी में अनेक ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनकी समता अन्य भारतीय भाषाओं के किसी भी श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास से की जा सकती है ।

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रवृत्ति, शिल्प और शैली के विकास-क्रम को देखते हुए हम हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य-धारा को तीन कालों में बांट सकते हैं – (१) प्रथम उत्थान काल – सन् १८९० ईसवी से सन् १९१५ ईसवी तक, (२) द्वितीय उत्थान काल – सन् १९१६ ई० से सन् १९३८ ईसवी तक तथा (३) तृतीय उत्थान काल – सन् १९३९ ईसवी से सन् १९६० ईसवी तक ।

प्रथम उत्थान काल की विशेषताएं:

प्रथम उत्थान काल के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाम-मात्र के लिए ऐतिहासिक हैं । क्योंकि इनमें लेखकों ने इतिहास की ओट में तिलस्म, ऐयारी, जासूसी और निम्न स्तरीय प्रेम-प्रसंगों की ही अवतारणा की है । इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए जिस ऐतिहासिक विवेक अर्थात् सामाजिक-सांस्कृतिक - राजनैतिक परिस्थिति, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आदि का ज्ञान तथा इतिहास मूलक कल्पना की आवश्यकता होती है, उसका इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में पूर्ण अभाव था । सम्भवतः इन्हीं कारणों से ये लेखक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं लिख सके । इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण का अभाव था और वहन था तथा तत्कालीन रीति-नीति, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि के वर्णन में स्थान-स्थान पर व्यतिक्रम होता

तथा ऐतिहासिक अनौचित्य परिलक्षित होते हैं । कुछ ऐतिहासिक उपन्यास तो अपनी इतिवृत्तात्मकता के कारण बिल्कुल इतिहास अथवा जीवनी जैसा जान पड़ते हैं तथा कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वर्णित रोमांस मात्र हैं जिनमें तिलस्मी, ऐयारी तथा जासूसी की चित्र-विचित्र घटनाएं वर्णित हैं । मनोरंजकता पर दृष्टि रखने के कारण उनमें कुतूहल वर्धक, काल्पनिक घटनाओं का ही विन्यास है, मानवीय जीवन के आन्तरिक सत्यों की खोज का प्रयास तथा ऐतिहासिक वाता-वरण, महत् चरित्रों का चित्रण, एवं उदात्त भावनाओं के प्रदर्शन का प्रयत्न लेश-मात्र भी नहीं है । प्रेम-प्रसंगों के चित्रण में भी प्रायः उसका उथला वासनात्मक रूप ही अधिक मुखरित हो जाता है । अतएव इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों को हम उत्कृष्ट तथा उच्च कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कह सकते ।

द्वितीय उत्थान काल की विशेषताएं :

ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के द्वितीय उत्थान काल का प्रारंभ व्रजनंदन सहाय के "लालचीन" तथा मिश्रबंधु के "वीरमणि" नामक उपन्यासों से प्रारम्भ होता है जो क्रमशः सन् १९१६ तथा १९१७ ईसवी में प्रकाशित हुए थे । प्रेमचन्द का प्रथम प्रसिद्ध चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास "सेवा-सदन" इस द्वितीय काल में ही सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ । "लालचीन" तथा "वीरमणि" अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से इस अर्थ में पूर्णतया भिन्न हैं कि उनमें घटना वैचित्र्य को प्रधानता न देकर चरित्र-चित्रण को प्रधानता दी गयी है । चरित्र-चित्रण की यह प्रवृत्ति द्वितीय उत्थान काल के प्रायः सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में पाई जाती है । द्वितीय उत्थान कालीन ऐतिहासिक उपन्यास अपने पूर्ववर्तियों से इस अर्थ में भी भिन्न हैं कि उनमें उन्मुक्त कल्पना का आधिक्य न होकर ऐतिहासिक तथ्यों एवं प्रसंगों का भी कलात्मक चित्रण किया गया है । इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों में तिलस्मी, ऐयारी तथा जासूसी की चित्र-विचित्र घटनाओं का प्रायः अभाव सा है और उपन्यासकारों की दृष्टि ऐतिहासिक यथार्थ

की ओर झुकती दृष्टिगत होती है । उपन्यास-कला की दृष्टि से भी इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से अधिक सफल और कलात्मक है । हाँ, एक बात अवश्य है कि अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों की भांति इस काल के उपन्यासकारों ने भी यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, अतः इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी ऐतिहासिक असंगतियां तथा काल-क्रम दोष दृष्टिगत होते हैं । सब मिलाकर, इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास विकास की अवस्था के द्योतक हैं ·

तृतीय उत्थान काल की विशेषताएं:

ऐतिहासिक उपन्यासों का तीसरा युग वृंदावनलाल वर्मा के प्रथम और उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास "गढ़ कुण्डार" से प्रारम्भ होता है जो सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ । वस्तुतः हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति लाने का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा और उनके प्रथम सफल उपन्यास "गढ़ कुण्डार" को ही है । इस उपन्यास में मध्य युग का बुन्देलखण्डीय जीवन और वातावरण सजीव हो उठा है । वर्मा जी ने इस उपन्यास की परम्परा में बुंदेलखण्ड के अतीत जीवन और उसकी विशिष्ट सामाजिक चेतना को आधार बनाकर अनेक सफल और श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन किया है और वे आज हिंदी के अन्यतम ऐतिहासिक उपन्यास-कार कहे जाते हैं । इस काल के अन्य प्रमुख लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, चतुरसेन शास्त्री, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, प्रताप नारायण श्रीवास्तव आदि हैं जिनके उपन्यासों को किसी भी भारतीय भाषा के ऐतिहासिक उपन्यासों के समक्ष रखा जा सकता है । तीसरे काल के ऐतिहासिक उपन्यास ही वस्तुतः ऐसे उपन्यास हैं जिनमें इतिहास और उपन्यास कला का मणि-कांचन संयोग पाया जाता है । ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों एवं देश-काल के चित्रण में इस काल के उपन्यासकारों ने यथार्थवादी प्रवृत्ति का अनुसरण कर काल विशेष का पुनर्निर्माण सा कर दिया है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तृतीय उत्थानकालीन ऐतिहासिक उपन्यासों का अधिक भाग

मनोरंजन न होकर अतीत के जीवन को उसकी समग्रता के साथ वास्तविक रूप में उपस्थित कर मानवीय जीवन के आन्तरिक, शाश्वत सत्यों की खोज करना तथा सांस्कृतिक निर्माण एवं राष्ट्रीय गौरव तथा चेतना को उत्फुल्लित करना है। शैली और शिल्प की दृष्टि से भी इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है। "सिंह सेनापति" और "बाणभट्ट की आत्मकथा" इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। एक बात लक्ष्य करने की है कि जहाँ प्रथम तथा द्वितीय उत्थान काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के कथानकों का आधार केवल मध्य युग (मुस्लिम काल) तथा आधुनिक काल (ब्रिटिश काल) के इतिहास को बनाया था वहाँ इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण ज्ञात काल खण्ड को भी अपने उपन्यासों में समेटा है और इतिहासकार की भाँति उसकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है। तृतीय काल ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का चरमोत्कर्ष काल कहा जा सकता है।

(ख) प्रथम उत्थान कालीन (सन् १८९० से १९१५ तक) ऐतिहासिक उपन्यासकार और उनके ऐतिहासिक उपन्यास:

किशोरीलाल गोस्वामी(सन् १८६५-१९३२) और उनके ऐतिहासिक उपन्यास:

हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि गोस्वामी जी ने अपने युग में प्रचलित सभी औपन्यासिक प्रवृत्तियों को ग्रहण कर अपने ढंग से उपस्थित करने का प्रयत्न किया, किन्तु इतिहास को हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में ले आकर उन्होंने अपनी [illegible] प्रतिभा का प्रदर्शन किया, और इस दृष्टि से वे हिंदी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उनका [illegible] कृतित्व संख्या और परिमाण में अपने युग के अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक तो है ही, ऐतिहासिक

उपन्यास के क्षेत्र में भी इनकी रचनाओं की संख्या अपने समय के अन्य उपन्यासकारों से अधिक है । इनका प्रथम उपन्यास "प्रणयिनी परिणय" सन् १८८७ ई० में लिखा गया और सन् १८९० में प्रकाशित हुआ[1] और प्रेम चन्द के आगमन के पश्चात् तक इनकी रचनाएं निकलती रहीं । इनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "हृदय-हारिणी" सन् १८९० में प्रकाशित हुआ । इन्होंने सन् १८९८ में "उपन्यास" नामक एक पत्र भी निकाला और अपने जीवन काल में छोटे बड़े ६५ उपन्यास लिखकर प्रकाशित कराये जिनमें १३ ऐतिहासिक हैं । गोस्वामी जी के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में लिखा है - "साहित्य की दृष्टि से इन्हें (पं० किशोरीलाल गोस्वामी) हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए ।———और लोगों ने भी उपन्यास लिखे हैं, पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे । और चीज़ें लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे, पर गोस्वामी जी वहां घर करके बैठ गये । एक क्षेत्र में उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में रम गये[2]।"

गोस्वामी जी द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यास रचना-काल-क्रम के अनुसार इस प्रकार हैं- (१) हृदयहारिणी(१८९०), (२) लवंगलता(१८९०), (३) तारा(१९०२), (४) कनक कुसुम (१९०३), (५) हीराबाई (१९०४), (६) रज़िया बेगम(१९०४), (७) मल्लिका देवी (१९०५), (८) लखनऊ की कब्र, (१९०६-१८), (९) इन्दुमती(१९०६), (१०) सोना और सुगन्ध या पन्नाबाई, (१९०९-११), (११) लाल कुंवर (१९०९), (१२) गुलबहार(१९११), तथा (१३) गुप्त गोदना (१९१[illegible]-२४) । जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, गोस्वामी जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "हृदयहारिणी" या आदर्श रमणी" है जो सन् १८९० में "हिन्दोस्थान" नामक दैनिक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था और पुस्तक रूप में सन् १९०४ में निकला था । इस उपन्यास में सन्

१- देखिये प्रणयिनी परिणय (द्वितीय संस्करण, १९१६) की भूमिका ।

२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, (११वाँ पुनर्मुद्रण), पृ० ५०० ।

१७५६ ईसवी के आसपास बंगाल की राजनीतिक पृष्ठभूमि में एक काल्पनिक प्रेम-कथा वर्णित है । क्लाइव, सिराजुद्दौला, मीरजाफर, अमीचन्द, आदि प्रमुख ऐतिहासिक पात्र हैं जिनका समावेश उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किया है । नायक नरेन्द्र सिंह तथा नायिका कुसुम कुमारी कल्पित पात्र हैं । "लवंग-लता या आदर्श बाला" हृदयहारिणी उपन्यास का उपसंहार या उत्तरार्द्ध भाग है जिसमें नरेन्द्र सिंह की बहन लवंगलता को सिराजुद्दौला नवाब द्वारा अपने महल में पकड़वाये जाने तथा लवंगलता का अपने कौशल तथा वीरता से नवाब के चंगुल से भागने की कथा है । "हृदयहारिणी" की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ही यह कथा भी [illegible] है । वास्तव में इन दोनों [illegible]पन्यासों का उद्देश्य ही भारतीय वीरांगनाओं की वीरता, संयम एवं शौर्य का चित्रण करना है जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा कर अपने नारीत्व, पातिव्रत, धर्म एवं जाति की रक्षा की और हिन्दू आदर्शों की [illegible] को बनाये रखा ।

"तारा या क्षात्र-कुल-कमलिनी"(१९०२) [illegible]पन्यास में वर्णित घटनाओं का सम्बंध मुगल सम्राट [illegible] के शासन काल से है । इसकी नायिका "तारा" महाराणारा अमर सिंह की पुत्री है जो राजनीतिक कारणों से अपने पिता जोध-पुर महाराज गजसिंह द्वारा निकाल दिये जाने पर आगरा में आकर रहते थे और शाहजहाँ के विश्वासपात्र बन गये थे । शाहजहाँ ने अमरसिंह के कार्यों से प्रसन्न होकर तीन हजार सवारोंकी मनसबदारी और जागीर भी प्रदान की थी। अमरसिंह के इस यशोन्नति से [illegible] सलाबत खाँ भीतर ही भीतर जलने लगा । इधर तारा बड़ी होकर [illegible] की बड़ी लड़की जहाँआरा की सहेली बन गयी। [illegible] महल की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की अन्तःपुर वस्तुतः शाहजहाँ की बड़ी लड़की जहाँआरा तथा छोटी लड़की रो[illegible]आरा के हाथों में खेलने लगी और राज्य [illegible] के लिये अनेक षड्यंत्र रचे जाने लगे । [illegible] दाराशिकोह के पक्ष में थी, इनायतुल्ला उसका [illegible] और प्रेमी भी था । रो[illegible]आरा, औरंगजेब के पक्ष में थी, सलाबत खाँ उसका प्रेमी और [illegible] था । युवावस्था में तारा

का विवाह उदयपुर के युवराज राजसिंह से निश्चित हो गया । इधर तारा के यौवन और सौन्दर्य को देखकर दारा शिकोह और सलावत के मन में भी उसे पाने का लोभ जागृत हुआ । किन्तु तारा की सखी रम्भा ने जहाँनारा की सहायता से तारा को आगरा से हटाने के लिए राजसिंह के पास संदेश भेजा । सलावत खाँ ने रम्भा के प्रयत्न में बाधा डालना चाहा फलतः भरे दरबार में वह अमरसिंह द्वारा मार डाला गया । अमरसिंह ने क्रोधावेश में शाहजहाँ पर भी आक्रमण किया, किन्तु वह बच गया और अमरसिंह अपने वैरी साले अर्जुन द्वारा मार डाला गया । राजसिंह गुप्त रूप से तारा को लेकर उदयपुर चले गये और उसे अपनी रानी बनाया ।

"तारा" उपन्यास में गोस्वामी जी ने महज इतिहास का बहाना लेकर आगरा के शाहीमहल को जिसमें शाहजहाँ निवास करता है, षड्यन्त्रों, [illegible] वासनाओं, एवं गन्दे प्रेम-क्रीड़ाओं के अखाड़े के रूप में अंकित किया है । दारा-शिकोह जैसे योग्य तथा उदारचेता शाहजादे को गोस्वामी जी ने पूरा विलासी, षड्यंत्री और कामुक चित्रित किया है जो अपनी बहन जहाँनारा से भी परहेज करने से नहीं [illegible] । मेवाड़ जो अपने राजपूती गौरव और शान के लिए इतिहास में प्रसिद्ध रहा है उसी की एक बालिका तारा को कथानक के विकासक्रम में गोस्वामी जी ने कामुक मुसलमान आशिकों को छकाने वाली विचक्षण नारी के रूप में चित्रित किया है । तारा की सखी रंभा को तो लेखक ने हरफनमौला बना दिया है जो इच्छानुसार सब कुछ कर सकती है । जहाँनारा, रोशनआरा, सलावत खाँ, इनायतुल्ला आदि ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को भी गोस्वामी जी ने कामुक, [illegible] तथा हमेशा षड्यंत्रों में जीने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है । इस उपन्यास में [illegible], [illegible] एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं की इतनी [illegible] है कि मानों शाही महल, शाही महल न होकर कोई [illegible] हो । जैसा कि [illegible] वार्ष्णेय का मत है, "तारा" में चमत्कारपूर्ण, ऐयारी से भरी हुई घटनाओं की इतनी प्रधानता है कि इसे तिलस्मी उपन्यास मान लेना भी असंगत नहीं[1] ।

१- श्री [illegible]नारायण [illegible] : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ४६ ।

"कनक कुसुम वा मस्तानी"(१९०३) नामक उपन्यास में इतिहास प्रसिद्ध मराठा वीर बाजीराव पेशवा प्रथम (१७२०) तथा मस्तानी की प्रणय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में चित्रित की गयी है । बाजीराव के शौर्य और वीरता से प्रभावित होकर हैदराबाद के निजाम की भोग्या की पूर्व पुत्री मस्तानी उससे प्रेम करने लगती है तथा बाजीराव और निजाम के बीच चलने वाले राजनीतिक दाव-पेचों और युद्धों में पुरुष वेश धारणकर गुप्त रूप से पेशवा की सहायता करती है तथा अन्त में उनके प्रति अपनी प्रणय भाव व्यक्त कर उनसे विवाह कर लेती है । "हीराबाई वा बेहयाई का बोरका" (१९०४) में एक ऐसी मुस्लिम नारी की कथा वर्णित है जो काठियावाड़ के राजा सिद्धराज देव की पत्नी के सतीत्व तथा राज्य की रक्षा हेतु अपने आपको [illegible] । के हवाले कर देती है और अन्त में आत्म हत्या कर लेती है । वस्तुतः यह उपन्यास न होकर एक लम्बी कहानी है । "रजिया बेगम" वा रंग महल में हलाहल"(१९०४)[1] उपन्यास में इतिहास प्रसिद्ध गुलामवंश की शासिका रजिया बेगम (शासन काल १२३६-४०) के वैयक्तिक प्रेम तथा उस प्रेम के कारण दिल्ली सल्तनत की गद्दी से उसे हटाने के [illegible] प्रयत्नों की कथा है । यह उपन्यास अनेक ऐतिहासिक-अनैतिहासिक तथ्यों पर [illegible] है । "[illegible] देवी वा बंग सरोजिनी"(१९०५) में [illegible] कालीन बंगाल के नवाब [illegible] के कुटिलतापूर्ण राजनीतिक कार्यों के परिवेश में दो [illegible] युवतियों की वीरता और [illegible] की कथा वर्णित है । "लखनऊ की कब्र वा शाही महल सरा" (१९०६-०८) में लखनऊ के विलासी नवाब नसीरुद्दीन हैदर

१- डा० गोपीनाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक "हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार" में "रजिया बेगम" का प्रकाशन काल (१९१५ ई०) दिया है जो [illegible] भ्रमपूर्ण है । यह उपन्यास १९०४ ई० में प्रकाशित हुआ था और १९१५ ई० में उसका दूसरा संस्करण हुआ । देखिये: इस उपन्यास के दूसरे संस्करण की भूमिका ।

(१८२७-१८३७) के महल सरा के विचित्र रागरंग और ऐशोआराम का वर्णन है । यह उपन्यास "बादशाह के गुप्तचरित" नामक अंग्रेजी पुस्तक पर आधारित है । इसमें बादशाह की कामुकता, बेगमों की गुप्त प्रणयलीला, खूबसूरत नाजनीनों, बांदियों एवं कुटनियों की जासूसी तथा ऐयारी का सनसनीखेज वर्णन है । "इन्दुमती" (१९०६) में इब्राहीम लोदी के शासन काल की पृष्ठभूमि में एक कल्पित प्रेमकथा वर्णित है । वस्तुतः यह उपन्यास न होकर एक लम्बी कहानी है । यह पहले १९०० ई० में "सरस्वती" में प्रकाशित हुई थी और हिन्दी की प्रथम कहानी मानी गयी है । "सोना और सुगन्ध या पन्नाबाई"(१९०९) का कथानक अकबर के साथ जौहरी हीराचंद के दत्तक पुत्र मानिक, उसकी पुत्री पन्नाबाई के प्रेम से संबंधित है । यह कथा पूर्णतः कल्पित है और अकबर को छोड़कर सभी पात्र कल्पित और अनैतिहासिक हैं[1] । "गुलबहार वा आदर्श भ्रातृ प्रेम" (१९११)[2] में बंगाल के अन्तिम नवाब मीरकासिम की पुत्री "गुल" और पुत्र "बहार" के आदर्श प्रेम तथा क्लाइव द्वारा उनके कारुणिक अन्त एवं मीरकासिम की आत्महत्या का वर्णन है । यह उपन्यास भी वस्तुतः एक लम्बी कहानी है जो पहले १९०२ ई० में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी । "लाल कुंवर वा शाही रंग महल"(१९०९) का कथानक मुगल बादशाह जहांदारशाह तथा उसकी वेश्या बेगम लाल कुंवर से संबंधित है जिसमें हरम की विलासिता प्रदर्शित की गयी है । "गुप्त गोदना"(१९२२-२४) में शाहजहां के शाही महल के राजनीतिक दाव-पेचों, उसके पुत्रों के प्रणय प्रसंगों,

---

१- डा०माताप्रसाद गुप्त ने अपने "हिन्दी पुस्तक साहित्य" के १०६वें पृष्ठ पर इस उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध "पन्नाधाय" से बताया है जो भ्रमपूर्ण है ।

२- "प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास" नामक शोध प्रबन्ध की लेखिका डा०कैलाश प्रकाश ने पृष्ठ २७१ पर इसका प्रकाशन काल सन १९१६ लिखा है जो अशुद्ध है । सन् १९११ में इस उपन्यास का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था । देखिये:"गुलबहार" दूसरा संस्करण ।

औरंगजेब का अपने भाइयों के विरुद्ध किये गये षड्यंत्रों तथा इसी सन्दर्भ में तिलस्म एवं ऐयारी का चित्र-विचित्र वर्णन है । यह उपन्यास नाम मात्र को ही ऐतिहासिक है ।

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने इतिहास की पुस्तकों का तो पर्याप्त अध्ययन किया था किन्तु उनमें ऐसी प्रतिभा नहीं थी कि उपन्यास के माध्यम से ऐतिहासिक घटनाओं तथा वातावरण को सजीवता एवं यथार्थता प्रदान कर सकते । ऐतिहासिक उपन्यास रचना के लिए अतीत के गर्भ में प्रविष्ठ कर उसे सजीव कर देने की जिस अन्तर्दृष्टि और कौशल की आवश्यकता होती है उसका उनमें अभाव था । अतः इनके ऐति-हासिक उपन्यास नाममात्र के ही ऐतिहासिक हैं । अपने उपन्यासों में, इतिहास की अपेक्षा उन्मुक्त एवं रोमांटिक कल्पना पर ही विशेष आश्रित रहने के कारण उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं को प्रायः विकृत कर दिया है और उनके बदले में अनेक चित्र-विचित्र घटनाओं का जंजाल प्रस्तुत कर दिया है । इनके ऐति-हासिक उपन्यासों के कथावस्तु में इतिहास ताना-बाना न होकर एक पैबन्द की तरह ऊपर से चिपकाया हुआ सा लगता है । ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति एक आदर्श दृष्टिकोण रखते हुए भी इतिहासमूलक कल्पना के अभाव के कारण वे एक भी सफल ऐतिहासिक उपन्यास न दे सके । इस सन्दर्भ में उनका कथन द्रष्टव्य है- "जैसे "इतिहास की मूलभित्ति सत्य है", वैसे ही "उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है" । सत्य घटना बिना जैसे इतिहास, इतिहास नहीं, वैसे ही कौतुक कल्पना बिना उपन्यास भी "उपन्यास" नहीं कहला सकता । इतिहास में जैसे वास्तविक घटना बिना काम नहीं चल सकता, वैसे ही उपन्यास में भी कल्पना का आश्रय लिये बिना प्रबन्ध नहीं लिखा जा सकता । ऐसी अवस्था में "ऐतिहासिक उपन्यास" लिखने के लिए इतिहास के सत्यांश के साथ तो कल्पना की थोड़ी ही जरूरत पड़ती है । पर जहां इतिहास की घटना जटिल, सत्याभास मात्र और कपोल-कल्पित भासती है, वहां लाचार हो इतिहास को नाश्य कर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार जमा ही लेती है ।——इन्होंने अपने बनाये उपन्यासों में

ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार कर दिया है[1]।" इस दृष्टिकोण के कारण ही इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक असंगतियां और अनौचित्य भरे पड़े हैं। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में गोस्वामी जी ने अपने समसामयिक जीवन और समाज के आदर्शों को भी आरोपित करने का प्रयत्न किया है जिससे उनके उपन्यासों में कालक्रम दोष आ गये हैं और वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो "जहांगीर और शाहजहां को कोट-पतलून पहनाया गया हो।" गोस्वामी जी की इन्हीं प्रवृत्तियों को लक्ष्य कर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है -"गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न-भिन्न समयों की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का अध्ययन और संस्कृति के स्वरूप का अनुसंधान नहीं सूचित होता। कहीं-कहीं तो काल दोष तुरन्त ध्यान में आ जाते हैं - जहां, यहां अकबर के सामने हुक्के या पेचवान रखे जाने की बात कही गयी है[2]।"

गोस्वामी के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास मुस्लिम शासन काल से सम्बंधित हैं। वे स्वयं कट्टर सनातनी हिन्दू थे। अतः उनकी दृष्टि मुख्यतः इस बात पर रही है कि एक ओर तो मुसलमानों की विलासिता, स्वार्थलिप्सा, विश्वासघात, निर्दयता, अत्याचार आदि का वर्णन किया जाय और दूसरी ओर हिन्दू राजाओं और नारियों की वीरता, दृढ़ता, चरित्र, स्वाभिमान आदि उदात्त गुणों के चित्र प्रस्तुत किये जाय। इसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण वे ऐतिहासिक पात्रों तथा घटनाओं के साथ न्याय नहीं कर सके और उनके इतिहास-सम्मत रूप से दूर जा पड़े। एक ओर जहां उन्होंने हिन्दू नारियों की चारित्रिक दृढ़ता, कष्ट सहिष्णुता तथा हिन्दू जाति एवं धर्म के प्रति गौरव की भावना व्यक्त की है, वहां दूसरी ओर मुस्लिम औरतों की [illegible], उनके कुत्सित प्रेमव्यापार तथा वासनाजन्य कृत्यों का वर्णन किया है।

१- "महारानी" उपन्यास की भूमिका।

२- पं० रामचन्द्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० [illegible]।

किन्तु, इन सभी कमजोरियों के बावजूद भी ऐतिहासिक उपन्यास लेखन के क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण है और वे हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं ।

गंगाप्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासः

प्रथम उत्थान काल के दूसरे प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं बाबू गंगा-प्रसाद गुप्त । गुप्त जी द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यासों में "नूरजहाँ"(१९०२ ई०), "वीर पत्नी या रानी संयोगिता"(१९०३), "कुंवर सिंह सेनापति"(१९०३), "पूना में हलचल" (१९०३), "[illegible]"(१९०४), "वीर जयमल या कृष्णकान्ता" (१९०४), तथा "अवध की बेगम"(१९०५) प्रमुख हैं । "नूरजहाँ" उपन्यास में, जैसा कि नाम से ही प्रकट है, उपन्यासकार ने इतिहास प्रसिद्ध मुगल शाहंशाह जहाँगीर और उसकी बेगम नूरजहाँ की प्रणय-कथा को चित्रित किया है । लेखक ने जहाँ एक ओर नूरजहाँ के चरित्र को उज्ज्वल एवं आकर्षक प्रदर्शित किया है वहाँ दूसरी ओर जहाँगीर को लम्पट एवं विलासी रूप में प्रस्तुत किया है । "वीर पत्नी या रानी संयोगिता" में दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान तथा संयोगिता की कहानी [illegible] शैली में वर्णित है । "कुंवर सिंह सेनापति" में औरंगजेब की शाही फौज के एक नायक कुंवरसिंह की वीरता, साहस, अदम्य उत्साह तथा प्रेम का चित्रण किया गया है । [illegible] दक्षिण में मराठों तथा डाकुओं का दमन करने के लिए गया था । यह उपन्यास पूर्णतः [illegible] कथावस्तु पर आधारित है । "पूना में हलचल" का कथानक महाराष्ट्र के सम्राट और शिवाजी के [illegible] से [illegible] है जिसमें उनके तथा शायस्ता खाँ के बीच हुए युद्ध के परिवेश में एक मराठा सरदार के पुत्र [illegible] सिंह की वीरता एवं प्रणय का वर्णन किया गया है । इसकी [illegible] पूर्णतः [illegible] है और आरम्भकालीन उपन्यास की प्रवृत्तियों जैसे वीभत्स वासनात्मक वर्णनों तथा [illegible] [illegible] आदि से परि-पूर्ण है । शिवा जी को एक क्रोधी के रूप में चित्रित किया गया है । पं० राम-

चन्द्र शुक्ल के अनुसार यह एक उर्दू उपन्यास का अनुवाद है[1]। "हम्मीर" में चित्तौड़ के प्रसिद्ध वीर हम्मीर का अपने खोये राज्य के प्राप्त करने के प्रयत्नों तथा दिल्ली-सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से हुए उनके युद्धों का वर्णन है । हम्मीर अपनी कूटनीति तथा अपनी पत्नी की सहायता से अपने प्रयत्न में सफल होता है तथा अलाउद्दीन और उसके सामंत मालदेव को हराकर चित्तौड़ को अपने अधीन कर लेता है । वास्तव में यह रचना उपन्यास न होकर औपन्यासिक जीवनी है और जैसा कि लेखक ने इसकी भूमिका में स्वीकार किया है "टाड" द्वारा लिखित "राजस्थान" की छाया लेकर लिखा गया है । "वीर जयमल" में मुगल सम्राट अकबर के आक्रमण से संत्रस्त होकर चित्तौड़ के राजा उदयसिंह के भाग जाने के पश्चात उनके वीर सामन्त जयमल का चित्तौड़ की रक्षा में अपने आपको होम कर देने की कथा है । इस उपन्यास में लेखक ने जयमल की बहादुरी, उसके साहस भरे कार्यों तथा युद्ध-कौशल को प्रदर्शित किया है । "अवध की बेगम" में उपन्यासकार ने अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ में अवध और संयुक्त प्रदेश की शोचनीय अवस्था का वर्णन करते हुए यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि अंग्रेजों और अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने मिलकर किस प्रकार रुहेलों पर अत्याचार किया और अन्त में अवध की बेगमें किस प्रकार लूटी तथा अपमानित की गयीं । वस्तुतः यह उपन्यास बंगला के ख्यातिनामा लेखक और उपन्यासकार चंडीचरण सेन के उपन्यास का अनुवाद है[2]।

गंगाप्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यास, गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा अधिक इतिहास सम्मत और स्वाभाविक हैं और उनमें अस्वाभाविक तथा अलौकिक तत्व अपेक्षाकृत कम हैं । कालक्रम दोष तथा ऐतिहासिक असंगतियाँ, यद्यपि गुप्त जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी हैं, लेकिन गोस्वामी जी के

१- पं रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४७८।

२- "अठारह वर्ष पहले बाबू चंडीचरण सेन ने बंगला भाषा में इस ग्रन्थ को लिखा था । इसमें हमने ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद समझकर हिन्दी में अनुवादित तथा सम्पादित किया है ।

—गंगाप्रसाद गुप्त: अवध की बेगम (१९०६) की भूमिका ।

ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा कम । सम्भवतः इसका कारण गुप्त जी की उपन्यास सम्बन्धी अपनी मान्यता है । इस सम्बन्ध में "हम्मीर" नामक उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "कहानी ही उपन्यास का मूल होने पर उसकी घटना सत्य घटना की भाँति सत्य प्रतीत होनी चाहिए, उसके चरित्र वास्तविक चरित्रों की भाँति वास्तव प्रतीत होने चाहिए । असम्भवता का दोष उपस्थित होते ही उपन्यास लड़कों का खेल हो जाता है ।" यही कारण है कि गुप्त जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में तिलस्म, जासूसी तथा ऐयारी के उतने विचित्र हथकण्डे नहीं है जितने गोस्वामी जी के उपन्यासों में । प्रारम्भिक उपन्यासकारों की भाँति उपन्यास कला का अभाव इनके भी ऐतिहासिक उपन्यासों में लक्षित किया जा सकता है । इनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना की अपनी-अपनी सीमायें है । जहाँ तक वीरता से भरी घटनाओं का सम्बंध है वे ऐतिहासिक हैं और प्रणय [illegible] कथानक कल्पना प्रसूत है ।

गुप्त जी के उपन्यासों में भी हिन्दुत्व की भावना प्रबल रूप में मिलती है । कौशलपूर्ण कथा-संगठन का अभाव इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी है । इसी कारण इनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यास, उपन्यास कम और इतिहास ही अधिक हैं ।

जयरामदास गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यास:

हिन्दी के प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों में तीसरे प्रमुख उपन्यासकार है बाबू जयराम दास गुप्त । यद्यपि इन्होंने बाबू गंगाप्रसादगुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़कर उपन्यास लिखना आरम्भ किया[1], किन्तु इनकी रचनाओं पर किशोरीलाल गोस्वामी का प्रभाव अधिक है । जयरामदास द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यासों में "रंग में भंग"(१९०७), "काश्मीर पतन"(१९०७), "[illegible]"(१९०८), "नवाब नीवी या और [illegible]"(१९०९), "मयारी चारस्त न

१- देखिये: [illegible] की भूमिका ।

वा वाजिद अलीशाह"(१९०९) , "रोशनआरा वा चांदनी और अंधेरा"(१९०९), "प्रभात कुमारी"(१९०९), "रानी पन्ना वा राज ललना"(१९०९),"वीरांगना वा आदर्श ललना" "सूरशिरोमणि", "फूल कुमारी", "चम्पा" तथा "नूरजहां" प्रमुख हैं ।

"रंग में भंग" तथा "काश्मीर पतन" में लेखक ने सन् १८१८-१९ में [illegible] पर सिक्ख अधिकार के पश्चात् उसकी दुर्व्यवस्था का चित्रण औपन्यासिक शैली में किया है "काश्मीर पतन" सिटन के "लाइटलैंड आफ पर्सी गार्ड" की छाया लेकर लिखा गया है ।."कलावती" का कथानक "मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह से सम्बन्धित है । "चांद बीबी वा वीर रमणी" में अहमद नगर राज्य की वीर महिला चांद बीबी की उस वीरता और शौर्य का वर्णन है जिसका प्रदर्शन उसने दिल्ली सम्राट अकबर के [illegible] मुराद के साथ युद्ध में किया था । "वनवासी परित्याग वा वाजिद अलीशाह" में लेखक ने लखनऊ के अंतिम विलासी नवाब वाजिद अली शाह की ऐयाशी तथा उसके महल के बेगमों के रहस्यमय प्रेम-व्यापारों का वर्णन किया है । इस उपन्यास-रचना की प्रेरणा उपन्यासकार को गंगाप्रसाद गुप्त की "बनाई हुई वाजिदअली शाह नामक किताब" से मिली थी । "रोशनआरा वा चांदनी और अंधेरा" का कथानक मुगल सम्राट शाहजहां की दूसरी बेटी तथा औरंगजेब की तरफदार [illegible] से सम्बंधित है । "प्रभातकुमारी" में बंगाल के शासक मीर जुमला (१६६१) के आसाम पर आक्रमण के सन्दर्भ में, अमरसिंह और प्रभात कुमारी की कल्पित प्रेम-कथा है । "रानी पन्ना वा राजललना" में रायपुर के राजा रुद्रसिंह की सहायता से मगधाधिपति दिलीप सिंह का युवराज के [illegible] बनाने की [illegible] तथा रुद्रसिंह को अपनी पुत्री कुंवरि पन्ना को देने की कथा है । "वीरांगना" में [illegible] की वीरता तथा राज पुत्र [illegible] द्वारा [illegible] को [illegible] अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की कथा का वर्णन है । "नूरजहां" में [illegible] और [illegible] की प्रेम-कथा वर्णित है ।

[illegible] लाल गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यास, किशोरीलाल गोस्वामी के "ऐतिहासिक उपन्यासों के अधिक [illegible] रखते हैं और प्रारम्भिक कालीन ऐतिहासिक

उपन्यासों की सभी कमजोरियाँ इनके भी उपन्यासों में भी तलाश की जा सकती है । चरित्र चित्रण का अभाव, कालक्रम दोष, ऐतिहासिक असंगतियाँ, कौतूहलपूर्ण कथा संगठन का अभाव, असम्भाव्य घटनाओं, जासूसी, तिलस्मी तथा ऐयारी आदि के इस्तेमाल की प्रचुरता इनके भी उपन्यासों में उपलब्ध होती है । गोस्वामी जी तथा गंगा प्रसाद गुप्त की भाँति इन्होंने भी हिन्दुत्व का गुणगान किया है और मुसलमानों के प्रति आक्रोश प्रकट कर उनकी नीचता एवं क्रूरता का प्रदर्शन किया है ।

अन्य ऐतिहासिक उपन्यास लेखक और उनकी कृतियाँ:

पुनरुत्थान काल के उपर्युक्त तीन प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों के पदचिन्हों पर चलकर अन्य कई उपन्यासकारों ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया । विषय-वस्तु, चरित्र-चित्रण तथा भाषा शैली की दृष्टि से ये तीनों ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने काल के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों के मार्ग दर्शक कहे जा सकते हैं । इस काल में बलदेव प्रसाद मिश्र ने मुस्लिम इतिहास को आधार बनाकर श्रृंगार और साहस से भरे तीन ऐतिहासिक उपन्यास-अनारकली(१९००), "पृथ्वीराज चौहान"(१९०२), तथा "पानीपत"(१९०२) की रचना की । जैसा कि उपन्यासों के नामों से ही प्रकट है "अनार कली" में अनारकली और जहाँगीर की प्रसिद्ध प्रणय कथा, "पृथ्वीराज चौहान" में दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान की आत्मगाथा तथा "पानीपत" में राणा सांगा और बाबर के बीच पानीपत में हुई युद्ध-कथा वर्णित की गयी है । बलभद्र सिंह ने महाराष्ट्र के उत्थान और महाराज शिवाजी से संबंधित दो उपन्यास "सौन्दर्य कुसुम वा महाराष्ट्र उदय"(१९१०) तथा "सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी"(१९११) लिखे । इनका तीसरा उपन्यास "जय श्री वा वीर बालिका"(१९१०) आठवीं शताब्दी में आलोर (सिंध) के प्रसिद्ध राजा दाहिर के राज्य पर मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण तथा दाहिर की पुत्री [illegible] का मुहम्मद बिन कासिम को छल से मरवाने जाने से संबंधित है । इसके अतिरिक्त इतिहास को लेकर मुस्लिम शासन के सम्बन्ध में लिखे जाने वाले ऐतिहासिक उपन्यासों में मथुरा प्रसाद शर्मा कृत "नूरजहाँ"

(१९०५), श्यामसुन्दर लाल कृत "नूरजहां", जैनेन्द्र किशोर कृत "गुलेनार"(१९०७), भगवानदास कृत "हर्दू बेगम"(१९०५) तथा वमराम लाल रस्तोगी कृत"ताज महल" प्रमुख हैं । हिन्दू नारियों के उच्चादर्शों को प्रदर्शित करने के ध्येय से लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यासों में केदारनाथ शर्मा कृत "तारामती"(१९०१), व्रज बिहारी सिंह कृत "कोटा-रानी" (१९०२), विट्ठलदास नागर कृत "पद्माकुमारी"(१९०३), गिरिज नंदन तिवारी कृत "विद्याधरी"(१९०४), "पद्मिनी"(१९०५), तथा "सुलोचना" (१९०६), लाल जी सिंह कृत "वीर बाला"(१९०६), क बल्लभ दास्का कृत "चन्द्र कुमारी"(१९०७), मुंशी देवी प्रसाद कृत "रूठी रानी"(१९०६), चतुर्भुज सहाय कृत "कुमारी चन्द्र किरण"(१९०६), तथा शालिग्राम गुप्त कृत "आदर्श रमणी" उल्लेखनीय हैं । हिन्दू वीरों पर लिखे गए ऐतिहासिक ...। में राम ...थ शर्मा रचित "नरदेव"(१९०३), मिठ्ठू मिश्र कृत "रणधीर सिंह" (१९०४), जंगबहादुर सिंह कृत "... कुमार"(१९०७), कृष्णदेव प्रसाद सिंह कृत "वीर चूडामणि"(१९१२), तथा मुरारीलाल पंडित कृत "विचित्र वीर" (१९१५) प्रमुख कृतियां हैं । श्याम सुन्दर वैद्य का "पंजाब पतन"(१९०४)भी इसकाल की एक प्रमुख रचना है ।

(ग०) द्वितीय उत्थान काल १९१६-३८ के ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यास:

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का प्रथम उत्थान काल एक प्रकार से "किशोरीलाल युग" कहा जा सकता है । क्योंकि घटना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की जिस परम्परा का उन्होंने सन् १८९० में सूत्रपात किया था उसका निर्वाह वे द्वितीय उत्थान काल में भी करते रहे । उनका अन्तिम ऐतिहासिक उपन्यास "गुप्त गोदना" सन् १९११ से प्रारम्भ होकर १९१७ तक लिखा जाता तथा प्रकाशित होता रहा । किन्तु इस प्रकार के घटना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखन की प्रवृत्ति ...नन्दन सहाय के "लालचीन" (१९१६) नामक

ऐतिहासिक [illegible] के प्रकाशन के साथ क्रमशः क्षीण होने लगी और उपन्यासों
में घटनाओं को प्रधानता न देकर चरित्र-चित्रण को महत्व दिया जाने लगा ।
प्रेमचन्द का प्रसिद्ध चरित्रप्रधान उपन्यास "सेवासदन" १९१८ में प्रकाशित हुआ ।
अतः हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य धारा के द्वितीय उत्थान काल का
आरम्भ १९१६ ई० से माना जा सकता है । "लालचीन" उपन्यास [illegible] रूप से
अपने पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न है और ऐतिहासिक उपन्यास रचना के
क्षेत्र में एक नवदिशा का सूचक है ।

<u>ब्रजनन्दन सहाय का ऐतिहासिक उपन्यास "लालचीन":</u>

"लालचीन"(१९१६) का कथानक दक्षिण भारत के बहमनी राज्य
के सुल्तान गयासुद्दीन बहमनी[1] तथा उसके तुर्क गुलाम "लालचीन" से संबंधित है ।
"लालचीन" नाम के बदले उक्त तुर्क गुलाम का नाम कुछ इतिहासकार तुगलचीन भी
बताते हैं । सन् १३९७ में दक्षिण भारत के बहमनी वंश का सुल्तान मुहम्मदशाह
द्वितीय मर गया और उसके बाद उसका लड़का गयासुद्दीन गद्दी पर बैठा । वह
सत्रह साल का हठी और विवेकहीन युवक था । तुर्की गुलामों का सरदार तुगलचीन
गुलबर्गा का शासक और शासन का मुख्य अधिकारी बनना चाहता था, परन्तु
गयासुद्दीन ने उसे नियुक्त नहीं किया । इसकारण वह गयासुद्दीन का शत्रु बन
गया । बदले की भावना से गुलाम ने अपनी पुत्री के साथ युवक बादशाह को फंसा-
कर अपनी मुट्ठी में कर लिया और अवसर पाकर उसकी दोनों आँखें निकाल ली
तथा उसके मुख्य सहायकों को धोखा देकर मार डाला । उसके बाद तुगलचीन ने
उसके सौतेले भाई शम्सुद्दीन दाऊद को गद्दी पर बैठाया और वजीर बनकर स्वयं
शासन करने लगा । इससे शाही खानदान के लोग असन्तुष्ट हो गये । इन दोनों

१- डा० माताप्रसाद गुप्त ने "हिन्दी पुस्तक साहित्य" के १०७वें पृष्ठ पर "लाल-
चीन" को गयासुद्दीन बहमन का गुलाम बताया है जो भ्रमपूर्ण है । शिवदानसिंह
चौहान ने भी "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष"(१९५४) में ऐसी ही भ्रमपूर्ण
बात लिखी है । देखिए उक्त पुस्तक की पृष्ठ संख्या १२६ ।

ने गुलाम और नये सुल्तान के विरुद्ध संगठन किया और दोनों को चालाकी से कैद कर लिया । शमसुद्दीन की आँखें निकाल कर उसे जेल में डाल दिया गया और अंधे गयासुद्दीन को जेल से निकाल कर उसके हाथ में तलवार दे दी गयी ताकि वह लालचीन के टुकड़े-टुकड़े कर सके । इस प्रकार २० अप्रैल से १५ नवम्बर तक सन् १३९७ में आन्तरिक हलचल के पश्चात् ताजुद्दीन फिरोजशाह दक्षिण का सुल्तान बना[1]।

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटना पर ही "लालचीन" उपन्यास की कथावस्तु आधारित है । यह उपन्यास इतिहास और कल्पना दोनों तत्वों की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न है । पूर्ववर्ती उपन्यासों में लेखकों की रुचि विशेषकर इतिहास की ओट लेकर प्रेम-प्रसंगों, जासूसियों, तिलस्मों तथा ऐयारियों आदि की असम्भाव्य, काल्पनिक घटनाओं में रमी रहती थी, किन्तु इस उपन्यास में लेखक ने इतिहास के सत्य के आधार पर अपनी सम्भाव्य एवं नियंत्रित कल्पना द्वारा उपन्यास का महल खड़ा किया है तथा उसके माध्यम से पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की भाँति ऐतिहासिक सत्य को विकृत न कर उसे पुष्ट ही किया है । कथा के संगठन की दृष्टि प्रायः सहल रही है । हाँ, यह बात अवश्य है कि लेखक ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में असफल रहा है और कालक्रम दोष तथा असंगतियाँ सहज ही दृष्टिगत हो जाती हैं । पात्रों को [illegible] प्रदान करने तथा चरित्र चित्रण का भी प्रयास लेखक ने किया है और बहुत अंशों में सफल भी रहा है । यह उपन्यास हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में एक [illegible] का संकेत देता है ।

मिश्र[illegible] के ऐतिहासिक उपन्यास:

द्वितीय उत्थान काल के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों में

1- The Cambridge History of India, Volume 3, Turks and Afgans, Chapter 15, page 386-87.

मिश्रबन्धु या मिश्रबन्धु दल का नाम उल्लेखनीय है । इनका प्रथम उपन्यास, "वीरमणि" १९१७ ई० में प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण की पृष्ठभूमि में "वीरमणि" नामक एक काम्य कुब्ज ब्राह्मण के धर्मपूजन तथा दाम्पत्य जीवन की [illegible] कथा वर्णित है । उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों तथा सम्भावनाओं की ओर लेखक का विशेष ध्यान रहा है । यद्यपि इसमें उपन्यास कला का अभाव है तथा यह जीवनी एवं इतिहास के अधिक निकट जान पड़ता है, फिर भी संवाद-शैली की प्रधानता तथा घटना-[illegible]त औचित्य के कारण यह ऐतिहासिक उपन्यास के विकास की अवस्था का द्योतक है । किंचित्, इसमें चरित्र-चित्रण का भी प्रयत्न किया गया है ।

[illegible] ने, यद्यपि द्वितीय उत्थान काल में ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु इनके [illegible] ऐतिहासिक उपन्यास तृतीय उत्थान काल में लिखे गये । मिश्रबन्धु द्वारा लिखित अन्य ऐतिहासिक उपन्यास इस प्रकार हैः-"चन्द्रगुप्त वि[illegible]ादित्य"(१९४२), "पुष्यमित्र शुंग"(१९४१), "वि[illegible]ादित्य"(१९४४), "चन्द्रगुप्त मौर्य"(१९४०), तथा "उदयन" (?)। इन उपन्यासों में से "उदयन" पं० शुकदेव बिहारी मिश्र द्वारा लिखित है । "विक्रमादित्य" में पं० शुकदेव बिहारी मिश्र के सहकारी लेखक हैं पं० प्रताप नारायण मिश्र । शेष उपन्यासों में उनके सहकारी लेखक हैं पं० श्याम बिहारी मिश्र । जैसा कि [illegible] के नामों से स्पष्ट है, "चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य" नामक उपन्यास चौथी श[illegible]ब्दी ईसवी के गुप्त [illegible] चन्द्र[illegible] विक्रमादित्य द्वितीय (३८०-४१४ ई०) से, "पुष्यमित्र शुंग" [illegible] दूसरी शता[illegible] ईसा पूर्व के मगध राजा पुष्यमित्र शुंग(ई०पूर्व १८० से १४९ तक) से, "वि[illegible]ादित्य" [illegible]न्यास शकारि वि[illegible]ादित्य (१ली शताब्दी ई०पू०) से, "चन्द्रगुप्त मौर्य" [illegible]न्यास मौर्य सम्राट चन्द्र[illegible] (चौथी शताब्दी ई०पू०) से तथा "उदयन" कौशाम्बी नरेश उदयन(छठी [illegible] ई०पू०) से सम्बन्धित है ।

वल्लभ पंत कृत "सूर्यास्त"(१९२२), विश्वम्भर नाथ "जिज्जा" कृत "तुर्क तरुणी" (१९२५), तथा भगवती चरण वर्मा कृत "पतन"(१९२७) उल्लेखनीय कृतियां हैं। "अनंगपाल" का कथानक महमूद गजनी के भारत पर आक्रमण से संबंधित है। "रानी दुर्गावती" में गढ़ा की रानी दुर्गावती की उस वीरता और पराक्रम का वर्णन है जिसका प्रदर्शन उसने दिल्ली के मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफशाह के साथ युद्ध में किया था। वस्तुतः यह रचना औपन्यासिक शैली में इतिहास है। "चौहानी तलवार" पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक घटना पर आधारित है जिसमें सिंध के राजा अमरसिंह तथा दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान का सम्मिलित रूप से शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के रोकने के प्रयत्नों का वर्णन है। इसमें भी इतिहास तत्व की ही प्रधानता है। "शाह आलम की आंखें" मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय से सम्बन्धित है। "तुर्क तरुणी" में तुर्किस्तान के स्वातंत्र्य युद्ध के सन्दर्भ में उसके नेता मुस्तफा कमालपाशा और उसकी प्रेमिका अमीना की प्रणयकथा है। "पतन" का कथानक लखनऊ के विलासी नवाब वाजिद अली शाह से संबंधित है। इसकी सभी घटनाएं वस्तुतः ऐतिहासिक न होकर कल्पनात्मक हैं।

(ख) तृतीय उत्थान कालीन (सन् १९२९-५०) ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यासः

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासः

हिन्दी में सफल और उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का सूत्रपात प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा द्वारा हुआ। इनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "गढ़ कुंडार" सन् १९२७ में लिखा जाकर सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक १३वीं शताब्दी के बुंदेलखंड के खंगारों और

जन-जीवन से सम्बन्धित है । इसके अनन्तर वर्मा जी ने बुन्देलखण्ड के विभिन्न कालों के इतिहास एवं जनश्रुतियों को आधार बनाकर अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन किया । ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों एवं देश-काल के चित्रण में यथार्थवादी पद्धति का उपयोग करके वर्मा जी ने काल - विशेष का निर्माण सा कर दिया है । वस्तुतः इतिहास अपनी समग्र विशिष्टताओं सहित इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में सजीव हो उठा है ।

प्रकाशन काल क्रम के अनुसार सन् १९६० तक वर्मा जी द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यास इस प्रकार हैः- "गढ़ कुण्डार"(१९२९), "विराटा की पद्मिनी"(१९३६), "मुसाहिबजू"(१९४६), "झांसी की रानी"(१९४६), "कचनार"(१९४७), "मृगनयनी"(१९५०), "टूटे कांटे"(१०५४),"अहल्याबाई" (१९५५) "भुवनविक्रम"(१९५७) तथा "माधवजी सिंधिया"(१९५७) ।

"गढ़ कुंडार" में बुंदेलखण्ड में होने वाली तेरहवीं सदी की राजनीतिक उथल-पुथल की पृष्ठभूमि में कुण्डार के खंगारों के पतन और बुन्देलों के अभ्युदय का चित्रण है । इसका मुख्य कथानक ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों पर आधारित है । अपने भाई द्वारा अधिकार से वंचित किये जाने पर सोहनपाल बुन्देला का खंगार राजा हुरमत सिंह से सहायता की याचना करना, हुरमत सिंह का इस शर्त पर सहायता देना कि वह अपनी लड़की का ब्याह राजकुमार नागदेव से कर दें, बुंदेलों द्वारा इस शर्त की अस्वीकृति, परिस्थितिवश सोहनपाल का अपने कुटुम्ब तथा मंत्री धीरप्रधान सहित कुण्डार गढ़ आना, हुरमतसिंह के पुत्र नागदेव का बरबस सोहनपाल की लड़की को पकड़ने का प्रयत्न करना और असफल होना तथा अन्त में बुंदेलों का लड़की देने की हामी भर कर षड्यंत्र करना एवं ब्याह के दिन शराब पिलाकर खंगारों का नाश कर देना आदि ऐतिहासिक घटनाएं हैं । उपन्यास में हुर्मत सिंह, नागदेव, सोहनपाल, धीरप्रधान, विष्णुदत्त, सहजपाल, सहेन्द्र आदि नाम ऐतिहासिक हैं ।

किन्तु इस ऐतिहासिक ढांचे में कल्पना का भी पर्याप्त मेल है । ना[illegible] मानवती प्रणय कथा दिवाकर - तारा प्रणय उपन्यासकार की कल्पना

से उद्भूत हुए हैं । किन्तु ये प्रसंग इतनी कलात्मकता से मुख्यकथा के साथ सम्बद्ध हैं कि उनके अभाव में मुख्य कथा की पूर्णता की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रसंग भी काल्पनिक हैं । वर्मा जी के इतिहास-ज्ञान और विधायिका कल्पना ने मिलकर "गढ़ कुण्डार" को एक सजीव, शक्तिशाली कृति बना दी है । "गढ़ कुण्डार" का प्रधान विषय है युद्ध और प्रेम । अधिक-तर युद्ध इतिहासमूलक हैं तथा अधिकांश प्रेम कल्पनाजन्य ।

इस उपन्यास में वर्मा जी को तत्कालीन बुन्देलखण्डीय वातावरण के चित्रण में भी अत्यधिक सफलता मिली है । मध्ययुग में बुंदेलों में जातीय गौरव, उच्चता, साहस, वीरता, मानापमान की भावना आदि प्रबल थी । विकट से विकट परिस्थिति में भी वे अपनी मान-हानि नहीं सह सकते थे । किसी भी दिशा से अपमान के संकेत से वे उत्तेजित हो उठते थे और मरने मारने को प्रस्तुत हो जाते थे । बात-बात में तलवारें खिंच जाती । जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ कुछ परम्परागत भावनाओं के पोषण और रक्षण में ही समझा जाता था । मानापमान की इसी मिथ्या भावना ने बुंदेलखण्ड में किसी सशक्त शासन की स्थापना न होने दी । वर्मा जी ने बुंदेलों की इन जातीय विशेष-ताओं को अंकित कर तथा तत्कालीन राजनीति एवं बुन्देलखण्डीय रहन-सहन, रीति-रिवाज, समाज-व्यवस्था आदि का सम्यक विवरण सतर्कता से प्रस्तुत कर उस काल खण्ड का एक स्पष्ट चित्र उपस्थित किया है ।

कलात्मक कथा-संगठन, ऐतिहासिक यथार्थता, तथा भाषा-शैली की दृष्टि से "गढ़ कुण्डार" अत्यन्त सफल कृति है और सफल हिन्दी ऐति-हासिक उपन्यासों में इसे प्रथम समझना चाहिए ।

"विराटा की पद्मिनी" शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास न होकर ऐति-हासिक भूमिका में प्रस्तुत एक कल्पित रोमांस है । जैसा कि लेखक ने स्वयं स्वी-कार किया है, इसमें अनेक कालों की घटनाएं उठाकर एक काल में रख दी गयी

हैं । लेखक के अनुसार इस उपन्यास की अधिकांश घटनाएं सत्यमूलक हैं, हालांकि उनमें से कोई इतिहास प्रसिद्ध नहीं है ।

"विराटा की पद्मिनी" अथवा कुमुद की कथा एक किम्वदंती पर आधारित है जो विराटा तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में प्रचलित है । विराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूर देहियों में भी पद्मिनी की कथा का सूक्ष्म वर्णन है[1]। डा० शशिभूषण सिंहल के अनुसार पद्मिनी अथवा कुमुद की कथा ऐतिहासिक है तथा सन् १७०० के आस-पास की है ।विराटा गांव (परगना-तहसील मोंठ, जिला झांसी) की दस्तूर देही, मिसिल बंदोबस्त, सन् १८६२ में पद्मिनी संबंधी घटना का उल्लेख है । उर्दू में लिखा है"विराटा में दांगी जाति की पद्मिनी थी । नवाब कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी[2]।"

पद्मिनी की कथा में वर्मा जी ने दतिया राज्य की राज्य-प्राप्ति संबंधी संघर्ष की घटना को संगुम्फित किया है । नायक सिंह, देवी सिंह,तथा कुंजर सिंह आदि इस घटना से सम्बद्ध वास्तविक पात्रों के कल्पित नाम हैं । डा० सिंहल के अनुसार यह घटना विराटा की पद्मिनी की मृत्यु के ५५ वर्ष बाद की है[3]। किन्तु वस्तुतः यह घटना विराटा की पद्मिनी की मृत्यु के ५५ वर्ष बाद की न होकर लगभग १०० वर्ष बाद की होनी चाहिये । दतिया के राजा विजय बहादुर सिंह (उपन्यास के नायक सिंह) विलासी प्रकृति के थे तथा अनेक रोगों से ग्रसित थे । सन्तान की इच्छा से उन्होंने दो विवाह किये किन्तु कोई पुत्र न हुआ । हां, एक दासी पुत्र अवश्य हुआ । उपन्यास का "कुंजरसिंह" वही है । विजय बहादुर सिंह के मरते समय (मृत्यु संवत् १९१ प्रवि०) राज-पुरोहित ने षड्यंत्र करके भवानी सिंह नामक एक व्यक्ति को उनका दत्तक बना दिया । उपन्यास में वही "देवी सिंह" है[4]।

१- विराटा की पद्मिनी, परिचय, पृ० १ ।

२- देखिये, डा० शशिभूषण सिंहल: उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा,पृ० ६३।

३- वही, पृ० ६१ ।

४- वही, पृ० ६४ । बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास(पं०गोरेलाल तिवारी), पृ० २०४।

इस प्रकार यद्यपि उपन्यास में कई कालों की घटनाएं एकत्रित हैं, फिर भी लेखक ने कहानी का जो काल और स्थान चुना है, पात्र एवं घटनाएं उसी के अनुकूल हैं। कथा-शिल्प-निर्माण तथा तत्कालीन राजनीति, सामन्ती-समाज व्यवस्था आदि के चित्रण की दृष्टि से उपन्यास पर्याप्त सफल है और एक स्पष्ट छाप मन पर छोड़ जाता है ।

"मुसाहिबजू" एक लघु ऐतिहासिक उपन्यास है जिसका सम्बन्ध दतिया राज्य से है । इसमें अधिकांश पात्र कल्पित हैं तथा घटनाएं जनश्रुति पर आधारित, किन्तु भूमिका ऐतिहासिक है । उपन्यास का घटनाक्रम उस समय से आरम्भ होता है जब मुगलों के पतन के पश्चात् भारत में अंग्रेजों के पैर जमने लगे थे और पारस्परिक वैमनस्य के बावजूद भी मराठों की शक्ति बढ़ गयी थी । बुंदेलखण्ड के रजवाड़े उस समय संधियों के बंधन में जकड़े तो जा चुके थे, किन्तु अभी उनमें शिथिलता थी। इस उपन्यास में दतिया राज्य के [illegible] के [illegible] मुसाहिब दलीप सिंह की अपने सेवकों और आश्रितों के लिए अपना सम्पूर्ण धन खर्च कर डालने, धनाभाव का ज्ञान होने पर उनके [illegible] का डाका डालने, अपने [illegible] का भेद खुल जाने पर उनके सम्मान की रक्षा के लिये राज्य छोड़ देने तथा अन्त में राजा के अनुरोध पर पुनः राज्य में लौट आने की कथा है । दलीप सिंह, वस्तुतः अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों के अस्त होते हुए उन सामंतों और मु[illegible] के प्रतीक हैं जो स्वयं तो [illegible] में पिस रहे थे, किन्तु अपनी प्रजा के लिए सब कुछ होम कर देने के लिए तत्पर रहा करते थे । यह उपन्यास भी अपने आप में एक सफल कृति है तथा साम[illegible] जीवन का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करती है ।

"झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" नामक ऐतिहासिक उपन्यास वर्मा जी की [illegible] [illegible] में [illegible] महत्वपूर्ण एवं आकर्षक है और साहित्य संसार ने इसका यथोचित स्वागत किया है । इस उपन्यास में सन् 1857 के प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेने वाली और न्यारी झांसी की रानी लक्ष्मी बाई का जीवन औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत किया गया है । यह शुद्ध ऐतिहासिक उपन्या-

है जिसमें अधिकांश पात्र, घटनाएं और स्थान ऐतिहासिक है और उपन्यास के ढांचे में ढलकर सजीव हो उठे हैं । यद्यपि इस उपन्यास में वर्मा जी का इतिहासकार, उनके उपन्यासकार से कहीं-कहीं अधिक प्रबल हो उठा है, किन्तु इतना होते हुए भी उपन्यास की रोचकता एवं सजीवता में कहीं कमी नहीं आई है । कुछ इतिहासकारों की, जिनमें दत्तात्रय बलवंत पा[illegible] प्रमुख है, यह धारणा थी कि भांसी की रानी "स्वराज्य" के लिये नहीं लड़ी वरन् "गदर" के समय अंग्रेजों की ओर से भांसी का शासन करते हुए उनको बलात् रोष से विवश होकर लड़ना पड़ा । किन्तु भांसी की रानी के सम्बन्ध में बुन्देल[illegible]ड या भांसी में जो प्रचलित जन-भावना है उससे यह धारणा मेल नहीं खाती । वर्मा जी ने [illegible] प्रामाणिक साक्ष्यों का सहारा लेकर इस उपन्यास में यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है कि लक्ष्मी बाई के हृदय में बचपन से ही पराधीनता के प्रति विद्रोह की भावना वर्तमान थी और अवसर पाकर सन् १८५७ में वही भावना स्वातंत्र्य संग्राम के रूप में फूट पड़ी । उनकी लड़ाई, जैसा कि पारसनीस का कथन है, विवशता की लड़ाई न थी, वरन् स्वराज्य की भावना से प्रेरित स्वेच्छापूर्वक लड़ी लड़ाई थी ।

यह [illegible]पन्यास चार भागों में विभक्त है - ऊषा के पूर्व, उदय, मध्याह्न, और अस्त । "ऊषा के पूर्व" भाग [illegible]पन्यास की भूमिका मात्र है जिसमें बहुत ही संक्षेप में रानी के पति गंगाधर राव के पूर्वजों के इतिहास, भांसी राज्य की स्थापना, तथा गंगाधर राव की प्रकृति एवं रुचि का उल्लेख किया गया है । "उदय" में रानी की बाल्यावस्था, गं[illegible]धर राव से उनके [illegible], [illegible], पुत्र की [illegible]त्पत्ति और मृत्यु, राजा द्वारा अपने एक संबंधी [illegible]दामोदर राव का गोद लिया जाना, राजा की मृत्यु, अंग्रेजों द्वारा बालक को अस्वीकृति तथा भांसी राज्य पर उनका अधिकार, इस अ[illegible]ार के प्रति रानी की प्रतिक्रिया, उनकी [illegible] तथा गुप्त रीति से अंग्रेजों के [illegible]खिलाफ होने के [illegible]ल्पना आदि का वर्णन है । "मध्या[illegible]" भाग में अंग्रेजों की [illegible] नीति के

फलस्वरूप विभिन्न सैनिक छावनियों में असन्तोष, रानी का सैन्य-संगठन, सिपाही-विद्रोह का प्रारम्भ, झाँसी की सैनिक छावनी में विद्रोह की ज्वाला का भभक उठना, झाँसी पर रानी का पुनः अधिकार तथा शासन व्यवस्था, सागर सिंह डाकू का रानी के सम्मुख आत्म समर्पण, झाँसी पर नत्थे खाँ का आक्रमण और उसकी पराजय, झाँसी पर यूनियन जैक फहराने के ध्येय से जनरल रोज का झाँसी की ओर कूच करना आदि घटनाओं का वर्णन है। "अस्त" में झाँसी की रानी और झाँसी राज्य के अस्त होने की कथा है। इसमें अंग्रेजी सेना का झाँसी पर आक्रमण, रानी का झाँसी की रक्षा के लिये युद्ध तथा झाँसी के स्त्री-पुरुषों का आत्म-बलिदान , रानी की पराजय तथा अंग्रेजों द्वारा लूटमार एवं अत्याचार, रानी का झाँसी छोड़कर कालपी की ओर पलायन, कालपी में पेशवा की सेना लेकर पुनः अंग्रेजों से युद्ध और पराजय, ग्वालियर जाकर अन्तिम बार अंग्रेजी सेना से टक्कर लेना तथा युद्ध करते-करते आहत होकर बाबा गंगाराम की कुटी में मृत्यु आदि घटनाओं का अंकन है।

"झाँसी की रानी" की कथावस्तु प्रधानतः ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों पर आधारित है और अधिकांश पात्र – गंगाधर राव तथा झाँसी की रानी के अतिरिक्त, राव साहब, तात्या, दीवान जवाहर सिंह, रघुनाथ सिंह, गुलाम गौस खाँ, खुदाबख्श, सुन्दर, मुन्दर, मोती बाई, जूही, काशी बाई, मार्टिन, रोज, पीर अली आदि- और घटनाएं तथा प्रसंग इतिहास-प्रसिद्ध है। लेखक ने स्थानों तक का वास्तविक वर्णन देने का प्रयत्न किया है। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं वातावरण के यथार्थ चित्रण में भी वर्मा जी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" औपन्यासिकता तथा इतिहास दोनों दृष्टियों से हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और लेखक ने भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण चरित्र के विषय में प्राप्य सामग्री को लेकर तथा उसमें कल्पना के रंग भर कर एक ऐसे शक्तिशाली चरित्र का निर्माण किया है जो हिन्दी ही नहीं, भारतीय साहित्य के लिए भी एक नवीन देन है।

"[illegible]" वर्मा जी द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और वास्तव में यह हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठ उपलब्धियों में से एक है । इस उपन्यास में तोमर शासनकाल के सर्वाधिक शक्तिशाली और कलाप्रिय राजा मानसिंह तोमर(शासन काल १४८६-१५१६ ई०) और उसकी गूजरी रानी मृगनयनी की कथा वर्णित है । यह उपन्यास मिश्र ऐतिहासिक है जिसके प्रमुख पात्र एवं घटनाएं इतिहासानुमोदित हैं । मानसिंह के राज्यकाल को अनेक इतिहासकारों ने तोमर शासनका स्वर्ण युग कहा है । उसके शासन काल में उसकी राजधानी ग्वालियर पर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दरशाह लोदी ने पांच बार आ[illegible] किया, किन्तु हर बार उसे लौट जाना पड़ा । ग्वालियर विजय की कामना से ही उसने आगरा शहर का निर्माण कराया, किन्तु ग्वालियर तब भी हाथ नहीं लगा और उसे ग्वालियर राज्यान्तर्गत नरवर को लेकर ही सन्तोष करना पड़ा । ग्वालियर को लेने के लिये मालवा का विलासी सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी तथा गुजरात का महमूद बर्गरा भी प्रयत्नशील रहे, किन्तु इनकी भी एक न चली और मानसिंह की कर्तव्यनिष्ठा, वीरता एवं [illegible] कला के सामने पराजित होना पड़ा । "मृगनयनी" की कथा इन्हीं सब ऐतिहासिक घटनाओं और [illegible] की पृष्ठभूमि में विन्यस्त की गयी है ।

वर्मा जी ने इस उपन्यास के लेखन में इतिहास तत्व के अतिरिक्त जनश्रुतियों एवं [illegible]तियों का भी पर्याप्त आधार ग्रहण किया है । [illegible] का एक ही बाण से नाहर को मारना तथा अरने भैंसे की सींग मोड़ देना, [illegible] के अतिरिक्त मानसिंह की आठ रानियों का होना, नटों का प्रसंग तथा उनके द्वारा नरवर के किले से बाहर जाने की कथा, [illegible] के आग्रह पर मानसिंह का राई गांव से ग्वालियर किले तक सांक नदी की नहर ले जाना, [illegible] का अपने दोनों लड़कों को युवराज मनोनीत न कर बड़ी रानी के पुत्र विक्रमादित्य को [illegible] मनोनीत करना आदि बातें तोमरों तथा गूजरों में प्रचलित किम्वदंतियों से ली गयी है । [illegible] और [illegible] की स्थूल रे[illegible] में रंग भरने के

लिये वर्मा जी ने अनेक सम्भावित घटनाओं और व्यक्तित्वों की अपनी ओर से उद्भावना की है । अटल और लाखी का प्रेम-प्रसंग, निन्नी तथा लाखी द्वारा मांडू सुल्तान के सिपाहियों का वध, लिंगायत विजय जंगम और वैष्णव पंडित का शास्त्रार्थ, नटों के साथ अटल और लाखी की नरवर यात्रा, लाखी द्वारा नरवर के किले की रक्षा आदि ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो लेखक की उर्वर और कल्पनाशील मस्तिष्क से उद्भूत हुए हैं और कथा के विकास तथा गठन में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं । इस प्रकार इतिहास, परम्परा तथा कल्पना तीनों के संयोग से "मृगनयनी" की रचना हुई है । कल्पना का प्रयोग लेखक ने इतनी सतर्कता तथा कलात्मकता से किया है जिससे कोई भी इतिहास सम्बन्धी असंगति नहीं आने पायी है और सम्पूर्ण कथा तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण के बीच सजीव बन चमक उठी है ।

उपन्यास की मुख्य कथा मृगनयनी तथा मानसिंह से संबंधित है किन्तु प्रासंगिक कथाएं भी अनेक हैं जिनमें लाखी और अटल के प्रेम और वीरता की कथा मुख्य है । अन्य प्रासंगिक कथाओं में गयासुद्दीन-नसीरुद्दीन प्रसंग, गुजरात के महमूद बघेरा की चढ़ाई और उसका राक्षसी भोजन, राजसिंह-कला-बैजू बावरा-प्रसंग, विजय जंगम तथा बोधन पुजारी आदि के प्रसंग हैं जो मुख्य कथा से सम्बद्ध तो हैं ही, उसके विकास तथा तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण में भी सहयोग देते हैं । कथा शिल्प, वार्तालाप तथा देश-काल-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास अद्वितीय है ।

"टूटे कांटे" का कथा काल १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ है । यह उपन्यास दिल्ली के सुल्तान मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की गायिका एवं नर्तकी नूरबाई से सम्बद्ध है जिसमें उसके जीवन के उत्थान, पतन आदि का चित्रण है । नूरबाई का अस्तित्व ऐतिहासिक है । उसे मुहम्मदशाह ने ईरान के शासक [illegible] नादिरशाह को दिल्ली आक्रमण के समय सौंप दिया था, किन्तु वह उसके चंगुल

से भाग निकली थी । मात्र इतने ऐतिहासिक तथ्य का आधार लेकर वर्मा जी ने अपनी महत् एवं इतिहास मूलक कल्पना से नूरबाई की कथा को विकसित किया है और उसके अधूरे तथा अस्पष्ट व्यक्तित्व में निखार और पूर्णता ला दी है । नूरबाई के भागने के पश्चात की कथा पूर्णतः काल्पनिक है किन्तु वर्मा जी ने जिस कलात्मकता से उसे संयोजित तथा विकसित किया है वह ऐतिहासिक सम्भाव्यता से दूर नहीं ज्ञात होता । नूरबाई की कथा के परिपार्श्व में ही लेखक ने नादिरशाह के आक्रमण और उसके [illegible], मुहम्मदशाह की विलासिता, मराठों द्वारा अखण्ड हिन्दू-राज्य की कल्पना से दक्षिण के [illegible] राज्य तथा दिल्ली में लूटमार एवं आक्रमण और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आदि का सफल चित्रण किया है । सफल ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इसका भी अपना [illegible] महत्व है ।

"अहिल्याबाई" वर्मा जी का एक लघु उपन्यास है जिसमें इन्दौर की इतिहास प्रसिद्ध रानी अहिल्याबाई का जीवन चरित औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास के भी अधिकांश पात्र - जैसे, मल्हार राव, मालेराव, गंगाधर राव आदि - तथा घटनाएं ऐतिहासिक हैं । लेखक को "अहिल्याबाई" के चरित्र चित्रण में अद्भुत सफलता मिली है तथा अनेक ऐतिहासिक तथा कल्पनात्मक प्रसंगों के माध्यम से उनका [illegible] सजीव हो उठा है । इस उपन्यास में तत्कालीन मराठा-जीवन, राजनीति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का भी चित्रण हुआ है ।

"भुवन विक्रम" का स्थान वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसका कथानक उनके अन्य सभी उपन्यासों के कथानकों से भिन्न है । इसमें उत्तर वैदिक युग की जीवन-पद्धति, समाज-व्यवस्था, आचार-विचार, राज्य-व्यवस्था, जीवन-दर्शन आदि को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । लेखक ने किसी वैदिक आख्यान में आये हुए [illegible] नामक अयोध्या नरेश के राज्य में अकाल पड़ने के वृत्तान्त पर कथा की कल्पना की है और [illegible] या रोमक के

पुत्र भुवन विक्रम को नायक बनाकर कथा को पल्लवित तथा पुष्पित किया है । कथा - संयोजन तथा रोचकता की दृष्टि से वर्मा जी को इसमें भी सफलता मिली है किन्तु तत्कालीन परिस्थिति के चित्रण में वे अधिक सफल नहीं हो पाये हैं । सम्भव है इसका कारण भाषा की असमर्थता हो । फिर भी, ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में वैदिक कालीन इतिहास पर आधारित प्रथम उपन्यास होने से इसका अपना महत्व है ।

"माधव जी सिन्धिया" नामक उपन्यास सन् १९४८ में लिखा जा चुका था, लेकिन यह प्रकाशित हुआ सन् १९५७ में । इस उपन्यास में वर्मा जी ने १८वीं शताब्दी ईसवी के अस्थिर-अव्यवस्थित राजनीतिक परिस्थिति के परिपार्श्व में अन्यतम मराठा वीर माधव जी सिंधिया तथा भारत की सारी शक्तियों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकता के सूत्र में बांधने के उनके विशाल स्वप्न को चित्रित करने का प्रयास किया है और अपने इस प्रयास में वे सम्यक् रूपेण सफल भी हुए हैं । माधव जी के व्यक्तित्व निर्माण के लिए तथा उनके कार्य की विशाल भाव-भूमि के चित्रण के लिए वर्मा जी ने तत्सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं को यथास्थान गति प्रदान की है तथा अपनी इतिहाससम्मत कल्पना से इन्हें जीवन्त बना दिया है । पतनोन्मुख मुगल बादशाहों की दयनीय दशा, उनके वज़ीरों की स्वार्थी नीति, अंग्रेजों, रुहेलों, अफ़गानों, मराठों, सिक्खों तथा जाटों की राजनीतिक चालों एवं युद्ध और लूट-पाट आदि का वर्णन इस उपन्यास में उपलब्ध है जो तत्कालीन भारत का सम्यक् चित्र आंखों के समक्ष प्रस्तुत कर देता है । यह उपन्यास पूर्णतः ऐतिहासिक है और जिन प्रमुख घटनाओं और पात्रों- जैसे गन्ना बेगम, हुस्ना बेगम, जवाहर सिंह, नजीब खां, गुलाम कादिर, सिराजुद्दीन, सूरजमल मल्हार राव आदि का वर्णन आया है, वे सब इतिहास-सम्मत हैं । माधव जी सिन्धिया के व्यक्तित्व निर्माण में वर्मा जी को अत्यधिक सफलता मिली है । सफल ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में वर्मा जी की यह कृति भी एक विशिष्ट स्थान रखती है और इनके ऐतिहासिक उपन्यास शिल्प का एक आदर्श प्रस्तुत करती है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वर्मा जी की अपनी विशिष्टताएँ हैं जिनके कारण वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार माने जाते हैं । वर्मा जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अतीत के जिन काल खण्डों को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित किया है वे अपनी यथार्थता के साथ समग्र रूप में सजीव हो उठे हैं । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में कथा का सातत्य तो है ही, साथ ही उनमें इतिहास और परम्परा है, सत्य और कल्पना है, सामन्तीय तथा जन-जीवन है और लेखक ने इन सबका संयोजन और संगठन इस कलात्मक ढंग से किया है कि वे घुल मिल कर परस्पर अभिन्न अंग बन गये हैं । अतीत कालीन जीवन और युग के चित्रण के सन्दर्भ में वर्मा जी ने अतीत की घटनाओं को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरागों से जोड़ा है और इस प्रकार चिरन्तन एवं शाश्वत सत्यों का उद्घाटन किया है । अतीत चित्रण के साथ ही उनके उपन्यासों में वर्तमान की समस्याओं का समाधान भी मिल जाता है, लेकिन वह अतीत के साथ इतना घुल मिलकर आता है कि उसके होने का अनायास हमें आभास नहीं होता । वर्मा जी के सभी उपन्यासों में इतिहास सजीव हो उठा है और उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं ।

राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यास:

तृतीय उत्थान काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ तथा पुरातत्वज्ञ महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । राहुल जी वस्तुतः उन साहित्यकारों में से हैं जो वर्तमान जीवन-दर्शन को पुष्ट करने के लिये अतीत से उदाहरण संचित कर उसके आधार पर उपन्यास-साहित्य के निर्माण द्वारा अपने विचारों को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करना चाहते हैं । अपने चारों ऐतिहासिक उपन्यास--"सिंह सेनापति"(१९४४)[1],"जय यौ-

---

१- डा० [illegible] ने "हिन्दी उपन्यास" नामक अपने शोध प्रबन्ध में "सिंह-सेनापति" का रचनाकाल १९४७ ई० दिया है जो अशुद्ध है ।

(१९४४), "मधुर स्वप्न"(१९५०) तथा "विस्मृत यात्री" (१९५५), में उन्होंने यही किया है और अतीत को उसके यथातथ्य रूप में चित्रित न कर उसे अपने वैयक्तिक विचारों तथा आधुनिक [illegible] की ऐतिहासिक व्याख्या का वाहक बना दिया है ।

"सिंह सेनापति" और "जय यौधेय" में क्रमशः बौद्धकालीन लिच्छवी-गणतंत्र (५-६वीं शताब्दी ई०पू०) तथा गुप्तकालीन यौधेय गणतंत्र(ई० सन् ३५०-४००) के [illegible] जीवन-संघर्ष तथा तत्कालीन भारत की राजनैतिक-सामाजिक अवस्था का चित्रण किया गया है । जैसा कि उपन्यासों के नाम से प्रकट है, इनमें प्रधानतः एक-एक व्यक्ति के जीवन-वृत्त का [illegible] प्रस्तुत किया गया है - "सिंह सेनापति" में लिच्छवी वीर सिंह का तथा "जय यौधेय" में यौधेय वीर जय का, फिर भी इनमें से कोई भी व्यक्ति-प्रधान उपन्यास नहीं है । ये दोनों व्यक्ति गण-जीवन के प्रतीक हैं और दोनों के जीवन को केन्द्र बनाकर लेखक ने अनेक कल्पित-अकल्पित घटनाओं, पात्रों आदि के माध्यम से तत्कालीन जीवन-पद्धति, रहन-सहन की प्रणाली, शासन-पद्धति, नारी-[illegible] की [illegible], सामाजिक अवस्थाओं आदि के चित्रण का प्रयत्न किया है । "सिंह सेनापति" में सिंह का व्यक्तित्व ऐतिहासिक है[1] और "जय-यौधेय" में जय का व्यक्तित्व काल्पनिक । यद्यपि इसकी मुख्य कथा [illegible] तथा यौधेयों के गण-जीवन से सम्बन्धित है, परन्तु प्रामाणिक इतिहास का उपयोग वास्तव में इसके [illegible] राजकुलों के वर्णन में ही किया गया है । "सिंह सेनापति" में बिम्बसार और अजातशत्रु के व्यक्तित्व तथा उनका [illegible] भी कुछ ही ऐतिहासिक है । इसी प्रकार "जय-यौधेय" में गुप्तवंश के मुख्य [illegible] कुमारगुप्त, राम[illegible], ध्रुव स्वामिनी आदि तथा उनके जीवन की घटनाएँ ही ऐतिहासिक हैं । शेष [illegible] ऐति-

---

१- डा० नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक "विचार और विवेचन" में संगृहीत "सेन राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास" में सिंह सेनापति को काल्पनिक पात्र माना है,(देखिये, उक्त पुस्तक की पृ०सं०१७०) किन्तु यह विचार भ्रमपूर्ण है । सिंह सेनापति ऐतिहासिक व्यक्तित्व है और बौद्ध साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है । देखिये, [illegible] भगवान बुद्ध, पृ० २०२-२०३ ।

हासिक तथ्यों पर आधारित न होकर इतिहासमूलक कल्पना की उपज है ।

"मधुर स्वप्न" उपन्यास का कथानक भारतीय इतिहास पर आधारित न होकर ईरानी इतिहास पर आधारित है । इस उपन्यास की रंगभूमि दजला (तिग्रा) से वक्षु नदी की भूमि (मध्य एशिया) है और काल है सन् ४९२ से ५२९ ईसवी । लेखक ने ईरान के सासानी वंश के फीरोजपुत्र कबाद के शासन तथा इतिहास को अपने उपन्यास का आधार बनाकर वहाँ की तत्कालीन सभ्यता, धर्म, दर्शन, जीवन-पद्धति, समाज आदि को चित्रित करने का प्रयास किया है और अनेक ऐतिहासिक-कल्पनात्मक घटनाओं से कथा का संगठन किया है । लेखक ने उपन्यास के प्रमुख ऐतिहासिक पात्र मज्दक को "मधुर स्वप्न" के द्रष्टा के रूप में उपस्थित किया है और उसे साम्यवादी विचारों का वाहक बनाया है ।

"विस्मृत यात्री" में राहुल जी ने एक ऐसे बौद्ध यात्री का जीवन मौ[illegible] शैली में अंकित किया है जिसका जन्म पश्चिमी पाकिस्तान के स्वात (उद्यान) की भूमि में सन् ५१८ में तथा मृत्यु चीन में हुई थी । इस ऐतिहासिक बौद्ध यात्री का नाम - नरेन्द्र यश था । लेखक ने नरेन्द्र यश के जीवन की कुछ प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं तथा उसकी भारत,सिंहल,मध्य-एशिया तथा चीन की यात्रा की कथा का आधार बनाकर इस उपन्यास की संरचना की है और उस युग को चित्रित करने का लक्ष्य रखा है ।

राहुल जी के चारों ऐतिहासिक उपन्यासों-"सिंह [illegible]", "जय यौधेय" "मधुर स्वप्न" तथा "विस्मृत यात्री" - के सम्बन्ध में प्रायः यह प्रश्न मन में उठता है कि क्या इनमें अतीत को, अतीत के रूप में प्रस्तुत करने का लक्ष्य, जो ऐतिहासिक [illegible] की सफलता की सबसे बड़ी कसौटी है, प्रधान है या अतीत के माध्यम से आधुनिक जीवन-दर्शन की मान्यता की [illegible]ता करना प्रधान है ? और बहुत सोच-विचार के [illegible] मन दूसरे प्रश्न पर केन्द्रित हो जाता है । राहुल जी ने "विस्मृत यात्री" की भूमिका में लिखा है -"अतीत के समाज को ईमान[illegible] के साथ वास्तविक रूप में रखना मैं अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ । ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और भूगोल या तत्कालीन देश-काल-पात्र की [illegible] की है अत्यन्त

दोषा और इसे किसी भी बहाने व्याख्या करना बेकार समझता हूं ।" किन्तु यह विडम्बना ही है कि ऐसा संकल्प लेकर भी राहुल जी ने ईमानदारी से अतीत के समाज को चित्रित न कर उसे बौद्धिक तथा साम्यवादी विचारों का प्रतिरूप बना दिया है । उनके उपन्यासों के नायकों के चरित्रों में उनके निजी एवं साम्यवादी विचार-भाव मुखरित होते हैं । "सिंह सेनापति" का नायक सिंह, "जय यौधेय" का नायक जय, "मधुर स्वप्न" का मज्दक तथा "विस्मृत यात्री" का नरेन्द्र यश अतीत के विभिन्न कालों तथा परिस्थितियों में एक स्वर से साम्यवाद का गायन करते हैं । राहुल जी ने वस्तुतः अपने उपन्यासों में ऐतिहासिकता का आभास मात्र देकर अपने उद्देश्य को पाठकों पर नहीं उतारना चाहा है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में, इतिहास पर कल्पना और उस कल्पना पर उनकी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मान्यताओं का एक ऐसा अनपेक्षित आवरण छा गया है, जिसके कारण अतीत अपने यथार्थ एवं प्रकृत रूप में न दिखाई देकर कृत्रिम रूप में हमारे सामने आता है । ऐतिहासिक उपन्यास में इस प्रकार का प्रयत्न दोषपूर्ण कहा जा सकता है ।

चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासः

द्वितीय उत्थान काल के तीसरे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री हैं । यद्यपि लेखन-काल की दृष्टि से शास्त्री जी का स्थान वृंदावनलाल वर्मा तथा राहुल जी से पूर्व है, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि बाद में हुई । उनके द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशन काल-क्रम की दृष्टि से इस प्रकार हैं - "खवास का ब्याह"(१९२७ ई०), "वैशाली की नगर वधू"(१९४९), "पूर्णाहुति"(१९४९), "रक्त की प्यास"(१९५०), "सोमनाथ"(१९५४), "आलमगीर"(१९५४), "वयंरक्षामः"(१९५५), "सह्याद्रि की चट्टानें"(१९६०) तथा "सोना और खून"(१९५७-६०) । इन ऐतिहासिक उपन्यासों में कुछ तो अत्यन्त सामान्य कोटि के हैं और कुछ ऐसे हैं जिन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है ।

शास्त्री जी के सामान्य कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों में "खवास का ब्याह", "पूर्णाहुति", "रक्त की प्यास", "आलमगीर", तथा "सह्याद्रि की

चट्टानें" है । "खवास का ब्याह" का कथानक "पृथ्वीराज रासो" से लियागया है और इसमें १२वीं शताब्दी के इतिहास प्रसिद्ध दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज और कान्यकुब्जेश्वर जयचंद के बीच हुए युद्धों तथा संयोगिता स्वयंवर एवं हरण की कथा है । "पू [illegible]हुति", "खवास का ब्याह" का परिवर्द्धित संस्करण मात्र है जिसमें पृथ्वीराज और मु[illegible]म्मद के बीच हुए युद्ध की घटनाएं बढ़ा दी गयी हैं । "रक्त की प्यास" की कथा का आधार -स्रोत भी "पृथ्वीराज रासो" ही है । इसमें आबू चन्द्रावती की परमार राजकुमारी इच्छिनी की प्राप्ति के लिये गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा भीमदेव द्वितीय (१२वीं श०ई०) तथा दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए युद्ध का वर्णन है । इसी सन्दर्भ में लेखक ने तत्कालीन गुजरात के राज-नीतिक दांव-पेच तथा राजा के विरुद्ध मंत्रियों के षड्यंत्र और विद्रोह का चित्रण किया है । "आलमगीर" मुगल शासन के प्रभावशाली शाहंशाह [illegible] पर लिखित मात्र कहने भर के लिये उपन्यास है । इसमें औपन्यासिक शैली का अभाव है और वस्तुतः यह कृति जीवनी तथा इतिहास के अधिक निकट है । इसमें शास्त्री जी ने औरंगजेब के जीवन की घटनाओं, युद्धों एवं शासन का प्रायः इतिहास की शैली में वर्णन कर दिया है । "सह्याद्रि की चट्टानें" महाराष्ट्र के उन्नयन और महाराज शिवाजी के व्यक्तित्व एवं उनकी विजयों से [illegible] है । कथा [illegible]जन की दृष्टि से यह उपन्यास भी [illegible]मान्य ही है ।

[illegible]स्त्री जी के ऐतिहासिक [illegible]पन्यासों में "वैशाली की नगर-वधू", "सोमनाथ"," वयं रक्षामः" तथा "सोना और खून" महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । "वैशाली की नगर[illegible]" उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है । [illegible]कालीन इतिहास-रस के इस मौलिक औपन्यासिक कृति के "प्रवचन" में [illegible]न्होंने चालीस वर्षों की अर्जित अपनी सम्पूर्ण साहित्य-[illegible] को रद्द करके इसे अपनी प्रथम कृति [illegible] की है । इस उपन्यास की मुख्य कथावस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित वैशाली की प्रसिद्ध गणिका [illegible]पाली के जीवन की वे [illegible] हैं जिनके [illegible]रण उसे कुलवधू का जीवन [illegible] "नगरव[illegible]" बनना पड़ा तथा [illegible] जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा । लेखक ने [illegible]पाली के जीवन की [illegible] [illegible]

को लेकर अपनी उर्वर एवं रसविधायिनी कल्पना से उन्हें विस्तृत भावभूमि प्रदान की है। किन्तु, उपन्यासकार की कथा कहना [illegible] के लिए एक बहाना मात्र है, उसका वास्तविक उद्देश्य तो बौद्धकालीन राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों तथा जीवन-प्रवाह को उपस्थित करना है। यह दूसरी बात है कि अपने इस महत्वपूर्ण उद्देश्य में उसे पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई है और तत्कालीन युग का चित्र खण्ड - खण्ड बन कर ही रह गया है। लेखक ने अपने इस प्रयत्न में अनेक सम्बद्ध-असम्बद्ध ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक पात्रों एवं उनसे सम्बन्धित कल्पित-अकल्पित घटनाओं का संयोजन किया है। ऐतिहासिक पात्रों में मगध सम्राट [illegible], महामात्य वर्षकार, कौशल सम्राट प्रसेनजित, राजकुमार विडूडभ, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, कौशाम्बी नरेश उदयन, बंधुल मल्ल, सेनापति सिंह आदि प्रमुख हैं। उपन्यास में ऐसी बहुत सी [illegible] कथाएं हैं जिनका मुख्य कथा से कोई संबंध नहीं है। तत्कालीन वातावरण की सृष्टि के लिए वैदिक संस्कृति, [illegible] समाज-व्यवस्था, गणतंत्र तथा राजतंत्र सम्बन्धी विधान, वेश्या और दासों की सामाजिक स्थिति, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, नृत्य-संगीत आदि का सविस्तार वर्णन प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में रोचकता एवं [illegible] वर्णन के निमित्त लेखक ने अनेक [illegible] कुचक्रों, रोमांचकारी दृश्यों तथा अस्वाभाविक घटनाओं की भी कल्पना की है और ऐसा करने के प्रयत्न में उसने ऐतिहासिक तथ्यों, सम्भावनाओं तथा युग की ऐतिहासिकता को बिल्कुल भुला दिया है। बहुत से ऐतिहासिक नाम और घटनाएं जिनका समय अभी तक प्रामाणिक रूप से निर्धारित नहीं हो पाया है एक ही काल में रख दिये गये हैं। अनेक वैदिक कालीन तथा वेदोत्तर कालीन ऋषियों जैसे बादरायण व्यास, [illegible] भारद्वाज, कात्यायन, शौनक, बौधायन, गौतम, आपस्तम्ब, आश्वलायन, जैमिनी, [illegible], [illegible], सांख्यायन, [illegible], वैशम्पायन आदि को एक ही काल में उपस्थित किया गया है। वस्तुतः इस प्रकार की बातें ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा के [illegible] होती हैं और दोष उत्पन्न करती हैं। किन्तु, इन सब [illegible] के बावजूद भी [illegible] जी की इस कृति का ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में [illegible] स्थान है।

"सोमनाथ" ऐतिहासिक [illegible]पन्यास महमूद गजनवी के सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण तथा गुजरात नरेश भीमदेव चौलुक्य द्वारा उसके प्रतिरोध की ऐतिहासिक घटना पर आधारित है । कला की दृष्टि से यह उपन्यास शास्त्री जी की सर्वाधिक प्रौढ़ रचना कही जा सकती है । शास्त्री जी ने इस [illegible]पन्यास की कथा-पट का ताना गुजराती के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार श्री कन्हैयालाल मुंशी के प्रसिद्ध उपन्यास "जय सोमनाथ"(१९४०) की कथावस्तु पर बुना है और उसके पात्रों एवं घटनाओं को सत्य की भाँति ग्रहण किया है । कुछ नये पात्रों और घटनाओं की भी कल्पना की गयी है । प्रमुख पात्रों में भीमदेव, महमूद गजनवी, घोघा बापा आदि ऐतिहासिक हैं । किन्तु उद्देश्य भिन्नता से [illegible] मुंशी जी के "जय सोमनाथ" तथा [illegible] जी के "सोमनाथ" में किंचित् अन्तर भी है । मुन्शी जी की कृति का उद्देश्य महमूद के [illegible] का चित्रण करना नहीं, वरन् गुजरात द्वारा किये गये प्रतिरोध का वर्णन करना है । इसलिये वह महमूद के चरित्रांकन को इतना विस्तार नहीं देते जितना [illegible] जी ने अपने उपन्यास में दिया है । [illegible] जी ने उसमें कोमल मानवीय भावनाओं का आरोप कर उसे आक्रामक रूप में नहीं एक प्रेमी रूप में चित्रित किया है । तत्कालीन जीवन-प्रवाह, तथा सामाजिक, [illegible] एवं धार्मिक प[illegible]रिस्थितियों के चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है ।

"वयं रक्षामः" शास्त्री जी की ग्रन्थावली में "अतीत रस का मौलिक उपन्यास" है जिसमें इन्होंने राक्षसराज रावण की कथा के सन्दर्भ में [illegible]-कालीन जातियों के विस्मृत जीवन के रेखा-चित्र उपस्थित करने तथा पुराणों की कपोल कल्पित स्थापनाओं को [illegible] की सीमा में बांधने का प्रयास किया है। देव-दानव, राक्षस, नाग, यक्ष, वरुण, मत्स्य, वानर आदि इतिहासातीत [illegible] जातियों को [illegible] कर शास्त्री जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का [illegible] किया है । उपन्यास में प्रलय, देवासुर-संग्राम, दाशराज्ञ-संग्राम, राम-रावण-युद्ध आदि विभिन्न कालीन घटनाओं को एक ही काल में [illegible] गया है और [illegible] दृष्टि से उनकी [illegible] की गयी है । काल-क्रम दोष

तथा अनैतिहासिक एवं पौराणिक तत्वों की भरमार तो इस कृति में है ही, उपन्यास-कला का भी अभाव है । जैसा कि डॉ० गोपीनाथ तिवारी का मत है, "जय रक्षाम:" को ऐतिहासिक उपन्यास नहीं माना जा सकता । इसमें इतिहास है, व्याख्या है, विवेचना है, विचार पुष्टता है, कथाएं भी है, फिर भी यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है[1] ।

"सोना और खून" शास्त्री जी द्वारा दो भागों में लिखित लगभग ११५० पृष्ठों का एक विशालकाय उपन्यास है जो १९५८ ई० से लेकर १९६० के बीच प्रकाशित हुआ । उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से इसे एक अभिनव प्रयोग कहा जा सकता है, किन्तु इस प्रयोगशीलता की परिणति असफलता में ही होती है । यह सही है कि यह कृति व्यापक ऐतिहासिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित तथा लेखक के विस्तृत ज्ञान और गम्भीर अध्ययन की द्योतक है और इसमें ऐतिहासिक तथ्यों को बिना विकृत किए हुए वास्तविक रूप में रखने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु यह भी सही है कि कथा-संयोजन तथा संगठन की दृष्टि से ये तथ्य एवं घटनाएं इतनी बिखरी तथा असम्बद्ध हैं कि सम्पूर्ण कृति को उपन्यास कहने में संकोच होता है । वास्तविकता यह है कि यह कृति उपन्यास की अपेक्षा इतिहास ही अधिक है और इतिहास के भार से इसकी औपन्यासिकता दब ही गई है ।

इस उपन्यास का कथा काल मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख कालीन बादशाह अकबर द्वितीय (१८०६-३७ ई०) से लेकर १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम तक का है । प्रथम भाग में अंग्रेजों की कूटनीति तथा देशी राज्यों के बीच मतभेद फैलाने की उनकी चालों, मराठों के आपसी मतभेद तथा उनके द्वारा उत्पन्न आतंक पिंडारियों की लूटमार, दिल्ली के बादशाहों तथा लखनऊ के नवाबों की गिरती हुई अवस्था आदि का चित्रण है । द्वितीय भाग में महारानी एलिजाबेथ तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं, इंग्लैण्ड की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं, पार्लियामेंट का उदय, भारत में कम्पनी सरकार और

१- डॉ० गोपीनाथ तिवारी: ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ०११९ ।

अंग्रेजों की नीति और धोखाधड़ी, अंग्रेजी सरकार द्वारा देशी राज्यों का हड़प लिया जाना, १८५७ की देश व्यापी क्रान्ति आदि अनेक तथ्यों एवं घटनाओं का चित्रण है । इस प्रकार यह कृति अत्यन्त विशाल पृष्ठभूमि पर आधारित है, किन्तु [illegible]सिकता तथा सम्बंध सूत्रों के अभाव में मात्र उपन्यास का कंकाल बनकर रह गयी है ।

यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास:

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की परम्परा में यशपाल का अपना एक विशिष्ट स्थान है । यशपाल मुख्यतः उन ऐतिहासिक उपन्यासकारों में से हैं जो इतिहास को, स्मरण और पूजा की वस्तु नहीं, विश्लेषण की वस्तु मानते हैं और अतीत का मनन तथा मंथन भविष्य के लिए संकेत पाने के प्रयोजन से करते हैं[1]। यही दृष्टिकोण रखकर इन्होंने अपने दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों- "दिव्या"(१९४५) तथा "अमिता"(१९५६) का प्रणयन किया है तथा इनके द्वारा अतीत को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है ।

"दिव्या" के "प्राक्कथन" में यशपाल ने लिखा है -"दिव्या" इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति, गति का चित्र है । लेखक ने कला के अनुराग वश से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का चित्र देने का प्रयत्न किया है[2]।" इससे स्पष्ट है कि "दिव्या" का कथानक किसी इतिहास पर आधारित नहीं, वरन् कुछ कल्पनाएं हैं जिसे लेखक ने ऐतिहासिक वातावरण और पृष्ठभूमि में [illegible] ढंग से प्रस्तुत कर दिया है ।

१- "दिव्या", प्राक्कथन, पृ० ५ ।

२- वही, पृ० ५ ।

"दिव्या" की कथा सोद्देश्य है । अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है - "मनुष्य से बड़ा है - केवल उसका विश्वास और स्वयं ही उसका रचा हुआ विधान । अपने विश्वास और विधान के सम्मुख विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है । इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना में देखने का प्रयत्न किया है[१] ।" इस सत्य को देखने के लिए जिस चित्रमय अतीत की भूमि का आधार ग्रहण किया गया है वह है भारत वर्ष का पतनोन्मुख बौद्ध काल ।

यशपाल ने "दिव्या" में पतनोन्मुख बौद्ध कालीन भारत के सामन्तीय जीवन तथा समाज के बर्बर स्वरूप को समाजवादी दृष्टिकोण से अंकित करने का प्रयत्न किया है तथा यह दिखाने की चेष्टा की है कि अतीत जिसे हम प्रायः स्वर्ग समझ लेते हैं वस्तुतः स्वर्ग नहीं था, वरन उसके वर्गमूलक समाज व्यवस्था में जन-समुदाय का अधिकांश भाग जीवन की सुविधाओं से वंचित था और इतर वर्गों के जीवन का मूल्य अभिजात वर्ग के सुख का उपकरण मात्र था । अपने इस प्रयत्न में यशपाल को अत्यधिक [illegible] मिली है और "दिव्या" की कथा के माध्यम से तत्कालीन जीवन और समाज का चित्र अपने यथार्थ रूप में सजीव हो उठा है । ऐतिहासिक वातावरण की दृष्टि से भी लेखक को अत्यधिक सफलता मिली है और तत्कालीन जीवन-पद्धति, वेश-भूषा, धर्म-दर्शन, समाज-व्यवस्था आदि के यथार्थ चित्रण से वह जीवन्त बन सका है ।

"दिव्या" की कथा यद्यपि सोद्देश्य है, फिर भी लेखक ने जिस कलात्मकता से उसे प्रस्तुत किया है वह प्रशंसनीय है । कथा-शिल्प तथा चरित्रों [illegible] की दृष्टि से उपन्यास सफल तो है ही, इसके माध्यम से लेखक ने तत्कालीन समाज के [illegible] स्वरूप का जो चित्रण प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक एवं यथार्थ बन सका है, राहुल जी की तरह वह ऊपर से थोपा हुआ तथा बाह्य युक्त नहीं

लगता और यह उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता है ।

"अमिता" का कथानक भी "दिव्या" के सदृश ही कल्पित है । इसमें अशोक के कलिंग-आक्रमण तथा वहाँ की घोर नृशंसता के परिणाम स्वरूप उसके हृदय परिवर्तन की ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर कथानक की कल्पना की गयी है । इस प्रकार यह भी ऐतिहासिक वातावरण और पृष्ठभूमि में प्रस्तुत की गयी एक कल्पित कथा है ।

इस उपन्यास में अशोक के अतिरिक्त अन्य सभी पात्र-महामात्य सुकंठ, बालिका अमिता, महारानी नंदा, सौमित्र और शिला आदि कल्पित हैं, किन्तु जिस युग और वातावरण के अन्तर्गत इनकी कल्पना की गयी है उसकी सब विशेषताओं और प्रवृत्तियों के ये वाहक हैं और अपनी एक स्पष्ट और स्थायी छाप पाठक के मन पर छोड़ते चले जाते हैं । लेखक ने तत्कालीन वातावरण के आभास के लिए बौद्ध-मठों की सम्पन्नता, स्थविरों का जनता पर प्रभाव, ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं का पारस्परिक द्वेष-भाव, दास-प्रथा के प्रचलन से उत्पन्न विषमता, मांस-मदिरा के प्रयोग, पशु-बलि, मंत्र-तंत्र आदि का अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन किया है ।

यशपाल का यह उपन्यास भी सोद्देश्य है और लेखक ने यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि युद्ध का अन्त पारस्परिक सौहार्द और अहिंसा से ही सम्भव है और इसी से चिर-शान्ति स्थापित हो सकती है । कथात्मकता तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी "अमिता" को सफल ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का ऐतिहासिक उपन्यास "बाणभट्ट की आत्मकथा":

शिल्प, शैली तथा प्रयोग की नवीनता की दृष्टि से हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखित "बाणभट्ट की आत्म-

कथा"(१९४६) का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है और हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा की यह एक अभिनन्दनीय उपलब्धि है । ऐतिहासिक उपन्यास रचना के क्षेत्र में यह कृति एक ऐसा अभिनव प्रयोग है जिसमें भारतीय गद्यकथा तथा पाश्चात्य उपन्यास शैलियों के समन्वय का कलात्मक और सफल प्रयास किया गया है ।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" हर्षकालीन भारत के परिवेश में लिखी गयी एक ऐतिहासिक रोमांस की सृष्टि है । इस उपन्यास में "कादम्बरी" तथा "[illegible]" के प्रणेता, संस्कृत के यशस्वी कवि बाणभट्ट को कथानायक बनाकर कहानी अग्रसर हुई है । बाणभट्ट के चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाली प्राचीन सामग्री का सार लेकर ऐसे काल्पनिक प्रसंगों की उद्भावना की गयी है कि यह कवि अपनी सम्पूर्ण चरित्रगत विशेषताओं में सजीव हो उठा है । "हर्ष चरित" में बाण ने अपने कुल, स्वभाव तथा हर्ष के सम्पर्क में आने का विस्तृत वर्णन किया है । इन वर्णनों से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि विद्या, काव्य तथा कला के साथ बाण को बड़ा उदार हृदय मिला था और मनुष्य की बाह्य दुर्बलताओं के भीतर छिपी महत्ता का उसे ज्ञान था । "हर्ष-चरित" तथा "कादम्बरी" के आधार पर बाणभट्ट के प्रेम और सौन्दर्य के आदर्श का भी अनुमान लगाया जा सकता है । बाण के उपर्युक्त गुण स्वभाव को एक शक्तिशाली व्यक्तित्व के रूप में मूर्तिमान करने तथा इसी सन्दर्भ में हर्ष-कालीन भारत के सांस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन करने के उद्देश्य से प्रस्तुत उपन्यास की रचना हुई है ।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक के [illegible] में द्विवेदी जी ने इति[illegible] और [illegible] का ऐसा मणिकांचन योग उपस्थित किया है कि दोनों एक दूसरे के [illegible] से [illegible] हो उठे हैं । [illegible] ने इति[illegible] का केवल सहारा भर लेकर [illegible] की एक [illegible] से [illegible] किया है कि

इतिहास से कहीं भी उनका विरोध नहीं है । इसमें कुछ पात्र और प्रसंग इतिहासानुमोदित हैं - जैसे, बाण, सम्राट हर्ष, कुमार कृष्ण, बाण का घर त्याग कर तथा मण्डली बनाकर इधर - उधर भटकते फिरना, प्रथम परिचय में हर्ष द्वारा बाण का तिरस्कार, बाण का परिताप तथा सम्राट द्वारा बाण का सम्मान एवं राजकवि नियुक्त किया जाना आदि - तथा कुछ पात्रों और प्रसंगों की अवतारणा की गयी है । निपुणिका और बाण के प्रति उसका अनुराग, निपुणिका की प्रेरणा और सहयोग से बाण भट्ट का छोटे राजकुल से भट्टिनी का [illegible] तथा उससे सम्बन्धित कथा, महामाया , अघोर भैरव, सुचरिता तथा वीरिक देव आदि के प्रसंग लेखक की उर्वर कल्पना-शक्ति की उपज है । किंतु कल्पना का प्रयोग इतने संयत ढंग से किया गया है कि बाण भट्ट, सम्राट हर्ष, कुमार कृष्ण आदि ऐतिहासिक पात्रों के इतिहास-सम्मत चरित्र तथा तत्कालीन वातावरण के चित्रण में कहीं भी असंगति दोष नहीं आने पाया है और सभी पात्र अपनी वैयक्तिक विशेषताओं सहित उपन्यास में सजीव हो उठे हैं ।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" का ऐतिहासिक गठन हर्षकालीन भारत की विभिन्न परिस्थिति-यों से सम्बन्धित है । द्विवेदी जी के प्रयास की सबसे बड़ी सफलता इस बात में निहित है कि बाणभट्ट के जीवन की कतिपय क्षीण घटनाओं की रेखाओं में उन्होंने अपनी [illegible] कल्पना की तूलिका से ऐसा रंग भर दिया है कि केवल बाण का चरित्र ही सम्मुख नहीं आता, वरन् उस युग का समस्त राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण ही मुखर हो उठा है । हर्ष के राज्य में धार्मिक [illegible] अपने चरम बिन्दु पर थी । यद्यपि हर्ष स्वयं बौद्ध था, किन्तु अन्य [illegible]विलम्बियों को भी अपने [illegible]पालन की पूरी स्वतंत्रता उसने दे रखी थी । उस समय बौद्ध, कापालिक, भैरवी, बौद्ध-सिद्ध, [illegible]ैव, वैष्णव, [illegible] आदि अनेक सम्प्रदाय [illegible] थे । जन [illegible] में मतभेद था किन्तु विरोध प्रदर्शन वाद-विवादों से ही होता था । यही धार्मिक [illegible] बाणभट्ट की [illegible] का मुख्य स्वर है जो अत्यन्त सफलता से उपन्यास में चित्रित

हुआ है । लेखक ने तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के आभास के लिए राजमहल, अन्तःपुर, राज-दरबार, राज-मार्ग, हाट-बाजार, बौद्धविहार, उद्यान-मन्दिर, मदन-उत्सव, तंत्र-मंत्र, संगीत-नृत्य आदि का वर्णन काव्यात्मक शैली में किया है । विभिन्न वर्गों की वेश-भूषा, रीति-नीति, जीवन-पद्धति के वर्णन में भी उपन्यासकार को अभूतपूर्व सफलता मिली है ।

निश्चय ही द्विवेदी जी यह कृति ऐतिहासिक उपन्यास रचना के क्षेत्र में सफल और श्रेष्ठ उपलब्धियों में से एक है ।

द्विवेदी जी का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास "चारु-चन्द्र-लेख"(प्रकाशन काल १९६३) प्रस्तुत प्रबन्ध की कालावधि से बाहर है ।

<u>रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासः</u>

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के तृतीय उत्थान काल के प्रमुख लेखकों में डा० रांगेय राघव का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है । वैचारिक दृष्टि से रांगेय राघव, राहुल तथा यशपाल की ही कोटि में आते हैं, किन्तु उनमें भी यशपाल की ही भाँति मार्क्सवाद को इतिहास पर आरोपित करने का प्रयत्न लक्षित नहीं होता । मार्क्सवादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण उनके उपन्यासों में कला के साथ इतना घुलामिला होता है कि अनायास उसे खोज निकालना सहज नहीं है । रांगेय राघव ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में युग को देखा है और युग के माध्यम से देखा है व्यक्ति को । रांगेय राघव द्वारा रचित ऐतिहासिक उपन्यासों को हम मुख्यतया दो कोटियों में विभाजित कर सकते हैं । प्रथम कोटि में वे ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनमें उपन्यास तत्व की प्रधानता है और पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है । इस कोटि के उपन्यासों में "मुर्दों का टीला"(१९४८), "चीवर"(१९५१), "अँधेरे के जुगनू"(१९५३), "अँधेरे की भूख"(१९५५), "राह न रुकी"(१९५८),

"धरती और आकाश"(१९५८), "धूनी का धुंआ"(१९५८), तथा "जब आवेगी काल घटा" (१९५८) है । दूसरी कोटि में वे ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं जो वस्तुतः जीवन चरित जैसे हैं और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से औपन्यासिक शैली में लिखे गये हैं । इस कोटि के उपन्यास हैं - "यशोधरा जीत गयी"(१९५४), "लखिमा की आँखें"(१९५४), "लोई का ताना"(१९५४), "रत्ना की बात"(१९५४), "राणा की पत्नी" तथा "मेरी भव बाधा हरो"(१९६०) । कला की दृष्टि से ये बहुत सामान्य कोटि की रचनाएं हैं ।

"मुर्दों का टीला" रांगेय राघव द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक प्रमुख है और हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है । अपने इस विशालकाय उपन्यास में रांगेय राघव ने मोहन-जो-दड़ो के भग्नावशेषों से प्रेरणा ग्रहण कर तथा अपनी कल्पना का योग करके एक सुसम्बद्ध औपन्यासिक कथा के माध्यम से मोहन-जो-दड़ो के समय (लगभग ३५०० वर्ष ई०पू०) के अज्ञात सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन, सभ्यता, शासन-प्रणाली, रीति-नीति आदि का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है तथा इतिहास को सजीव रूप देने का प्रयास किया है । लेखक की मान्यता है कि मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता द्रविड़-सभ्यता थी और ये द्रविड़, आर्यों की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत, सभ्य एवं वैभवशाली थे । इसी द्रविड़ दृष्टिकोण से रांगेय राघव ने इस युग को चित्रित करने का प्रयत्न किया है ।

"मुर्दों का टीला" प्रागैतिहासिक सभ्यता को आधार बनाकर लिखा हुआ हिन्दी का प्रथम उपन्यास है और लेखक का सुदूर अतीत में पैठकर अपनी पुष्ट कल्पना से उस युग के पुनर्निर्माण का यह अभिनव प्रयास सराहनीय है ।

"चीवर" रांगेय राघव का दूसरा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें स्थाणीश्वर सम्राट हर्षवर्धन तथा उसकी भगिनी राज्यश्री की प्रमुख जीवन-घटनाओं को प्रस्तुत कर तत्कालीन राजनीति, कूटनीति, धर्म, दर्शन, कला-साहित्य

आदि पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है । यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक है और इसके प्रमुख पात्र जैसे मालवराज देवगुप्त, गौड़ाधिपति, शशांक नरेन्द्र गुप्त, मौखरि नरेश ग्रह वर्मा, राज्यश्री, राज्यवर्धन, हर्षवर्धन, बौद्ध आचार्य शीलभद्र, दिवाकर मित्र, महाकवि बाणभट्ट, युवान-च्वांग तथा घटनाएं जैसे मालवराज देवगुप्त का छल से मौखरि नरेश ग्रहवर्मा का वध करना तथा राज्यश्री को बन्दी बनाना, राज्यवर्धन का देवगुप्त पर आक्रमण कर उसका वध करना, छल से शशांक द्वारा राज्यवर्धन का वध, राज्य-श्री का बंदीगृह से पलायन कर विन्ध्य के जंगलों में चिता लगाकर जल मरने का प्रयत्न और हर्ष का अचानक वहां पहुंचकर उसे वापस ले आना, हर्ष का शशांक पर आक्रमण करना और शशांक का भाग जाना, राज्यश्री और हर्ष का बौद्ध धर्म स्वीकार करना ऐतिहासिक हैं और अपने इतिहास-सम्मत रूप में उपन्यस्त हुई हैं । ऐतिहासिक यथार्थ, चरित्र-चित्रण तथा देश काल-चित्रण की दृष्टियों से रांगेय राघव की यह कृति सफल उपन्यास कही जा सकती है ।

"अंधेरे के जुगनू" का कथानक पूर्णतः कल्पित, किन्तु पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है । इसका कथाकाल, लेखक के अनुसार, महाभारत से ७,८ सौ वर्ष बाद तथा बुद्ध से ४-५ सौ वर्ष पहले का है जिसे इतिहास में प्रायः"अंधकार युग" कहा भी गया है । इस उपन्यास में लेखक ने यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि दासप्रथा की रक्षा के लिये कुलीन वर्गों ने एकजुट होकर किस प्रकार शासन स्थापित किया । "अंधेरे की भूख" मूलतः भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र आदि से संबंधित अलौकिक तथा चमत्कारिक घटनाओं का अंकन है जिसे लेखक ने कुषाण कालीन वातावरण के संदर्भ में प्रस्तुत किया है । अतीत चित्रण की दृष्टि से इस उपन्यास का कोई महत्व नहीं है । "राह न रुकी" का कथानक जैन ग्रन्थ"आवश्यक चूर्णि" की एक ऐतिहासिक कथा पर आधारित है जिसे लेखक ने विभिन्न स्थलों पर अपनी कल्पना से आवश्यक मोड़ देकर उपन्यस्त किया है । कथा काल है बुद्ध-महावीर युग । ऐतिहासिक पात्रों में अन्यतम दधिवाहन, उनकी पुत्री वसुमती,

पत्नी धारिणी, स कौशाम्बी नरेश शतानिक, मगध सम्राट बिम्बसार तथा भगवान महावीर प्रमुख है । कथा संगठन, चरित्र-निर्माण तथा देश-काल चित्रण की दृष्टि से यह एक असफल रचना कही जा सकती है ।"पक्षी और आकाश" में बौद्ध कालीन वातावरण की पृष्ठभूमि में एक काल्पनिक कथा कही गयी है जिसमें लेखक ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से तत्कालीन समाज की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है । यद्यपि इसमें वत्स प्रद्योत, बिम्बसार, गौतमबुद्ध तथा भगवान महावीर जैसे ऐतिहासिक व्यक्तियों को भी प्रसंगतः पात्र रूप में ले लियागया है किन्तु इतिहास की भावभूमि या अतीत - चित्रण का प्रयत्न लक्षित नहीं होता। अतएव यह एक अति सामान्य कोटि की ही रचना बनकर रह गयी है । "धूनी का धुंआ" नाथ - संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ (१०वीं०श० ईसवी) से सम्बन्धित उपन्यास है । गोरखनाथ की कथा के संदर्भ में ही लेखक ने तत्कालीन भारत में प्रचलित, विविध साधना-पद्धतियों, धार्मिक [illegible] आदि का चित्रण किया है । "जब आवेगी काल घटा", "धूनी का धुंआ" की परम्परा का उपन्यास है, जिसमें नाथ-परम्परा के [illegible]नाथ (१३वीं० श० ईसवी) और उनके योगियों तथा अलाउद्दीन खिलजी के बीच हुए संघर्ष का चित्रण है । इसी संदर्भ में चित्तौड़ के और हम्मीर तथा खिलजी के युद्ध की भी कथा कही गयी है । ये दोनों उपन्यास- "धूनी का धुंआ" तथा "जब आवेगी काल घटा" - कथात्मकता, कथा -संगठन तथा अतीत चित्रण की दृष्टियों से असफल रचनाएं हैं और अत्यन्त ही सामान्य कोटि की है ।

"यशोधरा जीत गयी" महात्मा बुद्ध से, "लखिमा की आंखें" मैथिल कोकिल विद्यापति से, "लोई का ताना" संत कबीर से, "रत्ना की बात" महात्मा तुलसीदास से, "राणा की पत्नी" भक्त कवियत्री मीरा बाई से, तथा "मेरी भव बाधा हरो" कविवर बिहारी से सम्बद्ध रचनाएं है । ऐतिहासिक उपन्यास-कला की दृष्टि से ये बहुत सामान्य कोटि की है और ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इनका कोई विशेष महत्व नहीं ।

सत्यकेतु विद्यालंकार का ऐतिहासिक उपन्यास "आचार्य [illegible] चाणक्य"

शिल्प विधि तथा अतीत चित्रण की दृष्टि से एवं इस दृष्टि से भी कि "आचार्य [illegible] चाणक्य"(१९५४) सत्यकेतु विद्यालंकार जैसे प्रतिष्ठित इतिहासवेत्ता द्वारा रचित उपन्यास है, ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है । जैसा कि उपन्यास के नाम से ही स्पष्ट है, यह उपन्यास मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक तथा तत्कालीन राजनीति के सूत्रधार आचार्य चाणक्य से सम्बन्धित है । चाणक्य तक्षशिला के निवासी थे और वहां के विश्वविख्यात आचार्यों में उनकी गणना होती थी । वहां वे अर्थशास्त्र तथा राजनीति का अध्यापन करते थे । मौरिय-गण का कुमार चन्द्रगुप्त उनके पास अध्ययन के लिए गया था और चाणक्य इस कुमार की योग्यता से प्रभावित हुए थे । इसी समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था और परस्पर लड़ने वाले उत्तरी-पश्चिमी भारत के जनपदों- गंधार, केकय, मद्र, कठ, मालव आदि— को जीत सकने में समर्थ हुआ था । किन्तु वहां अधिक समय तक सिकन्दर का शासन स्थिर नहीं रह सका और उसके विरुद्ध वहां विद्रोह हुआ जिसका नेतृत्व चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने किया था । और अन्ततः चाणक्य की यह कल्पना कि "हिमालय से समुद्र पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण जो यह आर्य भूमि है वह एक चक्रवर्ती सा[illegible] का क्षेत्र है और उस सबको एक शासन की अधीनता में रहना चाहिए" सत्य सिद्ध हुई ।

लेखक ने चाणक्य [illegible] मान्यता प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों, स्वयं निर्धारित तथ्यों, तथा मौर्य काल के इतिहास के आधार पर अपनी इतिहास मूलक [illegible] से प्रस्तुत [illegible] की संरचना की है और [illegible] के उदात्त और [illegible] व्यक्तित्व की सजीवता प्रदानकर उसे अर्थनीति-दण्डनीति के [illegible] पंडित, कौशल सम्पन्न तथा सफल कूटनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है । उपन्यासकार की मान्यता है कि [illegible] ने नंद वंश का नाश इसलिए नहीं किया कि वह नंद द्वारा अपमानित हुआ था वरन् [illegible]

किया कि वह अखण्ड आर्यभूमि को एक शासन सूत्र के नीचे ले आकर महाशक्तिशाली राज्य बनाना चाहता था और नंद उसके इस उद्देश्य में बाधक था । लेखक ने कथा का संगठन "मुद्राराक्षस", "कथा सरित्सागर", "अर्थशास्त्र" आदि ग्रन्थों के आधार पर किया है, किन्तु अनेक स्थलों पर उसने अपनी मौलिक प्रतिभा का भी परिचय दिया है और कथा में आवश्यक मोड़ देकर उसमें रोचकता का समावेश किया है ।

प्रस्तुत उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक है और इसकी अनेक घटनाएं, जैसे, सिकन्दर का भारत पर आक्रमण, और गांधार नरेश आम्भि द्वारा उसकी सहायता, सिकन्दर और पोरस के बीच युद्ध और पोरस की हार, मगध सम्राट महानन्द द्वारा चाणक्य का अपमान, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भेंट और नंद वंश के विनाश के लिए सम्मिलित प्रयत्न, तथा पश्चिमी सीमांत प्रान्तों में सैन्यशक्ति-संग्रहण, चाणक्य द्वारा फिलिप्स की हत्या, चाणक्य के निर्देशन में चन्द्रगुप्त का मगध पर आक्रमण कर नंद वंश का नाश करना तथा सम्राट बनना, चन्द्रगुप्त द्वारा सेल्यूकस की पराजय और हेलेन से उसका विवाह आदि तथा पात्र जैसे, सिकन्दर, आम्भि, पोरस, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, वररुचि, राक्षस, शकटार, महानन्द, सेल्यूकस आदि ऐतिहासिक हैं । तत्कालीन वातावरण के चित्रण के लिये लेखक ने आचार्य चाणक्य(कौटिल्य) रचित, "अर्थशास्त्र" का आधार ग्रहण किया है और मौर्यकालीन भारत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का सजीव चित्र उपस्थित किया है ।

परिमाण, कथा-विकास तथा देश-काल चित्रण की दृष्टि से इस ऐतिहासिक उपन्यास की गणना भी सफल ऐतिहासिक उपन्यासों में की जा सकती है ।

<u>प्रकाश नारायण श्रीवास्तव का ऐतिहासिक उपन्यास "बेकसी का मज़ार":</u>

श्री प्रकाश नारायण श्रीवास्तव की गणना मुख्यतः सामाजिक उपन्यास-कारों में की जाती है, किन्तु "बेकसी का मज़ार"(१९५६) नामक ऐतिहासिक

उपन्यास लिखकर उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासकारों में भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है । "बेकसी का मज़ार" सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित एक सशक्त और सफल उपन्यास है । सन् १८५७ की क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि वह मात्र सिपाही-विद्रोह था और स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए किये गये राष्ट्रीय आन्दोलन से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं था । श्रीवास्तव जी ने अत्यन्त परिश्रम से तत्सम्बन्धी सामग्री एकत्र कर तथा उन्हें एक कथा-सूत्र में पिरोकर अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए किये गये प्रथम भारतीय विद्रोह को एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है और सिपाही-विद्रोह जैसी मान्यता को अमान्य ठहराया है ।

उपन्यास की मुख्य कथा मुग़ल वंश के अन्तिम वृद्ध सम्राट बहादुरशाह, उनकी बेगम ज़ीनत महल, तथा दिल्ली क्रान्ति के सूत्रधार शाह हसन अस्करी के असफल क्रान्ति के उन ऐतिहासिक प्रयत्नों से सम्बन्धित है जिनके कारण १८५७ का आन्दोलन [illegible] स्वरूप ग्रहण कर सका था और दिल्ली के साथ ही साथ लखनऊ, बिठूर, जगदीशपुर(बिहार), आगरा, मेरठ, झाँसी, कानपुर, कलकत्ता आदि स्थानों तथा छावनियों में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो गयी थी । मुख्य कथा की पुष्टि के लिये लेखक ने अनेक [illegible] प्रसंगों की भी उद्भावना की है और अन्यान्य घटनाओं का सन्निवेश कर कथा को गतिशील और रोचक बनाया है । शाह साहब के आ[illegible] के [illegible] के [illegible]रपार्श्व में ही [illegible] की बेगमों और मौलवी अहमदशाह, बिठूर के पेशवा नाना साहब और तात्या टोपे, ज[illegible] के कुंवर सिंह आदि के असफल क्रान्ति की योजनाओं तथा तत्सम्बंधी [illegible] व नाना का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के ऐतिहासिक पात्रों में बहादुरशाह, ज़ीनत-महल, शाह हसन अस्करी, नाना साहब अजीमुल्ला, तात्या टोपे, हज़रत महल, मौलवी अहमद शाह, कुंवर सिंह, वाजिद अली शाह, हडसन, स्मिथ, हॉमेट, हारेस आदि प्रमुख हैं और अपने इतिहास-सम्मत रूप में ही अंकित हुए हैं ।

उपन्यास को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के अतिरिक्त अनेक काल्पनिक प्रसंगों की भी उद्भावना की है । गुलशन तथा गुलेनार की जासूसी तथा उनसे सम्बन्धित प्रसंग, गुलशन-मातावदल सिंह प्रेम-प्रसंग, गुलशन का यौन परिवर्तन और मैना के प्रति उसका आकर्षण, अजीमुल्ला-गुलनार प्रेम-प्रसंग तथा फ्रेंच-दम्पति के रूप में उनका जहाज के अधिकारियों को चकमा देकर परस्पर युद्ध कराने का कौशल आदि घटनाएं पूर्णतः कल्पित हैं और पूरे उपन्यास में उत्सुकता का वातावरण बनाये तथा पाठकों को आकर्षित किये रखती हैं । शाही दरबार, सैनिक छावनियों, अंग्रेजों की मनोवृत्ति एवं उनके अत्याचार, राजनीति, युद्ध-प्रणाली आदि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कर उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है ।

ऐतिहासिक उपन्यास रचना के क्षेत्र में यह कृति भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।

अमृतलाल नागर कृत ऐतिहासिक उपन्यास "शतरंज के मोहरे":

अमृतलाल नागर का एक मात्र ऐतिहासिक उपन्यास "शतरंज के मोहरे" (१९५९) ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की एक ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसमें इतिहास अपने यथार्थ रूप में उपन्यस्त होकर सजीव हो उठा है । कथा की दृष्टि से यह उपन्यास नागर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है, जिसमें कथा का संगठन तथा शिल्पविधि का निर्वाह अत्यन्त सफल रूप में हुआ है । इस उपन्यास में उपन्यासकार ने लखनऊ के एक ऐतिहासिक प्रसंग को विवेचना का विषय बनाया है । १८५७ के गदर के लगभग तीन दशाब्दी पूर्व, जबकि लखनऊ की नवाबी डगमगा रही थी और लखनऊ के नवाब के अन्तर्गत अन्य छोटे-छोटे नवाब भी, जिनकी स्थिति बड़े-बड़े जमींदारों की सी थी अपने को संकटग्रस्त

पाते जा रहे थे, अवध की जनता का जीवन बिल्कुल अरक्षित हो गया था और चोरी, बटमारी, तथा डाकेजनी सामान्य सी बातें हो गयी थीं । उधर शासन-व्यवस्था के ढीलेपन के कारण नवाब की आर्थिक स्थिति कमजोर होती जा रही थी, उधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी अपनी कूटनीति और धोखाधड़ी का जाल फैलाकर लखनऊ के नवाब को अपने शिकंजे में कसने का प्रयत्न कर रहे थे । अपने स्वार्थसिद्धि के लिये कुछ देशी रजवाड़े भी अंग्रेजों के इस काम में सहायता दे रहे थे । विलासिता, द्वेष, कपट, [illegible] आदि के कारण नवाबी महल षड्यंत्रों एवं जासूसियों का प्रदर्शनगृह बना हुआ था । यह वह समय था जबकि चन्द चाँदी के टुकड़ों के लिये बहुमूल्य खबरें बेची जाती थीं और खरीदने वाले होते थे अंग्रेज, जिनको पाकर वे देशी नवाबों और राजाओं को पदच्युत करने का कानूनी स्वांग भरते थे ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक लखनऊ की पतनोन्मुख नवाबी के दो नवाबों—ग़ाज़ीउद्दीन हैदर तथा उसके विलासी शाहजादे नसीरुद्दीन हैदर—से सम्बन्धित है । कथाकाल है सन १८१८ से १८३५ तक । अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का आधार लेकर लेखक ने अपनी यथार्थ और इतिहासमूलक कल्पना द्वारा कथावस्तु [illegible] की है और नवाबों की शान-शौकत, नाच-गानों और वेश्याओं के प्रति उनकी आसक्ति, विलासिता, पारस्परिक द्वेष और कलह, षड्यंत्र, जासूसी आदि का चित्रण कर ढहते हुए अवध के नवाबी ऐश्वर्य का अत्यन्त यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है जो इतिहास-सम्मत होने के साथ - साथ जीवन्त भी है । मुस्लिम परिवार के अंदर पर्दे के भीतर चलने वाली ऐयाशी, तथा प्रेम षड्यंत्रों का अत्यन्त ही [illegible] चित्र इस उपन्यास में अंकित हुआ है । [illegible] के प्रमुख पात्रों में नवाब [illegible] हैदर, [illegible] नसीरु[illegible], बादशाह बेगम, आगामीर, दुलारी, राजा दर्शन सिंह, कुदसिया बेगम आदि ऐतिहासिक हैं और अपने [illegible] सम्मत रूप में अंकित हुए हैं । कथा के संदर्भ में ही लेखक ने तत्कालीन ईस्ट इण्डिया [illegible] की नीति और अवध की नवाबी को हड़पने के लिये अंग्रेजों

देशकाल के चित्रण में तो नागर जी को अभूतपूर्व सफलता मिली है और यह उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता है । देश-काल का चित्रण इतना यथार्थ और प्रसंगानुकूल हुआ है कि डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की लखनवी संस्कृति जीवन्त हो उठी है । निश्चित रूप से इस जीवन्त चित्रण का श्रेय उपन्यास की भाषा को है, जो लखनवी संस्कृति की ही उपज है । कथा-शिल्प, चरित्रांकन, शैली, भाषा आदि सभी दृष्टियों से यह ऐतिहासिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है ।

अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकार और उनकी कृतियाँ:

तृतीय उत्थान काल में उपर्युक्त ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अतिरिक्त अन्य उपन्यासकारों ने भी अनेक-अनेक उपन्यासों का प्रणयनकर ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का संवर्द्धन किया है तथा साहित्य के भंडार को समृद्ध बनाया है । यद्यपि शिल्प की दृष्टि से इन उपन्यासकारों की कृतियों में कोई विशेष नवीनता नहीं है फिर भी विकास-क्रम की दृष्टि से इनका महत्व निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है । इस काल में ऋषभचरण जैन ने १८५७ की क्रान्ति से [illegible] "गदर"(१९३०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा । कला की दृष्टि से यद्यपि यह एक सामान्य कोटि की रचना है, और ऐतिहासिक असंगतियों से भी संयुक्त है, फिर भी विकास क्रम की दृष्टि से अपना एक अलग महत्व रखता है । [illegible]नन्द गुप्त का "अहेम"(१९३०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास, जिसमें कन्नौज के राजा राज्यपाल (१०१८ ई०) पर महमूद के आक्रमण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक प्रेमकथा वर्णित है, "गदर" की अपेक्षा अधिक [illegible] है, [illegible] ऐतिहासिक असंगतियाँ इसमें भी है । चन्द्रगुप्त - चाणक्य कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखा हुआ भगवतीचरण वर्मा का "चित्रलेखा"(१९३४) एक अत्यन्त सफल रचना होते हुए भी मूलतः ऐतिहासिक उपन्यास न होकर "समस्या प्रधान" उपन्यास है जिसमें एक शाश्वत [illegible] के माध्यम से पाप-पुण्य की समस्या को उठाया गया है ।

यह ठीक है कि तत्कालीन वातावरण के चित्रण में वर्मा जी सफल रहे हैं किंतु अतीत चित्रण की जो प्रवृत्ति ऐतिहासिक उपन्यासों में पाई जाती है, उसका इसमें अभाव है । सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद ने शुंगकालीन इतिहास(पुष्यमित्र शुंग तथा अग्निमित्र से सम्बन्धित) को आधार बनाकर "इरावती"(प्रकाशन काल १९४३ ई०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास का प्रणयन आरम्भ किया था किन्तु उनके असमय निधन से यह उपन्यास अधूरा ही रह गया और उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ । इसकी वर्णन प्रणाली अपनी रमणीयता में राखाल बाबू के बंगला उपन्यास "करुणा" और "शशांक" के समकक्ष है । निराला कृत "प्रभावती"(१९३९) कान्य कुब्जेश्वर जयचन्द्रकालीन ऐतिहासिक वातावरण में लिखी गयी एक अत्यन्त सामान्य कोटि की रोमांस-कथा है । रामरतन भटनागर ने बुद्ध कालीन गणराज्य की नगरवधू अम्बपाली के जीवन की कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर "अम्बपाली" (१९३९) नामक उपन्यास का प्रणयन किया जिसने कालान्तर में चतुरसेन शास्त्री के "वैशाली की नगरवधू" जैसे उपन्यास पर प्रभाव डाला । इसका एक पात्र नरसिंह, "वैशाली की नगरवधू" में सोमप्रभ नाम से अवतरित हुआ है । कथा-संगठन तथा शैली की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का उनके यथार्थ रूप में चित्रण है । भटनागर जी का दूसरा उपन्यास "जय वासुदेव"(१९४७) शुंगकालीन ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें पुष्यमित्र शुंग तथा उसके पुत्र अग्निमित्र का मौर्यों के परवर्ती सम्राट बृहस्पति मित्र की षड्यंत्र द्वारा हत्या कर राज्य प्राप्त करने तथा शुंगवंश का राज्य स्थापित करने की कथा है । यह उपन्यास प्रसाद जी की "इरावती" से बहुत कुछ प्रभावित है और उसको पूर्ण रूप देने का एक प्रयत्न है । अतीत चित्रण, कथा की सरसता, रोचकता तथा शिल्प विधि की दृष्टि से "अम्बपाली" की अपेक्षा यह रचना अधिक सफल है ।

गोविन्दवल्लभ पन्त के तीन ऐतिहासिक उपन्यास—"अमिताभ"(१९५५), नूरजहाँ(१९५६) तथा [illegible] इस युगीन उत्थान काल में ही प्रकाशित हुए ।

"अभिताभ" भगवान बुद्ध से सम्बन्धित है जिसमें उनके जीवन की प्रारम्भिक घटनाएं—जन्म से लेकर बुद्धत्व प्राप्ति तक—यथार्थवादी दृष्टिकोण से औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत की गयी है । बुद्ध देव के ही चरित्र पर अधिक बल देने के कारण तत्कालीन वातावरण तथा देशकाल का चित्रण अधिक स्पष्ट रूप से नहीं हो पाया है । "एकसूत्र" सम्राट अकबर से सम्बन्धित एककल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है । "नूरजहां" की कथावस्तु नूरजहां से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं—नूरजहां और जहांगीर के प्रेम-व्यापार, नूरजहां का शेर अफगन से विवाह, शेर अफगन का वध, जहांगीर का नूरजहां से विवाह कर मल्का बनाना आदि —पर आधारित है । शिल्प-सौन्दर्य तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सन्त जी के तीनों ऐतिहासिक उपन्यास सफल कहे जा सकते हैं । वेणी प्रसाद वाजपेयी "मंजुल" ने भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों को आधार बनाकर सात ऐतिहासिक उपन्यासों—"चन्द्रमित्रा"(१९४५), "दिव्य गंगा"(१९४६), "प्रभा बाई"(१९४७) "राजेश्वरी"(१९४७),"कुमंगला"(१९४७),"कल्पावती" (१९४९) तथा "पाटलिपुत्र"—का प्रणयन किया । "चन्द्रमित्रा" मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ से सम्बन्धित है, "दिव्य-गंगा" एक वैदिक कालीन गाथा पर आधारित है तथा "कुमंगला" कुषाण सम्राट कनिष्क के पुत्र वासिष्क से सम्बन्धित है । अन्य दो उपन्यास—"कल्पावती" महमूद गजनी के तथा "प्रभाबाई" मुहम्मद बिन कासिम के भारत आक्रमण के परिपार्श्व में कल्पना प्रधान उपन्यास है । शिल्प की दृष्टि से "मंजुल" की सभी रचनाएं तृतीय श्रेणी की ही रचनाएं हैं । बॉम भी हिन्द के तीन ऐतिहासिक उपन्यास—"स्वर्ण दुर्ग"(१९४९) "कुतरबाग"(?) तथा "अर्हत का शाप"(१९५५) — इस काल की विशिष्ट रचनाएं हैं । "स्वर्ण दुर्ग"१८वीं शताब्दी के जलदस्यु तुलाजी आंग्रे से सम्बन्धित है, "कुतरबाग" का कथानक १८५७ के विद्रोह की घटनाओं पर आधारित है तथा "अर्हत का शाप" हर्षवर्द्धन कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भगवानबुद्ध के एकांत अवहेलना के पीछे होने वाली आश्चर्य जनक रहस्यपूर्ण विलास लीला और रोचक घटनाओं का उपन्यासीकरण है ।

धर्मेन्द्र नाथ का "रज़िया"(१९४७) तथा "तैमूर"(१९५१), जैसा कि नाम से ही प्रकट है, क्रमशः गुलामवंश की सुल्ताना रज़िया बेगम के प्रणय-व्यापार तथा तैमूर के भारत आक्रमण पर आधारित है। चरित्रांकन तथा शिल्प कौशल की दृष्टि से "तैमूर" अधिक सफल रचना है। शान्ति नारायण का "महारानी भांसी" (१९४९) उपन्यास की अपेक्षा जीवन चरित्र के अधिक निकट है। राज बहादुर सिंह कृत "जब आकाश भी रो पड़ा"(१९५०) सिंध के राजा दाहिर राज पर मुहम्मद बिनकासिम के आक्रमण से सम्बन्धित एक सामान्य कोटि का ऐतिहासिक उपन्यास है। हरिभाऊ उपाध्याय कृत "प्रियदर्शी अशोक" (१९५१) बौद्ध सम्राट अशोक के कलिंग आक्रमण तथा उसके हृदय परिवर्तन की घटना पर आधारित एक कल्पना प्रधान उपन्यास है। वास्तव में यह एक मराठी पुस्तक का अनुवाद है जो पहले १९११ में प्रकाशित हुआ था। गुरुदत्त ने प्राचीन भारतीय [illegible] आधार बनाकर पांच ऐतिहासिक [illegible]"बहती रेता" (१९५१), धुकते पत्थर(१९५६), "पत्रलता"(१९५७), "[illegible] शुंग"(१९५९), तथा "दिग्विजय"(१९५९) लिखे हैं। "बहती रेता" एक ऐतिहासिक कल्पना है जिसके माध्यम से लेखक ने महात्मा बुद्ध के सौ वर्ष बाद वैशाली गणराज्य तथा अयोध्या की राजनीतिक, एवं सामाजिक अवस्था की भलक देने का प्रयत्न किया है। कथा-शिल्प तथा [illegible] की दृष्टि से यह एक अपरिपक्व कृति तो है ही, ऐतिहासिक असंगतियां तथा भौगोलिक दोष भी प्रचुरता से इस कृति में मिल जाते हैं। बुद्ध के सौ वर्ष बाद वैशाली में गणराज्य की [illegible]चना अपने आप में ही एक ऐतिहासिक भ्रान्ति है, क्योंकि अजात शत्रु द्वारा वैशाली गणराज्य के पतन के बाद पुनः वहां गणराज्य स्थापित ही नहीं हो सका। "धुकते पत्थर" अशोक कालीन वातावरण पर आधारित एक ऐतिहासिक कल्पना है। "पत्रलता" सम्राट हर्ष से [illegible] तथा "पुष्य मित्र शुंग" शुंग साम्राज्य के संस्थापक पुष्यमित्र शुंग से [illegible]न्धित है। "दिग्विजय" [illegible] के महान् धार्मिक नेता तथा हिन्दुत्व के उद्धारक स्वामी शंकराचार्य की धार्मिक विजय-कथा है। कला की दृष्टि से [illegible] के सभी [illegible]तिहासिक [illegible] [illegible] कोटि के ही हैं और इनमें [illegible] की [illegible], ऐतिहासिक [illegible]यां, भौगोलिक दोष तथा [illegible] ऐतिहासिक वातावरण का अभाव लक्षित किया जा सकता है। शिल्प

की नवीनता तथा शैली की सजीवता की दृष्टि से शिव प्रसाद मिश्र "रुद्र" कृत "बहती गंगा" इस काल की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है जिसमें -काशी के दो सौ वर्षों का इतिहास- १७५० से लेकर १९५० तक- सजीव हो उठा है । यद्यपि इस कृति को लेखक ने उपन्यास की संज्ञा दी है लेकिन वास्तव में यह सत्रह ऐतिहासिक कहानियों का संकलन है जो आपस में बंधी भी हैं और स्वतंत्र भी हैं । इस उपन्यास में काशी का जीवन, जीवन्त बन मुखर हो उठा है । इसके लगभग सभी पात्र ऐतिहासिक हैं, लेकिन इतिहास-प्रसिद्ध नहीं है । कंचनलता सब्बरवाल कृत "पुनरुद्धार"(१९५१) दूसरी शताब्दी ईसवी के भारशिवों के इतिहास(वीर सेन का काल) पर आधारित एक सफल कृति है । रणवीर जी वीर कृत "[illegible] मंत्री चाणक्य(?) मौर्य साम्राज्य के प्रतिष्ठापक तथा "अर्थशास्त्र" के प्रणेता आचार्य चाणक्य से सम्बन्धित उपन्यास है जिसमें ऐतिहासिक अ[illegible] और कल्पना दोनों की मात्रा कम नहीं है । इसका कथानक विशाखदत्त के "मुद्राराक्षस" पर आधारित है । चन्द्रशेखर शास्त्री का "श्रेणिक बिम्बसार"(१९५४) चतुरसेन शास्त्री की "वैशाली की नगर वधू" की ऐतिहासिक असंगतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप ऐतिहासिक सत्य-निरूपण का संकल्प लेकर लिखा जाने वाला एक प्रयास मात्र है जिसमें बुद्धकालीन शिशु नाग वंशीय सम्राट बिम्बसार के विजयों एवं विवाहों की कथा, नितान्त यथार्थ दृष्टि से वर्णित की गयी है । कथा-संगठन, रोचकता, चरित्र-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से यह एक असफल कृति है । यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" कृत "संन्यासी और सुन्दरी"(१९५४) बौद्ध साहित्य में वर्णित बौद्ध भिक्षु उपगुप्त तथा नर्तकी वासवदत्ता के प्रेम और [illegible] की [illegible] पर आधारित साधारणतः एक अच्छा [illegible] है ।

रघुवीर शरण मित्र ने "आचार्य चाणक्य","दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान" तथा "चित्तौड़ गढ़ की पद्मिनी" जैसे चरित्रों को लेकर क्रमशः "आग और पानी"(१९५७), "पहली हार"(१९५८), तथा "सोने की राख" (१९६०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । "पहली हार" का कथानक पृथ्वीराज रासो पर आधारित है और पृथ्वीराज चौहान तथा मुहम्मद गोरी के इस ऐतिहासिक युद्ध से [illegible] है जिसने भारत में मुसलमानों की जड़ जमा दी ।

मुख्य कथा के सन्दर्भ में ही लेखक ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक परिस्थितियों का अंकन किया है । रासो पर आधारित होने के कारण एक-दो स्थलों पर इसमें पौराणिकता आ गयी है । यह एक साधारणतः सफल रचना है । "सोने की राख" का कथानक "जायसी" के पद्मावत पर आधारित है । ओम प्रकाश शर्मा का "सांझ का सूरज"(१९५५) सन् १८५७ की क्रान्ति पर आधारित एक उत्कृष्ट रचना है जिसमें इतिहास और कल्पना का अत्यन्त संतुलित सम्मिश्रण है । कथा का अंचल है - दिल्ली और मेरठ । क्रान्ति की पृष्ठभूमि में ही उपन्यासकार ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा [illegible] जीवन की झांकी प्रस्तुत की है । परदेशी कृत "भगवान बुद्ध की आत्मकथा"(१९५६) तृतीय काल का एक महत्वपूर्ण [illegible]त्मक ऐतिहासिक उपन्यास है जो महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं - जन्म से लेकर बुद्धत्व प्राप्ति तक - को लेकर लिखा गया है । शैली की दृष्टि से यह "सिंह सेनापति" तथा "बाणभट्ट की आत्मकथा" की परम्परा का उपन्यास है किन्तु कथा की वास्तविकता प्रामाणित करने का वास्तविक छल इसमें नहीं है । कथा-संयोजन, शिल्प, शैली, चरित्रांकन तथा अतीत चित्रण की दृष्टियों से यद्यपि यह एक सफल उपन्यास है किन्तु यत्र-तत्र कथाकार की पौराणिक दृष्टि ने कथा के ऐतिहासिक स्वरूप एवं सौंदर्य में व्याघात भी उपस्थित किया है । साम्यवादी दृष्टि तथा वर्ग-संघर्ष की भावना का आग्रह भी कहीं-कहीं इस उपन्यास में उपलब्ध होता है जो आधुनिक काल की देन है ।

यादवचन्द्र जैन के तीन ऐतिहासिक उपन्यास-'मल्ल-मल्लिका' (१९५६), "उदरायण"(१९५७) तथा "आदि क्राइम"(१९५९)—इसी काल में प्रकाशित हुए । "मल्ल [illegible]" बुद्धकालीन मल्ल गणराज्य के वीर मल्ल बंधुल तथा उसकी पत्नी [illegible] से संबंधित है, "उदरायण" [illegible] महान (४७० ई०पू०) तथा राजा पौरव की राज[illegible] प्रसिद्ध [illegible] घटनाओं को लेकर तथा "आदि क्राइम" [illegible] में वर्णित मनु और श्रद्धा की कथा को लेकर लिखा गया है ।

"आदि सम्राट" का कथानक वास्तव में प्रसाद जी की "कामायनी" पर आधृत है जैन के तीनों ऐतिहासिक उपन्यास साधारणतः अच्छे उपन्यास कहे जा सकते हैं । उमाशंकर ने मराठा इतिहास पर आधृत दो ऐतिहासिक उपन्यास-"नाना फड़नवीस"(१९५६) तथा "पेशवा की कंचनी"(१९५८) लिखे । "नाना फड़नवीस" १८वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में मराठा राजनीति के सूत्रधार तथा कूटनीतिज्ञ नाना फड़नवीस तथा उनके कार्य-कलापों से सम्बन्धित है । "पेशवा की कंचनी" का कथानक मराठा साम्राज्य के अन्यतम वीर तथा योग्य सेना नायक बाजीराव पेशवा प्रथम तथा मस्तानी के प्रणय-व्यापारों पर आधारित है । दोनों उपन्यासों में उपन्यासकार ने मुख्य कथा के सन्दर्भ में मराठों की तत्कालीन राजनीति, युद्ध, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, तथा जीवन-पद्धति का भी चित्रण किया है । वाराणसी के इतिहास को आधार बनाकर गिरिजा शंकर पांडे ने दो ऐतिहासिक उपन्यासों - "चेतसिंह का सपना"(१९५६) तथा "अठारह वर्ष बाद"(१९५८) का सृजन किया । "चेतसिंह का सपना" का कथानक १८वीं शताब्दी के काशी नरेश चेतसिंह तथा उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है । इसी प्रसंग में उपन्यासकार ने तत्कालीन उत्तर भारत की राजनीति, काशीराज्य की आन्तरिक और बाह्य व्यवस्था, हेस्टिंग्स तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धूर्तता और उनकी नीति, जनजीवन आदि का चित्रण यथार्थवादी पद्धति पर किया है । कल्पना और किम्वदंतियों को भी उपन्यासकार ने ऐतिहासिक परिवेश प्रदान कर उपन्यास में समेटा है । "अठारह वर्ष बाद" में चेतसिंह के अठारह वर्ष पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध अवध के पदच्युत नवाब वजीर अली तथा काशी नरेश वंश के कुंवर जगतसिंह के सम्मिलित विद्रोह की कहानी है । पांडे जी के दोनों उपन्यास पर्याप्त सफल उपन्यास कहे जा सकते हैं । आनन्द प्रकाश जैन का "तीसरा नेत्र"(१९५७) ११वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के काशीराज राजा बनारसे के समय की एक प्रेम-सम्बन्धी कथा से सम्बन्धित है जिसे लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अंकित किया है । इसका दूसरा उपन्यास "कठपुतली के धागे"(१९५९)

लखनऊ के विलासी नवाब नसीरुद्दीन हैदर से सम्बन्धित एक श्रेष्ठ उपन्यास है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है ।

अनेक सामाजिक एवं रोमांटिक उपन्यासों के प्रणेता गोविन्दसिंह ने भी ऐतिहासिक कथा तंतु का आधार लेकर कुछ उपन्यास इस काल में लिखे । इनके प्रमुख उपन्यास हैं - "तथागत"(?), "जय मेवाड़"(१९५५), "अठारह सौ सत्तावन"(१९५७), "जौहर"(१९६०), "लाल कुंवर"(?) तथा "नादिरशाह" (?) । "तथागत" भगवान बुद्ध से सम्बन्धित है, "जय मेवाड़" में राणाप्रताप - अकबर संघर्ष तथा इसी सन्दर्भ में जयमल और पत्ता की वीरता की कहानी है, तथा "अठारह सौ सत्तावन" सन् १८५७ के विद्रोह की घटनाओं पर आधारित है । "जौहर" का कथानक बाबर के चित्तौड़ पर आक्रमण तथा राजपूतों के प्रतिरोध एवं राजपूत वीरांगनाओं के जल मरने की घटनाओं को लेकर लिखा गया है । "लाल कुंवर" मुगल सम्राट जहांदार शाह तथा उसकी प्रेमिका एवं तत्कालीन मुगल शासनकी सूत्रधारिणी "लाल कुंवर" से सम्बन्धित है । और "नादिरशाह" जैसा कि नाम से प्रकट है फारस के क्रूर बादशाह नादिरशाह को कथानायक बनाकर लिखा गया है । "जय मेवाड़" और "अठारह सौ सत्तावन" सामान्यतया सफल रचनाएं हैं । कमल शुक्ल का "श्रेणिक बिम्बसार" (?) बौद्धकालीन मगध सम्राट बिम्बसार को लेकर लिखा गया एक साधारण श्रेणी का ऐतिहासिक उपन्यास है । रमेशचन्द्र प्रेम ने १८५७ की क्रांति के अमर बलिदानी तथा शौर्य के प्रतीक जगदीशपुर (बिहार) निवासी बाबू कुंवर सिंह को कथानायक बनाकर "आजादी की राह में"(?) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है । यह उपन्यास वास्तव में औपन्यासिक शैली में कुंवर सिंह की जीवन-कथा है । कथा के संदर्भ में ही उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति, तथा क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डाला है । चरित्र चित्रण तथा कथा-शिल्प की दृष्टि से यह अच्छी रचना कही जा सकती है । प्रेम जी का दूसरा उपन्यास "मुर्दे का बेटा" (१९५८) [illegible] उपन्यास है । [illegible] लाल दीक्षित का [illegible]

(१९५८) १८५७ की क्रांति के प्रथम अमर शहीद मंगल पाण्डे को चरित नायक बनाकर लिखा गया उपन्यास है । अमर बहादुर सिंह "अमरेश" कृत तीन ऐतिहासिक उपन्यास - "राना बेनी माधव"(१९५८), "राजकलश" (१९६०) तथा "प्रवीण राय"(१९६०) - इस काल की विशिष्ट रचनाएं हैं । "राना बेनी माधव" सन १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानी तथा अवध के जन-नेता राना बेनी माधव तथा उनके अनन्य क्रान्ति के प्रयत्नों से [illegible] है जिसमें इतिहास, परम्परा और कल्पना मिल कर सजीव हो उठे हैं । कथा का चयन तथा संगठन लेखक ने मुख्यतः इतिहास और जनश्रुति के आधार पर किया है और अपनी कल्पना से इसमें ऐसा रंग उड़ेला है कि सम्पूर्ण कृति जीवन्त बन चमक उठी है । "राजकलश" डलमऊ (रायबरेली) के अन्तिम भारशिव राजा डालदेव द्वारा सैयद साबर की लड़की सलमा के अपहरण तथा जौनपुर के तत्कालीन सुल्तान इब्राहीम शर्की(सन् १४०२-३६ ई०) का उन पर आक्रमण से सम्बन्धित एक ओजपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है । इस उपन्यास में भी लेखक को अत्यधिक सफलता मिली है । "प्रवीण राय" सोलहवीं शताब्दी के ओरछा नरेश के भाई इन्द्रजीत सिंह की प्रेमिका तथा कवयित्री "प्रवीण राय" से सम्बन्धित रचना है । रमेश चौधरी "आरिगपुडि" ने सातवाहन कालीन ऐतिहासिक परिवेश में बौद्ध आचार्य नागार्जुन को कथानायक बनाकर "अन्य भिक्षु"(१९५८) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है । वस्तुतः यह एक ऐतिहासिक कल्पना है जिसमें तत्कालीन वातावरण तथा [illegible] सजीव हो उठी है । डा० यतीन्द्र कृत "आचार्य चाणक्य"(?) एक अत्यन्त सामान्य कोटि का उपन्यास है जिसमें भी [illegible] का अभाव है । सुदर्शन सिंह न [illegible] का "[illegible]का का चित्रकार"(१९५८) औरंगजेब कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में [illegible] के शासक उदयसिंह की वीरता से सम्बन्धित एक असफल प्रयास है । जगदीश कुमार "निर्मल" कृत ऐतिहासिक उपन्यास "साका" (१९५९) बाबर के [illegible] राज्य पर आ[illegible], राजपूतों द्वारा उसके प्रतिरोध तथा राजपूत [illegible] द्वारा जौहर की घटनाओं पर आधृत एक सफल उपन्यास है । देश-काल के चित्रण में भी लेखक को [illegible] मिली है । ओरछा नरेश राव जुझार सिंह के अनुज [illegible] के बलिदान की घटना को लेकर लिखा गया राजे-

श्याम बिगत का "दुरभिसंधि"(१९५८) एक सामान्य कोटि की औपन्यासिक कृति है । वाल्मीकि तिवारी कृत "बहादुर शाह"(१९५९) तथा "विकलांग" (१९६०) क्रमशः मुगल सम्राट बहादुर शाह (१८१२) की विलासिता तथा राजपूत वीर राणा सांगा की इतिहास प्रसिद्ध वीरता और शौर्य से सम्बन्धित सशक्त रचनाएं हैं। स्याह सुनामी का "हेमचन्द्र विक्रमादित्य" (१९६०) आदिलशाह सूर के मंत्री तथा सेनानायक हेमचन्द्र (हेमू बक्काल) जो पानीपत के युद्ध में अकबर को हराते-हराते रह गया, को कथानायक बनाकर लिखा गया एक साधारण उपन्यास है । सीताराम गोयल कृत "सप्तशील"(१९६०) इस काल की एक विशिष्ट कृति है जो बुद्धकालीन वैशाली गण-राज्य की राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक गतिविधियों के परिपार्श्व में मगध सम्राट अजातशत्रु द्वारा उसके विनाश की कहानी है । अनेक ऐतिहासिक तथा काल्पनिक प्रसंगों की अव-तारणा कर लेखक ने तत्कालीन गण जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डालकर अतीत-चित्रण का प्रयत्न किया है और सफल रहा है ।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास ने, अन्य हिन्दी उपन्यास-धारा की भांति, शिल्प-प्रयोग, वर्णन - शैली, चरित्र चित्रण-पद्धति आदि सभी दृष्टियों से आश्चर्य जनक उन्नति की है और किशोरीलाल गोस्वामी से प्रारम्भ कर अपने विकास के अनेक सोपानों को पार करता हुआ अब भी निरन्तर प्रगति की ओर गति शील है । तृतीय उत्थान काल तो एक प्रकार से ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का चरमोत्कर्षकाल कहा जा सकता है जिसमें ऐतिहासिक उपन्यासकार ने न केवल अतीत को यथार्थ रूप में निरूपित करने का प्रयत्न किया है, वरन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज के गति-विधियों के अंकन द्वारा अतीत जीवन की व्याख्या और विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है और मानवीय शाश्वत सत्यों को कलात्मक ढंग से हमारे सम्मुख उपस्थित किया है ।

अध्याय : छह

पहला- कालक्रम से हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण तथा इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन

(क) पहला- कालक्रम से हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का वर्गीकरण-
(क) प्रागैतिहासिक तथा वैदिक कालीन उपन्यास (ख) बुद्ध-महावीर कालीन उपन्यास (ग) मौर्यकालीन उपन्यास (घ) शुंग-कालीन उपन्यास (ङ०) कुषाण कालीन उपन्यास(च) गुप्तकालीन उपन्यास (छ) हर्ष कालीन उपन्यास (ज) मुस्लिम-आक्रमण तथा राजपूत कालीन उपन्यास (झ) पूर्व मुस्लिम कालीन उपन्यास (ञ) उत्तर मुस्लिम (मुगल) कालीन उपन्यास (ट) ब्रिटिश कालीन (१७५७-१८५७) उपन्यास (ठ) विदेशी इतिहास पर आधारित उपन्यास ।

(ख) इतिहास प्रयोग की दृष्टि से प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन-
(१) तारा व क्षत्रकुल .कमलिनी (१९०२) - किशोरीलाल गोस्वामी (२) लालचीन (१९१६) - ब्रजनन्दन सहाय (३) गढ़ कुण्डार(१९२९)-वृंदावन लाल वर्मा(४) विराटा की पद्मिनी (१९३६) - वृंदावनलाल वर्मा (५) झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (१९४६) - वृंदावन लाल वर्मा (६) मृगनयनी (१९५०)- वृंदावन लाल वर्मा (७) सिंह सेनापति (१९४२) - राहुल सांकृत्यायन(८) दिव्या(१९४५) - यशपाल (९) बाणभट्ट की आत्म कथा(१९४६) - हजारी प्रसाद द्विवेदी (१०) मुर्दों का टीला(१९४८) - रांगेय राघव (११) वैशाली की नगर-वधू (१९४९) - चतुरसेन शास्त्री(१२) शतरंज के मोहरे (१९५९)- अमृत लाल नागर ।

(क) घटना कालक्रम से हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास - साहित्य का वर्गीकरण

पिछले अध्याय (अध्याय ५) में हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के प्रारम्भ और उसके विकास क्रम की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है । उस अध्याय में हमने देखा कि हिन्दी का ऐतिहासिक उपन्यास अपने शिल्प और सौन्दर्य में किस प्रकार उन्नति करता हुआ वर्तमान स्थिति में पहुँचा है । पूरे ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के सर्वेक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के इतिवृत्तात्मक एवं घटनापरक पक्ष का ही उपयोग किया है और उन्हें केन-केन प्रकारेण उपन्यास के भीतर से लाकर एक कथा के सूत्र में पिरोने की चेष्टा की है । ऐतिहासिक उपन्यास के प्रधान तत्व ऐतिहासिक वातावरण, जो इतिहास का भी म[illegible] पक्ष है और जिसके कारण कोई भी उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा प्राप्त करता है, का इन उपन्यासों में अभाव है । इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष को उपन्यास में ले आने की चेष्टा का सर्वथा अभाव इन प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों में लक्षित किया जा सकता है । देश-काल-पात्र के प्रति अनैतिहासिक दृष्टिकोण, अयथार्थ कल्पना के आधिक्य तथा उपन्यास-शिल्प की अपरिपक्वता के कारण ये रचनाएं विकास-क्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुए भी शैल्पिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं । जिन ऐतिहासिक उपन्यासों में शिल्पगत कमज़ोरी है वह तो इतिहास सरीखा जान पड़ता है और जिनमें इतिहास-बोध का अभाव है, वे जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों से भिन्न नहीं जान पड़ते ।

हिन्दी के [illegible]रम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐति[illegible] दृष्टिकोण का अभाव तथा इतिहास [illegible] की अवमानना है, उसका कारण मुख्य रूप से इतिहास-ज्ञान की कमी और इतिहास सम्बन्धी शोध का अभाव है । अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व इस देश पर [illegible] का [illegible] था।

इन शासकों के दरबार में प्रायः पेशेवर इतिहास लेखक हुआ करते थे । इन इतिहास-लेखकों ने यद्यपि इतिहास-लेखन की उस परम्परा का सूत्रपात कर दिया था जो भारतीय परम्परा से भिन्न और किसी हद तक अधिक विकसित थी, किन्तु उनकी दृष्टि वैज्ञानिक और तटस्थ नहीं थी । शाही दरबारों से सम्बन्धित होने के कारण ये इतिहास-लेखक प्रायः उन्हीं घटनाओं और तथ्यों को अंकित करते थे जो बादशाहों की प्रशंसा तथा उनकी विजयों एवं सद्गुणों से संबंधित होते थे । कहीं कहीं तो झूठी प्रशंसा में तथ्यों को भी तोड़-मरोड़ दिया जाता था । पु० ना० ओक का यह कथन कि "शासनाधीन बादशाहों की प्रमुख रूप में चाटुकारिता के उद्देश्य से लिखे जाने के कारण मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासवृत्तों में प्रामाणिकता से झूठी बातें भरी पड़ी हैं। चूंकि उनका उद्देश्य सत्य-परिपेक्ष्यित होना और तथ्यों का ज्यों का त्यों लिख देना था ही नहीं, इसलिये उनमें बादशाहों के जन्म दिनों तथा तख्त पर बैठने जैसी सरल, किन्तु महत्वपूर्ण तिथियों के सम्बन्ध में भी गंभीर मतभेद हैं",[1] सही ही है । इसका एक ज्वलन्त उदाहरण यह है कि "जहांगीर नामा" में जहांगीर स्वयं ही अपने बेटे शाहजादा परवेज़ की माँ को पहचानने में भी भूल कर बैठा । जिस स्त्री के नाम का उल्लेख उसने किया है, उसके सम्बन्ध में अन्य समकालीन लेखकों ने विवाद प्रस्तुत किया है । मुसलमान इतिहास-लेखकों की स्वार्थपरता, एवं संकुचित मनोवृत्ति ने अपने बादशाहों की हार को भी जीत के आवरण में छिपा देने का प्रयत्न किया है । इसका स्पष्ट उदाहरण फिरोजशाह तुगलक से सम्बन्धित तथा शम्से-सीराज-अफीफ द्वारा लिखित स्मारक-ग्रंथ "तारीख़े-फिरोजशाही" से लिया जा सकता है जिसमें एक स्थल पर लिखा है कि "हमारे शत्रु पीठ दिखाकर विजयी हो गये ।" इससे स्पष्ट है कि मुसलमान इतिहास-लेखकों की दृष्टि वैसी तटस्थ, वैज्ञानिक एवं शोध-परक नहीं थी, जैसी एक इतिहासकार के लिए अपेक्षित है ।

१- "क्या हमारा इतिहास फिर से लिखा जाना चाहिये", [illegible] लेख, धर्मयुग, २२ मई, १९६६ ।

भारतवर्ष में वैज्ञानिक तथा आधुनिक दृष्टिकोण से इतिहास-लेखन का प्रारम्भ अंग्रेजों तथा अन्य योरोपीय के सम्पर्क से प्रारम्भ हुआ । यों तो योरोपीयों का आगमन मुगलकाल तथा उसके पूर्व से ही इस देश में होने लगा था, किन्तु इनका विशेष प्रभाव उस समय भारतीय जीवन-पद्धति एवं संस्कृति पर नहीं पड़ा । १९वीं शताब्दी के मध्य में जब अंग्रेजी साम्राज्य पूर्णरूप से भारत में सुदृढ़ हो गया तो धीरे - धीरे योरोपीय जीवन पद्धति, संस्कृति एवं विचारधारा का भी प्रभाव पड़ने लगा । १९वीं शताब्दी में भारत के इतिहास में जो सबसे महत्वपूर्ण बात हुई, वह थी योरोपीय संस्कृति एवं सभ्यता के सम्पर्क से देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म । विज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धतियों द्वारा ज्ञान के विविध मार्ग खुले और हर चीज को विज्ञान की कसौटी पर कसा जाने लगा । विद्वानों ने प्राचीन संस्कृत-साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण करने की नवीन पाश्चात्य पद्धति ग्रहण की और एक ऐसी आलोचनात्मक विधि स्थापित की जो प्राचीनता के प्रति पूज्य या पौराणिक भाव से रहित थी, तथा जिसका आधार सत्य तक पहुँचने की उत्कट आकांक्षा थी । योरोपीयों की इस विश्लेषण-पद्धति तथा आलोचनात्मक विधि का प्रभाव भारतीय इतिहास लेखन पर भी पड़ा और इन लोगों ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आलोक में भारतीय इतिहास को देखना प्रारम्भ किया ।

१९वीं शताब्दी के इतिहास-लेखकों ने अपने इतिहास-लेखन में ऐतिहासिक दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय तो ग्रहण किया, किन्तु उनमें भी वह पूर्णता एवं यथार्थता न आ सकी जो अपेक्षित थी । इसका मुख्य कारण सम्भवतः उनके सम्मुख इतिहास को प्रकाशित करने वाली सामग्री का अभाव था । यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री के उपलब्ध न होने तथा इतिहास विषयक शोध की न्यूनता के कारण १९वीं शताब्दी उत्तरार्ध तथा २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लिखे गये इतिहास ग्रन्थों के भीतर भी भयंकर भूलें दिखती हैं । सन् १८१२ में लिखे गये जेम्स टाड कृत एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ् राजस्थान* को भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में प्रथम प्रकाश स्तम्भ

है, मैं भी अनेक त्रुटियाँ मिलती हैं। इस सन्दर्भ में राजा शिव प्रसाद"सितारे हिन्द" द्वारा लिखित हिन्दी पुस्तक "इतिहास तिमिर नाशक" (सन् १८६४) के भूमिका भाग से कुछ अंश उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। भूमिका अंश इस प्रकार है:-

I knew how imperfect and f full of errors the so-called histories are which have hitherto been written in Vernacular, but I had not imagined for a moment the even so cautious a writer as Eliphiston was liable to commit such mistakes x as to say that Firoze Tuglak was nephew of The 'Late King' (Muhammad Tuglak), when Dow calls him "his cousin" orthat Nasir-Ud-Din Mohmud was the grand son of "Altamsh" (correctly Altimash) when he was infact his son.....Or that a talented author like Mr.Marshman would forget the topography of the country so far as to write that "the greatest achievement of his (Kiroze Tuglak's) reign was the Canal from the source of Ganges to Satlaj, which still bears his name"(History of India, Serampore,1863,page 65). He calls "Raja JeySingh of Jeypore and Raja Jesswunt Singh of Joudhpore" Mahratta Generals" and gives the name of Muhammad Shah "Rustum Khan" instead of Roshan Akhtar (pages 166 and 189 respectively)"[1]

१-शिव प्रसाद"सितारे हिन्द": इतिहास तिमिर नाशक(पहला हिस्सा), प्रीफेस, १८८६ ई०का संस्करण, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि १९वीं शताब्दी उत्तरार्ध में आधुनिक दृष्टि से भारतीय इतिहास लेखन तथा इतिहास विषयक शोध अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थे और उनमें वह पूर्णता और यथातथ्यता न थी जो आज के इतिहास लेखन और शोध में है। और चूंकि इस काल के लिखे इतिहासों के आधार पर ही प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने ऐतिहासिक-उपन्यासों का ढांचा खड़ा किया, अतः वे विकृतियां उनमें भी आ गयीं।

अंग्रेज़ों द्वारा लिखित भारतीय इतिहास लेखन में त्रुटियों तथा दोषों के आ जाने का दूसरा कारण था भारतीय जीवन, सभ्यता एवं संस्कृति तथा इनके मूल तत्वों के प्रति उनका अज्ञान। भारतीय जीवन तथा सभ्यता एवं संस्कृति अपने मूल्यों में योरोप से भिन्न है अतएव उसका मूल्यांकन उसी दृष्टि-कोण से नहीं किया जा सकता जिस दृष्टिकोण से योरोप का। भारतीय जीवन को समझने के लिए भारतीय दृष्टि ही अपेक्षित थी जो तत्कालीन अंग्रेज लेखकों में नहीं थी। अतः इस कारण से भी इतिहास संबंधी त्रुटियां उस समय के इतिहास-लेखन में आ गयीं।

राजनैतिक पराधीनता में सर्वप्रथम प्रहार इतिहास पर ही होता है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र के इतिहास को विकृत कर देना उस राष्ट्र के मनोबल को गिरा देने का एक निश्चित सफल उपाय है। कतिपय अंग्रेजों द्वारा लिखित प्रारम्भिक इतिहास विषय पुस्तकों में यह प्रवृत्ति स्पष्टता से लक्षित की जा सकती है। तथाकथित अंग्रेजों ने अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए तथा भारतीयों को हीन सिद्ध करने के लिए भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के श्रेष्ठ तत्वों को छिपाने का प्रयास तो किया ही, साथ ही जान बूझकर ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत रूप में प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा लिखित निम्नलिखित 'स्मरणात्मक अंश द्रष्टव्य है:- "छोटा सा था जब एक अंग्रेज (मार्शमैन) लिखित भारतवर्ष के इतिहास की पुस्तक पाठ्यक्रम में पढ़नी पड़ी। उसमें मनोरंजक चित्र थे - लुटेरा, डाका, बैरागी, ठग, राजा, बादशाह आदि सब से लेकर उस समय के लाटसाहब

लार्ड कर्ज़न के मित्र । पुस्तक में पढ़ा कि भारत का जलवायु गरम होने के कारण आर्य लोग कमज़ोर पड़ गये और जो भी यहाँ बाहर से आया, उसने पराजित कर दिया । क्योंकि अंग्रेज ठण्डे देश के निवासी हैं, यहाँ रह कर विलायत लौट जाते हैं और गर्मी के दिनों में यहाँ पहाड़ों पर रहते हैं । इसलिये उनकी शक्ति कभी क्षीण नहीं होने की । अगली कक्षा में एक अन्य अंग्रेज के लिखे इतिहास में पढ़ने को मिला - भारत के उष्ण जलवायु के कारण आर्यों ने हाथ-पैर चलाने का कार्य कम कर दिया , और मनन-चिंतन अधिक कर उठे । जंगलों में जाकर उपनिषदों, आरण्यकों इत्यादि की रचना का यह गरम जलवायु ही कारण बना । गरम जलवायु के कारण हाथ-पैर ढीले पड़ गये और मानव क्षीणप्राण हो गया । मैंने सोचा कि तो अंग्रेज ठस दिमाग़ होते होंगे, कम से कम इस बात में तो हम उनसे ऊपर रहेंगे । परन्तु तीसरे अंग्रेज की पुस्तक में पढ़ा कि अंग्रेज बड़े तीक्ष्ण बुद्धि होते हैं और उनके संचालक होने के कारण हिन्दुस्तानी सैनिक जीते हैं[1]। इससे स्पष्ट है कि उस समय के अंग्रेजों द्वारा लिखित भारतवर्ष के इतिहास में तटस्थता का अभाव था और जानबूझ कर तथ्यों को ग़लत ढंग से रखने का प्रयास किया गया था

इस सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है । मुग़लकालीन तथा उसके पूर्व के मुस्लिम इतिहास लेखकों ने इतिहास के इतिवृत्तात्मक पक्ष को ही विशेष स्थान दिया, उसके दूसरे पक्ष-संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन, जीवन-पद्धति, आचार-विचार आदि के चित्रण का प्रयत्न नहीं किया । १९वीं शताब्दी के अंग्रेजों द्वारा लिखित भारत के विभिन्न इतिहास ग्रंथों में भी इस प्रवृत्ति को लक्षित किया जा सकता है जिनमें लेखकों ने [illegible] पर अधिक ज़ोर दिया है और उसके दूसरे पक्ष पर कम । अंग्रेज इतिहास लेखकों के संबंध में एक बात यह अवश्य है कि [illegible] इतिहास लेखकों की अपेक्षा उनका दृष्टिकोण अधिक [illegible], वैज्ञानिक और तटस्थ रहा है और उन्हीं वर्ग के इतिहास-बोध को आत्मसात करके ही हम लोगों ने [illegible]

१- ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण, नये पत्ते, जनवरी-फरवरी,

इतिहास का आकलन किया है । यह दूसरी बात है कि स्वार्थवश जानबूझ कर इन लोगों ने कहीं-कहीं इतिवृत्तों को मोड़ दिया है । इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता भारत में ही नहीं, १९वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध स्वयं योरोप में भी इतनी अधिक थी कि प्रसिद्ध इतिहासकार मैकाले को लिखना पड़ा कि-"सही अर्थों में हमारे यहां अच्छे इतिहास नहीं हैं[1] ।" आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व (१८२८ ई०) मैकाले ने ही हाल्म की "कान्स्टीट्यूशनल हिस्टरी" पर लिखित अपने निबन्ध में तत्कालीन इतिहास लेखन की ओर संकेत करते हुए लिखा था कि अतीत को वर्तमान में परिणित करना, महान व्यक्तियों को जीवन्त रूप में सम्मुख ले आना, पूर्वजों की सम्पूर्ण विशेषताओं जैसे भाषा, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि सहित लाने के लिए बाध्य करना एक इतिहासकार के कर्तव्य का प्रमुख भाग है, किन्तु ये सब कार्य हमारे इतिहासकारों द्वारा नहीं, वरन् ऐतिहासिक उपन्यासकारों द्वारा सही अर्थों में सम्पन्न किये गये[2]। मैकाले का यह कथन १९वीं शती पूर्वार्द्ध योरोपीय इतिहास-लेखन की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करता है । भारतवर्ष में इतिवृत्तात्मक इतिहासलेखन की प्रवृत्ति बहुत बाद तक चलती रही ।

---

1. Good histories in the proper sense of the word, we have not.- Macaulay.

2. To make the past present, to bring the distant near, to place us in the presence of a great man, or on the eminence which overlooks the field of a mighty battle, to invest with reality of flesh and blood beings whom we are to much inclined to consider as personified qualities in an allegory, to call up our ancestors before us with all their peculiarities of language, manners, and garb, to show us over their houses, to seat us at their tables, to rummage their old fashioned wardrobes, to explain the uses of their ponderous furniture, these parts of the duty which properly belongs to historian have been appropriated by the Historical Novelist.

   -Macaulay (Reproduced from Art and Practice of Historical Fiction, page 155,156)

हिन्दी के प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखन-काल(१८९०-१९१५) में इतिहास-लेखन की क्या स्थिति रही, ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है। इतिहास-लेखन की इन प्रवृत्तियों का प्रभाव प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों - किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त, आदि पर भी पड़ा और इतिहास विषयक विकृतियाँ, असंगतियाँ और अनैतिहासिकताएँ आदि इनकी रचनाओं में भी आ गयीं।

इस सन्दर्भ में एक अन्य बात भी महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। जैसाकि पाँचवे अध्याय के प्रारम्भ में संकेत किया गया है, १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध अनेक दृष्टियों से भारतीय इतिहास का नवोत्थान काल था। अन्य राष्ट्रीय भावनाओं के साथ साथ हिन्दू राष्ट्रीयता का भी उत्थान इस काल में हुआ। इसका प्रभाव तत्कालीन हिन्दू-लेखकों पर भी पड़ा और उन लोगों ने हिन्दू-धर्म, हिन्दू जाति और हिन्दू जीवन-पद्धति के उज्ज्वल रूप को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जाति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए इन लेखकों ने ७०० वर्षों तक हिन्दुओं पर शासन करने वाली मुस्लिम जाति तथा मुस्लिम शासकों को हीन रूप में प्रस्तुत किया। तत्कालीन ऐतिहासिक उपन्यासकारों में भी इस प्रवृत्ति को लक्षित किया जा सकता है। किशोरी लाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों- हृदयहारिणी, लवंगलता, तारा, हीराबाई, मल्लिका देवी आदि में तो यह प्रवृत्ति अत्यन्त उग्र रूप में वर्तमान है। गोस्वामी जी के उपन्यासों को पढ़कर तो ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने कथानकों का चयन मुस्लिम कालीन इतिहास से इसलिये किया कि वे उनकी तुलना में हिन्दू जाति एवं हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को सिद्ध कर सकें। गोस्वामी जी ने जहाँ हिन्दू पात्रों को आदर्श रूप में चित्रित किया है, वहीं मुस्लिम पात्रों को चरित्र-हीन, विलासी, धोखेबाज आदि निम्न रूपों में उपस्थित किया है। इस दुराग्रह के कारण ही उनके पात्र ऐतिहासिक सत्य और सम्भावना से दूर जा पड़े हैं। गंगा प्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी हिन्दुत्व की भावना प्रबल रूप में मिलती है किन्तु ऐतिहासिक वास्तविकता उनमें अपेक्षाकृत कम है। द्वितीय उत्थान काल में भी यह प्रवृत्ति

संचित की जा सकती है ।

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रारम्भ और विकासक्रम के अध्ययन से एक और महत्वपूर्ण बात भी सामने आती है । प्रारम्भिक काल (प्रथम उत्थान काल) के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने मध्यकालीन इतिहास अर्थात् मुस्लिम कालीन इतिहास को ही अपने उपन्यासों का आधार बनाया । उनका ऐसा करना स्वाभाविक भी था । प्राचीन भारतीय इतिहास की अपेक्षा मध्ययुग का इतिहास उनके अधिक निकट था, फलस्वरूप अधिक स्पष्ट और ज्ञात था और उससे संबंधित सामग्री अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक थी । अतः मध्ययुगीन इतिहास को आधार बनाकर उपन्यास लिखना उनके लिए अधिक सुविधापूर्ण था । किन्तु इतिहास के क्षेत्र में जैसे-जैसे नवीन शोध होते गये और इतिहास विषयक नयी सामग्री प्रकाश में आती गयी, वैसे - वैसे ऐति-हासिक उपन्यासों की आधार भूमि का विस्तार भी बढ़ता गया । साथ ही ऐतिहासिक उपन्यासकारों की दृष्टि भी इतिहास-ज्ञान के आलोक में अधिक व्यापक और स्वच्छ होती गयी । द्वितीय तथा तृतीय उत्थान काल के उपन्यास-कारों ने भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण ज्ञात काल को अपने उपन्यासों का आधार बनाया और इतिहास के इतिवृत्तात्मक पक्ष के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक पक्ष को भी उपस्थित करने का प्रयत्न किया । नीचे हम इतिहास के विभिन्न कालों और घटनाओं पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यासों की एक तालिका घटना-काल-क्रम के अनुसार प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय इतिहास के किस काल, घटना तथा व्यक्तित्व ने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों को अधिक आकृष्ट और प्रभावित किया है:-

हिन्दी-ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य(घटना-काल-क्रम के अनुसार)

(क) प्रागैतिहासिक तथा वैदिक कालीन उपन्यास:

(१) मुर्दों का टीला(रांगेय राघव) - घटना-काल लगभग ३५०० वर्ष ईसा पूर्व।

मोहनजोदड़ों की संस्कृति, जीवन-पद्धति एवं शासन-प्रणाली के अंकन का सफल प्रयत्न । कथानक तथा घटनाएं कल्पित । पात्र भी कल्पित ।

(२) भुवन विक्रम (वृंदावन लाल वर्मा)- उत्तर वैदिक -काल । अयोध्या के राजा रोमक और उसके पुत्र भुवन विक्रम से सम्बन्धित एक वैदिक आख्यान पर आधारित कथानक ।

(३) दिव्य गन्धा(वेणी प्रसाद वाजपेयी"मंजुल")- वैदिक काल की एक वैदिक गाथा पर आधारित कथानक । कल्पना का आधिक्य ।

(४) वयं रक्षामः(चतुरसेन शास्त्री) - रामायण काल । रक्ष संस्कृति के निर्माता राक्षसेन्द्र रावण की कथा । अनेक कालों की घटनाओं और पात्रों के विचित्र जंजाल से कथा का निर्माण । पात्र तथा घटनाएं ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों प्रकार की ।

(५) अन्धेरे के जुगनू(रांगेय राघव)- लगभग १००० ई०पू० । महाभारत - युद्ध के पश्चात् के काल की कल्पित घटनाओं पर आधारित । कथानक एवं पात्र पूर्णतया कल्पित ।

(ख) बुद्ध-महावीर कालीन उपन्यास:

(१) [illegible] (गोविन्द वल्लभ पंत)- ६वीं शताब्दी ई०पू० का समय । बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध की जीवन-घटनाओं पर आधारित । अधिकांश पात्र और घटनाएं ऐतिहासिक ।

(२) भगवान बुद्ध की आत्मकथा(परदेशी)- घटना-काल लगभग ५६३ ई० पू० । भगवान बुद्ध की जीवन-घटनाओं से सम्बन्धित । अधिकांश पात्र और घटनाएं ऐतिहासिक ।

(३) तथागत (गोविन्द सिंह)- भगवान बुद्ध के जीवन पर आधारित उपन्यास ।

(४) राह न रुकी(रांगेय राघव)- घटना काल लगभग ५५० ई०पू० । जैन ग्रंथ "आवश्यक चूर्णि" की एक ऐतिहासिक कथा पर आधारित । अंग नरेश

दधिवाहन और कौशाम्बी नरेश शतानिक के पारस्परिक संघर्ष आदि से सम्बन्धित कथा । प्रमुख पात्र एवं घटनाएं ऐतिहासिक ।

(५) अम्बपाली (रामरतन भटनागर)- घटना काल लगभग ६वीं शताब्दी ई०पू० । वैशाली की नगर नर्तकी अम्बपाली से सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित । मुख्य घटनाएं एवं पात्र ऐतिहासिक ।

(६) वैशाली की नगर वधू(चतुरसेन शास्त्री)- घटना काल लगभग ६वीं शताब्दी ई०पू० । सम्राट बिम्बसार तथा वैशाली गणराज्य (वृज्जि संघ) के राजनीतिक दाव पेचों के परिपार्श्व में वैशाली की नगर नर्तकी अम्बपाली की कथा । मुख्य पात्र ऐतिहासिक, घटनाएं प्रायः कल्पित ।

(७) सिंह सेनापति (राहुल सांकृत्यायन) - घटना काल लगभग ६वीं शताब्दी ई० पू० । वैशालीगणराज्य के सेनापति सिंह की आत्म कथा द्वारा उस काल के जीवन का चित्रण । अधिकांश घटनाएं एवं पात्र कल्पित ।

(८) श्रेणिक बिम्बसार(चन्द्रशेखर शास्त्री)- घटना काल ५४३-४४ ई० पू० के लगभग । मगध के शिशुनाग वंशी राजा बिम्बसार से सम्बन्धित कथानक ।

(९) श्रेणिक बिम्बसार(कमल शुक्ल) - घटना काल ५४३-४४ ई० पू० के लगभग । मगध सम्राट बिम्बसार से संबंधित ।

(१०) धरती और आकाश(रांगेय राघव) - घटना काल लगभग ६वीं शती ई०पू० । बुद्ध का समय । कौशाम्बी नरेश शतानिक और उसके पुत्र उदयन से संबंधित कथा । प्रमुख पात्र ऐतिहासिक, घटनाएं कल्पित ।

(११) उदयन(मित्रबन्धु) - बुद्ध का समय, लगभग ६वीं शती ई०पू० । कौशाम्बी नरेश उदयन से संबंधित घटनाओं पर आधारित ।

(१२) मल्ल-मल्लिका(यादवचन्द्र जैन) - भगवान बुद्ध का समय, ६वीं शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग । मल्लगण राज्य के वीर मल्ल बन्धुल और उसकी पत्नी मल्लिका के प्रणय और त्याग की घटनाओं पर आधारित ।

(१३) सप्तशील(सीताराम गोयल)- ईसा पूर्व ४८१ के आस-पास का काल । मगध सम्राट अजात शत्रु तथा वैशाली गणराज्य अथवा वृज्जि संघ के पारस्परिक संघर्ष और युद्ध की घटनाओं पर आधारित । प्रमुख घटनाएं एवं पात्र ऐतिहासिक । प्रासंगिक घटनाएं तथा पात्र कल्पित ।

(१४) दिव्या(यशपाल) - बौद्ध कालीन वातावरण प्रधान ऐतिहासिक उप० । पात्र एवं घटनाएं कल्पित । वातावरण ऐतिहासिक ।

(१५) बहती रेखा(गुरुदत्त) - ईसा पूर्व ३०१ के आस पास का समय । पात्र एवं घटनाएं पूर्णतः कल्पित । वैशाली गण राज्य एवं अयोध्या के पारस्परिक सम्बन्ध की कथा ।

(१६) अम्बपाली और सुन्दरी(यादवेन्द्र नाथ शर्मा)- बौद्ध कालीन वातावरण पर आधारित । बौद्ध भिक्षु उपगुप्त तथा नर्तकी वासवदत्ता के प्रेम और वैराग्य की लोक प्रचलित किम्वदंती पर आधारित कथा ।

(ग) मौर्य कालीन उपन्यास:

(१) उत्तरापथ(यादवचन्द्र जैन) - ३२७-२६ ई०पू० का काल । सिकन्दर का भारत पर आक्रमण और राजा पौरव द्वारा उसके मार्ग-अवरोधन की घटनाओं पर आधारित ।

(२) आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य(सत्यकेतु विद्यालंकार) - ३२१ ई० के आस पास का समय । महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य के उन कार्यों एवं प्रयत्नों की कथा जिनके द्वारा उसने चन्द्रगुप्त को उत्तर भारत का सम्राट बनाकर मौर्य-साम्राज्य की स्थापना की । सभी प्रमुख पात्र एवं घटनाएं ऐति-हासिक ।

(३) आचार्य चाणक्य(यतीन्द्र) - ३२१ ई०पू० के आस - पास का समय । चाणक्य से सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित ।

(४) आग और पानी (रघुवीर शरण मित्र) -३२१ ई०पू० के आस पास का काल । चाणक्य से सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित ।

(५) महामंत्री चाणक्य(रणवीर जी वीर)* -३२१ ई० पू० के लगभग । मौर्य साम्राज्य के संस्थापक एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री चाणक्य तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित । मुख्य पात्र एवं घटनाएं ऐतिहासिक ।

(६) चन्द्रगुप्त मौर्य(मिश्रबन्धु) - ३२१ -२९७ ई० पू० का समय। मौर्य साम्राज्य के प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से सम्बन्धित ।

(७) चित्रलेखा (भगवती चरण वर्मा) - चन्द्रगुप्त का काल । पाटलिपुत्र के सामन्त बीजगुप्त और नर्तकी चित्रलेखा की प्रणय-कथा । कथा पूर्णतया कल्पित । पात्र भी कल्पित । वातावरण ऐतिहासिक ।

(८) प्रियदर्शी अशोक(हरि भाऊ उपाध्याय) - २६०-५९ ई०पू० का समय । अशोक का कलिंग पर आक्रमण तथा उसके हृदय परिवर्तन की कथा ।

(९) अमिता (यशपाल) - २६०-५९ ई० पू० का काल । अशोक का कलिंग पर आक्रमण और उसके हृदय परिवर्तन की कथा । अशोक को छोड़कर अन्य सभी पात्र कल्पित । घटनाएं भी कल्पित ।

(१०) टूटते पत्थर(गुरुदत्त) - सम्राट अशोक का समय । घटनाएं और पात्र पूर्णतया कल्पित ।

(११) वीर कुणाल(किशोर साहू)- सम्राट अशोक का काल । अशोक के पुत्र कुणाल की जीवन घटनाओं पर आधारित ।

(१२) अन्ध निशा(देवी प्रसाद धावनेयी "अंकुश") - लगभग १९१-१८४ ई०पू०। मौर्य वंश के अन्तिम नृपति बृहद्रथ के अन्त की कथा ।

(ग) शुंग कालीन उपन्यास:-

(१) पुष्य मित्र(रमेश [illegible]) - लगभग १८४-१४८ ई० पू० का काल । शुंगवंशीय

प्रथम सम्राट पुष्यमित्र शुंग से सम्बन्धित कथानक ।

(२) जय वासुदेव(राम रतन भटनागर) - लगभग १८४ ई० पू०। पुष्यमित्र तथा उसके पुत्र अग्निमित्र का मौर्यों के अन्तिम सम्राट की षड्यन्त्र द्वारा हत्या करने तथा ब्राह्मण साम्राज्य स्थापित करने की कथा । मुख्य पात्र ऐतिहासिक, घटनाएं कल्पना प्रसूत । वातावरण ऐतिहासिक ।

(३) पुष्य मित्र शुंग(गुरुदत्त) - लगभग १८४-१४८ ई० पू० । सम्राट पुष्य मित्र शुंग से सम्बन्धित कथानक ।

(४) इरावती(जय शंकर प्रसाद) - लगभग १९१-१८४ ई० पू० का काल । पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र तथा इरावती की प्रणय-कथा तथा इसी सन्दर्भ में पिता-पुत्र का मौर्यों के अन्तिम सम्राट की षड्यन्त्र द्वारा हत्या । मुख्य पात्र ऐतिहासिक ।

(ड०) कुषाण कालीन उपन्यास:

(१) धन्य भिक्षु(प० रमेश चौधरी "आरिगपूडि") - घटना काल ईसवी सन् के आस पास । सातवाहन कालीन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में बौद्ध दार्शनिक आचार्य नागार्जुन की कथा ।

(२) विक्रमादित्य(मित्र बन्धु) - ५७ ई०पू० के आस पास का समय । उज्जैन के लोक विख्यात सम्राट तथा विक्रमी संवत के चलाने वाले विक्रमादित्य की कथा ।

(३) सुरंगमा (मंजुल) - घटना काल १०१-१०६ ई० पू० के लगभग । कुषाण सम्राट कनिष्क के पुत्र वासिष्क से सम्बन्धित कल्पित कथा । सुरंगमा प्रधान काल्पनिक पात्री ।

(४) फूलहार(कंचनलता सब्बरवाल) - घटना काल दूसरी शताब्दी ईसवी के लगभग । प्रथम नाग राजा नवनाग से सम्बन्धित । घटनाएं काल्पनिक । नवनाग तथा वीरसेन के अतिरिक्त सभी पात्र भी कल्पित ।

(ख) <u>गुप्त कालीन उपन्यास:</u>

(१) <u>दुर्ग का घेरा</u>(रमेश चन्द्र झा)- गुप्त कालीन उपन्यास । समुद्र गुप्त से संबंधित कथा ।

(२) <u>चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य</u>(मिश्र बन्धु) - घटना काल सन ४०५ से ४१४ ई० तक । गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की जीवन घटनाओं और विजयों पर आधारित ।

(३) <u>जय यौधेय</u>(राहुल सांकृत्यायन) - चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय । ३५० से ४०० ई० तक के यौधेय गण-राज्य के राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का चित्रण । मुख्य पात्र एवं घटनाएं कल्पित । चन्द्रगुप्त द्वितीय ऐतिहासिक व्यक्तित्व ।

(४) <u>विस्मृत यात्री</u>(राहुल सांकृत्यायन) - घटना काल सन् ५१८ से ५८९ ई० तक । नरेन्द्र यश नामक बौद्ध यात्री की चीन यात्रा से सम्बन्धित उपन्यास ।

(ग) <u>हर्ष कालीन उपन्यास:</u>

(१) <u>बाण भट्ट की आत्मकथा</u>(हजारी प्रसाद द्विवेदी) - ६०६ ई० के आस-पास का समय । सम्राट हर्ष के दरबारी कवि तथा "हर्षचरित" एवं "कादम्बरी" के रचयिता बाणभट्ट की आत्मकथा । ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार की घटनाओं और पात्रों से कथानक का संयोजन। वातावरण का सजीव चित्रण ।

(२) <u>चीवर</u>(रांगेय राघव)- ६०६ से ६४७ ई० के बीच हर्ष का काल । हर्षवर्धन से सम्बन्धित कथा । प्रायः सभी प्रमुख पात्र एवं घटनाएं ऐतिहासिक ।

(३) <u>पत्रलता</u>(गुरुदत्त) - हर्ष का काल । हर्ष से सम्बन्धित उपन्यास ।

(४) अर्हत का शाप (बाल शौरिन्द्र)- हर्ष का समय । बौद्धधर्मी सम्राट हर्ष के उत्थान-पतन युक्त राज्य काल की पृष्ठभूमि में भगवान बुद्ध के एकदंत के अवशेष पीछे होने वाले षड्यंत्रों की काल्पनिक कथा ।

(ब) मुस्लिम आक्रमण तथा राजपूत कालीन उपन्यासः

(१) प्रभा बाई (वेणी प्रसाद बाजपेयी "मंजुल") - हर्षोत्तर कालीन उपन्यास। ८वीं शताब्दी आरम्भ का काल । मुहम्मद इब्न कासिम के आक्रमण (७१२ ई०) की पृष्ठभूमि में कल्पित दासी प्रभाबाई की वीरता की कथा

(२) जब आकाश रो पड़ा (राम बहादुर सिंह) - ७१२ ई० के आस - पास। मुहम्मद इब्न कासिम के सिन्ध आक्रमण से सम्बन्धित ।

(३) वन की या वीर बालिका (अनूप सिंह) - ७१२ ई० । आलोर (सिन्ध) के राजा दाहिर के राज्य पर मुहम्मद इब्न कासिम के आक्रमण और दाहिर की पुत्रद्वय बन्दी का मुहम्मद इब्न कासिम को छल से मरवाने वाली की कथा ।

(४) दिग्विजय (गुरुदत्त)- घटना काल ८०० ई० के लगभग । महान् दार्शनिक शंकराचार्य की विजय गाथा ।

(५) आनंदपाल (दुर्गाप्रसाद खत्री)- घटना काल १००८ ई० । पंजाब के राजा आनंदपाल पर महमूद गज़नी के आक्रमण से सम्बन्धित उपन्यास ।

(६) प्रेम (कृष्णानंद गुप्त)- घटना काल लगभग १०१८ ई० । कन्नौज के राजा राज्यपाल पर महमूद गज़नी के आक्रमण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पित प्रेमकथा ।

(७) चम्पावती (मंजुल) - घटना काल लगभग १०१८ ई० । महमूद गज़नी के भारत आक्रमण की पृष्ठभूमि में कल्पित कथा ।

(८) सोमनाथ (चतुरसेन शास्त्री)- घटना काल १०२५ ई०। महमूद गज़नी का सोमनाथ पर आक्रमण और चालुक्य राज भीमदेव प्रथम द्वारा उसके प्रति

रोष की ऐतिहासिक घटना पर आधारित । ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों प्रकार के पात्रों एवं घटनाओं द्वारा कथा निर्मित है ।

(९) तीसरानेत्र(आनंद प्रकाश जैन)- ११वीं शती उत्तरार्द्ध के काशी राज बानरके के समय की एक शाप सम्बन्धी घटना पर आधारित जिसे लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में संयोजित किया है ।

(१०) वीर पत्नी या रानी संयोगिता(गंगा प्रसाद गुप्त) - घटना काल १२वीं शती उत्तरार्द्ध । दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज तृतीय तथा कन्नौज नरेश जयचन्द की पुत्री संयोगिता के प्रणय एवं वीरता की कथा ।

(११) पृथ्वीराज चौहान(बलदेव प्रसाद मिश्र)- १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध । दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) से सम्बन्धित कथानक ।

(१२) कनाज का ब्याह(चतुरसेन शास्त्री)- १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध । पृथ्वीराज चौहान द्वारा संयोगिता-हरण तथा पृथ्वीराज एवं जयचन्द के बीच हुए युद्धों का वर्णन है । यह उपन्यास "पृथ्वीराज रासो" पर आधारित है ।

(१३) पूर्णाहुति(चतुरसेन शास्त्री)- यह उपन्यास "कनाज का ब्याह" का परिवर्धित संस्करण है जिसमें पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी के बीच हुए युद्ध की घटनाओं को जोड़ दिया गया है ।

(१४) रक्त की प्यास(चतुरसेन शास्त्री)- घटना काल ११७४ ई० के आस पास। आबू चन्द्रावती की परमार राजकुमारी इच्छिनी की प्राप्ति के लिए गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव द्वितीय तथा पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए युद्ध की घटनाओं पर आधारित । "पृथ्वीराज रासो" में वर्णित एक घटना का आधार ग्रहण किया गया है ।

(१५) प्रभावती(सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला")- घटना काल १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध । कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द कालीन ऐतिहासिक वातावरण में लिखी हुई कल्पित रोमांस-कथा । प्रभावती प्रधान पात्री ।

(६) वीरमणि(मिश्रबन्धु)-अलाउद्दीन का शासन काल । घटना-काल १३०३ ई०।
अलाउद्दीन के चित्तौड़ -आक्रमण की पृष्ठभूमि में "वीरमणि" नामक एक धर्म प्रवण ब्राह्मण के दाम्पत्य-जीवन की कल्पित घटना पर आधारित ।

(७) सोने की राख(रघुवीर शरण मित्र)- अलाउद्दीन खिलजी का शासन काल । घटना काल १३०३ ई० । अलाउद्दीन का चित्तौड़ गढ़ पर आक्रमण, चित्तौड़ गढ़ के राजा रत्नसिंह का प्रतिरोध तथा रानी पद्मिनी आदि राजपूत-स्त्रियों के द्वारा जौहर करने की घटनाओं पर आधारित । यह उपन्यास जायसी के "पद्मावत" पर आधारित है ।

(८) हम्मीर(गंगा प्रसाद गुप्त)-अलाउद्दीन खिलजी का शासन काल । चित्तौड़ के प्रसिद्ध वीर हम्मीर (१३०१-६४ ई०) का अपने खोये राज्य के प्राप्त करने के प्रयत्नों तथा अलाउद्दीन के सामंत मालदेव को हराकर मेवाड़ पर [illegible] करने की घटनाओं से सम्बन्धित है । यह कृति औपन्यासिक जीवनी है ।

(९) लालचीन(व्रजनन्दन सहाय)- घटना काल १३९६-९७ ई० के आस पास । दक्षिण भारत के बहमनी सुल्तान गयासुद्दीन के तुर्क गुलाम लाल चीन (कुतब चीन) और राज्य प्राप्ति के लिए उसके षड्यन्त्रों की कथा । मुख्य पात्र ऐतिहासिक। चरित्र-चित्रण के साथ ऐतिहासिक सम्भाव्यता का प्रयत्न ।

(१०) तैमूर(धर्मेन्द्र नाथ)- १४वीं शताब्दी के प्रसिद्ध आक्रमणकारी और विजेता तैमूर पर लिखित उपन्यास ।

(११) रायकमल(अमर बहादुर सिंह अमरेश) - घटना काल १५वीं शती ईसवी उत्तरार्द्ध । डलमऊ (राय बरेली) के अन्तिम भारशिव राजा डालदेव द्वारा सैयद बाबर की लड़की के अपहरण तथा जौनपुर के तत्कालीन सुल्तान इब्राहीम शर्की(सन् १४०१-३६ ई०) का उस पर आक्रमण से सम्बन्धित । परम्परा और इतिहास पर [illegible] सफल उपन्यास ।

(१२) मृगनयनी(वृन्दावन लाल वर्मा)- दिल्ली सुल्तान सिकन्दर शाह लोदी का शासन काल । ग्वालियर के प्रसिद्ध तोमर राजा मानसिंह(१४८६-१५१६ ई०) तथा उसकी रानी मृगनयनी की कहानी । प्रमुख पात्र और घटनाएँ इतिहासानुमोदित । इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग । युग और जीवन का ज्वलन्त -चित्रण ।

(ग) उत्तर मुस्लिम (मुगल)कालीन उपन्यास:

(१) इन्दुमती(किशोरीलाल गोस्वामी)- घटना काल १५२६ ई० । इब्राहीम लोदी की पराजय और मृत्यु की पृष्ठभूमि में एक पूर्णतया काल्पनिक ऐतिहासिक रोमांस ।

(२) पानीपत(बलदेव प्रसाद मिश्र)- घटना काल १५२६ ई० । इब्राहीम लोदी और बाबर के बीच हुए युद्ध की घटना पर आधारित ।

(३) वीरहर(गोविन्द सिंह)- घटना काल १५२७ ई० के लगभग । बाबर-राजपूत संघर्ष और राजपूत स्त्रियों के जल मरने की घटना पर आधृत ।

(४) निष्कलंक(वाल्मीकि त्रिपाठी)- घटना काल १५२७ ई० । मेवाड़ के [illegible] और राणा सांगा तथा बाबर के युद्ध से सम्बन्धित ।

(५) हेमचन्द्र विक्रमादित्य([illegible])- मुगल सम्राट अकबर का शासन काल घटना काल सन् १५५६ के आस पास । आदिल शाह सूर के मंत्री और सेनापति हेमू से सम्बन्धित ।

(६) रानी दुर्गावती(श्याम लाल गुप्त)- अकबर का शासन काल । घटनाकाल १५६४ ई० के आस पास । गोंडवाना की वीर रानी दुर्गावती तथा अकबर के सेनापति आसफशाह के युद्धों से सम्बन्धित ।

(७) वीर जयमल या कृष्णाकान्ता(गंगा प्रसाद गुप्त)- घटना काल १५६७ ई० अकबर का चित्तौड़ पर आ[illegible] तथा मेवाड़ के वीर जयमल के प्रतिरोध की घटनाओं पर आधा[illegible] ।

(८) जय मेवाड़(गोविन्द सिंह)- घ[illegible] १५७०-८५ ई० । अकबर -राणा

प्रताप संघर्ष और उसी सन्दर्भ में जय मल और पत्ता की वीरता की कहानी ।

(९) <u>चाँद बीबी या वीर रमणी</u>(जयराम दास गुप्त)- अकबर का शासन काल। बीजापुर की मल्का चाँद बीबी (१५५०-१६००ई०) और उसकी वीरता से सम्बन्धित कथा ।

(१०) <u>एक सूत्र</u>(गोविन्द वल्लभ पन्त)-अकबर का शासन काल । सम्राट अकबर से सम्बन्धित एक कल्पना-प्रधान उपन्यास । अकबर द्वारा प्रवर्तित नया धर्म "दीन इलाही" कथा का मुख्य प्रेरणा-स्रोत ।

(११) <u>अनारकली</u>(बलदेव मिश्र)-अकबर कालीन उपन्यास । शाहजादा सलीम (जहाँगीर) और अनारकली की प्रेमकथा ।

(१२) <u>नूरजहाँ</u>(गंगा प्रसाद गुप्त)- अकबर व जहाँगीर का समय । मुगल शाहंशाह जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ से सम्बन्धित ।

(१३) <u>नूरजहाँ- बेगम व जहाँगीर</u>(मथुरा प्रसाद शर्मा)- नूरजहाँ से सम्बन्धित । नूरजहाँ के जन्म, प्रेम, विवाह आदि का वर्णन ।वास्तव में यह एक ऐतिहासिक प्रबन्ध है ।

(१४) <u>नूरजहाँ</u> (गोविन्द वल्लभ पन्त)- अकबर-जहाँगीर का काल । जहाँगीर और नूरजहाँ की प्रेम-कहानी ।

(१५) <u>तारा व क्षात्रकुल -कमलिनी</u>(किशोरीलाल गोस्वामी)सम्राट शाहजहाँ का शासन काल । घटना काल १६३४ ई० के आस पास । [illegible] के महाराजा गजसिंह के निष्कासित पुत्र अमरसिंह और उनकी पुत्री तारा से सम्बन्धित उपन्यास । अनेक ऐतिहासिक-अनैतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं से कथा का निर्माण हुआ है । पात्रों में ऐतिहासिक व्यक्तित्व का अभाव ।

(१६) <u>रोशन आरा या चाँदनी और अँधेरा</u>(बनार[illegible] दास गुप्त)-सम्राट शाहजहाँ का शासन काल । शाहजहाँ की दूसरी लड़की रोशन आरा से संबंधित ।

(१७) गुप्त गोदना (किशोरीलाल गोस्वामी)। सम्राट शाहजहाँ का शासन काल। शाहजहाँ के शाही महल के राजनीतिक दांव-पेचों, उसके पुत्रों के प्रणय-प्रसंगों, औरंगजेब के अपने भाइयों के विरुद्ध किए गए षड़यन्त्रों आदि का काल्पनिक चित्रण। ऐतिहासिकता का अभाव।

(१८) जहाँनारा की आत्मकथा (केशव कुमार ठाकुर)- सम्राट शाहजहाँ की बड़ी पुत्री जहाँनारा (जन्म १६१४ ई०) की जीवन घटनाओं पर आधारित उपन्यास।

(१९) वीर बाला (लाल जीसिंह)- औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई०) का शासन काल। घटना काल १६७९ ई० के आस पास। औरंगजेब-राजपूत संघर्ष के सन्दर्भ में एक नारी की वीरता की कहानी।

(२०) आलमगीर (चतुरसेन शास्त्री)-मुगल सम्राट आलमगीर औरंगजेब (शासनकाल १६५८-१७०७ ई०) से सम्बन्धित उपन्यास। यह कृति उपन्यास न होकर जीवनी और इतिहास के अधिक निकट है।

(२१) सौन्दर्य कुसुम वा महाराष्ट्र उदय (बलभद्र सिंह) - औरंगजेब का शासन काल। महाराष्ट्र के अभ्युदय और छत्रपति शिवाजी की वीरता से संबंधित।

(२२) सौन्दर्य प्रभा वा अद्भुत अंगूठी (बलभद्र सिंह)- छत्रपति शिवा जी से सम्बन्धित।

(२३) पूना में हलचल (गंगा प्रसाद गुप्त)-औरंगजेब का शासन काल। घटनाकाल लगभग १६६३ ई०। मुगल सरदार शायस्ता खाँ तथा शिवा जी के युद्ध की पृष्ठभूमि में एक मराठा सरदार के प्रणय और वीरता की कल्पित कथा।

(२४) कुँवर सिंह सेनापति (गंगा प्रसाद गुप्त) - औरंगजेब का शासन काल। औरंगजेब के शाही फौज के एक नायक की वीरता और प्रणय की कल्पित कथा।

(२५) प्रभात कुमारी(जयराम दास गुप्त)-औरंगजेब का शासन काल। घटनाकाल १६६१ ई० । बंगाल के सूबेदार मीर जुमला के आसाम पर आक्रमण के सम्बन्ध में अमर सिंह और प्रभात कुमारी की कल्पित कथा ।

(२६) बलकोट का शिकार(सुदर्शन सिंह मजीठिया) - औरंगजेब का काल । आरंभिक कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में बलकोट के शासक उदयसिंह की वीरता से सम्बन्धित ।

(२७) लाल कुंवर का शाहीरंग महल(किशोरीलाल गोस्वामी) - मुगल बादशाह जहाँदारशाह (सन् १७१२-१३) और उसकी वेश्या -बेगम लाल कुंवर से सम्बन्धित ।

(२८) जहाँदारशाह(बाल्मीकि त्रिपाठी)- मुगल बादशाह जहांदार शाह (सन् १७१२-१३) से सम्बन्धित ।

(२९) विराटा की पद्मिनी(वृन्दावन लाल वर्मा) - मुहम्मद फर्रुखसियर का शासन काल(१७१३-१९ ई०) । किम्वदंतियों एवं लोक प्रचलित घटनाओं पर आधारित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक कल्पित रोमांस । पात्र एवं घटनायें काल्पनिक । वातावरण ऐतिहासिक ।

(३०) टूटे कांटे(वृन्दावन लाल वर्मा)- बादशाह मुहम्मद शाह का शासन काल। (१७१९-१७४८ ई०) । घटना काल १७३९ ई० के आस पास । बादशाह मुहम्मद शाह के दरबार की नायिका और नर्तकी नूरबाई के उत्थान-पतन एवं संघर्षों की कहानी [illegible]मान ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में । सत्य और कल्पना का समुचित मिश्रण ।

(३१) नादिरशाह(गोविन्द सिंह)- फारस के बादशाह तथा प्रसिद्ध आक्रमणकारी नादिरशाह और उसके भारत आक्रमण(आक्रमण काल सन् १७३९) से सम्बन्धित उपन्यास ।

(३२) [illegible] का मस्तानी(किशोरी लाल गोस्वामी)- बादशाह मुहम्मद शाह का शासन काल(१७१९-४८ तक)। अवधि, और मराठा सरदार [illegible]राव पेशवा प्रथम (१७२०-४० ई०) और मस्तानी की प्रणय और

के अप्रतिम वीर एवं कुशल राजनीतिज्ञ महादजी सिंधिया (मृत्यु १७९४ई०) की वीरता, युद्ध-कौशल एवं बुद्धि चातुर्य की कथा। प्रमुख पात्र और घटनाएं ऐतिहासिक ।तत्कालीन जीवन और समाज का सजीव चित्र ।

(६) नाना फड़नवीस(रामाशीष) - १८वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के मराठा राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस की राजनीतिक कुशलता एवं कार्यों से सम्बन्धित

(७) चेतसिंह का पतन(गिरिजा शंकर पाण्डे) - घटना काल १७७५-८० ई० । बनारस के राजा चेतसिंह पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर हेस्टिंग्स के अत्याचार की कहानी ।

(८) अवध की बेगम (गंगा प्रसाद गुप्त)- घटना काल १७८१-८२ ई० । अवध की बेगमों पर हेस्टिंग्स के अत्याचार और बर्बरता की कथा ।

(९) अठारह वर्ष बाद(गिरिजा शंकर पाण्डे) - घटना काल १७९८ ई० । राजा चेत सिंह के १८ वर्ष पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध अवध के पदच्युत नवाब वज़ीर अली और काशी नरेश के कुंवर जगतसिंह के सम्मिलित विद्रोह की कहानी ।

(१०)स्वर्णा मुद्रा(राम की सिन्हा)- १८वीं शताब्दी ईसवी का काल । दक्षिण के प्रसिद्ध अवदन्धु तुका की माँ से सम्बन्धित उपन्यास ।

(११) कचनार (वृन्दावन लाल वर्मा) - घटना काल -१८वीं शताब्दी का अंतिम भाग तथा १९वीं श० का प्रारम्भ । तत्कालीन ऐतिहासिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि में धामोनी(मध्य प्रदेश) के राज गोंड़ों के एक सरदार दिलीप सिंह तथा उसकी दासी कचनार के प्रणय -व्यापार की [illegible] कहानी । लोक वार्ताओं की तत्सम्बन्धित घटनाएं एक काल में ही लाकर संगठित कर दी गयी हैं । पात्र अधिकांशतः [illegible] ।

(१२) मुसाहिब जू(वृन्दावनलाल वर्मा) - घटना काल १८वीं शताब्दी का अंतिम चरण । तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में [illegible] राज्य के मुसाहिब दलीप सिंह के राज्य त्याग तथा उनके स्वामीभक्ति की [illegible] । सभी

(१३) <u>काश्मीर पतन</u>(जयराम दास गुप्त)-घटना काल १९वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध । सन् १८१८-१९ में काश्मीर पर सिक्ख अधिकार के पश्चात वहाँ की दुर्व्यवस्था का चित्रण ।

(१४) <u>सोना और खून</u>(चतुरसेन शास्त्री)- कथा काल मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख कालीन बादशाह अकबर द्वितीय(१८०६-३७ ई०) से लेकर १८५७ ई० की जन-क्रान्ति तक । देश की तत्कालीन राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण औपन्यासिक शैली में । इसी सन्दर्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा अंगरेजों की कूटनीति तथा चालों का विवरण ।

(१५) <u>शतरंज के मोहरे</u>(अमृत लाल नागर)- कथा काल सन् १८१४ से १८३७ तक। लखनऊ के पतनोन्मुख नवाबों के दो नवाबों- गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके विलासी शाहजादे नसीरुद्दीन हैदर के विलास एवं प्रणय-व्यापार आदि की घटनाओं पर आधारित । तत्कालीन जन-जीवन का यथार्थवादी चित्रण अधिकांश पात्र एवं घटनाएं ऐतिहासिक ।

(१६) <u>लखनऊ की कब्र</u>(किशोरीलाल गोस्वामी) - कथा काल १८२७-३७ ई० । लखनऊ के विलासी नवाब नसीरुद्दीन हैदर के राग रंग एवं प्रणय-व्यापार की घटनाओं पर आधारित ।

(१७) <u>कठपुतली के धागे</u> (आनंद प्रकाश जैन)- कथा काल १८२७-३७ ई० । अवध के नवाब नसीरुद्दीन हैदर से सम्बन्धित । तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अंगरेजों की कुटिल राजनीति तथा धोखा धड़ी का दिग्दर्शन ।

(१८) <u>नवाबी परिस्तान</u>(जयराम दास गुप्त) - ब्रिटिश काल । कथा काल १८४७ से १८५६ तक । अवध के विलासी नवाब वाजिदअली शाह के प्रणय-व्यापार [illegible] एवं रागरंग से सम्बन्धित ।

(१९) <u>पलक</u>(भगवतीचरण वर्मा)-ब्रिटिश काल । नवाब वाजिद अली शाह (१८४७-५६) के विलास एवं पलक की कहानी ।

(२०) <u>गदर</u>(ऋषभचरण जैन) - घटना काल १८५७-५८ ई० । सन् १८५७-५८ के इतिहास -प्रसिद्ध गदर तथा देशी राजाओं के विद्रोह की घटनाओं पर आधारित ।

(२१) <u>सांझ का सूरज</u>(ओम प्रकाश शर्मा)- घटना काल १८५७ -५८ ई० । सन् १८५७-५८ के स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास ।

(२२) <u>अठारह सौ सत्तावन</u> (गोविन्द सिंह) -घटना काल १८५७-५८ ई० । सन् १८५७-५८ की जन-क्रान्ति तथा स्वतंत्रता की घटनाओं पर आधारित ।

(२३) <u>उधर दाम</u> (बाल की हिन्द) - घटना काल १८५७-५८ ई० । १८५७-५८ ई० की भारतीय जन-क्रान्ति तथा प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की घटनाओं पर आधारित ।

(२४) <u>झाँसी की रानी</u>(वृन्दावन लाल वर्मा) - कथाकाल १८३५ से १८५८ ई० तक । प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अमर सेनानी तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की जीवन -घटनाओं पर आधारित । सभी घटनाएं एवं पात्र ऐतिहासिक । तत्कालीन जीवन का यथार्थ चित्रण ।

(२५) <u>बेगमों का मजार</u>(प्रताप नारायण श्रीवास्तव)- घटना काल १८५६-५८ई० के आस पास का । मुगल वंश के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह, उनकी बेगम जीनत महल तथा दिल्ली के शाह हसन अस्करी के सशस्त्र क्रान्ति के उन ऐतिहासिक प्रयत्नों से सम्बन्धित जिसके कारण सन् १८५७-५८ का आन्दोलन जन व्यापी स्वरूप ग्रहण कर सका । प्रमुख पात्र एवं घटनाएं ऐतिहासिक ।

(२६) <u>मंगल पाण्डे</u>(श्याम सुन्दर दीक्षित) - सन् १८५७ की प्रथम जनक्रान्ति के प्रथम अमर शहीद मंगल पाण्डे से सम्बन्धित ।

(२७) <u>आज़ादी की राह में</u> (रमेश चन्द्र भट्ट) - सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम के वीर सेनानी तथा बिहार में क्रान्ति के सूत्रधार बाबू कुंवर सिंह से सम्बन्धित ।

(२८) <u>राना बेनी माधव</u> (अमर बहादुर सिंह "अमरेश")- सन् १८५७ की जनक्रांति के वीर सेनानी तथा अवध में क्रान्ति के अग्रदूत राना बेनी माधव से सम्बन्धित ।

(ठ) <u>विदेशी इतिहास पर आधारित उपन्यास:</u>

(१) <u>मधुर स्वप्न</u>(राहुल सांकृत्यायन) - ईरानी इतिहास पर आधारित । रंगभूमि दजला (तिग्रा) से वक्षु नदी की भूमि (मध्य एशिया) तक । ईरान के सासानी वंश के फिरोज पुत्र कवाद के शासन तथा इतिहास(सन् ४८८-५३१) की पृष्ठभूमि में तत्कालीन सभ्यता, धर्म, दर्शन, समाज आदि का चित्रण ।

घटना-काल-क्रम के अनुसार वर्गीकृत हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की उपर्युक्त तालिका तथा आधारभूत ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के संकेत से यह स्पष्ट है कि हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने भारतीय इतिहास के लगभग पूरे ज्ञात काल को अपने उपन्यासों का आधार बनाया है और तत्कालीन जीवन-पद्धति, रहन-सहन, राजनीतिक और सामाजिक स्थिति आदि को चित्रित किया है । कतिपय उपन्यासकारों के लिए इतिहास विश्रुत घटनाएं और व्यक्तित्व महत्वपूर्ण तथा प्रेरणा-स्रोत रहे हैं तो किसी के लिए अविश्रुत घटनाएं और पात्र अधिक ही महत्वपूर्ण रहे हैं । किसी उपन्यासकार ने ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को ही उभार कर रखने की चेष्टा की है तो किसी ने अपनी कल्पना के अनुरूप ऐतिहासिक तथ्यों की बिल्कुल परवाह नहीं की है । काल की दृष्टि से बुद्ध-महावीर काल, मौर्यकाल, मुस्लिम काल तथा ब्रिटिश काल हिंदी ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए विशेष प्रेरणा-स्रोत रहे हैं । आद्य इतिहास तथा वैदिक काल पर बहुत कम उपन्यास लिखे गये हैं । इसका कारण सम्भवतः [illegible] पुष्ट प्रामाणिक इतिहास का अभाव है । ऐतिहासिक

घटनाओं में सिकन्दर-पोरस-युद्ध (३२७-३२६ ई०पू०), अजातशत्रु का वैशाली पर आक्रमण, चाणक्य-चन्द्रगुप्त द्वारा नंद वंश-पतन (३२१ ई०पू०), अशोक का कलिंग पर आक्रमण (२६०-२५९ ई०पू०), मुहम्मद इब्न कासिम का भारत पर आक्रमण(७१२ ई०), महमूद गजनी का सोमनाथ पर आक्रमण (१०२५ ई०), पृथ्वीराज-मुहम्मद गोरी संघर्ष (११९१-९२ ई०), अलाउद्दीन का चित्तौड़ गढ़ पर आक्रमण (१३०३ ई०), इब्राहीम लोदी और बाबर के बीच युद्ध (१५२६ ई०), राणा सांगा-बाबर संघर्ष (१५२७ ई०), जहांगीर -नूरजहां-प्रणय-प्रसंग, औरंगजेब -शिवा जी संघर्ष, नादिर शाह का भारत-आक्रमण, मराठों तथा अंग्रेजों के बीच युद्ध तथा १८५७ की जनक्रान्ति आदि घटनाएं कथा-सूत्र के लिए विशेष आधार-स्रोत रही है और इन घटनाओं को आधार बनाकर उपन्यासकारों ने विभिन्न दृष्टियों से इनकी बहुपक्षीयता का उद्घाटन किया है। ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में महात्मा बुद्ध, वैशाली की गणिका अम्बपाली, बिम्बिसार, अजातशत्रु, चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, पुष्यमित्र शुंग, हर्ष, पृथ्वीराज चौहान, रजिया सुल्ताना, नूरजहां, अहिल्याबाई, माधव जी सिंधिया, नसीरुद्दीन हैदर,(अवध), बहादुर शाह जफ़र, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई आदि प्रमुख हैं जिनको आधार बना कर ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अनेकानेक उपन्यासों का सृजन किया है और इनकी विविध चारित्रिक विशेषताओं तथा इसी संदर्भ में तत्कालीन जीवन और युग को चित्रित किया है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि कतिपय ऐसे व्यक्तित्वों की ओर भी भारतीय इतिहास में गौरव के साथ स्मरण किये जाते हैं, इन उपन्यासकारों की दृष्टि ही नहीं गयी। ऐसे व्यक्तित्वों में महावीर, स्वामी, कालिदास, संत कबीर, सूरदास, तुलसीदास, महाराणा प्रताप आदि प्रमुख हैं। आश्चर्य है कि भारतीय इतिहास के ये स्वतन्त्र महान् ऐसे इनकी दृष्टि से ओझल हो सके। विदेशी इतिहास पर आधारित राहुल सांकृत्यायन का एक मात्र उपन्यास "मधुर स्वप्न" उल्लेखनीय है।

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन से यह बात भी प्रकाश में आती है कि हिन्दी उपन्यासकारों ने विशेषरूप से उत्तर भारत तथा उसके सीमांत प्रान्त को ही अपने उपन्यासों का आधार बनाया है, दक्षिण भारत का

इतिहास हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में लगभग नहीं के बराबर चित्रित हुआ है । दक्षिण-भारत के इतिहास से सम्बन्धित मात्र तीन उपन्यास -ब्रज-नंदन सहाय का "लाल चीन", आरिगपुडि का "चन्द्रभिक्षु" तथा गुरुदत्त का "दिग्विजय"- लिखे गये । सम्भवतः इसका कारण हिन्दी उपन्यासकारों की दक्षिण भारत के इतिहास विषयक ज्ञान एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान की कमी है ।

जैसा कि संकेत किया गया है प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों के सामने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तत्व को चित्रित करने का कोई लक्ष्य नहीं था, जन-मन-रंजन ही उनका मुख्य लक्ष्य था, अतः वे अपने अधूरे इतिहास-ज्ञान अथवा ऐतिहासिक तथ्यों को भी मनोरंजक बनाने के लिए अना-वश्यक रूप से विकृत कर देते थे । किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त तथा जयराम दास गुप्त के उपन्यास इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । किन्तु जैसे - जैसे इतिहास संबंधी शोध होती गयी और इतिहास के विषय में विद्वानों की धारणाएं बदलती गयीं, वैसे - वैसे उपन्यासों में इतिहास की सत्यता और वास्तविकता को चित्रित कर मानव जीवन के शाश्वत सत्यों के उद्घाटन का प्रयत्न किया गया । कई उपन्यासकारों ने तो अपनी मौलिक शोध दृष्टि का भी परिचय दिया और इतिहासकारों ने उनकी उस दृष्टि का स्वागत भी किया । अनेक उपन्यासों का तथ्यपूर्ण एवं गम्भीर अध्ययनपूर्ण विस्तृत भूमिकाएं इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं । वृन्दावन लाल वर्मा का "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जिसमें उन्होंने यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि लक्ष्मी बाई अंग्रेजों से विवश होकर नहीं लड़ी, जैसा कि पारसनीस तथा अन्य इतिहासकार मानते हैं, वरन् देश-प्रेम की भावना ने उनको अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया । श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने भी अपने उपन्यास "बेकसी का मज़ार" में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि १८५७ की क्रान्ति जिसे पा [illegible] मात्र सिपाही-विद्रोह कहते हैं, वह मात्र सिपाही-विद्रोह ही नहीं था, वरन् स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किया गया

दिल्ली तथा अन्य प्रान्तों का एक सम्मिलित षड्यन्त्र था । इसी प्रकार सत्यकेतु विद्यालंकार ने "विष्णुगुप्त चाणक्य" में यह शोध परक दृष्टिकोण उपस्थित किया है कि चाणक्य ने नंदवंश का नाश इसलिये नहीं किया कि नंद ने उसका अपमान किया था, वरन् इसलिये किया कि वह सम्पूर्ण भारत को एक शासनतंत्र में ले आकर अखण्ड भारत की स्थापना करना चाहता था और इसमें नंदवंश बाधक था । तो इस प्रकार कई उपन्यासकारों ने शोधपरक दृष्टि से अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की और इतिहासकारों के लिए नयी सामग्री प्रस्तुत की ।

(ख) इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन

इतिहास को उपन्यस्त करने तथा उपन्यास में इतिहास के उपयोग की समस्याओं पर पीछे हमने काफी विचार-विमर्श किया है । हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग अनेक रूपों में किया गया है और इन प्रयोग-रूपों ने शिल्प विधि की दृष्टि से अनेक प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासों को जन्म दिया है । कतिपय उपन्यासों में तो इतिहास का प्रयोग अत्यन्त उत्कृष्ट और कलात्मक रूप में किया गया है, किन्तु कुछ उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग निरा अकलात्मक एवं अनौचित्य रूप में किया गया है जिससे रचना का शिल्पगत सौन्दर्य तो नष्ट हुआ ही है, स्वयं इतिहास भी विकृत हो गया है । नीचे हम कुछ प्रमुख एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों का इतिहास-प्रयोग एवं रचना-शिल्प की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत करेंगे । इन ऐतिहासिक उपन्यासों का चुनाव रचना-गुण तथा लोकप्रियता की ही दृष्टि से नहीं, वरन् इस दृष्टि से भी किया गया है कि ऐतिहासिक उपन्यास -शिल्प के विकास में इन रचनाओं ने कहाँ तक योग दिया है । अपने अध्ययन तथा विवेचन की सीमाओं में हिंदी के जिन ऐतिहासिक उपन्यासों को हमने लिया है, वे इस प्रकार हैं:-

(१) तारा व क्षात्र कुल कमलिनी(१९०२)- किशोरीलाल गोस्वामी

(२) लालचीन(१९१६) - व्रजनन्दन सहाय

(३) गढ़ कुण्डार(१९२९) - वृन्दावन लाल वर्मा

(४) विराटा की पद्मिनी(१९३६)- " " "

(५) झांसी की रानी लक्ष्मीबाई - " " "
(१९४६)

(६) मृगनयनी (१९५०) - " " "

(७) सिंह सेनापति(१९४२) - राहुल सांकृत्यायन

(८) दिव्या (१९४५) - यशपाल

(९) बाणभट्ट की आत्म कथा - हजारी प्रसाद द्विवेदी
(१९४६)

(१०) मुर्दों का टीला(१९४८) - रांगेय राघव

(११) वैशाली की नगरवधू(१९४९) - चतुरसेन शास्त्री

(१२) शतरंज के मोहरे(१९५९) - अमृतलाल नागर

(१) <u>तारा व क्षात्रकुल -कमलिनी-</u>

तीन भागों में लिखित "तारा व क्षात्र-कुल -कमलिनी" (१९०२) उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास के प्रथमोत्थान काल (१८९०-१९१५) के प्रतिनिधि उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों में महत्वपूर्ण है और इतिहास प्रयोग तथा रचना-शिल्प की दृष्टि से उनके अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा किंचित् कलात्मक है । इस उपन्यास के प्रणयन में उपन्यासकार इस बोध के साथ तत्पर रहा है कि वह केवल उपन्यास नहीं वरन् "ऐतिहासिक उपन्यास" का सृजन कर रहा है जिसके लिए इतिहास का आधार लेना आवश्यक होता है ।"तारा" के "निवेदन" भाग में गोस्वामी जी ने लिखा है- "---ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के तत्वांश के साथ ही कल्पना की थोड़ी ही आवश्यकता पड़ती है, पर जहां इतिहास की घटना केवल सत्याभास मात्र और कपोल -कल्पित भासती है, वहां आधार हो, इतिहास

को बाँध कर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार जमा देती है[1]।" अपने उपन्यासों में इतिहास के प्रयोग के सम्बन्ध में "निवेदन" भाग में ही गोस्वामी जी ने यह उद्घोषणा की है कि "हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को "गौण" और अपनी "कल्पना" को मुख्य रखा है, और कहीं कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार भी कर दिया है[2]।"

इस प्रकार, अपनी उद्घोषणा के अनुसार गोस्वामी जी ने "तारा" में भी ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को प्रमुख स्थान दिया है। किन्तु प्रश्न यह है कि ऐतिहासिक घटना को उपन्यस्त करने के लिए जिस प्रकार की कल्पना की अपेक्षा होती है, क्या वह उनमें है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इतिहास अथवा ऐतिहासिक घटनाओं को उपन्यस्त करने के लिए, दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक उपन्यास संरचना के लिए जिस इतिहासमूलक कल्पना की आवश्यकता होती है, वह गोस्वामी जी में नहीं थी और इसी कारण वे किसी उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास का सृजन नहीं कर सके। "तारा" भी इस दृष्टिकोण से उनकी एक कमज़ोर कृति है।

"तारा व क्षत्र-कुल-कमलिनी" की कथा इतिहास-प्रसिद्ध है। अकबर के समय से ही राजपूत राजा आगरे और दिल्ली के बादशाहों के मित्र और सहायक बन गये थे। इन राजपूत राजाओं में जोधपुर के महाराज गजसिंह का [नाम] उल्लेखनीय है। वे जहाँगीर के अनन्य हितैषी और सहायक थे। गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम अमर सिंह था जिनका सम्बन्ध इस उपन्यास से है। पहली रानी अर्थात् अमरसिंह की माता की मृत्यु के पश्चात गजसिंह ने दूसरा विवाह किया। छोटी रानी से दो पुत्र हुए- जसवंत सिंह जो साहित्य के इतिहास में "भाषा भूषण" के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं और अचल सिंह। अचल सिंह की मृत्यु बचपन में ही हो गयी थी। अमर सिंह स्वाभिमानी और उद्धत स्वभाव के थे। उनके इस

१- तारा व क्षत्रकुल कमलिनी, "निवेदन" भाग, सन् १९२४, तीसरी बार।
२- वही।

स्वभाव से असन्तुष्ट होकर गजसिंह ने उन्हें उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और राज्य से बाहर निकाल दिया । अमर सिंह अपने पिता के आदेशानुसार अपनी पत्नी (बूंदी की राजकुमारी) चन्द्रावती और अपनी छः वर्ष की कन्या तारा को लेकर पिता के राज्य से बाहर हो गये, उनके साथ कुछ विश्वासपात्र सरदार भी थे । जिस समय (सन् १६३४ ई०) अमर सिंह ने राज्य-त्याग किया उस समय दिल्ली के तख्त पर शाहजहां शासन कर रहा था। शाहजहां को तख्त प्राप्त करने के लिए अपने भाइयों से बहुत संघर्ष करना पड़ा था और इस पारस्परिक कलह में अमर सिंह ने शाहजहां की बहुत सहायता की थी । शाह-जहां ने अमरसिंह की सहायता का विचार कर उनको तीन हजार सवारों की मनसबदारी और जागीर दी तथा यमुना के किनारे रहने के लिए एक महल भी बनवा दिया । तब से अमर सिंह शाहजहां के विश्वासपात्र बन गये और दरबार में आने जाने लगे । अमर सिंह की पुत्री "तारा" भी शाहजहां की लड़कियों से मिलने-जुलने लगी और शाही महल में आने-जाने लगी । अमरसिंह का शाहजहां का विश्वासपात्र बन जाना बख्शी सलावत खां को अच्छा नहीं लगा और वह उनसे जलने लगा । इधर मुमताज महल की मृत्यु के पश्चात सम्राट बादशाह की दो लड़कियाँ - जहानआरा और रौशनआरा के हाथों खेलने लगी । रौशनआरा औरंगजेब से मिली हुई थी, सलावत खां भी उन्हीं लोगों में शामिल था । जहानआरा दारा शिकोह के पक्ष में थी और हकीम इनायतुल्ला उसका सहायक था ।

"तारा" धीरे - धीरे शाहजहां की बड़ी लड़की जहानआरा की सहेली बन गयी और नवयुवती भी हो गयी । इस बीच उसका विवाह भी उदयपुर के युवराज रायसिंह के साथ निश्चित हो गया । इधर युवराज दारा और बख्शी सलावत खां दोनों की तारा पर कुदृष्टि थी और दोनों तारा को प्राप्त करने के लिए षड्यन्त्र रच रहे थे । तारा भी इन दोनों के षड्यन्त्रों से असावधान नहीं थी और अपनी सहेली रम्भा की सहायता से वह इन बातों को खूब समझ रही थी । इन षड्यन्त्रकारियों से अपनी तथा अपने सतीत्व की रक्षा के निमित्त एक दिन तारा ने अपने भावी पति मेवाड़ युवराज रायसिंह

को पत्र लिखा और आगरा से अपने को निकाल ले जाने की प्रार्थना की । सलावत ख़ाँ, तारा को आगरे से जाने नहीं देना चाहता था और उसके लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचता रहता था । तारा का पत्र पाकर राजसिंह ने अपने मित्र कुशावत तथा ५ सौ विश्वासी सैनिकों के साथ आगरा के लिए प्रस्थान कर दिया और आगरा पहुंच कर महाल-आरा तथा कुशावत की सहायता से षड्-यन्त्र करके ही तारा को लेकर वह मेवाड़ आ गया । जब अमर सिंह को सलावत ख़ाँ के षड्यन्त्रों का ज्ञान हुआ तो उन्होंने शाहजहाँ के भरे दरबार में सलावत ख़ाँ पर आक्रमण कर दिया और उसके कलेजे में कटार भोंक कर उसे मार डाला । क्रोध में उन्होंने शाहजहाँ पर भी आक्रमण किया, किन्तु वह एक तरफ़ झुक गया और बच गया । उस कटार के लगने से पत्थर के खम्भे में की एक बालिश्त चिट्ठी उड़ गयी जिसका निशान आज तक बना है । अमर सिंह के इस व्यवहार से शाहजहाँ ने अपने सिपाहियों से अमरसिंह को पकड़ने के लिए कहा । मार काट मचाते हुए अमर सिंह जब आगरा के किले से निकल रहे थे, तब उनके साले अर्जुन गौड़ ने कुछ सरदारों सहित उन पर आक्रमण किया । उनका घोड़ा किले के बाहर कूदता हुआ मारा गया । अन्त में अमर सिंह और अर्जुन परस्पर लड़ते हुए कट मरे । शाहजहाँ को जब वास्तविकता का पता चला तो उसे बड़ा पश्चाताप हुआ और उसने अमरसिंह की याद में उस फाटक का नाम "अमर सिंह फाटक" रख दिया और वहाँ एक घोड़े की मूर्ति बना दी ।

"तारा या राज-कुल-कामिनी" की कथावस्तु का निर्माण जिन घटनाओं और कार्य-व्यापारों के आधार पर किया गया है उनमें कतिपय घटनाएं तो ऐतिहासिक हैं और कुछ घटनाएं ऐसी हैं जो पूर्णतः काल्पनिक हैं । ऐति-हासिक घटनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है राव अमर सिंह का सलाबत खाँ को भरे दरबार में मार देना तथा स्वयं शत्रुओं के हाथ मारा जाना । अमर सिंह सलाबत खाँ पर जिस कारण रुष्ट हुए थे वह विवाद रहित नहीं है । डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना के म [illegible] सन् १६४४ में जहांआरा के कपड़ों में आग लग गयी जिससे वह स्वयं भी काफी जल गयी थी । अमर सिंह भी उन दिनों बीमारी के कारण दरबार से अनुपस्थित थे । २६ जुलाई को जब वे [illegible] आये तो सलाबत उनको बादशाह के पास ले गया । अमर सिंह चाहे

की सरहद पर झगड़े प्रारम्भ करवाता है तथा अमरसिंह के खिलाफ शाहजहाँ के कान भरता है[1]।

दूसरी मुख्य ऐतिहासिक घटना जिसका उपयोग किशोरीलाल जी ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है वह है मेवाड़ युवराज राजसिंह द्वारा आगरा पर आक्रमण और उपन्यास की तथाकथित नायिका "तारा" का उद्धार। वस्तुतः उपन्यास में राजसिंह से सम्बन्धित प्रसंग शाहजहाँ के समय का न होकर औरंगजेब के समय का है और उसी से सम्बन्धित है। कर्नल टाड के अनुसार मुगल बादशाह औरंगजेब ने मारवाड़ के रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती को अपना बेगम बनाना चाहा, पर स्वाभिमानी राजपूत कन्या ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और सिसोदिया कुलभूषण महाराज राजसिंह को अपने आपको समर्पित कर अपनी रक्षा का संदेश कुल पुरोहित के हाथ भेजा। राजसिंह ने राजकुमारी का पत्र पाकर अपने सामन्त चूड़ावत की सहायता से उसका उद्धार किया और उसे अपनी पत्नी बनाया[2]। ठाकुर दुर्जनसिंह रघुवंशी के अनुसार रूपनगर की उक्त राजकुमारी का नाम रूपवती था[3]। जगदीश सिंह गहलौत के अनुसार उक्त राजकुमारी किशनगढ़ के राजा मानसिंह की बहिन चारुमती थी जिसका विवाह औरंगजेब से तय हो गया था, किन्तु जब उसने महाराणा राजसिंह को पत्र लिखा तो राजसिंह सन् १६६० में सेना सहित किशनगढ़ जाकर चारुमती को ब्याह लाये[4]। राजसिंह से सम्बन्धित प्रसंग में आवश्यक मोड़ देकर तथा उक्त प्रसंग को अमरसिंह तथा उनकी तथाकथित पुत्री "तारा" से जोड़कर किशोरीलाल जी ने अपनी उर्वर कल्पना का परिचय तो दिया है किन्तु उनकी यह कल्पना इतिहाससम्मत कम और वायवी अधिक है। यों एक प्रकार का काल-

---

१- तारा या क्षत्र-कुल-कमलिनी, भाग १, पृ० ७५-८०।

२- टाड:राजस्थान का इतिहास, भाग १(अनु०पं०ज्वालाप्रसाद मिश्र)पृ०३०२-३०५।

३- ठाकुर दुर्जन सिंह रघुवंशी: मेवाड़ का इतिहास([illegible]),पृ० ११९।

४- जगदीश सिंह गहलौत: राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २२५।

कुछ दोष भी कहा जा सकता है । इसी कारण इसमें इतिहास की भावभूमि का अभाव है ।

इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से यदि पूरे उपन्यास पर विचार किया जाय तो इसमें हमें उस ऐतिहासिक भावभूमि का अभाव मिलेगा जो ऐतिहासिक उपन्यासों का एक प्रधान लक्षण है । यद्यपि अधिकांश पात्रों के नाम जैसे,दारा, जहांनआरा, रोशन आरा, अमरसिंह, सलाबत खां, शाहजहां, इनायतुल्ला, रामसिंह आदि ऐतिहासिक हैं किन्तु इनमें ऐतिहासिकता का आरोप लगभग नहीं के बराबर है । दारा शिकोह जिसके लिए इतिहासकारों ने लिखा है कि वह गूढ़ द्रष्टा, ज्ञान का उपासक, सहृदय, उदारचेता , नवीन दृष्टि एवं उच्च आदर्शवाद का संपोषक था[1] उसे गोस्वामी जी ने अत्यन्त कामुक, भाड़ुओं में डूबे रहने वाला, अपनी सगी बहन से भी इश्क करने में न चूकने वाला तथा विलासी चित्रित किया है । यही स्थिति अन्य पात्रों की भी है । जहांआरा, रोशनआरा, सलाबत खां, इनायतुल्ला आदि कोई भी पात्र अपने प्रतिष्ठित ऐतिहासिक व्यक्तित्व के साथ उपन्यास में नहीं आये हैं । किसी में भी अपना व्यक्तित्व नहीं है और सभी उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली मात्र जान पड़ते है । अमर सिंह तथा रामसिंह पर किंचित् ऐतिहासिकता का आरोप किया गया है, किन्तु उपन्यास के अस्वाभाविक वातावरण में उनका ऐतिहासिक व्यक्तित्व डूब सा जाता है । वस्तु-स्थिति तो यह है कि यदि इन पात्रों का नाम बदल दिया जाय तो उपन्यास जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों से भिन्न नहीं जान पड़ेगा ।

उपन्यास के काल्पनिक पात्रों में उपन्यास की नायिका "तारा"और उसकी सहेली रम्भा मुख्य है । यद्यपि उपन्यासकार ने अमर सिंह के निकाले जाने की परि[illegible] पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "देश निकाला और राज्य छूटने से यहां तेजस्वी अमरसिंह कुछ भी विचलित नहीं हुए और कुटुम्ब से अपनी

१- कालिकारंजन कानूनगो: दाराशिकोह, इलाहाबाद ।

रुक्मी चन्द्रावती जो बूंदी के राजा की लड़की थी और अपनी छः वर्ष की कन्या "तारा" को साथ ले पिता के राज्य से चल पड़ी[1]" किन्तु अमर सिंह की "तारा" नाम्नी इस पुत्री का उल्लेख अन्य किसी इतिहास-ग्रंथ में नहीं मिलता। इस प्रकार "तारा" उपन्यासकार की कल्पना की ही उपज है । अपनी इस कल्पित पात्री तारा को भी गोस्वामी जी ने अयथार्थ रूप में ही प्रस्तुत किया है जिसमें मध्यकालीन राजपूत नारी का कोई व्यक्तित्व नहीं है । मेवाड़ जो अपने राजपूती गौरव और शान के लिए इतिहास में प्रसिद्ध रहा हो, उसी की एक बालिका (वह कल्पित ही क्यों न हो) को, कथा के विकासक्रम में गोस्वामी जी ने कामुक मुसलमान आशिकों को लुभाने वाली विलक्षण नारी के रूप में चित्रित किया है । तारा की सखी रम्भा को तो उपन्यासकार ने हरफनमौला बना दिया है जो अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर सकती है । रम्भा का व्यक्तित्व नितान्त अयथार्थ व और काल्पनिक है जिसमें ऐतिहासिकता का कहीं भी संस्पर्श नहीं है । गुलरुख, जोहरा, गुलशन, मोती बाई आदि पात्रों की भी यही गति है ।

ऐतिहासिक वातावरण का आभास देने के लिए गोस्वामी जी ने विवेच्य कृति में जगह-जगह ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु वे [illegible] उपन्यास के शिल्प विधान के सौन्दर्य को न बढ़ाकर उसमें लगे हुए पैबन्द की तरह जान पड़ते हैं । "अमर सिंह और अकबर"[2], "महानिमारा और हकीम इनायतुल्ला"[3], "नूर इराकी"[4] आदि शीर्षकों से दिये गये विवरण ऐसे ही हैं जो ऊपर से लगायी गयी थिग्गी के समान हैं । इस प्रकार के ऐतिहासिक विवरणों के पैबन्दों से न तो किसी उपन्यास में यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण

१- तारा व क्षात्र-कुल-कमलिनी, भाग १, पृ० ८ ।
२- वही, भाग १, सातवां परिच्छेद, पृ० ३८-४२ ।
३- वही, भाग २, पहले परिच्छेद, का प्रारम्भिक भाग, पृ० १-४ ।
४- " भाग ० ३, सत्रहवां परिच्छेद, पृ० ७६-७९ ।

उपस्थित किया जा सकता है और न सही अर्थों में उसे ऐतिहासिक उपन्यास ही कहा जा सकता है। पूरे उपन्यास में ऐय्यारी और तिलस्म से भरी हुई चमत्कारपूर्ण अस्वाभाविक एवं अयथार्थ घटनाओं तथा वातावरण का ऐसा जाल गोस्वामी जी ने बिछाया है कि लगता है कि हम किसी ऐतिहासिक युग के शाही महल में न आकर किसी तिलस्म में आ गये हों। उपन्यासकार ने जन-जीवन को भी कहीं नहीं स्पर्श किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यास लेखन के विकास क्रम की दृष्टि से "तारा व क्षात्र-कुल-कमलिनी" का भले ही महत्व हो, इतिहास प्रयोग की दृष्टि से वह एक सफल रचना नहीं है और ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास-प्रयोग का जो रूप होना चाहिये, वह इसमें नहीं है।

(२) लालचीन

इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से द्वितीय उत्थान काल(सन् १९१६-१९४८)के लेखक ब्रजनन्दन सहाय का ऐतिहासिक उपन्यास "लालचीन"(१९१६) एक निश्चित विकास का द्योतक है और अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से अधिक कलात्मक और सुसंगठित है। इस उपन्यास का कथानक दक्षिण भारत के बहमनी राज्य के सुल्तान गयासुद्दीन बहमनी तथा उसके तुर्क गुलाम लालचीन से संबंधित है। फिरिश्ता के अनुसार उस तुर्क गुलाम का नाम "कुमल चीन" था जब कि एफ० ए० स्टील ने उसका नाम "लालचीन" दिया है[1]। "लालचीन" उपन्यास का कथानक निम्नलिखित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है:-

सन् १३९७ में दक्षिण देश का बादशाह मुहम्मदशाह द्वितीय मर गया और उसका बड़ा लड़का गयासुद्दीन गद्दी पर बैठा। वह सत्रह वर्ष का हठी एवं विवेकहीन युवक था। तुर्की गुलामों का सरदार कुमलचीन (एफ०ए०स्टील तथा उपन्यासकार के अनुसार लालचीन) मुल्क का शासक और राज्य का प्रधान अधिकारी बनना चाहता था, परन्तु गयासुद्दीन ने उसे नियुक्त नहीं किया।

१- देखिये "लालचीन" उपन्यास, पृ० ११८ की पादटिप्पणी।

हाज़िर है । लालचीन ने शीघ्र ही उसकी आँखें निकाल लीं । फिर उसने उसके दरबारियों और सहायकों को भी एक-एक करके बुलाया और सबों को मार डाला ।[1]

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटना को ही उपन्यासकार ने अपने उपन्यास का आधार बनाया है और उसमें नाटकीयता, चरित्र चित्रण आदि का आरोपकर उसे उपन्यस्त किया है । लेखक ने उपन्यास के निर्माण में ऐतिहासिक तथ्यों को प्रायः उसी रूप में प्रस्तुत किया है जिस रूप में वे रहे थे । कहीं - कहीं उसने अवश्य अपनी कल्पना से काम किया है और इतिहास में आवश्यक मोड़ देकर उसे प्रभावशाली बनाया है । उदाहरणार्थ, नये सुल्तान शमसुद्दीन को गद्दी से उतार कर कैद करने के पश्चात् विद्रोही फिरोज़शाह उसकी आँखें नहीं निकलवाता, वरन् उसकी प्रेमिका लालचीन की लड़की कुत्लुग़निगार से शादी करा देता है । इसी प्रकार, लेखक ने लालचीन द्वारा अमीर-उमरावों के वध की घटना को छोड़ दिया है और अमीर-उमरावों की मृत्यु का कारण उनके तथा लालचीन के आदमियों के बीच हुए युद्ध को बताया है । इस प्रकार की कल्पना के लिये ऐतिहासिक उपन्यासकार स्वतंत्र है और इससे इतिहास की भावभूमि में कोई अन्तर नहीं आता, वरन् उसकी तीव्रता और प्रभावशीलता और बढ़ जाती है ।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रमुख पात्र लालचीन, गयासुद्दीन, शमसुद्दीन और फिरोज़शाह ऐतिहासिक हैं और उसी रूप में उपन्यास में आये हैं । लालचीन की पुत्री कुत्लुग़निगार का व्यक्तित्व तो ऐतिहासिक है, किन्तु नाम कल्पनात्मक है। शेष पात्र कुंकुम, शेर अफ़गन, फ़कीर आदि लेखक की कल्पना की उपज हैं । इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने यथार्थवादी दृष्टिकोण से पात्रों का चरित्र चित्रण कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है और उनको मानवीय भावनाओं से सम्मिश्रित कर उनके चारित्रिक अन्य

१- "लालचीन" उपन्यास के पृ० ११८-११९ की सार-[illegible] ।

चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष को प्रदर्शित किया है । चरित्र-चित्रण का ऐसा
सफल प्रयास इसके पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों में नहीं मिलता । उपन्यास-
कार ने दिखाया है कि किस अवस्था में पड़कर स्वामिभक्त लालचीन स्वामि-
द्रोही बन जाता है और किस प्रकार रक्त की प्यासी अपनी स्त्री की उत्तेजना
में पड़कर वह अपने स्वामी का नाश करने को उद्यत हो जाता है, फिर उसकी
स्त्री क्षोभ में पड़कर कोमलांगी होने पर भी कैसी कठोर हृदया हो जाती है
और किन भावों के उदय होने पर कुतुकुन्निसा सिंहासनारूढ़ शत्रु का तिरस्कार
करती है और फिर उसके राज्यच्युत होने पर उसे अपना लेती है । इस प्रकार
उपन्यासकार ने पात्रों के अन्तर्मन के द्वन्द्वों एवं संघर्षों को मनोवैज्ञानिक धरातल
पर प्रस्तुत कर चरित्र चित्रण के क्षेत्र में एक नये दिशा-बोध का संकेत दिया
है ।

इतिहास और कल्पना तत्व के प्रयोग की दृष्टि से "लालचीन" अपने
पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न है । पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों
ने अपने उपन्यासों में इतिहास की आड़ में कुत्सित प्रेम-प्रसंगों, षड्यन्त्रों,
जासूसियों, तिलस्मों और ऐय्यारियों की असम्भाव्य काल्पनिक घटनाओं की
ही संयोजना की है, जबकि इस उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक तथ्य को उसके
यथार्थ रूप में चित्रित करने का लक्ष्य रखा है । और, जहां कहीं उसने काल्पनिक
प्रसंगों की अवतारणा की है, वह ऐतिहासिक सम्भाव्यता से दूर नहीं जान
पड़ती ।

ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक
उपन्यासकारों की भांति व्रजनन्दन सहाय भी असफल रहे हैं । यह विडम्बना
ही तो है कि मुस्लिम संस्कृति एवं वातावरण में पले हुए उपन्यास के सभी पात्र
शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करते हैं और हिन्दू जीवन-दर्शन की बात करते हैं जिससे
मुस्लिम संस्कृति की तनिक भी गंध नहीं आती । कहीं - कहीं तो पात्र हिन्दू
विचारों की व्याख्या और समर्थन भी करने लग जाते हैं । तत्कालीन जीवन,
रहन-सहन, वेशभूषा आदि का समुचित चित्रण उपन्यास में नहीं हो पाया
है जिससे वह [illegible]ार हो गया है ।

किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों से "लालचीन" की तुलना करने पर इसमें कतिपय विशेषताएं संकेतित की जा सकती हैं । गोस्वामी जी के उपन्यासों तथा इस उपन्यास का सम्बन्ध मुसलमानी शासन से है, किन्तु जहां गोस्वामी जी ने मुसलमानों के दुर्गुणों का ही चित्रण किया है, वहां ब्रजनन्दन सहाय ने इस उपन्यास में मुसलमानों के भीतर स्थित मानव और मानवीय भावनाओं का चित्रण किया है । गोस्वामी जी के कथानक इतिहास की ओट में छिपे रहस्यों, जासूसियों, तिलस्मों और प्रेम-प्रसंगों के अंबार हैं जबकि इस उपन्यास का कथानक इतिहास द्वारा अनुमोदित और समर्थित है । गोस्वामी जी ने अपनी उन्मुक्त कल्पना से इतिहास को बुरी तरह विकृत बना दिया है । जिससे इतिहास भी कल्पना जैसा जान पड़ता है, जबकि ब्रजनन्दन सहाय की कल्पना इतिहास को विकृत न कर उसे सम्पुष्ट करती है । किशोरीलाल के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण शिथिल सिद्ध हो जाता है किन्तु पात्रों का परिस्थितिजन्य विकास नहीं हो पाता, जो "लालचीन" की विशेषता है । गोस्वामी जी की भाषा प्रायः पात्रानुसार बदलती जाती है, किन्तु सहाय जी की भाषा प्रायः सर्वत्र एक सी है जिसे एक प्रकार का दोष भी कहा जा सकता है । ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में दोनों व्यक्ति ही असफल रहे हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कतिपय दोषों के बावजूद भी इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से "लालचीन" अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की अपेक्षा अधिक कलात्मक, स्वाभाविक और सुसंगठित है और हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में एक निश्चित विकास का संकेत देता है ।

(४) गढ़ कुण्डार

इतिहास-प्रयोग, शिल्प विधान तथा परिमाण की दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा कृत "गढ़ कुण्डार"(१९२९) अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों की ही अपेक्षा नहीं, परवर्ती अनेक उपन्यासों की अपेक्षा भी एक सम्पन्न ही श्रेष्ठ, सुगठित और कलात्मक रचना है और सही अर्थों में एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

इतिहास प्रयोग अथवा इतिहास को उपन्यस्त करने का जो आदर्श रूप इस उपन्यास में उपलब्ध होता है, वह बहुत कम उपन्यासों में मिलता है । वस्तुतः यह उपन्यास, हिन्दी का प्रथम सफल ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें इतिहास अपनी सभी विशेषताओं सहित जीवन्त हो उठा है ।

"गढ़-कुण्डार" में १४वीं शताब्दी ईसवी के बुन्देलखण्ड के सामन्तीय जीवन और राजनीतिक उथल-पुथल का अत्यन्त ही यथार्थ, सजीव और हृदयग्राही चित्रण हुआ है । वीरता के वैभव के वे अन्तिम दिन थे, किन्तु संयम की कमी तथा उद्देश्य की क्षुद्रता के कारण उस अदम्य वीरत्व का दुरुपयोग किया गया। परिणाम यह हुआ कि कुनीति के राजपूत-खंगार और बुन्देल- आपस में ही जूझ पड़े । "गढ़ कुण्डार" की कहानी खंगारों के पतन और बुन्देलों के अभ्युदय की कहानी है । माहौनी का सोहनपाल बुन्देला अपने भाई द्वारा प्रवंचित और प्रताड़ित होकर सहायता की आशा से सपरिवार इधर-उधर भटक रहा था । पत्नी, पुत्र सहजेन्द्र और पुत्री हेमवती के अतिरिक्त उसके साथ उसका मंत्री धीर प्रधान, मंत्री-पुत्र दिवाकर तथा कुछ सिपाही भी थे । कुण्डारगढ़ के खंगार राजा हुरमत सिंह के राजकुमार नागदेव ने हेमवती के रूप और सौन्दर्य की चर्चा सुन रखी थी । संयोगवश हरि चन्देल की गढ़ी में ठहरे हुए सोहनपाल -परिवार के सम्पर्क में नागदेव आया और हेमवती की सुन्दरता पर मुग्ध और आसक्त हो उठा । नाग के द्वारा सहायता का आश्वासन और कुण्डार गढ़ चलने का निमंत्रण पाकर सोहनपाल -परिवार कुण्डार पहुँचा और वहीं टिक गया । नागदेव की मित्रता कुण्डार के प्रतिष्ठित ब्राह्मण विष्णुदत्त पाण्डे के पुत्र अग्निदत्त से थी । विष्णुदत्त कुण्डार राज्य का शुभचिन्तक, परामर्शदाता एवं ऋणदाता भी था । सहजेन्द्र और दिवाकर में भी वैसी ही अनन्य मित्रता थी वैसी नाग-अग्निदत्त में । अग्निदत्त और नाग की बहन खंगार कुमारी मानवती में प्रेम था। किन्तु नागदेव इस तथ्य से अपरिचित था । इधर परिस्थितिवश अग्निदत्त की बहन तारा तथा दिवाकर के हृदय में भी पुनीत प्रेम का उदय हुआ । मानवती का विवाह-कुण्डारगढ़ के मंत्री के पुत्र राजधर से निश्चित हुआ । राज [illegible] नाग ने अवसर पाकर हेमवती से प्रणय निवेदन किया किन्तु अपनी जातीय

श्रेष्ठता के गर्व में डूबी हुई बुन्देली कुमारी द्वारा वह अपमानित और तिरस्कृत हुआ । अनायास ही मानवती के विवाह का दिन था । उसी रात एक ओर तो अग्निदत्त अपनी बहन तारा का वेश बनाकर मानवती को भगाने की चेष्टा में तत्पर हुआ और दूसरी ओर दूसरी ओर नागदेव, राजधर आदि को साथ लेकर हेमवती का हरण करने के लिए गया । दिवाकर की सतर्कता एवं वीरता से नाग आदि असफल रहे और हेमवती को लेकर सहजेन्द्र और दिवाकर कुण्डारगढ़ से भाग निकले । इधर मानवती की दुर्बलता और अस्थिरता के कारण अग्निदेव लौटते हुए नागदेव द्वारा पहचान लिया गया । जब नागदेव को मानवती और अग्निदत्त के प्रेम-सम्बन्ध का पता चला तो वह भभक उठा और उसने अग्निदत्त की छाती पर लात मारकर कुण्डारगढ़ छोड़ देने को बाध्य किया । अग्निदत्त अपमानित होकर बुन्देलों के साथ मिल गया और प्रतिशोध की तैयारी करने लगा । बुन्देले, खंगारों से चिढ़े तो थे ही, अग्निदत्त का सहयोग पाकर भड़क उठे । बल से पूरा पड़ता न देख छल से काम लेने का निश्चय किया । खंगार सिंह से कहलाया गया कि सोहनपाल सहायता का वचन पाकर पुत्री देने को तैयार हैं । विवाह की निश्चित तिथि को खंगारों ने खूब मदिरापान किया । जब वे अपनापा भी खो चुके तो अवसर पाकर बुन्देलों ने उन पर आक्रमण कर दिया । सभी प्रमुख खंगार मारे गये । मानवती तथा उसके नवजात पुत्र की रक्षा में अग्निदत्त भी पुण्यपाल पवांर द्वारा मारा गया । सोहनपाल का मंत्री धीर भी युद्ध में निहत हुआ । कुण्डार में सोहनपाल का राज्य स्थापित हुआ । बुन्देलों की इस छल नीति से दिवाकर असहमत था, अतएव वह अपने पिता के द्वारा एक मढ़ी में पहले ही बन्दी बना दिया गया था । युद्ध के दिन समय पाकर तारा वहाँ पहुँची और उसने दिवाकर का उद्धार किया । तारा और दिवाकर दोनों में इस भीषण युद्ध की तीव्र प्रतिक्रिया हुई । युद्ध की आग में उनका प्रेम और भी तीव्र हो गया । वर्णाश्रम धर्म की मान्यताओं का विरोध करने का साहस उनमें न था । आत्माओं के ही संयोग से उन्होंने अपने मन को सन्तोष प्रदान किया और सब कुछ त्याग कर जीवन-यापन करने के लिए जंगल को चल पड़े ।

"गढ़ कुण्डार" की मुख्य कथा ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है । हुरमत सिंह, नागदेव, सोहनपाल, धीर प्रधान, विष्णुदत्त, पुण्यपाल, सहजेन्द्र आदि नाम ऐतिहासिक हैं । भाटों के कथनानुसार हेमवती का वास्तविक नाम रूप कुमारी था[1] । गोरे लाल तिवारी ने "बुन्देल खण्ड के संक्षिप्त इतिहास" में इसका नाम "धर्मकुंवरि" दिया है[2]। अपने भाई वीरपाल के द्वारा पदच्युत होकर सोहनपाल का कुण्डार आना, खंगार राजा का विवाह-प्रस्ताव, सोहन पाल की कुमारी के हरण का प्रयत्न, विवाह की निश्चित तिथि पर बुन्देलों द्वारा खंगारों का नाश आदि घटनाएं ऐतिहासिक हैं । ये घटनाएं सन् १[illegible] की बताई जाती हैं । "झांसी गजेटियर" में इस घटना का विवरण इस प्रकार है:- "माहौनी के राजा वीरभद्र([illegible]पाल) ने अपने भाई सोहनपाल के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं किया । असन्तुष्ट सोहन पाल कुण्डार के खंगार राजा नाग के पास सहायता प्राप्ति के लिए गया । नाग ने सहायता का वचन दिया, किन्तु शर्त यह लगाई कि सोहनपाल को उसके साथ खान-पान और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना होगा । इस प्रस्ताव पर सोहनपाल के क्रोध की सीमा न रही, वह तुरन्त खंगार-दरबार को छोड़कर जाने के लिए तत्पर हो गया । उसकी गतिविधि पर दृष्टि रखी गयी । नाग ने उसे बलपूर्वक रोकने का प्रयत्न किया । सोहन पाल ने भागकर धंधेरा देव के वंशज मुकुटमणि चौहान के यहां शरण ली । मुकुटमणि चौहान के अधीन ५०० सैनिकों का एक जत्था था । उसने (नाग के विरुद्ध) सहायता देना अस्वीकार कर दिया और इस विभाग में केवल तटस्थ रहने का आश्वासन दिया । इसके उपरान्त सोहनपाल ने क्रमशः चौहान और कछवाहों से सहायता प्राप्ति का विफल प्रयत्न किया । अन्ततः [illegible] करेरा के जागीरदार पुण्यपाल पंवार ने सहायता का वचन दिया । दोनों ने नाग को उसके राज्य से वंचित करने का षड्यन्त्र रचा । यह राज्य १३ लाख रुपये के मूल्य का था । यह तय हुआ कि सोहनपाल कुण्डार जाकर नाग से विवाह

१- "गढ़ [illegible]ण्डार"-वृन्दावनलाल, भाग [illegible], पृ० ४ ।

२- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास(संवत् १९९०वि०), पृ० १९९ ।

संबंधी प्रस्ताव की स्वीकृति का बहाना करे और राजा तथा उसके संबंधियों को घर निमंत्रित करे । योजना पूरी उतरी और जब नाग अपने बंधुओं तथा मंत्रियों सहित सोहनपाल के घर आया, उन सबका सोहनपाल के संगी साथियों ने विश्वासघात कर वध कर डाला । इस प्रकार सोहन पाल कुण्डार का राजा हो गया और उसने संपूर्ण कुण्डार राज्य पर अधिकार कर लिया । उसने पुण्यपाल और मुकुटमणि को अपना मंत्री नियुक्त किया और पुण्यपाल को अपनी पुत्री ब्याह दी । दहेज में हटौरा गांव दिया और अपने छोटे भाई दयापाल को १ लाख की जागीर लगा दी[1]।"

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण के आधार पर ही वृंदावन लाल जी ने मुख्य कथा का संयोजन एवं संगठन किया है और इतिहास के कंकाल को अपनी कल्पना से मांसल बना कर उसमें रक्त का संचार किया है, किन्तु कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों के संबंध में उनकी भिन्न मान्यता है । जैसा कि परिचय में वर्मा जी ने लिखा है, कुण्डार का अंतिम खंगार राजा हुरमत सिंह था और वह अपने लड़के नागदेव के साथ सोहनपाल की कन्या का विवाह संबंध चाहता था[2]। गोरे लाल तिवारी ने भी "बुन्देल खण्ड का संक्षिप्त इतिहास" में

१- झांसी ए गेजेटियर (यूनाइटेड प्राविंसेज आफ आगरा ए अवध के गजेटियर का २४वां भाग), पृ० १८८-१८९ ("उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा" पुस्तक से उद्धृत) ।

२- गढ़ कुण्डार, परिचय, पृ० २ ।

हुरमत सिंह को ही तत्कालीन खंगार- राजा माना है ।[१] इस प्रकार उस समय कुण्डार का राजा नागदेव नहीं, जैसा किन्गबेटियर" में उल्लिखित है, हुरमत सिंह था । खंगारों के पतन के संबंध में वर्मा जी की धारणा है कि हुरमतसिंह के पुत्र ने उनकी (सोहनपाल) लड़की को जबरदस्ती पकड़ना चाहा, परन्तु यह प्रयत्न विफल हुआ । इसके पश्चात् जब बुन्देलों ने देखा कि उनकी अवस्था और किसी तरह सुधर नहीं सकती, तब उन्होंने खंगार राज्य के पास संवाद भेजा कि लड़की देने को तैयार हैं, साथ ही विवाह की रीति रस्म भी खंगारों की विधि के अनुसार बर्तने की हामी भर दी । खंगार इसको चाहते ही थे । मद्यपान का उनमें अधिकता से प्रचार था । विवाह के पहले एक

१- गोरेलाल तिवारी ने "बुन्देल खण्ड का संक्षिप्त इतिहास" में पृ० १२०-१२१ पर लिखा है:-"----वीरपाल अपने भाई सोहनपाल को गद्दी से उतार कर स्वयं राजा हो गया । उसने सोहनपाल के भरण पोषण के लिए कुछ जागीर दे दी, पर यह बात उसे बहुत बुरी लगी । इससे वह उदास होकर जागीर छोड़ घर से निकल गया । वह कुछ दिनों तक इधर उधर घूमता रहा, पर अन्त में गढ़ कुण्डार आया । यहाँ खूबसिंह खंगार का वंशज हुरमतसिंह राज्य कर रहा था । सोहनपाल ने इससे भाइयों निकालने के लिए सहायता मांगी, परन्तु हुरमतसिंह ने देना स्वीकार न किया । सोहनपाल ने हिम्मत न हारी और अपने उद्योग में लगा रहा ।-----वह धीरे-धीरे लोगों को मिलाने लगा और राजपूत भी दिल से सहायता देने लगे । अंत में उसके पास एक बड़ी सेना हो गयी । उसने पहले हुरमतसिंह से सहायता मांगी थी पर उसने न दी थी । इससे सोहनपाल ने उससे अपना बदला लेना चाहा और अपनी सेना लेकर बेतवा के किनारे डेरा डाल दिया । यहाँ से उसने अपने पुत्र सहजेन्द्र, अपने पुरोहित और धीर नामक प्रधान के साथ गढ़ कुण्डार के राजा हुरमतसिंह के पास दुबारा भेजा । इस समय इसने अपनी साहूकार [illegible] शर्त के पहले पर सहायता देना स्वीकार, पर सोहनपाल की लड़की का विवाह [illegible] के साथ करने का वचन लेना चाहा । इससे सोहनपाल बहुत दुखित हुआ और उसने विक्रमी सं० १३१३ में इस पर आक्रमण कर दी । ----- हुरमतसिंह लड़ाई में हार गया । इससे सोहनपाल ने गढ़ कुण्डार पर अधिकार कर लिया ।

जलता हुआ । बंगारों ने उसमें खूब शराब डाली । तब वे मदमत्त होकर नदी में चूर हो गये, तो बुन्देलों ने उनका नाश कर दिया[1] । वर्मा जी की ये धारणायें अधिक तर्क-संगत और विश्वसनीय प्रतीत होती हैं । बंगारों का भी यही कहना है[2]।

उपन्यास में अग्निदत्त-मानवती -प्रणय प्रसंग, तारा-दिवाकर-प्रेम प्रसंग उपन्यासकार की स्वयं की कल्पनाएं हैं और अग्निदत्त मानवती, तारा तथा दिवाकर उसके द्वारा निर्मित प्रमुख चरित्र हैं । किन्तु मुख्य कथा अर्थात् नाग की प्रणय कथा तथा तत्सम्बन्धित परिणामों से ये प्रसंग और पात्र इतने घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं कि इनको अलग करके मुख्य कथा की कल्पना ही नहीं की जा सकती । संपूर्ण कथा की कलात्मक निर्मिति में ये मात्र योग ही नहीं देते, वरन् वे उसे उसी दिशा में विकसित करते हैं जिस दिशा में उसे जाना चाहिये । युग और जीवन के जिस ऐतिहासिक परिवेश में उपन्यासकार ने इन प्रणय-कथाओं का संगठन किया है, उसी से ये कथाएं उद्भूत होती हुई प्रतीत होती हैं । ~~इस प्रकार की प्रतीति होती है~~ + इस प्रकार की प्रतीति ऐतिहासिक उपन्यास में काल्पनिक प्रसंगों की अवतारणा का एक उत्कृष्ट मापदण्ड है । उपन्यास के अन्य पात्र - अर्जुन, हरिचंदेल, इब्नकरीम तथा अलीबेग और उनसे संबंधित प्रसंग भी काल्पनिक हैं ।

देश काल तथा वातावरण के चित्रण की दृष्टि से वर्मा जी को इस उपन्यास में पर्याप्त सफलता मिली है । १४वीं शताब्दी के बुंदेलखण्ड के जिस सामन्ती युग और जीवन का चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह अपनी संपूर्ण विशेषताओं सहित उपन्यास में अंकित हुआ है । जरा-जरा सी बातों पर तलवारों का खिंच जाना, [illegible] युद्धों का होना, प्रेम, वीरता, शौर्य,

---

१- गढ़ कुण्डार, परिचय, पृ० २ ।

२- वही, पृ० ३ ।

षड्यंत्र, प्रतिहिंसा, आत्माभिमान, मानापमान, अपहरण आदि बातें जो तत्कालीन सामन्तीय जीवन की विशेषताएँ थी, उनका अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के लिए वर्मा जी ने दृश्य-वर्णन, युद्ध-वर्णन, संवाद एवं रीति-नीति सभी में बड़ी सतर्कता से काम लिया है । वातावरण में स्वाभाविकता का आरोप करने के लिए बुंदेली बोली का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है ।

इतिहास-प्रयोग और कथा-निर्माण की दृष्टि से "गढ़ कुण्डार" को निश्चय ही हिन्दी का प्रथम सशक्त उपन्यास कहा जा सकता है जो सभी अर्थों में अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न और श्रेष्ठ ही नहीं, वरन् एक प्रकाशस्तम्भ है ।

(४) <u>विराटा की पद्मिनी</u>

वृंदावनलाल वर्मा का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास "विराटा की पद्मिनी"(१९३६) इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से "गढ़ कुण्डार" से भिन्न है और उपन्यासकार की उर्वर तथा सर्जनात्मक प्रतिभा की श्रेष्ठता का परिचायक है । "गढ़ कुण्डार" की भाँति यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक ऐतिहासिक अथवा ऐतिहासिक रोमांस है जिसमें अनेक कालों की घटनाएँ, जैसा कि लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है, उठाकर एक विशिष्ट काल में रख दी गयी हैं । लेखक के अनुसार घटनाएँ सत्यमूलक हैं, यद्यपि उनमें से कोई इतिहास प्रसिद्ध नहीं है । सभी पात्रों के नाम कल्पित हैं[1] । किन्तु जिस कलात्मकता और शिल्प चातुर्य से लेखक ने उन विभिन्न कालीन घटनाओं को एक में संकलित कर ऐतिहासिकता का परिवेश प्रदान किया है, वह अद्वितीय है ।

कथा इस प्रकार है - पालर में एक दाँगी के घर "कुमुद" नामक अनुपम [illegible] कन्या थी । उसके रूप, शील एवं स्वभाव में कुछ ऐसी

१- विराटा की पद्मिनी(१९३६), परिचय, पृ० २ ।

अलौकिकता थी कि पालर वालों ने उसे देवी दुर्गा का अवतार घोषित कर दिया और दूर-दूर से उसकी पूजा के लिए भक्त लोग आने लगे । पालर के समीप ही पहूज नदी के किनारे दलीप नगर के राजा नायक सिंह का पड़ाव पड़ा हुआ था । देवी के अवतार की बात यहाँ भी पहुँची और कामुक एवं विलासी राजा की सवारी पालर के समीपस्थ भील के किनारे आ टिकी । राजा का दासीपुत्र कुंजरसिंह, सेनापति लोचनसिंह के साथ देवी के अवतार का दर्शन करने के लिए गया और कुमुद का साक्षात्कार कर उसके रूप से अत्यधिक प्रभावित और आकर्षित हुआ । कुमुद ने भी उसे देखा और आशीर्वाद दिया। इसी समय सेनापति लोचनसिंह और कालपी के नवाब अलीमर्दान के सैनिकों से झगड़ा हो गया और इस प्रकार दलीपनगर राज्य और अलीमर्दान के बीच संघर्ष का सूत्रपात हुआ । यहीं पर युद्ध में राजा नायक सिंह भी मरते-मरते बचे । उनके प्राण बचाये देवीसिंह नामक एक बुन्देले वीर ने, जो पालर में अपना विवाह करने बारात के साथ जा रहा था । देवीसिंह भी पर्याप्त आहत हुआ । विवाह रुक गया और पालर की होने वाली वधू पीले हाथ लिये बैठी रही । देवीसिंह राजा के साथ लाया गया और राजा का कृपा पात्र बना । विलास-बर्बर, विक्षिप्त राजा नायक सिंह की मृत्यु के पश्चात् तत्कालीन मंत्री जनार्दन शर्मा ने षड्यन्त्र और कुशलतापूर्ण व्यवहार से देवीसिंह को राजा बना दिया और सेनापति लोचन सिंह को भी अपने पक्ष में कर लिया । कुंजरसिंह अपमानित होकर विद्रोही बन गया और प्रतिशोध लेने के लिए इधर-उधर भटकने लगा । कुछ दिनों तक दलीप सिंह की छोटी रानी ने भी उसका साथ दिया, किन्तु बाद में दोनों का मार्ग अलग-अलग हो गया ।

कुमुद के सौन्दर्य की ख्याति अलीमर्दान के भी कानों में पहुँची और वह उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा । पालर में बेटी को सुरक्षित न समझकर कुमुद का पिता नरपति उसे लेकर विराटा की गढ़ी में रखवाने चला गया और वहाँ नदी के बीचोंबीच स्थित एक पहाड़ी टापू पर बने मंदिर में रहने लगा । विराटा का राजा भी दांगी था । कुछ दिनों बाद रानिया

तो उसकी रक्षा के ध्यान से वहीं रहने लगा । धीरे-धीरे कुमुद और कुंवर में अधिक बातचीत होने लगी और दोनों एक दूसरे की ओर अधिकाधिक आकर्षित होते चले गये, हालांकि कुमुद ने कभी भी अपने हृदय की दुर्बलता कुंवर पर प्रकट नहीं होने दी । घटनावश देवीसिंह और अलीमर्दान दोनों ही विराटा की ओर बढ़े । अलीमर्दान कुमुद को हस्तगत करने के उद्देश्य से विराटा की ओर बढ़ता है और देवी उसकी रक्षा करने के ध्येय से । देवीसिंह चाहकर भी कुमुद और विराटा की रक्षा नहीं कर पाता । विराटा की गढ़ी की रक्षा के लिए दांगियों ने जौहर किया और वीरता के साथ अलीमर्दान की फौज के साथ वे जूझ पड़े । कुंवर ने दांगियों का साथ दिया और अपनी तोपों की मार से मुसलमानों को भून डाला । किन्तु मुट्ठी भर दांगी कर भी क्या सकते थे । कुंवर अपनी तोप का अंतिम गोला दाग कर विदा हेतु कुमुद के पास पहुंचता है । कुमुद का धैर्य छूट जाता है और वह जंगली फूलों की गुंथी हुई माला कुंवर के गले में डालकर उससे लिपट जाती है । इस क्षणिक मिलन के उपरान्त दोनों फिर मिलने के लिए भिन्न-भिन्न पथों पर चल देते हैं । कुंवर सिंह देवीसिंह के साथ लड़ता हुआ मारा जाता है और कुमुद बेतवा की गोद में विलीन हो जाती है । अलीमर्दान पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह देवीसिंह से सन्धि कर लेता है और कालपी लौट जाता है ।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है "विराटा की पद्मिनी" में वर्णित घटनाएं विभिन्न कालों और स्थानों की हैं जिन्हें उठाकर लेखक ने एक सूत्र में संगुम्फित कर दिया है । इसकी मुख्य घटना पद्मिनी (उपन्यास की कुमुद) और कालपी के नवाब से संबंधित है जो एक युग की ऐतिहासिक घटना है । डा० शशिभूषण सिंहल के अनुसार यह घटना सन् १७०० के आस पास की है[1] । विराटा गांव(परगना-तहसील- मौठ, जिला झांसी) की दस्तूर देही, लिखित बन्दोबस्त, सन् १८६९ में इस घटना का उल्लेख है । उर्दू में लिखा है:- "विराटा में

1- डा० शशिभूषण सिंहल: उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा, पृ० ६१ ।

दांगी जाति की पद्मिनी थी । नवाब कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी[1]।" विराटा में पद्मिनी के पैरों के निशान एक पत्थर पर अंकित हैं वहां प्रति वर्ष मेला लगता है । विराटा तथा उसके आस पास के क्षेत्रों में, जहां भी दांगी हैं, यह कथा इस रूप में प्रचलित है:-एक दांगी कन्या थी जो अत्यन्त रूपवती और सुंदर थी तथा आस पास के इलाकों में दुर्गा माता का अवतार समझी जाती थी । उसके रूप और लावण्य की कीर्ति जब कालपी के मुसलमान सरदार के कानों में पहुंची तो वह उसका हरण करने के लिए अपनी सेना लेकर चढ़ आया । विराटा के दांगियों ने अपनी देवी की रक्षा के लिए युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे दी और तथाकथित देवी ने बेतवा की धारा की शरण ली । बाद में एक चट्टान पर उसके चरण चिह्न अंकित करा दिये गये, जहां आज भी प्रतिवर्ष मेला लगता है[2]।

पद्मिनी की उपर्युक्त लोक प्रचलित कहानी में वर्मा जी ने दतिया राज्य की राज्य प्राप्ति संबंधी संघर्ष की कहानी को गूंथ दिया है । नायक सिंह, देवीसिंह, कुंजर सिंह और जनार्दन शर्मा तथा उनसे संबंधित घटनाएं उसी प्रसंग की देन हैं । देवी सिंह का वास्तविक नाम भवानी सिंह था । ये दतिया के महाराजा विजय बहादुर सिंह के दत्तक पुत्र थे । उपन्यास के नायक सिंह, यही महाराज विजयबहादुर सिंह हैं । ये अत्यन्त विलासी और कामी स्वभाव के थे तथा अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहा करते थे । सन्तान की इच्छा से इन्होंने दो विवाह किये, किन्तु कोई पुत्र नहीं हुआ। हां, एक दासी पुत्र अवश्य हुआ जिसका नाम अर्जुन सिंह था । उपन्यास का कुंजरसिंह, यही अर्जुन सिंह है । विजयबहादुर सिंह की मृत्यु पंचमढ़ ग्राम में संवत् १९१४ वि० में हुई । मरते समय उन्होंने कुछ कहना चाहा, किन्तु राज पुरोहित (उपन्यास का जनार्दन शर्मा) ने षड्यंत्र करके यह घोषणा करा दी कि उन्होंने राज्य भवानी सिंह (उपन्यास का देवीसिंह) को दिया है । राजा की छोटी रानी इस षड्यंत्र के विरुद्ध थी और उन्होंने यह प्रण किया कि जब तक राजपुरोहित का

1- डा० शशिभूषण सिंहल: उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा, पृ०६१ ।
2- वही ।

सर काटकर नहीं लाया जायेगा, तब तक वे अन्न नहीं ग्रहण करेंगी । रानी का एक सेवक उसका सर काटकर ले आया, तब उन्होंने अन्न ग्रहण किया[1]।

और यह घटना झांसी के निकट एक ग्राम गोरमछिया की है और पद्मिनी की मृत्यु के लगभग १५० वर्ष बाद की है, न कि ५५ वर्ष बाद की, जैसा कि शशिभूषण सिंहल ने अपनी पुस्तक "उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा" (पृ० ६३) में लिखा है ।

रणा-दूल्हा वाली घटना बहादुरशाह प्रथम(मृत्यु सन् १७१२) के समय की है जिसे वर्मा जी ने देवीसिंह की कथा के साथ सम्बद्ध कर दिया है । एक बार विजयबहादुर सिंह के पिता कालपी के रक्षार्थ मुसलमानों से युद्ध करने गये थे । उधर से ही एक दूल्हा विवाह करके अपनी पत्नी सहित लौट रहा था। युद्ध प्रारम्भ होने पर दूल्हा भी तलवार लेकर मातृभूमि की रक्षा के लिये मैदान में आ कूदा । वह खूब लड़ा और मारा गया । उसके रक्त रंजित मौर, शस्त्र और विवाह के कपड़े आज भी सेंहुड़े (सिंहगढ़) के किले में सुरक्षित हैं[2]।

कल्पित नाम वाले लोचनसिंह का व्यक्तित्व भी वास्तविक है और जैसा कि वर्मा जी ने "विराटा की पद्मिनी" के परिचय में लिखा है, वह बहुत ही उद्दण्ड और लड़ाकू प्रकृति का था[3]।

इस प्रकार "विराटा की पद्मिनी" की कथा का संयोजन विभिन्न कालीन सत्यमूलक घटनाओं को एक साथ में रखकर तथा उन्हें परस्पर संगुम्फित करके किया गया है । किन्तु जिस कौशल और बुद्धि चातुर्य से लेखक ने उन्हें संगुम्फित कर एक में पिरोया है, वह उसके शिल्पगत कला का नमूना है । ऐतिहासिक उपन्यासों की उपयोगिता इस बात में है कि वे जीवन के कुछ स्थायी

१- बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास(गोरेलाल तिवारी),पृ०२०४,विराटा की पद्मिनी,परिचय, पृ०२, तथा उप० [illegible] वृंदावनलाल वर्मा(शशिभूषण सिंहल), पृ०६४ ।

२- डा०शशिभूषण सिंहल: उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा, पृ० ६४ ।

३- विराटा की पद्मिनी, परिचय, पृ० १ ।

मूल्यों का, जो देश और काल दोनों से निरपेक्ष होते हैं उद्घाटन करें ।
"विराटा की पद्मिनी" में अतीत जीवन और वातावरण को सजीवता देने के
साथ ही साथ ऐसे पात्रों की कल्पना की गयी है जो अपनी सप्राणता में शाश्वत
हैं । कुमुद, कुंजरसिंह, नायक सिंह, देवी सिंह, लोचन सिंह, जनार्दन शर्मा,
रामदयाल आदि इसके उदाहरण हैं । ये पात्र बहुत दिनों तक हमारी स्मृति में
जागे रहते हैं । घटनाओं में मनोरंजकता के साथ - साथ सत्यता का भ्रम उत्पन्न
कराने की क्षमता है । विभिन्न घटनाएं परस्पर मिली हुई सी, एक दूसरे
की पूरक हैं । देवत्व की गरिमा से मण्डित कुमुद, कथा का प्रधान आकर्षण है,
जिसे वर्मा जी ने सहज मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर एक पवित्र मानवीयत्व
प्रदान किया है । उसी को लेकर युद्ध का आरंभ भी होता है और अंत भी ।
आरंभ और अंत दोनों में ही नाटकीय आकर्षण है ।

"विराटा की पद्मिनी" की संरचना इतिहास की विभिन्न कालीन
घटनाओं, किम्वदंतियों तथा कल्पना के आधार पर हुई है । यह सब होते हुए
भी लेखक ने अपनी कहानी का जो समय लिया है, उसी के अनुकूल पात्र और
घटनाएं हैं । वह १८वीं शताब्दी ईसवी का प्रारंभिक काल था । मुगल-
साम्राज्य जर्जरप्राय हो चुका था । यद्यपि भारत के शासन की बागडोर फर्रुख-
सियर के हाथों में थी, किन्तु वास्तविक शासन सैयद भाई ही कर रहे थे । ऐसे
समय में जो अव्यवस्था प्रायः उत्पन्न हो जाया करती है, वही हो रही थी।
भारत के सारे नवाब, राजा और सरदार स्वतंत्र हो जाने की चिन्ता में थे ।
अवध, बंगाल आदि सूबों के शासकों में दिल्ली की प्रभुता नाम मात्र की ही
मानी जाती थी । हैदराबाद में आसफजाह स्वतंत्र होने की चेष्टा कर रहा
था । दिल्ली दरबार महत्वाकांक्षी सरदारों का केन्द्र बन गया था । मराठों
और राजपूतों के प्रबल प्रहार के साथ-साथ दिल्ली के सूबेदारों की विद्रोही
प्रवृत्ति ने मुगल-साम्राज्य के विनाश की कड़ी उपस्थित कर दी । कालपी में
मुसलमानों की एक बहुत बड़ी फौज रहती थी और उसके मुसलमान सरदार
का भविष्य सैयद भाइयों के भविष्य से जुड़ा हुआ था । उत्तर और दक्षिण
भारत में एक आग सी सुलगी हुई थी जिसका प्रमुख कारण अन्तिम मुगल
सम्राट औरंगजेब की नीति थी । अनेक राजा और शासक अपने स्वार्थों के लिए

अलग-अलग गुट बनाये हुए थे । केन्द्रीय शासन की निर्बलता तथा उदयोन्मुख राष्ट्रीयता के कारण महाराष्ट्र तथा बुंदेलखण्ड के अनेक राज्य केवल नाम मात्र को अपने को आश्रित समझते थे । सैयद भाइयों के अन्त होने के पश्चात् तो लोग धड़ाधड़ स्वतंत्र होने लगे । पूर्वी बुंदेलखण्ड में महाराजा छत्रसाल की तूती बोलने लगा । मुहम्मद खाँ बंगश उनका विरोध करता फिर रहा था । हैदराबाद का निजाम लगभग स्वतंत्र हो गया था । अब किसी राजा-रजवाड़े को भय नहीं रह गया और वे अपने को स्वतंत्र समझने लगे थे । हाँ, कमज़ोर राज्य, अपने समीप के शक्तिशाली राजाओं से अवश्य भय खाते थे । ज़रा-ज़रा सी बातों पर राजाओं में परस्पर युद्ध हो जाया करते थे । ऐसे ही काल में वर्माजी ने "विराटा की पद्मिनी" की कहानी का संयोजन किया है। कोई भी घटना काल-विरुद्ध नहीं प्रतीत होती, हालांकि वह काल्पनिक हो सकती है । पात्र एवं उनकी चारित्रिक विशेषताएं भी युग के अनुकूल ही हैं । उपन्यास की घटनाएं उस युग की अव्यवस्था, अशान्ति, और अराजकता का जीता-जागता चित्र उपस्थित करती हैं । सामन्तीय व्यवस्था, युद्ध, षड्यंत्र, राजनीति आदि का युगानुरूप चित्रण कर वर्मा जी ने एक यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण उपस्थित किया है जो उनकी कला का एक आदर्श है ।

इतिहास-प्रयोग की दृष्टि से "विराटा की पद्मिनी", "गढ़ कुण्डार" से भिन्न है । "गढ़कुण्डार" में इतिहास, कथाकार को मात्र धातु ही प्रदान नहीं करता, वह एक आकार भी प्रदान करता है जिसको कथाकार अपनी कल्पना से मांसल एवं पुष्ट बनाकर उसमें रक्त का संचार करता है । "विराटा की पद्मिनी" में इतिहास मात्र धातु प्रदान करता है और उस धातु से कथाकार अपनी मनोनुकूल एक सुन्दर, मन को मुग्ध करने वाली मूर्ति गढ़ता है । इस प्रकार "गढ़ कुण्डार" जहाँ एक ऐतिहासिक सत्य है, वहाँ "विराटा की पद्मिनी" एक ऐतिहासिक सम्भावना है, "गढ़ कुण्डार" जहाँ शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है, वहाँ "विराटा की पद्मिनी" ऐतिहासिक रोमांस या काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास है । "गढ़कुण्डार" के [illegible] पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं जबकि "विराटा की पद्मिनी" के सभी पात्रों के नाम काल्पनिक हैं । किन्तु इस [illegible] कल्पना के बावजूद भी, शिल्प की दृष्टि से "विराटा की पद्मिनी"

"गढ़ कुण्डार" की अपेक्षा अधिक कलात्मक है । "कुमुद" ही आकर्षण का प्रधान-केन्द्र है" और सभी प्रमुख घटनाएँ उसी के चारों ओर घूमती हैं । जितनी भी प्रासंगिक कथाएं हैं, वे किसी न किसी रूप में मूलकथा के विकास में सहायता देती हैं । कुमुद के अन्त से ही कथा का भी अन्त होता है और वह उसके पूर्ण और उसके स्थायी प्रभाव छोड़ कर विलीन हो जाती है ।

इस प्रकार "विराटा की पद्मिनी" में इतिहास-प्रयोग की एक दूसरी आदर्श पद्धति का दर्शन होता है जिसमें इतिहास अपनी कतिपय विशेषताओं सहित मुखर हो उठा है ।

(४) झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

"झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई"(१९४६) वृन्दावनलाल वर्मा का तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसका साहित्य-संसार में पर्याप्त स्वागत हुआ है । यह उपन्यास वर्मा जी के १०-१२ वर्षों के सतत श्रम और अनुसंधान का परिणाम है । जैसा कि उपन्यास के नाम से ही स्पष्ट है, यह सन् १८५७ की जन-क्रांति में भाग लेने वाली वीर नारी झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई से संबंधित है । यह शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके लगभग सभी पात्र, घटनाएं और स्थान ऐतिहासिक हैं और उपन्यस्त होकर जीवन्त हो उठे हैं । इस उपन्यास में एक ऐसे युग और जीवन का चित्रण हुआ है जिसको व्यतीत हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए । अतएव वर्मा जी को इस उपन्यास के लिए प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध हो सकी है । लिखित इतिहास के अतिरिक्त वर्मा जी ने इस उपन्यास के लेखन में अपनी परदादी तथा अन्य बूढ़े-बूढ़ियों द्वारा सुनी हुई रानी विषयक कहानियों, मुं० मुरादअली दरोगा तथा अजीमुल्ला द्वारा कथित रानी के संस्मरणों, एवं अन्य अनेक स्रोतों से भी सहायता ली है[1] । यद्यपि इस उपन्यास में वर्मा जी का इतिहासकार, उनके उपन्यासकार से अधिक प्रबल हो उठा है, किन्तु इस प्रबलता के बावजूद भी

१- देखिये, "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास का "परिचय"भाग ।

उपन्यास की रोचकता और सजीवता में कहीं कमी नहीं आई है । इस उपन्यास में इतिहास स्वयं बोलता हुआ तथा अपनी कहानी कहता हुआ जान पड़ता है ।

कतिपय इतिहासकारों की जिनमें दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस प्रमुख हैं, यह धारणा थी कि झाँसी की रानी स्वराज्य के लिए नहीं लड़ी, वरन् गदर के समय अंग्रेजों की ओर से झाँसी का शासन करते हुए उन्हें बाध्य होकर जनरल रोज़ से लड़ना पड़ा । अपनी इतिहास-पुस्तक "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" में पारसनीस महोदय ने लिखा है कि-"इससे अधिक बुरी बात और कौन सी हो सकती है कि जो हिन्दू अबला ब्रिटिश सरकार की उदारता, न्यायप्रियता, और मित्रता पर दृढ़ विश्वास रखे, वही समय के प्रभाव में फँस कर बागी (विद्रोही) समझी जाये[1]।" उक्त पुस्तक में ही एक अन्य स्थल पर पारसनीस ने लिखा है -"यह हम लोगों के दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के अंग्रेज अफसरों ने बिना कुछ सोचे-समझे और बिना कुछ पूछताछ किये ही एक हिन्दू राजघराने की अबला स्त्री को, जो सदा ब्रिटिश सरकार से स्नेह रखने का यत्न करती थी, दुष्ट बागियों और हत्यारों की पंक्ति में बैठा दिया । इसी मिथ्या भ्रम के वश में होकर अंग्रेजों ने निरपराधिनी लक्ष्मी बाई के साथ घोर संग्राम किया। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि महारानी लक्ष्मी बाई अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं थी, किंतु वे अंग्रेजों की आज्ञा से ही और अंग्रेजों ही के लिए झाँसी के राज्य का प्रबंध कर रही थीं, और इस बात की सूचना भी वे समय - समय पर पत्र लिखवाकर सरकार को दे दिया करती थीं, तो भी उनकी सदिच्छा फलवती नहीं हुई - उनके शुद्ध हृदय और सरल व्यवहार का परिचय अंग्रेज सरकार को न मिला - उन्हें अपने निष्कपट मन का उचित फल प्राप्त न हुआ - और अंत में उनको अंग्रेजों से युद्ध करना पड़ा[2]।" इस प्रकार पारसनीस महोदय के अनुसार रानी का शौर्य और उनकी वीरता विवशता की परिस्थिति में उत्पन्न हुई थी।
रानी के विषय में जो प्रचलित जन-भावना है उससे [illegible] धारणा भेद

१- दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस: झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (हिंदी अनुवाद), [illegible]), पृ० ८२ ।

२- वही, पृ० १०६-१०७ ।

नहीं जाती । वृन्दावनलाल वर्मा जी ने बहुत ही प्रामाणिक साक्ष्यों का सहारा लेकर अपने उपन्यास "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" में यह चित्रित तथा प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है कि महारानी लक्ष्मीबाई के हृदय में बचपन से ही पराधीनता के प्रति घृणा और विद्रोह की भावना वर्तमान थी जो समय पाकर सन् १८५७ की जन-क्रांति में और वेगवती हो गयी । अंग्रेजों से उनकी लड़ाई विवशता की न थी, वरन् स्वेच्छा से की गयी स्वतंत्रता की लड़ाई थी । एक प्रकार से वह उस देश व्यापी प्रयत्न का अंग था जिसकी पूर्ति गांधी जी के नेतृत्व में सन् १९४७ में हुई ।

वर्मा जी के उपन्यास "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" की मूल-कथा पारसनीस की इतिहास पुस्तक "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई"(जीवन चरित) में वर्णित तथ्यों पर ही आधारित है, किन्तु दृष्टि-भेद के कारण, जैसा कि उल्लेख किया गया है, दोनों कृतियों की मूल स्थापना में पर्याप्त अन्तर है । पारसनीस के हृदय में यद्यपि रानी के प्रति यथेष्ट सम्मान और आदर की भावना है, फिर भी पता नहीं क्यों वे रानी के शौर्य, वीरता, तेज, कार्य कुशलता आदि को तथा अंग्रेजों के प्रति विद्रोह को विवशता-जन्य मानते हैं । पारसनीस ने अपनी पुस्तक अंग्रेजों के शासनकाल में लिखी है । उस समय के लेखकों की प्रायः यह प्रवृत्ति रही है कि शासन के प्रत्यक्ष विरोध से किंचित बचकर अपनी बात कहते थे । संभव है पारसनीस की स्थापना उसी प्रवृत्ति की देन हो । इसके विपरीत वर्मा जी ने रानी की वीरता, शौर्य, तेजस्विता आदि को स्वाभाविक और जन्मजात माना है और यह प्रतिष्ठित किया है कि उनके इन सभी गुणों के मूल में उनकी स्वातंत्र्य-भावना थी जो किसी विवशता की उपज नहीं थी । इस स्वातंत्र्य-भावना के कारण ही उन्होंने अंग्रेजी-शासन का विरोध किया और उसके विरुद्ध लड़ी । दृष्टि-भेद के कारण ही पारसनीस तथा वर्मा जी द्वारा निकाले गये तथ्यों के निष्कर्षों में भी पर्याप्त भेद है ।

"झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" उपन्यास चार भागों में विभक्त है- ऊषा के पूर्व, उदय, मध्याह्न और अस्त । "ऊषा के पूर्व" में रानी के पति

गंगाधर राव के पूर्वजों का इतिहास, झाँसी राज्य की स्थापना का वर्णन एवं गंगाधर राव की रुचि तथा प्रकृति का उल्लेख है । यह भाग बहुत संक्षेप में भूमिका स्वरूप है । "उदय" में रानी के बाल्यकाल, गंगाधर राव से उनके विवाह और झाँसी आगमन, पुत्र की उत्पत्ति और मृत्यु, राजा द्वारा पाँच वर्षीय बालक दामोदर राव का गोद लिया जाना, राजा की मृत्यु, अंग्रेजों द्वारा दत्तक की अस्वीकृति, और झाँसी राज्य का अंग्रेजी राज्य में विलयन, रानी की प्रतिक्रिया और गुप्त रीति से अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने की तैयारी, रानी की लोकप्रियता तथा झाँसी की जनता द्वारा रानी के प्रयत्नों में योग आदि का वर्णन है। "मध्याह्न" में अंग्रेजों की नीति के फलस्वरूप विभिन्न सैनिक छावनियों में असन्तोष, रानी के सैन्य-संगठन, सिपाही विद्रोह का सूत्रपात, झाँसी की सैनिक छावनी में क्रान्ति, झाँसी पर रानी का पुनः अधिकार तथा शासन-व्यवस्था सागर सिंह डाकू का पकड़ना, झाँसी पर नत्थे खाँ का आक्रमण और उसकी पराजय, ह्यूरोज का झाँसी पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान आदि घटनाएँ वर्णित हैं । "अस्त" भाग में अंग्रेजों का झाँसी पर आक्रमण, रानी द्वारा किले की मोर्चेबन्दी तथा उसकी रक्षा के लिए युद्ध, झाँसी के स्त्री-पुरुषों की वीरता एवं उनका आत्मबलिदान, रानी की पराजय तथा अंग्रेजों द्वारा झाँसी की लूटमार, रानी का झाँसी छोड़कर कालपी के लिए पलायन, कालपी में पेशवा की सेना लेकर पुनः अंग्रेजों से युद्ध और पराजय, ग्वालियर पर पेशवा का अधिकार और अंग्रेजों का वहाँ पर भी आक्रमण, युद्ध करते हुए रानी का आहत होना तथा बाबा गंगादास की कुटी में मृत्यु आदि घटनाओं का अंकन है ।

उपर्युक्त सभी घटनाएं और प्रसंग, जिनका उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में समावेश किया है, इतिहासानुमोदित हैं[1] और उपन्यासकार की कल्पना द्वारा नाटकीय गति एवं मोड़ पाकर जीवन्त हो उठी है । झाँसी

१- रानी विषयक अधिकांश घटनाओं का विवरण पारसनीस ने अपनी पुस्तक "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई"(प्रकाशक-साहित्य भवन प्रा०लि०, इलाहाबाद सन् १९६४) में विस्तार से दिया है ।

की रानी लक्ष्मीबाई तथा महाराज गंगाधर राव के अतिरिक्त अन्य अनेक पात्र जैसे बाजीराव, मोरोपंत, रामचन्द्र देशमुख, नाना भोपटकर, रघुनाथसिंह, जवाहर सिंह, तात्या टोपे, भाऊ बख्शी, खुदाबख्श, गौस खाँ, मेजर एलिस, नवाब अलीबहादुर, पीर अली, दूल्हाजू, सुन्दर, मुन्दर, काशी बाई, जूही, झलकारी आदि ऐतिहासिक तथा इतिहास समर्थित हैं और उपन्यासकार द्वारा अपने असली रूप में उपस्थित किये गये हैं। लेखक ने स्थानों तक का वास्तविक विवरण देने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि यहाँ जो इस प्रकार का कोरा इतिहास है वहाँ पर्याप्त इतिवृत्तात्मकता आ गयी है और औपन्यासिकता दब गयी है। "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" उपन्यास के कुछ भाग जैसे १, २, ५, ८, १०, ३१ तथा ८४ प्रकरण ऐसे हैं जिन्हें शुद्ध इतिहास कहा जा सकता है। यद्यपि कथा के लिए इन इतिवृत्तात्मक वर्णनों की अपेक्षा है किन्तु जिस रूप में इन्हें लिया जाना चाहिये था, नहीं लिया गया। कथाकार को ऐतिहासिक तथ्यों का उतना ही और उसी रूप में उपयोग करना चाहिये जिससे कथात्मकता बनी रहे। उपन्यास में अत्यधिक ऐतिहासिक विवरण कभी-कभी उसकी कथात्मकता में बाधक बन जाते हैं। ऐसा होते हुए भी वर्मा जी अपनी ऐतिहासिक सामग्री को कथात्मक रूप देने में पर्याप्त सफल हुए हैं। महाराज गंगाधर राव के शासन और स्वभाव, रानी की लोकप्रियता और शासन-कुशलता, झाँसी की तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थिति आदि का दिग्दर्शन कराने के लिए लेखक ने छोटे-छोटे प्रसंगों की उद्भावना की है। इस प्रकार संपूर्ण उपन्यास "इतिहास के रंग-रेशे से सम्पन्न" है और लेखक ने इतिहास के कंकाल में अपनी इतिहासमूलक कल्पना से रक्त और मांस का संचार कर उसे एक सजीव, श्रेष्ठ और सफल कलाकृति का रूप दे दिया है।

उपन्यास की मूल कथा का आरम्भ रानी के बचपन से होता है और उसका अंत उनकी मृत्यु से हो जाता है। इस प्रकार यह उपन्यास महारानी लक्ष्मी बाई की जीवन-कथा है। उनके चरित्र के विकास में आवश्यक सामग्री लेकर तथा अपनी कल्पना से उसमें रंग भर कर वर्मा जी ने एक ऐसे शक्तिशाली

यद्यपि प्रस्तुत उपन्यास में इतिहास की अथवा यों कहें कि लक्ष्मी बाई के जीवन और व्यक्तित्व की शोध के आधार पर वास्तविक रूप में रखने का कलात्मक प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही साथ उसमें वीर-पूजा की भावना भी प्रबल है। रानी के प्रति वीर-पूजा की इस भावना के कारण भी उनका जीवन आदर्शमय एवं वीरता से उत्प्रेरित चित्रित किया गया है तथा वे १८५७ की देश-व्यापी क्रान्ति की व्यवस्थापिका के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। वस्तुतः वे वीर थीं भी। जनरल रोज़ ने, जो रानी के मुकाबले में अंग्रेज़ी फ़ौजों का जनरल था, लिखा है कि वे क्रान्ति के नेताओं में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट वीर थीं[1]। लक्ष्मी बाई के जीवन से संबंधित होने के कारण उपन्यास की अधिकांश घटनाएं इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती रहती तथा मंडराती रहती हैं। यही कारण है कि पूरा उपन्यास सुगठित एवं सुनियोजित है। आधिकारिक कथा को विकसित करने के लिए तथा तत्कालीन जीवन एवं समाज का चित्र अंकित करने के लिए वर्मा जी ने बहुत से प्रसंगों की उद्भावना की है। अपने पूर्व उपन्यासों की भांति रोचकता लाने के लिए कई प्रेम कथाओं की भी उद्-भावना वर्मा जी ने की है। इनमें से कुछ तो जनश्रुति पर आधारित हैं और कुछ नितान्त काल्पनिक हैं। ये आदर्श प्रेम के उदाहरण हैं। इनमें से मोतीबाई-खुदाबख़्श का प्रेम, जूही और तात्या टोपे का प्रेम, सुन्दर और रघुनाथसिंह का प्रेम तथा नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन का प्रेम उल्लेख-नीय है। जूही-तात्या की प्रेम कहानी वास्तविक घटना है और सुन्दर-रघुनाथ सिंह तथा मोतीबाई-खुदाबख़्श की प्रेम-कथाएं वर्मा जी की स्वयं की कल्पना हैं[2]। नारायण शास्त्री तथा छोटी भंगिन की कहानी जनश्रुति पर आधारित है। छोटी का असली नाम मक्खिया था[3]। मूल कथा को विकसित

---

1. "She was The best and The bravest of them all."
("झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास के परिशिष्ट १ की पाद टिप्पणी से उद्धृत)।

२- डा० शशिभूषण सिंहल की पुस्तक "उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा" के पृ० ११६ पर उद्धृत वर्मा जी के पत्र आधार पर।

३- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई (उपन्यास), परिशिष्ट, पृ० ४०१।

करने तथा उसमें एक रोचकता और चारुता उत्पन्न करने में इन प्रेम-कथाओं का विशेष हाथ है ।

यह उपन्यास वर्मा जी के पूर्ववर्ती उपन्यासों "गढ़ कुण्डार" तथा "विराटा की पद्मिनी" से कुछ अर्थों में भिन्न है ।"गढ़ कुण्डार" तथा "विराटा की पद्मिनी" के चित्रपट अपेक्षाकृत छोटे हैं । उनमें एक उपजाति का अन्य उपजातियों के साथ का वर्णन है । उनकी घटनाएं बुंदेलखण्ड तक ही सीमित हैं । किन्तु "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" का चित्रपट विस्तृत और विशाल है, और उसमें प्रान्त विशेष के नहीं, वरन् संपूर्ण राष्ट्र के एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान का वर्णन है । अतएव जो विशालता एवं महत्ता इस उपन्यास में है वह उपर्युक्त अन्य दोनों उपन्यासों में नहीं आ पाई है । उनमें कहानी कहने की प्रवृत्ति प्रबल है, इसमें एक निश्चित धारणा का प्रतिपादन अभीष्ट है । उनमें सामन्त-प्रेरित शक्ति-दाप का वर्णन है, इसमें जाति और देश को मुक्त कराने की एक व्यवस्थित योजना है । उनमें नारी का रूप-यौवन युद्ध का कारण बना है, इसमें शक्तिमती नारी ने युद्ध का संचालन किया है[1]। "झांसी की रानी" उक्त दोनों उपन्यासों से इस अर्थ में भी भिन्न है कि उन दोनों उपन्यासों में जन-जीवन लगभग नहीं के बराबर चित्रित हुआ है, जबकि इस उपन्यास में लेखक ने झांसी के जन-जीवन को भी सूक्ष्मता से अंकित किया है । नारायण शास्त्री तथा छोटी भंगिन के प्रेम-प्रसंग पर राजदरबार और जन-समाज की प्रतिक्रिया, कोरू के लिए जूतों का आंदोलन, "हल्दी कुंकुं" पर्व पर रानी तथा झांसी की सामान्य स्त्रियों का मनोरंजन, झांसी के निवासियों का रानी के अनुष्ठान में योग, जमींदारी प्रथा का प्रचलन, पंचायतों का अंत, कानूनी अदालतों की स्थापना आदि का चित्रण कर वर्मा जी ने तत्कालीन जन-जीवन के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्षों पर भी प्रकाश डाला है । इस प्रकार इतिहास अपनी संपूर्णता के साथ इस उपन्यास में उपस्थित हुआ है ।

१- श्री शिव नारायण श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास(परिवर्द्धित संस्करण), पृ० १९३ ।

देशकाल तथा तत्कालीन वातावरण के चित्रण में वर्मा जी अन्य उपन्यासों की भांति इस उपन्यास में भी पूर्ण सफल रहे हैं । तत्कालीन युग की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है । अंगरेजों की कूटनीति, अंगरेजी छावनियों का वातावरण, झांसी के पर्व और उत्सव, अनेक्स के लिए युद्ध-आन्दोलन, छोटी और नारायण शास्त्री के अनुचित संबंध पर जनता की उत्तेजना, अंगरेजों द्वारा झांसी के हड़प लिये जाने पर जन-साधारण की प्रतिक्रिया आदि का बड़ा ही यथार्थ और स्वाभाविक वर्णन हुआ है । युद्धों के चित्रण में तो वर्मा जी अत्यन्त ही कुशल है । किले की मोर्चेबंदी तथा पुराने ढंग के युद्धों का उन्हें बहुत ही अच्छा ज्ञान है । यही कारण है कि जहां कहीं भी उन्होंने युद्धों का वर्णन किया है वहां युद्ध-चित्र उपस्थित हो गया है । क्रान्तिकारी व्यक्तित्व तथा रानी के चरित्रों के माध्यम से वर्मा जी ने स्थान-स्थान पर भारतीय संस्कृति की झांकी भी दर्शाई है । यथार्थता की प्रतीति के लिए बीच बीच में बुंदेली बोली का भी प्रयोग किया गया है ।

इसप्रकार, इतिहास-प्रयोग तथा शिल्प-विधान दोनों दृष्टियों से "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" वर्मा जी की कला का एक श्रेष्ठ आदर्श है और कथा संगठन, चरित्रांकन, यथार्थ वातावरण निर्माण आदि की दृष्टि से एक उत्कृष्ट उपन्यास है । इसमें इतिहास अपने विविध पक्षों सहित मुखर हो उठा है और अपनी कहानी स्वयं कहता हुआ जान पड़ता है ।

(६) मृगनयनी

श्री वृंदावनलाल वर्मा कृत"मृगनयनी"(१९५०) उपन्यास उनकी सभी कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और इतिहास -प्रयोग, कथा-संगठन, चरित्रांकन, वातावरण, जीवन-दर्शन आदि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास वस्तुतः हिंदी साहित्य की एक अमूल्य निधि है । इस उपन्यास में न केवल इतिहास अपने विविध पक्षों सहित मुखरित हो उठा है, वरन् एक स्वस्थ जीवन दर्शन भी इसमें प्राप्त होता है । इतिहास, परम्परा और किम्वदंतियों को मिलाकर अपनी कल्पनात्मक एवं वास्तविक कल्पना द्वारा युग और जीवन का जो चित्र इस उपन्यास में लेखक ने खींचा है, वह अद्वितीय है ।

"मृगनयनी" की कहानी राई गाँव की गूजर कन्या मृगनयनी और ग्वालियर के तोमर शासक मानसिंह(सन् १४८६-१५१६ ई०) के प्रणय, वीरता एवं कर्तव्य की कहानी है । अंग्रेज इतिहासकारों ने मानसिंह के शासनकाल को तोमर-शासन का स्वर्णकाल माना है । उसके राजत्वकाल में ग्वालियर पर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर लोदी ने पाँच बार आक्रमण किया, किंतु उसे सफलता न मिली । ग्वालियर विजय की कामना से ही उसने आगरा बसाया और बहुत प्रयत्नों के बाद ग्वालियर राज्यान्तर्गत नरवर को ले सका। मालवा का विलासी सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी और गुजरात का शासक महमूद बघर्रा भी ग्वालियर पर दाँत लगाये रहते थे । किंतु मानसिंह इतना वीर, कर्तव्यनिष्ठ एवं जागरूक था कि उसके राज्यकाल में ये मुसलमान प्रति-पक्षी ग्वालियर को एक बार भी पराजित नहीं कर सके । इन ऐतिहासिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में ही मृगनयनी और मानसिंह के प्रणय एवं वीरता कीकहानी विन्यस्त की गयी है ।

"मृगनयनी" की कथा का संगठन और संयोजन एक मुख्य कथा तथा अनेक प्रासंगिक कथाओं के संयोग से हुआ है । मुख्य कथा है मृगनयनी और राजा मानसिंह के प्रणय, विवाह, कर्तव्य और वीरता कीऔर प्रासंगिक कथाएं हैं- लाखी और अटल के प्रेम और वीरता की कथा, गयासुद्दीन-नसीरुद्दीन-विवाद-प्रसंग, महमूद बघर्रा का आक्रमण तथा उसका भाडुरी भोजन-प्रसंग, नटों की कहानी, राजसिंह-कला-बैजू-बावरा प्रसंग, विजय जंगम और बोधन पुजारी का प्रसंग तथा सिकन्दर लोदी का ग्वालियर आक्रमण-प्रसंग। इनके अतिरिक्त और भी अनेक छोटे-मोटे प्रसंग हैं जो कथानक निर्माण में योग देते हैं । यहाँ वर्णित किया गया है, इनमें से कुछ तो ऐतिहासिक हैं, कुछ जन-श्रुतियों [illegible] पर आधारित हैं और कुछ लेखक की कल्पना की उपज है ।

मानसिंह तोमर के साथ मृगनयनी का विवाह एक ऐतिहासिक सत्य है [illegible] आज भी मानसिंह द्वारा निर्मित ग्वालियर किले के भीतर के गूजरी महल और मान मंदिर दे रहे हैं । गूजरी महल का निर्माण मानसिंह

ने अपनी प्रिय रानी मृगनयनी के लिये बनवाया था जो गूजर जाति की थी । किंतु मानसिंह और मृगनयनी विषयक व अन्य प्रसंग जनश्रुति और कल्पना पर आधारित हैं । तोमरों और गूजरों में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार और एक बार तोमर वंशीय राजा मानसिंह किले के दक्षिण-पश्चिम में स्थित राई गांव की ओर शिकार खेलने गये । गांव में अकस्मात उस दिन दो भैंसों का द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था । भीड़ जमा थी, पर इन भैंसों को कोई अलग नहीं कर पा रहा था । मार्ग रुका हुआ था । कुछ गूजर पनिहारिनियां भी पानी भर कर लौटती हुई सिर पर घड़े लिये तमाशा देख रहीं थीं । भैंसे लड़ते-लड़ते भीड़ में आ गये । यह देखकर एक अत्यन्त सुन्दर और बलिष्ठ गूजर कन्या ने आगे बढ़कर अपने हाथों से भैंसों के सींग पकड़ कर उन्हें अलग कर दिया । भैंसे भाग खड़े हुए । भीड़ स्तब्ध हो गयी । राजा भी एक ओर खड़ा यह सब देख रहा था । वह भी चकित हो गया । गूजरी की शक्ति, उसके विकट साहस और सबसे अधिक उसके अप्सरा विनिन्दित रूप-सौंदर्य ने राजा को मुग्ध कर दिया। राजा, कन्या के गुणों से प्रभावित हो उसके सौंदर्य की ओर आकर्षित हुआ। उसने गूजरी कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया । उस कन्या ने शर्त रखी कि राई गांव के झरने का मीठा जल महल तक पहुंचाने का प्रबंध कर दिया जाय तो वह विवाह कर सकती है, क्योंकि राई गांव का पानी पीकर ही उसने यह शक्ति प्राप्त की है । राजा ने शर्त मान ली और विवाह हो गया । गूजरी रानी का नाम मृगनयनी रखा गया।और, शर्त के अनुसार राजा ने राई गांव के झरने का पानी किले तक लाने के लिए जमीन के भीतर मिट्टी के नल लगवाये जिसके अवशेष अब भी मिलते हैं[1]। इस जनश्रुति को वर्मा जी ने "मृग नयनी" में किंचित परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है और अपनी इतिहास मूलक कल्पना द्वारा विकसित कर तथा मोड़ देकर इसे ऐतिहासिक यथार्थता प्रदान की है । विवाह के पूर्व के मृगनयनी विषयक सभी प्रसंग, जैसे मृगनयनी

१- ग्वालियर (सूचना विभाग,मध्य भारत, ग्वालियर),पृ० ११-१२; मृगनयनी, भार[illegible], पृ० १ ।

(निन्नी) का एक ही बाण में नाहर को मारना, मृगनयनी और लाखी द्वारा मांडू के सिपाहियों का वध, आदि काल्पनिक हैं। मृगनयनी के अतिरिक्त राजा मानसिंह के आठ रानियों का होना तथा मृगनयनी का अपने पुत्रों राजे और बाले को राज्याधिकारी न बनाकर बड़ी रानी के पुत्र विक्रमादित्य को राज्याधिकारी बनाना भी जनश्रुतियों पर आधारित हैं[1]। किंतु बड़ी रानी द्वारा मृगनयनी को विष दिया जाना लेखक की कल्पना की उपज है।

प्रधान प्रासंगिक कथा-अटल और लाखी की प्रेमकथा भी जनश्रुति पर आधारित है। राई गांव के आस पास के गूजरों में यह जनश्रुति प्रचलित है कि मृगनयनी के भाई ने किसी अहीरिन से विवाह किया था। राई गांव के लोगों ने इस अन्तर्जातीय विवाह का विरोध किया था जिसके कारण मृगनयनी के भाई और उसकी अहीरिन पत्नी नरवर होते हुए ग्वालियर जा पहुंचे थे। बाद में मानसिंह ने राई के निकट एक गढ़ी बनाकर उसे उसका अधिपति बना दिया था[2]। अटल और लाखी की प्रेमकथा इसी जनश्रुति पर आधारित है और वर्मा जी ने अपनी कल्पना द्वारा इसमें सहज मानवीयता, प्रेम, वीरता और कर्तव्य का आरोप कर तथा घटनाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान कर एक मार्मिक प्रेमकथा बना दिया है। अटल और लाखी के मार्ग में अड़चन डालने वाले तथा बहकाने वाले नटों के षड्यंत्र की घटना वास्तविक अटल से संबंध नहीं रखती। इस घटना का विकास नरवर में प्रचलित अन्य काल की एक किम्वदंती से किया गया है। कहा जाता है कि कई शताब्दियों पूर्व एक बार नरवर का किला दुश्मनों द्वारा घेर लिया गया। राजा सामने की पहाड़ी पर स्थित अपने मित्रों को कच्ची रस्सी द्वारा पत्र भेजकर उसकी सूचना देना चाहता था जो बहुत ही कठिन कार्य था। ऐसा करने वाले के लिए राजा ने आधा राज्य पुरस्कार में देने की घोषणा कर दी। एक नटिनी ने यह कार्य हाथ में लिया। कठिन प[illegible] के बाद वहां पत्र पहुंचाकर जब वह लौट रही थी कि राजा के एक

१- मृगनयनी, परिचय, पृ० ६ ।

२- डा०शशि [illegible] सिंहः उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ५८ ।

सरदार ने राजा की नियत खराब कर दी जिससे राजा ने रस्सी काट दी और नटिनी गिरकर चूर-चूर हो गयी[१]। वर्मा जी ने इस किंवदंती का उपयोग दूसरे प्रकार से किया है और इसे पिल्ली, पोटा तथा नायकिन के षड्यंत्रों से संबंधित करके अटल और लाखी के प्रसंग से जोड़ दिया है ।

गयासुद्दीन-नसीरुद्दीन -प्रसंग, महमूद बघर्रा के ग्वालियर पर आक्रमण तथा उसके भोजन का प्रसंग तथा सिकन्दर लोदी का ग्वालियर-आक्रमण-प्रसंग ऐतिहासिक तथ्य हैं और उपन्यास की कथा को ऐतिहासिक परिपार्श्व प्रदान कर अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं । मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी ने नरवर को लेने के लिये उस पर आक्रमण किया था, लेकिन उसे बुरी तरह हार खानी पड़ी थी । राजसिंह कछवाहा जो नरवर का दावेदार था, वह भी नरवर को लेने के लिये षड्यंत्र रचा करता था । वर्मा जी ने गयासुद्दीन के नरवर-आक्रमण के प्रसंग को लाखी से जोड़कर, जो उस समय नरवर में थी, आक्रमण के औचित्य को प्रदर्शित किया है । राजसिंह द्वारा गयासुद्दीन की सहायता करना भी प्रसंग के औचित्य की सार्थकता को सिद्ध करता है । गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लड़का नसीरुद्दीन सन् १५०० ई० में मालवा की गद्दी पर बैठा । उसने अपने पिता से सिंहासन उसे विष द्वारा मार कर हस्तगत किया था । यह अत्यन्त ही विलासी, कामुक और प्रजापीड़क था तथा हमेशा शराब में डूबा रहता था । कहा जाता है कि उसके रनिवास में १५००० स्त्रियां थीं । १५१० ई० में वह एक दिन शराब के नशे में एक तालाब में डूब कर मर गया[२]। वर्मा जी ने इस ऐतिहासिक तथ्य को कल्पना के रंग से रंगकर नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया है और तत्कालीन बादशाहों और सुल्तानों की विलासिता और मनोवृत्ति का एक सुंदर चित्र खींचा है । किंतु इस प्रसंग को वे मूलकथा से मिला नहीं सके हैं जिससे यह अंश बीच में चिपका हुआ पैबंद जैसा जान पड़ता है । महमूद बघर्रा के ग्वालियर-आक्रमण -निरसन तथा उसके बहुत

१- किशोर(पटना), मार्च १९६० में प्रकाशित डा०कृष्णदेव दुबे का लेख-नरवर गढ़, मृगनयनी, परिचय, पृ० ६ ।

२- डा०ईश्वरी [illegible] का [illegible] इतिहास(१९५९),पृ०१०६ ।

खाने का प्रसंग भी ऐतिहासिक है । वह जितना कलेवा और भोजन करता था, वह फारसी की तारीख"मीराते सिकन्दरी" में दर्ज है । इलियट और डाउसन ने इसका अनुवाद किया है[1]। डा० ईश्वरी प्रसाद ने "मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास"(१९५२) में "मीराते सिकंदरी" में वर्णित उसके भोजन-प्रसंग को उद्धृत करते हुए उसके स्वभाव और असीम भूख की चर्चा की है[2]। बघरी का ग्वालियर आक्रमण -निरंजन की मृगनयनी और लाखी की प्राप्ति से सम्बद्ध कर लेखक ने प्रसंग के औचित्य को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उपस्थित किया है और इसी संदर्भ में तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का सम्यक चित्र खींचा है । दिल्ली सुल्तान सिकन्दर लोदी का ग्वालियर-आक्रमण -प्रसंग"मृगनयनी" में वर्णित एक प्रमुख ऐतिहासिक प्रसंग है और मूलकथा के विकास में इसका विशेष योग है । ग्वालियर का कबूर निकालने में सिकन्दर ने कोई कसर नहीं लगाई । सिकन्दर ने ग्वालियर पर पांच बार आक्रमण किया, किन्तु पाँचों बार उसे मानसिंह के सामने से लौट जाना पड़ा । अंत में सिकंदर को सन् १५०४ में आगरे का निर्माण इसी मानसिंह तोमर को पराजित करने के लिये करना पड़ा[3]। फिर भी, सिकंदर

१- मृगनयनी, परिचय, पृ० ४ ।

२- "महमूद बीघड़ा(१४५८-१५११ई०) को हम गुजरात का सबसे प्रसिद्ध बादशाह कह सकते हैं ।"मीराते सिकन्दरी" के रचयिता ने इन शब्दों में उसके स्वभाव का रोचक वर्णन किया है-" राजसी ठाट-बाट और शान शौकत होने पर भी उसकी भूख प्रबल थी । सुल्तान के लिए गुजराती तोल का १ मन भोजन नियत था जिसमें ५ सेर भात सम्मिलित होता था । सोने के पूर्व वह तैयार कराकर अपनी चारपाई के आधा एक ओर आधा दूसरी ओर रखवाता था जिससे जिस ओर उसकी नींद खुले, उसे उस ओर ही उसको खाने को मिल जाय और फिर खा कर वह तुरन्त सो जाय । प्रातःकाल नमाज पढ़ने के बाद वह एक प्याला शहद, एक प्याला मक्खन और सौ-डेढ़-सौ सुनहले रंग के केले खाता था। वह बहुधा कहा करता था कि "यदि भगवान महमूद को गुजरात का बादशाह न बनाता तो उसकी क्षुधा को कौन शान्त करता ।"
-मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १७९ ।

३- डा० ईश्वरी प्रसाद "मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास", पृ० २५५ ।

ग्वालियर को नहीं ले सका । अंत में सन् १५०६ में उसने ग्वालियर पर घेरा डालकर ग्वालियर राज्यान्तर्गत नरवरगढ़ पर चढ़ाई कर दी । नरवर पर दावा राजसिंह कछवाहा का था । राज सिंह ने इस आक्रमण में सिकन्दर का साथ दिया तो भी नरवर गढ़ वाले ११ महीने तक लगातार युद्ध करते रहे । अंत में जब खाने को कुछ नहीं रह गया तो उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया । सिकंदर ने अपने मन की बकस वहां के मंदिरों और मूर्तियों को तोड़कर निकाली और राजसिंह को वहां का जागीरदार नियुक्त कर दिल्ली लौट गया[1]।

"मृगनयनी" में राजसिंह-कला-बैजू-बावरा प्रसंग इतिहास, जनश्रुति और कल्पना तीनों पर आधारित है । नरवर का राज्य पहले कछवाहों के अधिकार में था, किंतु सन् १३९८ में तोमर राजपूतों ने उसे अपने अधीन कर लिया और सन् १५०६ तक वह उनके अधीन रहा । मानसिंह के समय में नरवर के दावेदार राजसिंह कछवाहा ने, जो चंदेरी में रहता था, नरवर को लेने के लिए मानसिंह के विरुद्ध गयासुद्दीन खिलजी और सिकंदर लोदी की सहायता की । अंत में, सन् १५०६ में नरवर उसके हाथ में आ गया[2]। इस प्रकार राजसिंह का प्रसंग ऐतिहासिक तथ्य है । कला विषयक प्रसंग लेखक की कल्पना की उपज है और इस प्रसंग को राजसिंह तथा मानसिंह-मृगनयनी से संबद्ध कर लेखक ने कथा को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से विकसित किया है । बैजूबावरा का प्रसंग जनश्रुति पर आधारित है । ध्रुपद के प्रसिद्ध गायक संगीताचार्य बैजू का प्रामाणिक जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं है । एक किम्वदंती तो यह है कि बैजू मानसिंह का दरबारी गायक था और उसके सहयोग से ही मानसिंह ने ध्रुपद शैली का आविष्कार और प्रचार किया था । मानसिंह की गूजरी रानी मृगनयनी के नाम पर बैजू ने "गूजरी टोड़ी" और "मंगल गूजरी" रागों का निर्माण किया। दूसरी किम्वदंती के अनुसार बालक बैजू ने हरिदास स्वामी से संगीत की पूरी शिक्षा प्राप्त कर प्रसिद्ध गायक तानसेन को गायन की प्रतिद्वन्द्विता में पराजित

1- मृगनयनी, परिचय, पृ०६; किशोर(पटना), मार्च १९५० में प्रकाशित डा०कृष्णदेव दुबे का लेख "नरवरगढ़" ।

2- किशोर, मार्च १९५० में प्रकाशित "नरवर गढ़" शीर्षक लेख ।

किया था । तीसरी किम्वदंती के अनुसार बैजू, गोपाल और तानसेन तीनों ही हरिदास स्वामी के शिष्य कहे गये हैं । वर्मा जी ने प्रथम किम्वदंती के आधार पर ही "मृग नयनी" में बैजू का चित्रण किया है और "परिचय" में बैजू का निश्चयात्मक शब्दों में उल्लेख किया है[1]। बैजू विषयक प्रसंग मानसिंह की संगीत कलाप्रियता के पक्ष को उजागर करता है और उसके तथा मृगनयनी के व्यक्तित्व को मुखर बना देता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी असंगत नहीं है ।

विजय जंगम तथा बोधन ब्राह्मण[2] ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, किंतु इनसे संबंधित घटनाएँ काल्पनिक हैं । विजय जंगम के माध्यम से वर्मा जी ने जहाँ कायिक श्रम और जाति-पाँति की निरर्थकता की ओर संकेत किया है, वहाँ बोधन ब्राह्मण के माध्यम से मध्ययुगीन जातीय कट्टरता को बताया है ।

इसप्रकार , "मृग नयनी" उपन्यास इतिहास, जनश्रुति और कल्पना तीनों से समन्वित एक सशक्त कलात्मक कृति है । लेखक ने इतिहास और जन-श्रुतियों को अपनी सर्जनात्मक कल्पना के माध्यम से उपन्यस्त कर एक ऐसी कथा-कृति का रूप दिया है जो अपने आप में जीवंत और कलात्मक तो है ही, तत्का-लीन युग और जीवन को भी जीवंत बना देती है । चूँकि इस उपन्यास में इतिहास और कल्पना दोनों का अत्यंत संतुलित रूप में उपयोग किया गया है, अतः इसे हम मिश्र ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं । मानसिंह और मृगनयनी की मूलकथा के साथ सभी ऐतिहासिक, काल्पनिक और जनश्रुति पर आधारित कथाएँ उसके साथ न केवल अनिवार्य रूप से सम्बद्ध हैं और उसके

१- मृग नयनी, परिचय, पृ० ३ ।

२- डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक "दिल्ली सल्तनत"(१९५९, पंचम संस्करण) के पृ० २८६ पर लिखा है कि "बोधन नामक एक हिन्दू ब्राह्मण को उसने(सिकंदर) यह कहने के अपराध में मृत्यु दण्ड दिया कि "हिंदू धर्म उतना ही अच्छा है जितना कि इस्लाम।" श्री रतिभानुसिंह नाहर ने भी अपनी पुस्तक "दिल्ली सल्तनत"(सन् १९६७),पृ०१८८ पर इस प्रसंग की चर्चा की है ।

विकास में योग देती है, वरन् तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन को भी उजागर करती हैं । मानसिंह, मृगनयनी, सिकंदर लोदी, गयासुद्दीन, खिलजी, नसीरुद्दीन, महमूद बघर्रा, राजसिंह आदि प्रमुख पात्र इतिहास के आलोक में ही चित्रित किये गये हैं और उनसे संबंधित प्रसंगों और घटनाओं को बड़े ही कौशल से उपन्यास में विन्यस्त किया गया है । कल्पना का प्रयोग भी इतनी सतर्कता से किया गया है कि कहीं कोई ऐतिहासिक असंगति नहीं आने पाई है और तत्कालीन वातावरण सजीव हो उठा है । छोटे-मोटे अनेक प्रसंगों की अवतारणा करके भी लेखक ने इस कुशलता के साथ उनका निर्वाह किया है कि उपन्यास के गठन में कोई त्रुटि नहीं आने पाई है । मृगनयनी के भाई अटल और उसकी बाल्य सहेली लाखी की कथा, मानसिंह-मृगनयनी की कथा के समानान्तर चलते हुए भी इतनी प्रगाढ़ भावसे उससे संबद्ध है कि उसके गठन को और संपुष्ट ही बनाती है । कथानक का आरंभ, विकास और अंत सभी पूर्व निश्चित एवं सुनियोजित से हैं और लेखक ने पाठक की उत्सुकता को उद्बुद्ध रखते हुए बड़ी ही धीर-गम्भीर गति से कथा को अग्रसर रखा है ।

पूर्व उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी वातावरण के चित्रण में वर्मा जी को अत्यधिक सफलता मिली है और घटनाओं के आलोक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण पूर्ण सजीवता से प्रकाशित हो उठा है । मुसलमानों के निरंतर आक्रमण एवं लूटमार के कारण अव्यवस्थित जन-जीवन, संकटों एवं जीवन के संघर्षों के बीच भी उत्सव-त्योहार मनाने की सहज उमंग, जाति-पाँति संबंधी अंधविश्वास एवं कट्टरता, युद्ध की प्रणाली तथा राजनीति षड्यंत्र, राजा मानसिंह के रनिवास और दरबार का वातावरण पंडितों तथा कलाविदों की मनोवृत्ति एवं कलाविनोद, वास्तुकला की उत्कृष्ट कल्पना और अभिव्यक्ति, मुल्ला-मौलवियों की कट्टरता तथा मुसलमान शासकों की रीति-नीति और उनकी रचनाओं तथा आदि के बड़े ही प्रभावशाली, सजीव और यथार्थ चित्र उपन्यास में अंकित हैं ।

"सिंह सेनापति" का संपूर्ण कलेवर इन्हीं दो आधार स्तम्भों पर खड़ा है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास राजा और राजतंत्र के प्रभुत्व से अभिभूत है। वह स्वीकृत रूप से महत्वाकांक्षी निरंकुश नृपतियों का वशीभूत रहा है। किंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि भारत गणतंत्र अथवा प्रजातंत्र तथा उसके सिद्धांतों से अपरिचित था। प्राचीन युग में भी - विशेषकर उस युग में भी - जब राजा का एकछत्र आधिपत्य था और साम्राज्यवादी नीति अपनी चरमसीमा पर पहुँची हुई थी, लिच्छवी, शाक्य, कोलिय, मल्ल, मालव, यौधेय, मद्र, गंधार, आदि अनेक स्वतंत्र गण थे। इसमें संदेह नहीं कि जैसा व्यवस्थित और क्रमिक विवरण राजवंशों के अधिष्ठाता राजाओं और उनके परिवारों का मिलता है, वैसा गणतंत्रों और उनकी कार्यकारिणी परिषदों का नहीं मिलता। कारण कि व्यक्तिवादी राजा जहाँ अपने व्यक्तित्व को सभी प्रकार से संवर्धन करते हुए उसे अमर बनाने का प्रयत्न करते थे, वहाँ गणतंत्रों का जीवन सामूहिक था और समूह की अपेक्षा व्यक्ति की स्मृतिरक्षा सहज होती है। परिणामस्वरूप उनके संबंध में स्फुट उल्लेख विजेता राजाओं की प्रशस्तियों में, सिक्कों तथा शिलालेखों में, या फिर तत्कालीन साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे मिल जाते हैं। राहुल जी ने इस विकीर्ण सामग्री को एकत्रित कर तथा अपनी कल्पना-वैभव की सहायता से "सिंह सेनापति" में प्रस्तुत कर उस विलुप्त स्वर्ण इतिहास को फिर से जगाया है। उनके इस कार्य में उनका प्रबुद्ध पुरातत्व ज्ञान सहायक तो हुआ ही है, साथ ही बौद्ध संघ और सोवियत विधान का क्रियात्मक ज्ञान भी कम उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ है।

"सिंह सेनापति" में बौद्ध कालीन लिच्छवी अथवा वैशाली गणतंत्र (५-६वीं शताब्दी ईसा पूर्व) के सामूहिक जीवन-संघर्ष तथा तत्कालीन उत्तरी भारत की राजनीतिक सामाजिक स्थिति का चित्रण किया गया है। जैसाकि उपन्यास के नाम से ही प्रकट है, इसमें वैशाली गणराज्य के लिच्छवी सेनापति सिंह के जीवनवृत्त का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तरुण लिच्छवी कुमार सिंह शस्त्र-शास्त्र और उससे भी अधिक गण-विधानों के अध्ययन के लिए तक्षशिला जाता है। वहाँ पर वह थोड़े ही दिनों में गंधार गण का अंग बन जाता है और उसकी ओर से पार्शवों के हखामनुशीय अर्थात् पारस के शाहंशाह

से युद्ध करता है तथा उसमें विक्रम और यश का अर्जन करता है। यहीं आचार्य बहुलाश्व की पुत्री रोहिणी से उसका प्रेम-विवाह होता है और वह सपत्नीक वैशाली लौट आता है। वैशाली में यथा समय संथागार का सदस्य बनता है और गणतंत्र के सामूहिक जीवन के विकास में प्रयत्नशील होता है। इसी बीच मगध सम्राट बिम्बिसार का वैशाली पर आक्रमण होता है। सेनापति सिंह अपने लिच्छवी वीरों को साथ लेकर बिंबिसार के आक्रमण का प्रतिरोध करता है और उसे पराजित कर अपनी दो युद्ध शर्तें मानने के लिये बाध्य करता है। पहले वह निर्ग्रन्थ आचार्य महावीर का शिष्य होकर तप और अहिंसा का व्रत लेता है, परन्तु उससे मानसिक परितोष और सान्त्वना न पाकर अंत में महात्मा बुद्ध का अनुयायी बन जाता है और उनके बहुजन हिताय अनात्मवादी सिद्धांतों में जीवन का समाधान पाता है।

यद्यपि "सिंह सेनापति" उपन्यास में एक व्यक्ति (सेनापति सिंह) के जीवनवृत्त का विवरण प्रस्तुत किया गया है, किंतु यह उपन्यास व्यक्ति-प्रधान नहीं है। सेनापति सिंह वस्तुतः गणजीवन का प्रतीक है जिसके जीवन को केंद्र बनाकर उपन्यासकार ने अनेक कल्पित-अकल्पित प्रसंगों, घटनाओं और पात्रों आदि के माध्यम से गणतंत्र और राजतंत्र की समस्याओं को उठाया है और मार्क्सवादी दृष्टि से उनकी तत्कालीन जीवन-पद्धति, रहन-सहन की प्रणाली, शासन-पद्धति, नारी-पुरुष के सम्बन्धों, दासों की स्थिति, सामाजिक व्यवस्थाओं आदि का चित्रण किया है।

"सिंह सेनापति" का अधिकांश कलेवर-कतिपय अंशों को छोड़कर-उपन्यासकार की कल्पना द्वारा ही निर्मित हुआ है। कथा का नायक सिंह सेनापति[1]

१- डा० नगेन्द्र ने सिंह सेनापति को काल्पनिक व्यक्ति माना है (देखिये- "विचार और विवेचन" में संगृहीत लेख"राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास", पृ० १७७) जो भ्रमपूर्ण है। सिंह वैशाली गण का लिच्छवी सेनापति था। पहले वह निर्ग्रन्थों का उपासक था, किन्तु बाद में महात्मा बुद्ध का अनुयायी हो गया(देखिये श्री धर्मानंद कोसाम्बी की पुस्तक"भगवान बुद्ध"पृ० १०१ तथा डा०राधाकुमुद मुकर्जी की पुस्तक "हिंदू सभ्यता"पृ०१९६,२०१)।

ऐतिहासिक अवश्य है, किंतु उसके जीवन को केंद्र बनाकर जो भी घटनाएं वर्णित हैं, वे सब काल्पनिक हैं । सिंह का शस्त्र-शास्त्र की शिक्षा के निमित्त तक्षशिला जाना और आचार्य बहुलाश्व के आचार्यत्व में शिक्षा-ग्रहण करना, सिंह और आचार्य पुत्री रोहिणी का परस्पर आकर्षण, सिंह का पार्शव शासक की सेना से युद्ध और पार्शव-शासक की पराजय, तक्षशिला के नागरिकों द्वारा सिंह का सम्मान, सिंह-रोहिणी पाणिग्रहण, सिंह का रोहिणी को लेकर वैशाली लौटना आदि घटनाएं ऐतिहासिक तथ्यों पर आश्रित न होकर इतिहासमूलक कल्पना पर आधारित हैं । इन कल्पित घटनाओं से संबंधित सभी पात्र भी- सिंह को छोड़कर- जैसे बहुलाश्व, रोहिणी, गुरूपत्नी, कपिल,मनोरथ, भामा, शोभा आदि उपन्यासकार की कल्पना द्वारा उद्भुत हैं । वास्तविक इतिहास का उपयोग उपन्यास में वस्तुतः गणों के विरोधी राजकुलों के वर्णन में ही किया गया है और बिंबिसार और अजातशत्रु के व्यक्तित्व तथा उनका लिच्छवियों से युद्ध एवं प्रसेनजित-बंधुल प्रसंग ही प्रामाणिक रूप से ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में राहुल जी ने लिखा है कि"सिंह सेनापति के समकालीन समाज को चित्रित करने में मैंने ऐतिहासिक कर्तव्य और औचित्य का पूरा ध्यान रखा है । साहित्य पाली, संस्कृत, तिब्बतीय में अधिकता से और जैन-साहित्य में भी कुछ उस काल के गणों(प्रजातंत्रों) की सामग्री मिलती है । मैंने उसे इस्तेमाल करने की कोशिश की है । खान-पान, हास-विलास में यहां कितनी ही बातें आज बहुत भिन्न मिलेंगी, किंतु यह भिन्नता पुराने साहित्य में लिखी मौजूद है ।" निःसंदेह राहुल जी प्राचीन बौद्ध-साहित्य, इतिहास और पुरातत्व के महान् पण्डित हैं और उनका अगाध ज्ञान और पाण्डित्य, देश-विदेश की यात्राओं से समृद्ध और अनुभव से परि-पुष्ट है, और प्रस्तुत उपन्यास में अपने उस अगाध ज्ञान और पाण्डित्य का उपयोग उन्होंने किया है, किन्तु प्रश्न उठता है कि अपने अगाध ज्ञान और पाण्डित्य के बल पर जिस अतीत कालीन भारत का चित्र उन्होंने उपस्थित किया है, क्या वह पूर्णतया इतिहास द्वारा समर्थित है और प्राचीनकाल के गणतंत्रों

की व्यवस्था और उनकी जीवन-पद्धति क्या वास्तव में वैसी ही थी, जैसी उपन्यास में वर्णित है ?

डा० नगेन्द्र ने भी इस संबंध में कई प्रश्न चिन्ह लगाते हुए लिखा है कि "राहुल जी को अपने प्रतिपाद्य के प्रति इतना उत्कृष्ट आग्रह रहता है कि वे उसके अनुकूल तथ्यों को मोड़ने में संकोच नहीं करते - उनके निष्कर्षों में प्रायः पक्षपाती रहती है[1]।" डा० सुषमा धवन का भी मत है कि "राहुल ने अपनी प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कृति "सिंह सेनापति" में------लिच्छवि गण-तंत्र के सामाजिक जीवन की घटनाओं तथा पात्रों के आधार पर निजी इष्ट विचारों को प्रकाशित किया है ।-----उपन्यास में लेखक का व्यक्तित्व जो बुद्ध और मार्क्स के सिद्धांतों से प्रभावान्वित है, नायक के चरित्र में प्रतिमूर्त होता है[2]।" मेरे मत के अनुसार भी राहुल जी अपने इस प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास में तथा बाद के उपन्यासों में भी एक इतिहासकार की भाँति अपने को तटस्थ नहीं रख सके हैं और गण जीवन का जो चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह किन्हीं अंशों में उनके वैयक्तिक विचारों और मान्यताओं का संवाहक है । पाली भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित तथा बौद्ध साहित्य के गंभीर अध्येता श्री धर्मानंद कोसाम्बी ने प्राचीन गणराज्यों की व्यवस्था के संबंध में अपना जो अभिमत प्रकट किया है, वह कई अर्थों में राहुल जी के मतों से मेल नहीं खाता। प्राचीन गणराज्यों में भी किन्हीं अंशों में वे कमजोरियाँ वर्तमान थीं जो राज-तंत्रों में थीं और सम्भवतः वही कारण थे शीघ्र ही नष्ट हो गये । कोसाम्बी ने लिखा है:-"गण राजाओं का चुनाव नहीं होता था । बाप के पीछे उसका बेटा राजा होता था । वंश-परंपरा से यह अधिकार मिल जाने से उनका विलासी और अनुत्तरदायी हो जाना स्वाभाविक है ।----यद्यपि गणराजा एकत्र थे, तथापि उनके मन में एक दूसरे के प्रति आदरभाव नहीं था और प्रत्येक गण राज्य अपने को ही राजा समझता था ।-----इन गणराजाओं को साधारण

१- डा० नगेन्द्र : विचार और विवेचन (राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास), पृ० [illegible]।
२- डा० सुषमा धवन: हिन्दी उपन्यास, पृ० १६६ ।

जनता का समर्थन प्राप्त होना संभव नहीं था । अगर कोई राजा अपनी मर्जी से लोगों पर जुल्म ढाने लगता तो उसे रोकने की सामर्थ्य लोगों में या दूसरे राजाओं में नहीं होती थी । इसकी अपेक्षा साधारण जनता की दृष्टि से सब राजा नष्ट होकर एकमात्र सर्वाधिकारी राजा रहना अधिक सुविधाजनक था।------ गणराजा गाँव-गाँव में रहते थे, अतः उनके जुल्म से शायद ही कोई बच सकता था । करों और बेगारी के रूप में ये राजा सभी को सताते होंगे[1]।" इससे स्पष्ट है कि गण-व्यवस्था के संबंध में राहुल जी ने जो कुछ प्रस्तुत उपन्यास में लिखा है, वह इतिहास सम्मत कम और उनके वैयक्तिक विचारों तथा सिद्धांतों एवं सोवियत राज्य के विधानों का प्रतिरूप अधिक है । प्राचीन गणतंत्रात्मक विधान में नारी की स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुषों के संबंधों, श्रम के महत्व और संपत्ति-विभाजन का वही रूप नहीं था जैसा राहुल जी ने दिखाया है । प्राचीनकाल में नारी-पुरुषों के बीच इतना दुराव-छिपाव तो नहीं था जैसा कि आज है, किंतु यौन-संबंधों में इतनी स्वतंत्रता भी नहीं थी कि स्त्री-पुरुष नगरपथों और मधुशालाओं में सभी के बीच एक-दूसरे पर पुष्पों की बौछार करें और आलिंगनों में बांधें । राहुल जी के पात्र अत्यंत उदारता से एक-दूसरे पर फूलों की बौछार करते हैं । आधुनिक योरोपियनों और अमेरिकनों की भाँति सहनृत्य (बालडांस) की प्रथा और मांस-मदिरा का इतना व्यापक प्रयोग भी संभवतः उस काल में नहीं था जैसा राहुल जी ने दिखाया है । रस की उद्भावना के लिये यह सस्ता उपाय इतने असंयम के साथ व्यवहृत हुआ है कि उससे अरुचि होने लगती है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि "सिंह सेनापति" में इतिहास का उपयोग जिस रूप में होना चाहिए, उस रूप में नहीं हो सका है । प्रस्तुत उपन्यास में तथा बाद के उपन्यासों में भी, राहुल जी ने ऐतिहासिकता का आभास मात्र देकर अपने उद्देश्य को पाठकों के गले उतारना चाहा है । परि-णाम यह हुआ कि इतिहास पर कल्पना और उस कल्पना पर उनकी राजनीतिक

१- श्री धर्मानंद कोसाम्बी, भगवान बुद्ध, पृ० ५८-५९ ।

धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं एवं साम्यवादी विचारों का एक ऐसा अपेक्षित आवरण छा गया है कि अतीत अपने यथार्थ रूप में न दिखाई देकर आरोपित रूप में सामने आता है । संभवतः इस पूर्वाग्रह ने ही उपन्यास के शिल्प को भी ठेस पहुंचायी है और औपन्यासिक घटना-विधान और चरित्रांकन की दृष्टि से रचना कमजोर और प्रभावहीन हो गयी है ।

(८) दिव्या

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में यशपाल रचित "दिव्या" (१९४५) का अपना एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान है और इसका प्रकाशन हिंदी के लिए गौरव की बात है । इतिहास-प्रयोग और शिल्प-विधान की दृष्टि से यह न केवल एक सफल कृति है, वरन् ऐतिहासिक उपन्यास संरचना के लिए एक नया क्षितिज प्रस्तुत करती है ।"दिव्या" के "प्राक्कथन" में यशपाल ने लिखा है-"दिव्या" इतिहास नहीं ऐतिहासिक कल्पना मात्र है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति, गति का चित्र है । लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है[1] ।" इससे स्पष्ट है कि "दिव्या" की कथा किसी इतिहास अथवा ऐतिहासिक घटना पर आधारित नहीं है, वरन् शुद्ध काल्पनिक है जिसे लेखक ने ऐतिहासिक वातावरण में प्रस्तुत किया है । इस प्रकार, यह उपन्यास स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है जो अपने ढंग का संभवतः प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है ।

"दिव्या" की कथा सोद्देश्य है । यशपाल ने "दिव्या" में पतनोन्मुख बौद्धकालीन भारत (लगभग २री शताब्दी ईसा पूर्व) के सामंती जीवन का चित्र मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अंकित करने का प्रयास किया है जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद बौद्ध धर्म का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था और [illegible] वंशीय नरेश पुष्यमित्र शुंग(२री शताब्दी ईसा पूर्व)

१- दिव्या, प्राक्कथन ।

के नेतृत्व में अस्त-व्यस्त वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा था[1]। यद्यपि देश के कई भागों में गणराज्य-पद्धति प्रचलित थी, किंतु वह कहने भर को थी और वहाँ भी व्यावहारिक रूप से उच्च जातियों एवं अभिजात वर्गों का शासन था तथा इतर जातियों का कोई महत्व नहीं था। समाज में नारी की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं थी और वह पुरुषों के हाथों की कठपुतली मात्र थी। अभिजात कुल की कन्या तो स्वेच्छा से वैराग्य जीवन भी नहीं स्वीकार कर सकती थी। बौद्ध धर्म भी दुखित एवं विपन्न नारी को शरण देने में असमर्थ था। जहाँ एक ओर समाज का अभिजात वर्ग सुखोपभोग और विलास में डूबा हुआ था, वहाँ दूसरी ओर समाज का इतर वर्ग दासता की शृंखलाओं से जकड़ा हुआ था। मनुष्य को दास बनाकर खुले आम बाजारों में पशुओं की तरह बेचा जाता था। उस समय गणतंत्रात्मक राज्य-व्यवस्था में कला का विशेष स्थान था और राजनर्तकी को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। राजनर्तकी योग्यता तथा सुन्दरता के आधार पर अपनी उत्तराधिकारिणी की घोषणा करती थी। वर्ण-व्यवस्था के नियमों का कठोरता से पालन करवाने में शोषक समाज अथवा अभिजात वर्गों का स्वार्थ सन्निहित था और उसकी रक्षा के लिए ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सदैव तत्पर रहते थे। यशपाल ने "दिव्या" में उपर्युक्त इन सभी परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का चित्रण तथा विश्लेषण अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है और शोषक तथा शोषित वर्गों की समस्याओं एवं तत्कालीन समाज के वर्गपरक स्वरूप को उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है।

"दिव्या" उपन्यास की कथा का समारंभ मधुपर्व से होता है। इस अवसर पर मद्र गणराज्य के धर्मस्थ महापण्डित देवशर्मा की प्रपौत्री तथा राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या दिव्या को नृत्य कला में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के कारण, "सरस्वती पुत्री" का सम्मान दिया गया। इसी पर्व में

१- डा० [illegible] उपाध्याय: प्राचीन भारत का इतिहास(द्वितीय संस्करण १९[illegible]),पृ० [illegible] ।

जैसा कि ऊपर हम संकेत कर चुके हैं, "दिव्या" ऐतिहासिक कल्पना है और उसकी कथावस्तु किसी ऐतिहासिक घटना पर आधारित न होकर पूर्णतः काल्पनिक है । किन्तु जिस ऐतिहासिक परिवेश और वातावरण में उपन्यासकार ने कथा को प्रस्तुत किया है, उसकी चेतना एवं प्रवृत्ति को यथार्थ रूप से प्रकट करने में वह सक्षम है । कथा के सभी पात्र- पृथुसेन, रुद्रधीर, मारिश, धर्मस्थ देवशर्मा, मिथ्रोद्रस, प्रेस्थ, दिव्या, मल्लिका, रत्नप्रभा आदि भी उपन्यासकार की कल्पना की उपज हैं, किंतु वे भी तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण की विशेषताओं को सफलतापूर्वक उपस्थित कर सके हैं और उसी से उत्पन्न होते हैं । उपन्यासकार ने अपनी इतिहासमूलक कल्पना के सहारे अतीत में पैठकर तत्कालीन युग और जीवन का जो चित्र यथार्थवादी शैली में उपस्थित किया है, वह अपनी संपूर्ण विशेषताओं सहित जीवंत हो उठा है । यह सही है कि अतीत के चित्रण में लेखक की समाजवादी दृष्टि प्रधान रूप से कार्य करती रही है और नास्तिक पात्र मारिश के माध्यम से उसने अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण को सम्मुख रखा है, किन्तु वह इतने स्वाभाविक एवं कलात्मक रूप में हुआ है कि राहुल सांकृत्यायन की भाँति वह ऊपर से थोपा हुआ और पूर्वाग्रह युक्त प्रतीत नहीं होता, वरन् परिस्थितिजन्य लगता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में, विशेषतया स्वच्छन्द ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि ही उनकी सफलता की कसौटी होती है और यदि उपन्यासकार चित्रित युग तथा काल के निर्माण में चूक गया तो उसकी कृति असफल हो जाती है । "दिव्या" में देश-काल चित्रण अथवा ऐतिहासिक वातावरण निर्माण में यशपाल पर्याप्त सफल रहे हैं । पतनोन्मुख बौद्धकाल अथवा ब्राह्मण काल[1] (२री शताब्दी ईसा पूर्व) की समाज-व्यवस्था,

---

१- "दिव्या" को लेखक ने बौद्धकालीन उपन्यास माना है, जबकि इतिहासकार "दिव्या" में चित्रित काल को ब्राह्मण काल मानते हैं । डा०रम[illegible] त्रिपाठी तथा डा०भगवतशरण उपाध्याय ने प्राचीन भारत के इतिहास में उक्त काल को "ब्राह्मण काल" नाम से अभिहित किया है ।

धर्म-दर्शन, जीवन-पद्धति, रहन-सहन, गण-व्यवस्था, नगर-समाज, सभा, उत्सव, वेश-भूषा, आभरण, युद्ध, शस्त्र, नृत्य, संगीत, विलासोपकरण आदि का अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन कर उपन्यासकार ने ऐतिहासिक वातावरण निर्माण का सफल प्रयत्न किया है । लेखक के चित्रण की कलात्मक प्रतिभा इतनी प्रौढ़ है कि हम आज से शताब्दियों पीछे के भारत में उनके साथ विचरण करने लग जाते हैं । निश्चय ही उपन्यासकार के इस प्रयत्न में उसकी भाषा और शब्द ज्ञान का महत्वपूर्ण योग है । उस काल में प्रयुक्त अनेकानेक शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग कर लेखक ने तत्कालीन वातावरण को सजीव एवं मोहक बना दिया है ।

एक सफल कृति होने के बावजूद "दिव्या" में कुछ दोष भी हैं । उपन्यासकार ने इस उपन्यास में जिस काल का चित्रण किया है, उस काल में समाज में नारी और पुरुष के बीच इतना दुराव-छिपाव नहीं था, जितना आज है । यौन पवित्रता को भी उतना अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। एक प्रकार से कामिनी और कादम्ब का व्यापक प्रयोग होता था ।अभिजात कुल के लोगों द्वारा इतर जातियों की स्त्रियों का भोग एक परंपरा के रूप में चला आ रहा था जिसके अनेक प्रमाण इतिहास में मिल जाते हैं । राजनर्तकी के उद्यान में सर्व साधारण के उपस्थित होने तथा मनोरंजन करने का उल्लेख तो इतिहास में मिलता है, किन्तु शरद की पूर्णिमा के दिन उपन्यासकार ने राज-नर्तकी मल्लिका के प्रासाद में जो रास-नृत्य कराया है, वैसे रासों की चर्चा इतिहास में प्रायः कम आई है । आज की पाश्चात्य सभ्यता में जिस प्रकार स्त्री और पुरुष आपस में हाथ मिलाकर "बालडांस" करते हैं, वैसे "बालडांस" की प्रथा भारत में कभी भी नहीं थी । यौन-स्वच्छन्दता का प्रमाण इतिहास से भले ही मिल जाय, किन्तु पति के सामने पत्नी और भाई के सामने बहन का हाथ पकड़ने वाले की गर्दन पर रक्तरंजित खड्ग होता था । भारतीय संस्कृति में ऐसी कभी भी छूट नहीं थी जैसी यशपाल जी ने दिखलायी है । यह काल-विरुद्ध बात है ।

ऐतिहासिक-बोध, शिल्प-विधान, चरित्रांकन और देश-काल -चित्रण की दृष्टि से निश्चय ही "दिव्या" को श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों की

श्रेणी में रखा जा सकता है और यह उपन्यास इतिहास-प्रयोग की एक नयी आदर्श पद्धति को प्रस्तुत करता है जो वृंदावनलाल वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री आदि से भिन्न है ।

(१) बाणभट्ट की आत्मकथा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित "बाणभट्ट की आत्मकथा"उपन्यास (१९४६)न केवल हिंदी ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में, वरन् भारतीय ऐतिहासिक उपन्यासों की विशाल परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखता है । इतिहास-प्रयोग और शिल्प-विधान की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में यह न केवल एक अभिनव प्रयोग है, वरन् हिंदी-उपन्यास की विकास-यात्रा की एक अभिनंदनीय उपलब्धि तथा आचार्य द्विवेदी की कीर्ति का अक्षय स्मारक है । इस उपन्यास में कथा-आख्यायिका की प्राचीन भारतीय शैली तथा चरित्र-चित्रण की आधुनिकतम शैली का अपूर्व संयोग है ।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" हर्षकालीन भारत(७वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध)के परिवेश में लिखी गयी एक ऐतिहासिक रोमांस की सृष्टि है । इस उपन्यास में "कादम्बरी" तथा "हर्षचरित" के प्रणेता, संस्कृत के यशस्वी कवि बाणभट्ट को कथानायक बनाकर कहानी अग्रसर हुई है । बाणभट्ट की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाली प्राचीन सामग्री का सार लेकर उपन्यासकार ने ऐसे काल्पनिक प्रसंगों की उद्भावना की है कि यह कवि अपनी संपूर्ण चारित्रिक विशेषताओं सहित मूर्तिमान हो उठा है । "हर्षचरित" में बाण ने अपने कुल, स्वभाव तथा हर्ष के सम्पर्क में आने का विस्तृत वर्णन किया है[1] । इन वर्णनों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि विद्या, काव्य तथा कला के साथ बाण को बड़ा ही उदार हृदय मिला था और मनुष्य की बाह्य दुर्बलताओं के भीतर छिपी महत्ता का भी बोध था ।"हर्षचरित" तथा"कादंबरी" के आधार पर बाणभट्ट के प्रेम

१- हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन(डा०वासुदेव शरण अग्रवाल), पृ० संख्या २६,३६,३९,४० ।

और सौंदर्य के आदर्श का भी परिचय प्राप्त होता है । बाण के इस गुण-स्वभाव को एक जीवंत व्यक्तित्व के रूप में मूर्तिमान करने तथा इसी संदर्भ में हर्षकालीन भारत के सांस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन करने के उद्देश्य से प्रस्तुत उपन्यास की रचना हुई है ।

"बाणभट्ट की आत्मकथा" की कहानी बाणभट्ट के घर से भाग जाने से लेकर महाराज हर्षवर्धन के सभापंडित बन जाने तक की है । प्रख्यात वात्स्यायन वंश में उत्पन्न दक्षभट्ट उर्फ बाणभट्ट बचपन में ही माँ को तथा किशोरावस्था में पिता को खोकर आवारा हो गया और इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा । इस भटकाव में कभी वह नट बना, कभी उसने पुतलियों का नाच दिखाया, कभी नाटक-मण्डली संगठित की और कभी कथा-पुराण बाँचकर जनपद के लोगों को प्रभावित करता रहा, सारांश कि कोई कर्म छोड़ा नहीं । रूप तथा वाक्-कौशल इन दोनों ने इस भटकाव में उसकी बड़ी सहायता की । घूमते-घामते एक दिन वह स्थाण्वीश्वर(थानेश्वर) नगर में पहुँच गया । उसी दिन महाराजाधिराज हर्षदेव के छोटे भाई कुमार कृष्णवर्धन के नवजात शिशु का नाम-करण संस्कार होने वाला था । इस शुभ अवसर पर कुमार कृष्ण को बधाई देने की इच्छा से वह उनके भवन की ओर चल पड़ा । किंतु मार्ग में ही पान की दुकान पर बैठी उसे पूर्व परिचिता निपुणिका (निउनिया) मिल गयी । उसके पुकारने पर बाण उसके समीप गया और इस अपरिचित स्थान में निउनिया को देखकर विस्मय-विमुग्ध हो उठा । निउनिया पहले बाण की नाटक-मण्डली में अभिनय करती थी । वह बाण को प्यार भी करती थी और इसी के कारण एक दिन बाण के आश्रय को छोड़कर भाग आई थी । उसके चले जाने के पश्चात् बाण ने भी नाटक-मण्डली भंग कर दी । अपनी पिछली व्यथा-कथा कह चुकने के बाद निउनिया ने बाण को बताया कि मौखरिवंश के छोटे महाराज के अन्तःपुर में एक अत्यन्त साध्वी राजकुमारी अपनी इच्छा के विरुद्ध एक मास से बंदिनी है और उसके उद्धार-कार्य में बाण की सहायता अपेक्षित है । नारी-शरीर को देवता का मंदिर समझने वाला बाण इस कार्य के लिये तुरंत प्रस्तुत हो गया और स्त्रीवेश में निपुणिका के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर उसने राजकन्या का उद्धार किया । पश्चात् बाण को इस राजकन्या अर्थात् भट्टिनी द्वारा ही ज्ञात हुआ कि वह [illegible] नन्दिना, बाह्लीक

विमर्दन, प्रत्यंत बाड़व देवपुत्र तुवर मिलिंद की कन्या है जिसका दस्युओं ने हरण किया था और वह किसी प्रकार लम्पट मौखरिवंश के छोटे महाराज के हाथ लग गयी थी । प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य सुगतभद्र ने भट्टिनी का समाचार जानकर कुमार कृष्ण को बुलवाया और सारी स्थिति स्पष्ट कर दी । भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर के राजकुल से इतनी घृणा हो गयी थी कि वह राजकुल से सम्बद्ध किसी भी व्यक्ति के संरक्षण में रहने को तैयार नहीं थी । निपुणिका और बाणभट्ट के लिये भी राजदण्ड का भय था । अतः निश्चय हुआ कि बाणभट्ट देवपुत्र-नंदिनी और निपुणिका को लेकर मगध की ओर चला जाय । कुमार कृष्ण ने एक नौका की व्यवस्था कर दी और बाणभट्ट भट्टिनी और निपुणिका को लेकर कुछ चुने हुए मौखरि वीरों के संरक्षण में मगध की ओर चल पड़ा ।

चरणाद्रि दुर्ग से आगे बढ़ने पर आभीर सामंत ईश्वरसेन के सैनिकों को इन लोगों पर संदेह हो गया और उन लोगों ने नाव पकड़नी चाही । फलस्वरूप एक छोटा-सा युद्ध घटित हो गया । युद्ध हो ही रहा था कि भट्टिनी अपने आराध्यदेव भगवान महावराह की मूर्ति के साथ गंगा में कूद पड़ी । उसे बचाने के लिए निपुणिका भी कूदी और तदंतर बाणभट्ट भी । भट्टिनी को किसी प्रकार बचाकर तथा उसे आश्वस्त कर भट्ट जब निउनिया की खोज में निकल पड़ा । निउनिया को खोजता हुआ वह [illegible] श्मशान पर कराला देवी के मंदिर में मंत्र-मुग्ध सा खिंचा हुआ चला आया । यहाँ अघोरभट्ट और चण्डमण्डना ने उसे देवी के समक्ष बलि देने का अनुष्ठान किया । बाणभट्ट देवी के सम्मुख बलि होने ही वाला था कि भट्टिनी तथा निपुणिका के साथ भैरवी महामाया ने पहुंचकर उसकी रक्षा की और उसे अघोर भैरव की शरण में ले गयी । महामाया तथा अघोर भैरव से भट्ट का परिचय स्थाण्वीश्वर में ही हुआ था । तांत्रि-[illegible] अभिचार के कारण निपुणिका कई दिनों तक तथा बाण तीन दिनों तक संज्ञाहीन पड़े रहे । होश आने पर उन लोगों ने अपने को भद्रेश्वर दुर्ग के आभीर सामंत लोरिक देव के घर पर पाया । बाण की अस्वस्थता के कारण भट्टिनी बहुत चिन्तित हो उठी । कुछ स्वस्थ होने पर कुमार कृष्ण का [illegible] पाकर बाण भट्टिनी तथा निपुणिका को लोरिक देव के पास छोड़कर पुनः स्थाण्वीश्वर चला । कुमार कृष्ण ने उसे सम्राट हर्षवर्धन के समक्ष उपस्थित किया । पहले तो

सम्राट ने उसकी उपेक्षा की और उसे लम्पट कहा, किन्तु कुमार के आश्वासन देने पर बाद में उचित सम्मान किया और अपना राजकवि नियुक्त किया । स्थाण्वीश्वर में बाण ने निपुणिका की सखी सुचरिता से भी भेंट की । कुमार कृष्ण ने बाण से अनुरोध किया कि वह किसी प्रकार भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर ले आये और साम्राज्ञी राज्यश्री का आतिथ्य ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत करे । जब बाण ने लौटकर यह समाचार निपुणिका और भट्टिनी को सुनाया तो निपुणिका यह प्रस्ताव सुनकर उत्तेजित हो उठी और बाण को इसके लिए उसने धिक्कारा भी । किंतु भट्टिनी ने संयम से काम लिया । इस बीच लोरिक देव को भी भट्टिनी का वास्तविक परिचय मिल गया और उसने एक समारोह का आयोजन कर उसे समादृत किया । उधर आचार्य भर्वुशर्मा का यह पत्र भी लोक में प्रचारित हुआ जिसमें उल्लिखित था कि प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं और कन्या के विरह में उदासीन देवपुत्र मिलिन्द को फिर से युद्धभूमि के लिए उत्साहित करने के लिए उनकी प्राणाधिका पुत्री का पता लगाया जाय । अंत में यह निश्चय हुआ कि लोरिकदेव के एक सहस्र सैनिकों के साथ भट्टिनी स्वयं साम्राज्ञी की भाँति स्थाण्वीश्वर जायें और लगभग एक कोस की दूरी पर अपने स्कन्धावार में रहें । ऐसा ही हुआ और इस प्रकार बाणभट्ट निपुणिका और भट्टिनी को लेकर पुनः स्थाण्वीश्वर लौट आया । कुमारकृष्ण ने भट्टिनी का यथोचित सत्कार किया और उनके व्यवहार तथा मधुर [illegible] से भट्टिनी के मन का मैल धुल गया । कुमार ने सूचित किया कि महाराजाधिराज हर्षवर्धन की भगिनी के प्रति अशिष्ट आचरण का उचित दण्ड मौखरिवंश के छोटे राजा को अवश्य दिया जायेगा । सम्राट और भर्वुशर्मा के भट्टिनी के स्कन्धावार में आने के उपलक्ष में बाण ने रत्नावली के अभिनय का आयोजन किया । बाण स्वयं राजा बना, [illegible] चारुस्मिता रत्नावली बनी, और निपुणिका ने वासवदत्ता का अभिनय किया । अभिनय बहुत सुंदर हुआ । वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका ने तो उन्माद बरसा दिया । उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय में वास्तविकता थी । लेकिन दृश्य में जब

वह रत्नावली का हाथ राजा(बाण) के हाथ में देने लगी तो सचमुच विचलित हो गयी । वह सिर से पैर तक सिहर गयी । उसके शरीर की एक-एक शिरा शिथिल और अवसन्न हो गयी । भरत-वाक्य समाप्त होते-होते वह धरती पर लोट गयी । नागरजन जब साधु-साधु की आनंद ध्वनि से दिगंत कंपा रहे थे, उस समय यवनिका के अंतराल में निपुणिका के प्राण निकल रहे थे । जीवन का यह वास्तविक अभिनय देखकर तो भट्टिनी निश्चेष्ट हो गयी, किंतु भट्ट ने हृदय पर पत्थर रख कर स्वयं निपुणिका की अन्त्येष्टि क्रिया की । निपुणिका का श्राद्ध समाप्त होते ही आचार्य भर्वुपाद ने बाण को पुरुषपुर जाने की आज्ञा दी । भट्टिनी ने जब सुना तो उसका मुख विवर्ण हो गया । भट्टिनी के यह कहने पर "फिर कब लौटना" भट्ट विह्वल हो उठा । उसने कातर कण्ठ के वाष्प-रुद्ध वाक्य को प्रयत्नपूर्वक दबा लिया । लेकिन उसकी अन्तरात्मा के अतल गह्वर से कोई चिल्ला उठा-"फिर क्या मिलना होगा?"

"बाण भट्ट की आत्मकथा" का मुख्य कथा भाग तो यही है, किंतु इससे संबंध रखने वाले अनेक छोटे-मोटे प्रसंगों की कल्पना की गयी है, जिनसे कथा के सौंदर्य, उसके विकास, वातावरण-निर्माण एवं चरित्र चित्रण में सहायता मिलती है । उज्जयिनी में निपुणिका के नृत्य एवं उसकी शोभा को देखकर और उसमें "मालविकाग्निमित्र" की मालविका से साम्य पाकर बाण का खिलखिलाकर हँस पड़ना और निपुणिका का इस हँसी से आहत होकर उसकी मण्डली से भाग निकलना, प्रसिद्ध नर्तकी मदनश्री के यहाँ आश्रय, बाण के प्रति मदनश्री का अनुराग, शौविक की दुकान पर निपुणिका का बालक-वेश में बाण देखना, उन्मत्त दस्युओं द्वारा भट्टिनी के हरण की कथा, चण्डी मंदिर में द्राविड़ पुजारी से भेंट, महामाया भैरवी तथा अघोर भैरव से बाण की भेंट, राजमाता (जो राज्यश्री की सपत्नी थी) का राजमहल छोड़कर भैरवी बनने की कथा, सुचरिता और विरतिवज्र की कथा आदि अनेक प्रसंगों की "कथा" में उद्भावना की गयी है जो मुख्य कथा के विकास में न केवल सहायक होते हैं, वरन् उसे सुसंगठित बनाकर पूर्ण प्रभाव डालने में योग देते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक के निर्माण में आचार्य द्विवेदी ने इतिहास और कल्पना का ऐसा मणि-कांचन योग उपस्थित किया है कि दोनों एक दूसरे के सम्मिश्रण से महिमामय हो उठे हैं । वस्तुतः "बाणभट्ट की आत्मकथा" में उपन्यासकार ने इतिहास का सहारा मात्र लेकर कल्पित घटनाओं के माध्यम से बाणभट्ट के व्यक्तित्व एवं उनके युग के संभावित सत्यों को अत्यन्त कुशलता एवं कलात्मकता से उपस्थित किया है । "हर्षचरित" में बाण ने अपने तथा अपने वंश का परिचय दिया है । "हर्षचरित" के अनुसार उनके प्रपितामह पाशुपत थे । उनके पुत्र अर्थपति हुए । अर्थपति के ग्यारह पुत्र हुए । उनमें से एक चित्रभानु थे जिन्होंने राजदेवी नाम की एक ब्राह्मणी से विवाह किया । उन्हीं से बाण का जन्म हुआ । बाण की माता उनके बाल्यकाल में ही चल बसीं । पिता ने स्नेह-पुरस्सर सावधानी से उनका पालन पोषण किया । किंतु चौदह वर्ष की आयु होते-होते वे भी इस संसार से चले गये । पिता की मृत्यु के पश्चात् बाण संदिग्ध संगति में पड़ गए । उनके साथियों में साहित्यिक लोग भी थे । उनमें भाषा-कवि ईशान, प्राकृत कवि वायुविकार, दो स्तुति-पाठक, एक चित्रकार, दो गायक, एक संगीताध्यापक, एक कुशीलव, एक शिलोपासक, एक जैन साधु, एक ब्राह्मण भिक्षुक, हरिणिका नाम की एक नर्तकी तथा अन्य अनेक लोग थे । देशाटन का भूत उन पर सवार हो गया । उन्होंने लम्बी यात्रा की और इससे उनको अत्यधिक अपकीर्ति का भाजन बनना पड़ा । अंततः वे प्रीतिकूट में अपने घर लौट आये । घर पर रहते समय उन्होंने हर्ष के भाई कुमार कृष्ण द्वारा सम्राट हर्ष की राजसभा में पहुंचने का निमंत्रण पाया । बाणभट्ट हर्ष के पास गये । ब्राह्मण का परिचय पाकर पहले हर्ष ने तो उनकी उपेक्षा की तथा उन्हें "भुजंग" अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी गति वाला लम्पट कहा, किन्तु शनैः शनैः बाण की प्रकृति को हर्ष पहिचान गए और वे उनके प्रति कृपावान बन गये । तब बाण राजभवन में रहने लगे और स्वल्प दिनों में ही उनसे परम प्रीति मानने लगे[1]। बाण विषयक इस ऐतिहासिक तथ्य को "बाण भट्ट की आत्म कथा" में उपन्यास-कार ने इसी

१- ए०बी०कीथ: संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), सन् १९६०, पृष्ठ० ३७१-७२ ।

कलात्मक एवं कौशलपूर्ण ढंग से संजोया और संगठित किया है कि न केवल कथा का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठा है, वरन् बाण के साथ ही साथ ऐतिहासिक पुरुष सम्राट हर्ष और उनके भाव कुमार कृष्ण का व्यक्तित्व भी मुखरित हो उठा है। इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों को उपन्यासकार ने अत्यन्त सुसंगत और सार्थक ढंग से कल्पना के सूत्रों में पिरोकर काव्यात्मक शैली में उपस्थित किया है और उन्हें अर्थवत्ता प्रदान की है। काल्पनिक प्रसंगों में निपुणिका का बाण के प्रति अनुराग, छोटे राजकुल से बाण एवं निपुणिका द्वारा भट्टिनी का परित्राण एवं उससे संबंधित कथा, महामाया, अघोर भैरव, विरतिवज्र, सुचरिता तथा लौरिक देव आदि के प्रसंग लेखक की उर्वर तथा सृजनात्मक कल्पना की उपज हैं। किंतु ये काल्पनिक प्रसंग भी इतने यथार्थ और देश-काल के अनुरूप हैं कि सहज में ही हमें उस ऐतिहासिक परिवेश में बहा ले जाते हैं। वस्तुतः इन काल्पनिक प्रसंगों की अवतारणा के लिए भी द्विवेदी जी ने प्राचीन साहित्य का प्रचुर आधार ग्रहण किया है। "हर्षचरित" में बाण ने अपने भ्रमण काल के जिन बालीस व्यक्तियों के नाम गिनाये हैं, उनमें हरिणिका नाम की एक नर्तकी भी है। संभवतः यही हरिणिका "आत्मकथा" का निपुणिका है। हर्ष रचित, "प्रियदर्शिका" तथा "रत्नावली" नाटक की घटनाओं और पात्रों से भी कल्पित प्रसंगों के निर्माण में प्रेरणा मिली है। संभवतया "आत्मकथा" की "भट्टिनी" का चरित्र "प्रियदर्शिका" के आधार पर बना है। इसी प्रकार "आत्मकथा" की "महामाया" रत्नावली की "सागरिका" है। बाभ्रव्य भी "रत्नावली" का ही चरित्र है जो सागरिका के जीवन की कहानी को खोलता है। "आत्मकथा" में भी यही है। आचार्य द्विवेदी की सूझ और लगन को देखकर चकित रह जाना पड़ता है, जब यह ज्ञात होता है कि चण्डिका के मंदिर के सामने वलि चढ़ने वाला बाण वास्तव में हर्ष के राज्यकाल में आने वाला चीन का सांस्कृतिक दूत ह्वेनसांग है। इसप्रकार उपन्यास में निबंधित अनेक घटनाओं का आधार ऐतिहासिक है जिनका संबंध बाण के व्यक्तिगत जीवन से भले ही न हो, परन्तु जिनको एक व्यक्ति के द्वारा और एकत्रित, कर उस युग के प्रतिबिम्ब चित्र को उतारा गया है। जैसा कि श्री जगत कोठारी का कथन है, वस्तुतः अलग-अलग ऐतिहासिक स्थलों

को एक व्यक्ति की ज़िन्दगी के चारों ओर कलात्मक शैली में एकत्रित करके उस युग के संपूर्ण चित्र को खड़ा करने का प्रयास- एक बहुत बड़ी हिम्मत और प्रतिभा का कार्य है[1]। द्विवेदी जी के प्रयास को बहुत कुछ सफलता तो यही है कि बाण के जीवन की विशृंखलित घटनाओं और उनकी अस्पष्ट रेखाओं में उन्होंने अपनी कल्पना से, सूझ से और इतिहास से कुछ ऐसे-ऐसे रंग भरे हैं कि केवल बाण का चरित्र ही उभर कर सामने नहीं आता- उस युग का सारा धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक वातावरण अपनी संपूर्णता के साथ उजागर हो जाता है ।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, "बाण भट्ट की आत्मकथा" में हर्षकालीन सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन और चेतना का पुनर्निर्माण इतनी कुशलता एवं कलात्मकता से हुआ है कि वह काल अपनी संपूर्ण विशेषताओं सहित मूर्तिमान हो उठा है । देश-काल तथा वातावरण के चित्रण में उपन्यासकार ने प्राचीन काव्य और इतिहास-ग्रंथों के गंभीर अध्ययन का कुशलता से उपयोग किया है । उस समय वर्धनवंश अपनी उन्नति के चरम शिखर पर था । सम्राट हर्ष वर्धन ने अपने बहनोई मौखरि नरेश ग्रहवर्मा की मृत्यु के पश्चात उनका राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया और मौखरि नरेश के संबंधियों को उचित सम्मान -वैभव देकर उन्हें तथा जनता को शांत कर दिया । पूर्व में काशी तथा चरणाद्रि दुर्ग तक कान्य कुब्जेश्वर का राज्य था । उसके बाद कोई सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी । पश्चिमोत्तर प्रदेश में हूणों के आक्रमण का भय निरन्तर बना रहता था और वे अवसर पाकर जहां-तहां आक्रमण कर देते थे । इन ऐतिहासिक तथ्यों को उपन्यास में कलात्मक ढंग से नियोजित किया गया है जिससे उस काल की राजनीति का एक चित्र सामने आ जाता है । धार्मिक दृष्टि से यह युग वैदिक तथा बौद्ध धर्म के संघर्ष का था । उसके व साथ ही साथ अनेक प्रकार की ~~या नानां~~ साधना-पद्धतियां

---

१. श्री कोमल कोठारी : साहित्य, संगीत और कला, पृष्ठ १३८।

और तंत्र-मंत्र भी प्रचलित थे । वैदिक विद्वानों के घर वेदाध्यायियों से भरे रहते थे और उनके घर की शुक-सारिकाएं भी विशुद्ध मंत्रोच्चारण कर लेती थीं । बौद्धों में बाह्याडम्बर बढ़ रहा था और वे धीरे-धीरे अपने मूल धर्म से स्खलित हो रहे थे । वैष्णव और बौद्धों में अपने-अपने धर्म की रक्षा एवं उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन का उत्साह था । तार्किक पंडितों तथा बौद्ध आचार्यों के बीच यदा-कदा विवाद भी हो जाया करते थे । "आत्मकथा" में विरतिवज्र और सुचरिता के प्रसंग की योजना करके वैष्णव-बौद्ध संघर्ष को चित्रित करने का सफल प्रयत्न किया गया है । महामाया भैरवी, अघोर भैरव, अघोर घण्ट, चण्डमण्डना के प्रसंगों का समावेश कर उपन्यासकार ने तत्कालीन विभिन्न वाम-मार्गी साधना-पद्धतियों को प्रदर्शित किया है । उस समय जन-समाज में ज्योतिषियों, ब्राह्मणों तथा पंडितों का आदर था और वे श्रेष्ठ माने जाते थे। आमोद-प्रमोद के लिए विभिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध थे और नाटक-मण्डलियों द्वारा अभिनीत नाटकों को देखने का उत्साह राजा और प्रजा दोनों में था। बड़े-बड़े नगरों में नर्तकियां रहती थीं जो धनिकों का मन बहलाया करती थीं । राजाओं के अन्तःपुर में विलास का सजीव वातावरण था। "आत्मकथा" में इन सबका समावेश कर उस समय का एक जीवंत वातावरण उपस्थित किया गया है । राजमहल, अन्तःपुर, राजसभा, राजमार्ग, हाट-बाजार, बौद्ध-विहार, उद्यान, वाटिका, सरोवर, उत्सव, जुलूस, संगीत,नृत्य, तांत्रिक प्रयोग, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रिकापूर्ण रात, प्रकृति आदि का स्थान-स्थान पर सजीव और विशेषण वर्णन है जो तत्कालीन वातावरण की सृष्टि में यथाशक्ति तथा यथास्थान योग देता है । विभिन्न वर्गों की वेश-भूषा, रीति-नीति, रहन-सहन, बातचीत आदि के सजीव वर्णन से वह युग अपनी ऐतिहासिक यथार्थता में प्रत्यक्ष हो उठा है । देश काल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में निश्चय ही उपन्यासकार की भाषा-शैली का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण योग है और जो बाणभट्ट की शैली का एक आधुनिक रूप है ।

इस प्रकार "बाणभट्ट की आत्मकथा" इतिहास और कल्पना का ऐसा सुन्दर समन्वय है जिसमें दोनों एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं और परस्पर के संपर्क से जीवंत और भास्वर हो उठे हैं । इतिहास-प्रयोग का, कथा -

योजना का, शैली-भाषा का, चरित्र-चित्रण का तथा देश-काल-निर्माण का जो रूप इस उपन्यास में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। "बाणभट्ट की आत्मकथा" ऐतिहासिक उपन्यास कला का एक अत्यन्त श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करती है और भारतीय उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

(१०) मुर्दों का टीला

प्रागैतिहासिक कालीन सिन्धु सभ्यता और संस्कृति पर आधारित एक मात्र रांगेय राघव का ऐतिहासिक उपन्यास "मुर्दों का टीला"(१९४८) शिल्प और इतिहास-प्रयोग दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। "दिव्या" की भांति इस उपन्यास को भी स्वच्छंद ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। इस बृहदाकार उपन्यास में मोहेन-जो-दड़ो की समुन्नत सभ्यता, उसके विलास-वैभव आदि के वर्णन के साथ अन्त में दैवी प्रकोप द्वारा उसके विनाश की कहानी अंकित है। मोहेन-जो-दड़ो के भग्नावशेषों से प्रेरणा लेकर तथा उसमें अपनी कल्पना का योग करके उपन्यासकार ने एक सुसम्बद्ध काल्पनिक कथानक के माध्यम से उस युग की शासन-प्रणाली एवं जीवन-रीति के अंकन का प्रयत्न किया है। सुदूर के अतीत में पैठकर अपनी कुशल कल्पना से उस युग के पुनर्निर्माण का यह अभिनव प्रयत्न सराहनीय है। प्रगतिवादी आलोचक शिवदानसिंह चौहान ने इस उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है कि "मुर्दों का टीला" संभवतः रांगेय राघव का अब तक का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने मोहेन-जो-दड़ो के समय के आदिम सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की कल्पनाजन्य कहानी कही है। इस प्रागैतिहासिक सभ्यता पर साहित्यिक कल्पना का यह हिन्दी में प्रथम उपन्यास है।[1]"

मांटगुमरी जिले के हड़प्पा और सिंध के लरकाना जिले के मोहेन-जो-दड़ो, पंजाब के कुछ अन्य स्थानों, सिंध के चान्हू-दड़ो-झूकरदड़ो तथा बलूचिस्तान की कलात रियासत के नाल आदि स्थानों में पुरातत्व संबंधी खुदाइयों से जो

१- श्री शिवदान सिंह चौहान: हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १००।

भग्नावशेष मिले हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि प्राग्वैदिक काल से शताब्दियों पूर्व(कतिपय इतिहासज्ञों तथा पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार ईसा से लगभग १०-१५ हजार वर्ष पूर्व) सिन्धु के कांठे में जीवन लहरें मारता था और एक उच्च कोटि की सभ्यता सक्रिय थी। अन्वेषणों से यह भी पता चलता है कि यहाँ की सभ्यता तत्कालीन जगत की उच्च सभ्यताओं में से एक थी और कई बातों में मैसोपोटामिया एलम, सुमेर और मिस्र की सभ्यताओं से भी आगे थी[1]।

मोहेन-जो-दड़ो, सिन्ध के तट पर स्थित सैन्धव सभ्यता का एक महान केन्द्र था। मोहेनजो-दड़ो को यहाँ के निवासी आदमी से इस नाम से जानते हैं। मोहेन-जो-दड़ो का अर्थ है - मुर्दों का नगर। कुछ आश्चर्य नहीं कि यह नाम इस सभ्यता के विनष्ट होने के कुछ ही दिन बाद उस स्थान को दिया गया हो और परम्परया इसका नाम भाषा के बदलते रूपों से होता हुआ आज भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो। किस कारण इस महानगर का ध्वंस हुआ, इसकी कल्पना करना कठिन है। भूकम्प, बाढ़, सिन्धु नद की धारा का बदल जाना, जलवायु का परिवर्तन, भयानक विदेशी आक्रमण- इनमें कोई या अनेक इस सभ्यता के विनाश या लोप के कारण हो सकते हैं। संभवतः इस नगर का विध्वंस उससमय हुआ,जब यह अपने विकास की चरम अवस्था पर पहुँच चुका था।

अधिकांश विद्वान् इस बात में प्रायः एकमत हैं कि सिन्धु के कांठे की सभ्यता के निर्माता, द्रविड़ थे जिनको अपने प्रारंभिक दिनों में आर्यों से संघर्ष करना पड़ा था। "ऋग्वेद" में जिन्हें "दास" अथवा "दस्यु" कहा गया है, सम्भवतः वे यही द्रविड़ थे। ये द्रविड़ अत्यन्त सभ्य एवं सुसंस्कृत थे। वे पक्के भवनों में रहते थे, कृषि उनके जीवन का प्रमुख आधार था। गेहूँ और जौ उनके प्रमुख भोज्य पदार्थ थे। सुअर, गाय, भेड़, और दूसरे जानवरों के साथ संभवतः अण्डे और मछलियाँ भी खाते थे। चित्रकला तथा नृत्यकला के प्रति इन द्रविड़ों को विशेष प्रेम था। मोहेन-जो-दड़ो तथा एलम, सुमेर, मैसोपोटामिया एवं मिस्र के प्राप्त

१- डा०भगवत शरण उपाध्यायः प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १७ ।

अनेक वस्तुओं में समानताएँ हैं जिससे अनुमान किया जाता है कि इन देशों के लोग उस समय परस्पर-व्यापारिक सम्बन्ध रहा होगा[1]। पूजा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा संभवतः मातृशक्ति की थी जिसकी आराधना प्राचीन काल में ईरान से लेकर इजियन सागर के सारे देशों में होती थी[2]। मोहेन-जो-दड़ों से प्राप्त एक मुद्रा पर आलंकारिक रूप से योगी-मुद्रा में बैठे पशुओं से समादृत त्रिमुखधारी देवता की आकृति उत्कीर्ण है जिससे विद्वानों का अनुमान है कि यहाँ के प्राचीन निवासी ऐतिहासिक शिव के पूर्व रूप योगिराज अथवा पशुपति की पूजा करते थे[3]। उपलब्ध लिंग और योनि प्रतिमाओं से ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनमें जननेन्द्रियों की पूजा भी प्रचलित थी[4]। कुछ विद्वानों के अनुसार मोहेन-जो-दड़ों एक प्रतिनिधि शासक के अधीन था, कुछ के अनुसार उसके शासन-संचालन में धर्म अथवा पुरोहित वर्ग का हाथ था[5]। हण्टर महोदय ने मोहेन-जो-दड़ों की लिपिलिपि पर एक निबन्ध लिखते हुए कहा है कि संभवतः मोहेन-जो-दड़ों में कोई राजा नहीं था और वहाँ प्रजातंत्र सरकार थी[6]।

"मुर्दों का टीला" में रांगेय राघव ने उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मोहेन-जो-दड़ों की जीवन -पद्धति, रहन-सहन, धर्म-दर्शन, कला-शिल्प, शासन-व्यवस्था आदि को एक काल्पनिक कथा में समाविष्ट कर जीवंत एवं कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । उपन्यासकार ने मोहेन-जो-दड़ों के उस सांस्कृतिक इतिहास को इतनी कलात्मकता के साथ उपन्यास की कथा के साथ संयोजित किया है कि दोनों ही गौरवमण्डित हो उठे हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे मोहेन-जो-दड़ों स्वयं ही अपनी कथा कह रहा हो । यद्यपि उपन्यास के लेखन में उपन्यासकार का मार्क्सवादी दृष्टिकोण प्रधान रहा है और उसी

१- श्री सतीशचन्द्र काला: सिंधु सभ्यता, पृ० १७ ।

२- डा० रमाशंकर त्रिपाठी: प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १७ ।
३- डा० [illegible] उपाध्याय: प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २१ ।
४- वही ।
५- श्री सतीशचन्द्र काला: सिंधु सभ्यता, पृ० ४९।५० ।

६- वही, पृ० ५० ।

दृष्टिकोण से उसने तत्कालीन समाज और जीवन की व्याख्या भी की है, किंतु स्वयं को पात्र बनाकर उसके द्वारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन करने का प्रयत्न उसमें लक्षित नहीं होता जैसा कि राहुल सांकृत्यायन और किन्हीं अंशों में यशपाल में भी लक्षित होता है । एक विशेष दृष्टिकोण रखते हुए भी रांगेय राघव ने तटस्थ दृष्टिकोण से इतिहास को देखा है और उसी दृष्टिकोण से कथा का संगठन तथा पात्रों का निर्माण किया है ।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, मोहेन-जो-दड़ो के वैभव, संघर्ष तथा विनाश की कथा का कथानक और पात्र इतिहास-सम्मत न होकर पूर्णतः काल्पनिक हैं । मोहेन-जो-दड़ो गणराज्य का नागरिक मणिबंध वर्षों पूर्व एक व्यापारी के रूप में व्यापार करने के लिए मिस्र आदि देशों की ओर गया था । वहाँ उसने बहुत सम्पत्ति और सम्मान अर्जित किया और मिस्र के सम्राट फराऊन को भी अपने धन-धान्य तथा मणि-माणिक्यों की चकाचौंध से आकर्षित कर उसकी सहानुभूति और मित्रता प्राप्त की । वहाँ से अपने पोतों में असंख्य संपत्ति, दास-दासियाँ तथा सुंदरियाँ लेकर जब वह सिंधु के तट पर उतरा तो मोहेन-जो-दड़ो के निवासी उसे देखते ही रह गये । मिस्र-सुंदरी नीलूफर को वह अत्यधिक प्यार करता । हेका, नीलूफर की सखी और दासी दोनों थी । अपाप, मणिबंध का दास और हेका का प्रेमी था । मणिबंध के धन से चकाचौंध हो मोहेन-जो-दड़ो के निवासियों ने उसे गण प्रमुख बना दिया । वहीं बीच उत्तर के कीकट प्रदेश से आये प्रेमी-युगल विल्लिभिनूर तथा वेणी से मणिबंध तथा नीलूफर की भेंट होती है । विल्लिभिनूर कवि-गायक है तथा वेणी नर्तकी है । मणिबंध के वैभव को देखकर वेणी अभिभूत हो जाती है और धीरे-धीरे उसकी ओर आकर्षित होती चली जाती है । मणिबंध भी नीलूफर की ओर से उदासीन होकर वेणी के प्रेम में डूब जाता है । नीलूफर देखती है कि मणिबंध उसका तिरस्कार कर एक साधारण द्रविड़ नर्तकी के प्रेम में बहा जा रहा है तो उसके मन में मणिबंध के प्रति घृणा तथा नर्तकी के प्रति ईर्ष्या की भावना उत्पन्न होती है और वह भी विल्लिभिनूर को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करती है । किन्तु विल्लिभिनूर उसे अपनी सहानुभूति देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाता । मणिबंध के उकसाने से

यह सोच कर कि शिल्पिभितूर नीलूफर की ओर आकर्षित है, बेणी उसकी हत्या का षड्यंत्र रचती है और सिंधु तीर पर उसे बुलाती है । संयोगवश नीलूफर भी वहाँ पहुँच जाती है और बेणी के षड्यंत्र का रहस्य खोलकर शिल्पिभितूर की रक्षा करती है । बेणी षड्यंत्र के खुल जाने से वहाँ से भाग जाती है । तभी एक भयंकर गड़गड़ाहट होती है और भूकंप से पृथ्वी डोलने लगती है । किंतु पुनः शान्ति हो जाती है ।

कुछ दिनों बाद मोहेन-जोदड़ो के उत्तरी प्रदेश पर आर्यों का आक्रमण प्रारंभ हो जाता है । वे हड़प्पा को नष्ट कर कीकट प्रदेश पर आक्रमण करते हैं। आर्य. कीकट-प्रदेश के द्रविड़ों को भी हरा देते हैं और बंदियों की सामूहिक हत्या कर देते हैं । द्रविड़ पुरुषों एवं स्त्रियों को वे दास बना लेते हैं । कुछ द्रविड़ भागकर रक्षार्थ मोहेन-जोदड़ो में आते हैं । कीकट की राजकुमारी कन्हा भी परिस्थितिवश अपने देश से भागकर मोहेनजोदड़ो में आती है वहाँ उसकी भेंट शिल्पिभितूर से होती है । इधर मणिबंध धीरे-धीरे एकछत्र सम्राट होने की चेष्टा करता है तथा आमेन-रा एवं अन्य विदेशियों के परामर्श से मिस्र की भाँति निरंकुश शासन-पद्धति स्थापित करने के प्रयत्न में नृशंसता, बर्बरता, हिंसा आदि का आश्रय ग्रहण करता है । उधर शिल्पिभितूर, नीलूफर, राजकुमारी कन्हा, वृद्ध भिक्षु विश्वजीत आदि मिलकर मणिबंध के शासन के विरुद्ध षड्यंत्र रचते हैं और जनता के मन में विद्रोह की भावना पैदा करते हैं । फलस्वरूप जनता विद्रोह कर देती है - और मोहेन जोदड़ो में क्रान्ति मच जाती है । तभी पृथ्वी के भीतर से भयंकर शब्द होने लगता है, आकाश गड़गड़ाने लगता है और चारों ओर अंधकार छा जाता है । प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है और समूचा महानगर भयंकर भूकंप और बाढ़ों में डूब जाता है ।

"मुर्दों का टीला" की कथा मात्र इतनी है, किंतु उपन्यासकार ने इसे प्रेम, आकांक्षा, वासना, हिंसा, घृणा आदि मानवीय भावनाओं की विशाल पृष्ठभूमि पर चित्रित कर एक सहज गरिमा प्रदान की है । मणिबंध और शिल्पिभितूर, नीलूफर, और वेणी, अपाप और हेका, विश्वजीत और आमेन-रा सभी मानवीय भावनाओं के प्रतीक हैं और लेखक की कल्पना से प्रसूत

होने के बावजूद भी परिस्थितिजन्य है। तत्कालीन वातावरण के आभास के लिए इतिहास-सम्मत अनेक बातों का समावेश लेखक ने उपन्यास में किया है। महामाई तथा योगिराज की उपासना, अहिराज पूजा, शिश्नपूजा, नरबलि, शवसाधना, गण-व्यवस्था, दास-प्रथा, वेश्यावृत्ति, नृत्यकला, नगर तथा नगर-पथ वर्णन, आर्य-आक्रमण, हड़प्पा पतन, वर्षा तथा भूकंप आदि अनेकानेक प्रसंगों को उपन्यासकार ने समाविष्ट कर तथा कथा के विशेष बिन्दुओं से उन्हें सम्बद्ध कर सार्थकता प्रदान की है। सांस्कृतिक इतिहास को उपस्थित करने की एक आदर्श पद्धति का प्रयोग प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है।

"मुर्दों का टीला", राहुल सांकृत्यायन के "सिंह सेनापति" और "जय यौधेय" तथा यशपाल के "दिव्या" उपन्यासों की परंपरा में ही आता है। राहुल और यशपाल की भांति रांगेय राघव ने भी इस उपन्यास में दास-प्रथा का विरोध, गणतंत्र शासन के लिए आग्रह, नारी-स्वतंत्रता का समर्थन, साम्राज्य वाद के प्रति घृणा, शोषित तथा प्रताड़ित के लिए सहानुभूति व्यक्त की है जो उनकी प्रगतिवादी चिन्तनधारा का प्रतिफल है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक चेतना के अनुरूप उन शक्तियों को उभारा है जो जीवन-विकास के लिए मंगल-कारिणी हैं। इन शक्तियों को पहचानने तथा अंकित करने में उन्होंने मार्क्स-वादी ऐतिहासिक दृष्टि से काम लिया है। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने मृतक समाज को पुनरुज्जीवित करने के प्रयास में परोक्ष रूप में प्रगतिवादी जीवन-दृष्टि का उपयोग करने पर भी कलात्मक संयम तथा वैज्ञानिक तटस्थता का [illegible]ण किया है। यह अवश्य है कि कला की दृष्टि से जो कलात्मकता, शिल्पगत सौंदर्य, एवं रोचकता "दिव्या" में है, वह "मुर्दों का टीला" में नहीं है।

(११) वैशाली की नगर वधू

राजवंश-वर्णन और शिल्प-विधान की दृष्टि से आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास "वैशाली की नगर वधू"(१९४९ई०) हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग है। यह दो भागों में विभक्त ८००पृष्ठों का एक बृहत्काय उपन्यास है जिसके अन्त में लगभग १०० अतिरिक्त पृष्ठों में "[illegible]" जुड़ा है। "[illegible]" की यह मौलिक औपन्यासिक

कृति के "प्रवक्तव्य" में शास्त्री जी ने बयालीस वर्षों की अर्जित अपनी संपूर्ण साहित्य-संपदा को रद्द करके इसे अपनी प्रथम कृति घोषित किया है । निःसंदेह, यह उपन्यास इनकी एक विशिष्ट और लोकप्रिय कृति है जिसमें इतिहास, कल्पना, अनुभव, अनुमान, और अध्ययन का अद्भुत पूर्व संगम है, किंतु इन सभीका प्रयोग कितने कलात्मक एवं मर्यादित ढंग से उपन्यास में हुआ है, यह एक महत्व-पूर्ण प्रश्न है ।

प्रस्तुत उपन्यास बहुत विस्तृत भूमिका में बहुत बड़ी आकांक्षा लेकर लिखा गया है । इस उपन्यास का संबंध भारतीय इतिहास के उस युग से है जब कि ब्राह्मण-धर्म अपने कर्मकाण्डों और बाह्याडम्बरों के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था और बुद्ध तथा महावीर प्रचलित ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध बौद्धधर्म और जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे एवं अपने उपदेशों से जन-साधारण को आप्लावित कर रहे थे । वस्तुतः यह युग(६वीं से ५वीं शती ईसा पूर्व) भारतीय इतिहास का एक ऐसा संक्रान्ति-काल था जिसमें गंधार से लेकर मगध और अंग तक, समस्त उत्तरी भारत में राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा था। उस युग में उत्तरी भारत में सब मिलाकर छोटे-बड़े कुल सोलह राज्य थे । इनमें से कुछ तो गणतंत्रात्मक थे और कुछ राजतंत्रात्मक । वज्जियों, मल्लों और शाक्यों के गणराज्य थे । अवन्ती, कोशल, वत्स और मगध में क्रमशः चण्ड प्रद्योत, प्रसेनजित, उदयन तथा श्रेणिक बिम्बसार राज्य करते थे ।

"वैशाली की नगर वधू" के कथाकाल में लिच्छवियों के वज्जी संघ की राज-धानी वैशाली थी । इस संघ में विदेह, लिच्छवी, ज्ञातृक, वज्जी, उग्र, भोज, इक्ष्वाकु और कौरव ये आठ कुल सम्मिलित थे । उस समय धन-धान्य और ऐश्वर्य में वैशाली अपनी समता नहीं रखती थी । युवक सामंतगण और सेट्ठि-पुत्र विलासिता में आकण्ठ डूबे हुए थे । इस वज्जी संघ का नियम था कि गण-प्रदेश की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी कुमारी को बाध्य होकर जनपद कल्याणी या नगरवधू का जीवन व्यतीत करना पड़ता था । वार्धक महानामन की पालिता कन्या जिसे [illegible] के सप्तभूमि प्रासाद के उपवन में एक आम्र-कानन में पाया था और प्यार से "अम्बपालिका" पुकारा करते थे, [illegible] सुंदरी और अद्वितीय

सौंदर्यशाली थी । धीरे-धीरे उसके सौंदर्य की ख्याति संपूर्ण जनपद और गण-राज्य में फैलती गयी और गण ने उसे जनपद कल्याणी अथवा नगरवधू बनने के लिये विवश किया । कुलवधू बनने की संपूर्ण कोमल आकांक्षाओं को वैशाली के "धिक्कृत कानून" पर निछावर करने के पूर्व देवी अम्बपाली ने गण से सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्णभार, प्रासाद के समस्त साधन और वैभव सहित मांग लिया । किंतु उसका हृदय वैशाली के प्रति भयंकर घृणा और प्रति-हिंसा से भर उठा और वह वज्जी संघ के नाश की कामना करने लगी । हर्षदेव, जिसकी वह वाग्दत्ता हो चुकी थी, वैशाली-विनाश के प्रयत्न में नगर छोड़कर चला गया । विलास के उपकरणों से घिरी हुई अम्बपाली वैशाली के सामंतपुत्रों और श्रेष्ठिपुत्रों के हृदयों से क्रीड़ा करती हुई जीवन-पथ पर अग्रसर हुई, किंतु उसने यत्नपूर्वक अपने कौमार्य की रक्षा की ।

जिस समय अम्बपाली वैशाली में नगरवधू का जीवन व्यतीत कर रही थी, उसी समय मगध में सम्राट बिम्बिसार राज्य कर रहे थे । किंतु मगध महामात्य वर्षकार ने अपने बुद्धि-कौशल और कूटनीति से शासन में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया था और व्यावहारिक रूप से शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में थी । वे मगध की राजधानी राजगृह के वैज्ञानिक आचार्य शाम्बव्य काश्यप की मारक औषधियों और [illegible]षा कुण्डनी की सहायता से बिना युद्ध के ही मगध-साम्राज्य की सीमा का विस्तार करते जा रहे थे । सोमप्रभ नामक युवक भी आचार्य शाम्बव्य द्वारा पालित था और १८ वर्ष पूर्व शस्त्र-शास्त्रों का अध्ययन करने मगध से तक्षशिला गया था, अपनी शिक्षा में पारंगत होकर वह लौट आ गया । सोम आर्या मातंगी का पुत्र था । मातंगी बिंबिसार के पिता के पूज्य गुरु गोविन्द स्वामी की पुत्री थी जिन्हें वह आठ वर्ष का छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे और जिसका पालन-पोषण बिंबिसार के पिता की देखरेख में मठ में हुआ था । वर्षकार भी गोविन्द स्वामी का औरस पुत्र था, किंतु यह रहस्य किसी को ज्ञात न था । ११ वर्ष की अवस्था तक वह भी गोविन्द स्वामी के ही मठ में रहा, किंतु उनकी मृत्यु के पश्चात् उसका भी पालन-पोषण मठ में ही हुआ । मातंगी जब युवती हुई तो उसका शील भंग वर्षकार तथा बिंबिसार दोनों से ही गया । सोम वर्षकार का पुत्र

था या बिंबिसार का यह मातंगी ही जानती थी । किंतु वैशाली की अम्बपाली वर्षकार के औरस से उत्पन्न मातंगी की पुत्री थी, इसे वर्षकार भी जानता था। सोम के तक्षशिला से लौटने पर वर्षकार ने उसे विषकन्या कुण्डनी के साथ अंग नरेश दधिवाहन की हत्या करने के लिए भेजा । अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए तथा "असुरपुरी" जैसे विचित्र देश में होते हुए दोनों अंग की राजधानी चंपा पहुँचे और षड्यंत्रों द्वारा दधिवाहन को मारने तथा चंपा-विजय में सफल हुए । चंपा की राजकुमारी चंद्रभद्रा को लेकर सोम और कुण्डनी दोनों मगध के लिए चल पड़े, किंतु मार्ग में कुमारी चन्द्रभद्रा डाकुओं द्वारा छीन ली गयी ।

कोशल-सम्राट प्रसेनजित वृद्धावस्था में भी अत्यन्त विलासी एवं भोग-लिप्सु थे । उनके राजमहल में देश-विदेश की एक से एक सुंदर युवतियाँ थीं । उनकी राजमहिषी एक माली की लड़की थी । उनका पुत्र विदूडभ दासी वासभ नंदिनी से उत्पन्न हुआ था और पिता से असन्तुष्ट रहता था, किन्तु सेनापति बंधुल मल्ल की स्वामिभक्ति के कारण कुछ कर सकने में असमर्थ था । ननिहाल के शाक्यों ने उसका अपमान किया था, अतः वह शाक्यों के विनाश के लिये भी प्रयत्नशील था । उच्च कुलोद्भव आर्यों के प्रति भी उसके मन में तीव्र घृणा थी । इधर सम्राट प्रसेनजित अक्षत यौवना गांधार कुमारी कलिंग सेना से विवाह रचाने की तैयारी कर रहे थे कि संयोगवश चंपा-राजकुमारी चन्द्रभद्रा दासी बनकर कोशल की राजधानी श्रावस्ती के राजमहल में पहुँच गयी । संयोगवश ही कुण्डनी और सोमभद्र वहाँ भी आ गये और राजकुमारी का समाचार जानकर उसके उद्धार के लिए प्रयत्न करने लगे । अर्हत महावीर के आदेश से कुमार विदूडभ ने राजकुमारी चन्द्रभद्रा को मुक्त कर दिया । आचार्य अजित ~~केसकम्बली~~ की कूटनीति तथा सोम की सहायता से पिता को राज्य की सीमा से निकालकर विदूडभ राजा बन बैठा । बंधुल मल्ल ने बाधा दी, किन्तु मारा गया । मगध जाते समय प्रसेनजित तथा राजमहिषी मल्लिका की भी मृत्यु हो गयी । यद्यपि चंपा-राजकुमारी और सोम परस्पर हार्दिक स्नेह से बंधे थे और एक-दूसरे से अलग होना नहीं चाहते थे, किन्तु अर्हत महावीर के उपदेश से हृदय पर वज्र रखकर राजकुमारी को कोशल की राजमहिषी बनने के लिए छोड़कर सोम, कुण्डनी के साथ मगध के लिए चल देता है । यहीं पर उपन्यास के पूर्वार्द्ध की समाप्ति होती

है ।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध की कथा मुख्यतः अम्बपाली को केन्द्र बनाकर ही अग्रसर होती है । वैशाली गणराज्य में प्रति वर्ष मधुपर्व का उत्सव अधिक उल्लास-उत्साह से मनाया जाता था । उस दिन आखेट के लिए लोग जाते थे और मधुपर्व की रानी होती थी वैशाली की नगरवधू । अम्बपाली युवराज स्वर्णसेन के साथ वनप्रान्त में आखेट के लिए जाती है, किंतु सिंह की दहाड़ सुनकर युवराज का अश्व उसे लेकर भाग खड़ा होता है और भागते हुए युवराज को ऐसा प्रतीत होता है कि सिंह अम्बपाली के अश्व पर टूट रहा है । अम्बपाली की मृत्यु का निश्चित विश्वास लेकर युवराज राजधानी लौटते हैं । उधर सोमप्रभ जो षड्यंत्र करने के उद्देश्य से अपने सैनिकों के साथ वैशाली के समीप जंगल में रहता है, ठीक अवसर पर उपस्थित होकर अम्बपाली की रक्षा करता है और उसे अपनी कुटिया में ले जाता है । महाराज उदयन के पश्चात सोमप्रभ द्वितीय व्यक्ति है जिसके सम्मुख नारी-जनोचित आकर्षण का अनुभव अम्बपाली करती है और उसका मन किंचित् डोला होता है । महर्षि बादरायण के आश्रम में अम्बपाली और सम्राट बिंबिसार का मिलन हुआ था और सम्राट ने अम्बपाली को यह वचन दिया था कि वैशाली गणतंत्र का विनाश करके उसे मगध की पट्टराजमहिषी बनायेंगे । फलतः सम्राट शीघ्रातिशीघ्र वैशाली पर चढ़ाई कर देना चाहते हैं, किंतु अमात्य वर्षकार उससे सहमत नहीं होते । परिणाम स्वरूप वे सम्राट द्वारा राज्य से निकाल दिये जाते हैं और वैशाली में जाकर अपनी कूटनीति का प्रयोग करने लगते हैं । वैशाली के गणपति, सेनापति, महाबलाधिकृत आदि को वर्षकार के षड्यंत्र का पता लग जाता है और उसे बंदीगृह में डालकर युद्ध की तैयारी में लग जाते हैं । इसी बीच सोमप्रभ के सेनापतित्व में बिंबिसार ने वैशाली पर आक्रमण कर दिया और स्वयं गुप्त रूप से अम्बपाली के सप्तभूमि प्रासाद में चले गये । युद्धभूमि में सम्राट को न पाकर सैनिकों ने समझा सम्राट मारे गये । यह समाचार पाकर सोम ने दूने वेग से वैशाली पर आक्रमण किया और प्रचण्ड वेग से वैशाली के विनाश में जुट गया । वैशाली के नागरिकों, सेनापतियों, सामंत आदि ने भी सोम के आक्रमण का उत्तर तत्परता से दिया।

बाद में यह सूचना पाकर कि सम्राट अम्बपाली के विलासगृह में स्वेच्छा से निवास कर रहे हैं, सोम ने युद्ध बंद कर दिया । जब सम्राट को सोम के इस द्रोह का पता चला तो वे उसे दण्ड देने के लिये अम्बपाली के विलासगृह से रणभूमि को चले गये । वहाँ सम्राट और सोम का द्वन्द्व युद्ध होता है, किंतु अम्बपाली बीच में पड़कर सम्राट के प्राणों की भिक्षा माँग लेती है । सोम, सम्राट को बंदीगृह में डाल देता है और अम्बपाली को वैशाली सुरक्षित भेज देता है । किन्तु आर्या मातंगी द्वारा जब उसे ज्ञात होता है कि सम्राट ही उसके पिता हैं, तो वह भाव-विह्वल हो कारागृह में पहुंच उनसे क्षमा-याचना करता है । वैशाली और मगध में संधि हो जाती है और वर्षकार वैशाली के बंदीगृह से मुक्त होता है और पुनः मगध अमात्य का पद प्राप्त करता है । अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बिंबिसार अम्बपाली के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को, जिसे अम्बपाली ने प्रसवोपरान्त गुप्त रूप से सम्राट के पास भेज दिया था, मगध का भावी सम्राट घोषित करते हैं । इस घटना के कुछ वर्षों पश्चात् भगवान बुद्ध वैशाली में आते हैं और अम्बपाली की बाड़ी में ठहरते हैं । अम्बपाली को जब भगवान बुद्ध के आने की बात ज्ञात होती है तो उन्हें वह भिक्षुओं सहित भोजन के लिए निमंत्रित करती है और अपना संपूर्ण वैभव त्यागकर तथागत की शिष्या बन जाती है । नगर छोड़ते समय वह देखती है कि सोम भी बौद्ध भिक्षु के रूप में उसके पीछे-पीछे आ रहा है ।

"वैशाली की नगर वधू" की मूलकथा, यद्यपि इतनी ही है, किंतु बीच-बीच में सम्बद्ध-असम्बद्ध अनेकों प्रसंग बिखरे पड़े हैं । कौशाम्बी नरेश महाराज उदयन का घोषवित और वसन्त विद्या द्वारा अदृश्य होकर आकाश मार्ग से अम्बपाली से मिलने आना और एक साथ तीन ग्रामों में बजने वाली अपनी दिव्य महार्घ वीणा से साथ उसका नृत्य कराना, ज्ञातिपुत्र सिंह सेनापति का तक्षशिला विश्वविद्यालय से रण चातुरी और राजनीति की शिक्षा लेकर तथा कुरुपत्नी रोहिणी से विवाह कर वैशाली लौटना तथा वैशाली के नागरिकों का उसका स्वागत करना, बंधुल मल्ल और मल्लिका का कुशीनारा छोड़कर श्रावस्ती जाना और प्रसेनजित द्वारा सेनापति बनाया जाना, जीवक कौमार भृत्य तथा [illegible] का मिलना, आचार्य प्रेमी [illegible] का [illegible] भगती है

गणनायक ने मान लिया । अन्ततः उसे "नगरवधू" बनना पड़ा[1] ।

बौद्ध-ग्रंथों के अनुसार मगध-सम्राट का अम्बपाली के प्रति प्रेम था और अम्बपाली के कारण वे अनेक बार वैशाली गये थे । "विनय वस्तु" में इस संबंध में एक घटना वर्णित है जिसके अनुसार एक बार बिंबिसार जिनके साथ लिच्छवियों की शत्रुता चल रही थी, गुप्त रूप से अम्बपाली के गृह पधारे। उनके नगर प्रवेश करते ही वैशाली का वह घंटा जो किसी के नगर-प्रवेश करते ही बज उठता था, बजने लगा । अम्बपाली द्वारा इस रहस्य को जानकर तथा घरों की तलाशी की बात सुनकर बिंबिसार घबरा उठे । किन्तु अम्बपाली ने धैर्य बंधाते हुए कहा कि उसके घर की तलाशी आज के सातवें दिन होगी । बिंबिसार ने प्रायः एक सप्ताह तक निवास किया । जाते समय अम्बपाली ने उनसे पूछा-राजन्, यदि मेरे गर्भ से कोई संतान हुई तो क्या करूँगी ? बिंबिसार ने उसे एक अंगूठी और एक महीन वस्त्र देते हुए कहा कि यदि पुत्री हुई तो यहीं रहेगी और यदि पुत्र हो तो इन्हीं वस्तुओं के साथ मेरे पास प्रेषित करना, मैं उसे पुत्र रूप में स्वीकार करूँगा । अम्बपाली के प्रसिद्ध पुत्र विमल कुन्दन(कोण्डन) के पिता बिंबिसार ही बताये जाते हैं । सातवें दिन बिंबिसार वैशाली से चुपके से निकल भागे, तो घंटा बंद हो गया । लिच्छवियों ने उनका पीछा किया लेकिन पकड़ नहीं पाये[1]।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में अम्बपाली ने भगवान बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और उनके संघ में सम्मिलित हो गयी थी । उसने भगवान को स्वयं अपने घर निमंत्रित किया था और उनके रहने के लिये अपना विशाल आम्रवन दे दिया था[2]।

१-देखें, श्री रामेश्वर प्रसाद नारायण सिंह की पुस्तक "बिहार का गौरव" (१९६० ई०) का लेख "वैशाली का वैभव", पृ० ११-१४ ।

२- वही, पृ० १५-१६ ।

"वैशाली की नगर वधू" की मुख्य कथा अम्बपाली विषयक उपर्युक्त ऐतिहासिक वृत पर ही आधारित है जिसमें शास्त्री जी ने अपनी कल्पना से रंगकर एक विस्तृत भावभूमि प्रदान की है। समूचे उपन्यास में अम्बपाली ही ऐसी है जो दिव्य होते हुए भी इतिहास और ऐतिहासिक संभावनाओं के अनुकूल है। अम्बपाली के व्यक्तित्व निर्माण में शास्त्री जी को अत्यधिक सफलता मिली है। अम्बपाली की कथा के समानान्तर चलने वाली दो अन्य प्रमुख कथाएं हैं- मगध सम्राट बिंबिसार और वैशाली के संघर्ष की कथा तथा कोशल-सम्राट प्रसेनजित के राज्यच्युत होने की कथा। उपन्यास में अम्बपाली के अतिरिक्त सम्राट बिंबिसार, महामात्य वर्षकार, कोशल-सम्राट प्रसेनजित, राजकुमार विदूडभ, कारायण, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, कौशाम्बी नरेश उदयन, सेनाधिपति हरिकेशन, राजकुमारी चन्द्रप्रभा, बंधुल मल्ल, सिंह सेनापति प्रमुख ऐतिहासिक पात्र हैं। "सिंह सेनापति" का व्यक्तित्व राहुल सांकृत्यायन के प्रसिद्ध उपन्यास "सिंह सेनापति" के आधार पर निर्मित हुआ है। कल्पित पात्रों में वैशाली गणपति सुनन्द, युवराज स्वर्णसेन, महाबलाधिकृत सुमन, जयराज, सूर्यमल्ल, सोमप्रभ, कुण्डनी, रूपिल, आचार्य शाम्बव्य काश्यप, आर्या मातंगी, शम्बरासुर और श्रेष्ठिपुत्र पुण्डरीक प्रमुख हैं। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि कल्पित पात्रों से संबंधित सभी घटनाएं काल्पनिक तो हैं ही, कहीं-कहीं ऐतिहासिक संभाव्यता से दूर नितान्त अलौकिक और चमत्कारपूर्ण हैं। सोम और कुण्डनी का असुरपुरी में प्रवेश, सोम का वन के भीतर कठिन अभियान, कुण्डनी का सर्प-दंशन, असुरों के भोज में कुण्डनी का मृत्यु-चुम्बन, श्रेष्ठिपुत्र पुण्डरीक के शरीर में छाया पुरुष मन्थान भैरव का प्रवेश, देवजुष्ट पुण्डरीक द्वारा अनुगामिनी नागवाटी कुण्डनी का पुनरावर्तन आदि घटनाएं कपोल-कल्पित, अयथार्थ, इतिहासमूलक कल्पना के विपरीत और चमत्कारपूर्ण हैं और ऐतिहासिक वातावरण से अलग हमें एक तिलस्मी एवं जादुई वातावरण का बोध कराती हैं। इसी प्रकार ऐतिहासिक पात्रों से संबंधित कई घटनाएं जैसे, कौशाम्बी नरेश उदयन का [illegible] और वेदद विद्या द्वारा आकाशगामी हो [illegible] के उपवन में जाना और उसके [illegible] वादन के साथ [illegible] का अद्भुत दिव्य नृत्य करना, सोम द्वारा विदूडभ की मुक्ति का प्रयत्न आदि

घटनाएँ अस्वाभाविक एवं ऐतिहासिक यथार्थ से दूर हैं । ऐतिहासिक उपन्यास में ऐसी घटनाओं का संयोजन तथा संगठन उसकी प्रकृति के प्रतिकूल होता है और उपन्यास पाठक के मन का विश्वास अर्जित कर सकने में असमर्थ हो जाता है । इसप्रकार की घटनाएँ ऐतिहासिक उपन्यास के शिल्प-सौंदर्य को बढ़ाने के बदले उसमें बाधा उत्पन्न करती हैं । उपर्युक्त घटनाओं के संयोजन से "वैशाली की नगर वधू" की कथा किंचित अविश्वसनीय हो जाती है और हमारा मन पूर्ण रूप से उस पर जम नहीं पाता । "नगर वधू" की कथा का यह एक भारी दोष है ।

इस संदर्भ में कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तित्वों पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा । यह उल्लेखनीय है कि कतिपय पात्रों एवं घटनाओं के साथ लेखक ने मनमाना कार्य किया है और उनके ऐतिहासिक स्वरूप को विकृत कर उन्हें सत्य से दूर जा खड़ा किया है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इस प्रकार का परिवर्तन और विकृतीकरण ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए अक्षम्य है । इतिहास-ग्रंथों में यह वर्णित है कि मगध -सम्राट बिंबिसार का वैशाली के लिच्छवियों से संबंध ही नहीं, घनिष्ठ संबंध था और लिच्छवी राजा चेटक ने अपनी पुत्री चेलना का विवाह बिंबिसार से किया था[1]। बिंबिसार के काल में मगध और वैशाली में ऐसा युद्ध कभी नहीं हुआ जैसा उपन्यासकार ने उपन्यास में दिखाया है । यह बिल्कुल अनैतिहासिक बात है । वर्षकार का उल्लेख भी बिंबिसार के साथ नहीं मिलता । वस्तुतः लेखक ने बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु के वैशाली-आक्रमण की ऐतिहासिक घटना को बिंबिसार से सम्बद्ध कर दिया है । यह ऐतिहासिक तथ्य है कि बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु (४९३-४६१ ई०पू०) ने अपने मंत्री वर्षकार की सहायता से षड्यंत्र करके वैशाली गण में फूट डाल दी थी और जब गण के सदस्य परस्पर ईर्ष्याकुल हो गये तो उन पर आक्रमण करके वैशाली गण को नष्ट-भ्रष्ट कर

1- डा० रमाशंकर त्रिपाठी: प्राचीन भारत का इतिहास(तृतीय संस्करण१९६९) पृ० ७३ ।

डाला[1]। कोशल सम्राट प्रसेनजित से संबंधित घटनाओं में भी उपन्यासकार ने परिवर्तन किया है और ऐतिहासिक सत्य की हत्या कर डाली है। सबसे बड़ी ऐतिहासिक असंगति तो यह है कि उपन्यासकार ने प्रसेनजित की मृत्यु बिंबिसार के जीवन-काल में ही दिखाई है, जबकि उसकी मृत्यु बिंबिसार की मृत्यु के बाद अजातशत्रु के शासन काल में हुई। "वैशाली की नगर वधू" में प्रसेनजित अपने पुत्र विदूडभ द्वारा राज्य से निष्कासित होकर राज्य की सीमा पर पहुंचते हैं तो अपनी पत्नी मल्लिका से कहते हैं--"-----श्रेणिक बिंबिसार उनका स्वागत करेगा, उन्हें आश्रय देगा। फिर, मैंने उसे कन्या दी, वह मेरा संबंधी जामाता है, वह उसकी मर्यादा का पालन करेगा[2]।" ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार प्रसेनजित ने बिंबिसार को अपनी कन्या नहीं, वरन् बहिन कोशल देवी को प्रदान किया था। प्रसेनजित विषयक इन प्रसंगों की चर्चा करते हुए डा० भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है कि "अजातशत्रु के पिता बिंबिसार के साथ प्रसेनजित की भगिनी के ब्याह के कारण भी कोशल की शक्ति दृढ़ हो गयी थी। अभाग्यवश यही वैवाहिक संबंध कोशल और मगध के बीच झगड़े की जड़ भी बन गया। कारण यह हुआ कि जब अजातशत्रु ने अपने पिता को भूखों मार डाला, तब बिंबिसार की रानी कोशल देवी पति-वियोग के दुख से मर गयी। उसके विवाह के अवसर पर काशी कोशल देवी को दहेज में "स्नान और चूर्ण के मूल्य"(नहान-चुण्णमूल) रूप में दी गयी थी। भगिनी की अकाल मृत्यु से भावि पर क्रुद्ध होकर प्रसेनजित ने काशी-नगरी (की आय) लौटा ली। इस पर मगध ने कोशल के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। यह भयंकर

१- इस घटना के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिये डा० राधा कुमुद मुखर्जी की पुस्तक "हिंदू सभ्यता", पृ० १८४, तथा जयचंद्र विद्यालंकार तथा पृथ्वीसिंह मेहता की पुस्तक: बिहार एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन, पृ० ६७-६८,७१, ७२ भी।

२- वैशाली की नगर वधू: पूर्वार्द्ध(सन् १९४९), पृ० ३२५।

संग्राम कुछ काल तक दोनों के बीच चलता रहा । विजय लक्ष्मी कभी मगध की ओर जाती, कभी कोशल की ओर । अन्त में दोनों में सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया और काशी नगरी को ग्राम फिर मगध को दे दी।---जान पड़ता है युद्ध से उत्पन्न उसकी (प्रसेनजित की) परेशानियां बढ़ी थी, क्योंकि अन्त में दीर्घकारायण मंत्री द्वारा उकसाये जाने पर उसका पुत्र विडूडभ विद्रोही हो उठा और उसने अपने पिता से कोशल का सिंहासन छीन लिया । प्रसेनजित ने अजातशत्रु से सहायता मांगी और विपत्ति का मारा वह नरेश राजगृह तक जा भी पहुंचा । परन्तु राजगृह के नगर-द्वार पर ही शक्ति से क्षीण और थकान से व्याकुल हो वह गिर पड़ा । मृत्यु ने शीघ्र ही उसकी ग्लानि दूर कर दी । अजातशत्रु ने उसकी राजोचित अन्त्येष्टि की, परन्तु मौलिक की भांति विडूडभ को भी नहीं छोड़ा[1]।" इस प्रकार शास्त्री जी ने प्रसेनजित विषयक प्रसंग में परिवर्तन कर दिया है, जिसको करने का उनका अधिकार नहीं । इतिहास में प्रसेनजित को उदार, दानी और भगवान बुद्ध का कृपापात्र बताया गया है[2], जबकि उपन्यासकार ने उसे विलासी, भोग लिप्सु, और हीन चरित्र का चित्रित किया है । ऐतिहासिक उपन्यास में सुप्रतिष्ठित ऐतिहासिक चरित्रों में परिवर्तन एक प्रकार का घोर अपराध है जिसके लिए उपन्यासकार मात्र इसलिये क्षमा नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसने लिख दिया है कि उसने जानबूझकर "इतिहास-तत्व" में परिवर्तन किया है। अंगनरेश दधिवाहन के पराभव और मृत्यु तथा उनकी पुत्री महासती चन्दनबाला(उपन्यास की कुमारी चन्द्रभद्रा) को जैन-साहित्य में सती-साध्वी माना गया है, के ऐतिहासिक प्रसंगों को भी शास्त्री जी ने मनमाने ढंग से उपस्थित किया है और घटनाओं के जंजाल में फंसाकर तथा राजकुमार विडूडभ से उसका विवाह कराकर उसके ऐतिहासिक रूप को विकृत कर दिया है । कौशाम्बी नरेश उदयन को ऐतिहासिक व्यक्तित्व न लाकर देव-गंधर्व योनि का पौराणिक व्यक्तित्व प्राप्त होता है ।

१- प्राचीन भारत का इतिहास(द्वितीय संस्करण १९५७), पृ० १०२ ।

२- वही, पृ० १०१ ।

ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं में इस प्रकार का परिवर्तन एवं विकृतिकरण न केवल ऐतिहासिक सत्य के प्रति एक अपराध है, वरन् ऐतिहासिक उपन्यास की महत्ता को भी कम कर देता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक उपकथाओं का महत्व है और ये कथाएं मुख्य कथावस्तु को समृद्ध करती हैं । किन्तु शर्त यह है कि ये किसी शक्तिशाली संबंध-सूत्र से मुख्यकथा से जुड़ी रहें । ऊपर से चिपकाई गयी पैबंद सदृश उपकथाओं और प्रसंगों का ऐतिहासिक उपन्यास में कोई अर्थ नहीं होता। वैशाली की नगरवधू में कई ऐसे प्रसंग हैं जो ऊपर से चिपकाये गये लगते हैं । कुलपुत्र वधू[1], शाक्यसिंह[2], वर्धमान महावीर[3], पांचालों की परिषद्[4], दासों के हट्ट में[5] आदि उपशीर्षकों के प्रसंग ऐसे हैं जो महत्वपूर्ण होते हुए भी मूलकथा से अत्यन्त क्षीण-सूत्र से जुड़े हैं और कथा के विकास में उनका कोई विशेष योग नहीं है ।

काल-विशेष तथा वातावरण के निर्माण के लिए शास्त्री जी ने वेदों, ब्राह्मण-ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों, जैन एवं बौद्ध ग्रंथों, महाकाव्यों, नाटकों आदि प्राचीन ग्रंथों में बिखरी सामग्री का उपयोग किया है तथा देव, दानव, मानव आदि अनेक जातियों के रहन-सहन और जीवन-पद्धति तथा धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं की बुद्धि-संगत व्याख्या करने की चेष्टा की है । देव किस प्रदेश के रहने वाले थे, असुरों का निवास कहाँ था, नागों का अधिकार क्षेत्र कहाँ था, वैदिक धर्म की क्या त्रुटियाँ थीं, अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विधायक ब्राह्मण किन उपायों का अवलम्ब ग्रहण करते थे, संकरों की किस प्रकार वृद्धि हो रही थी, स्त्रियों के क्या मा[illegible] थे, दासों की कैसी दुर्दशा थी, जैन और बौद्ध धर्म कैसे विकसित हो रहे थे आदि बातों

१- वैशाली की नगर वधू, पूर्वार्द्ध, पृ० ६३ ।

२- वही, पृ० १९९ ।

३- वही, पृ० २२४ ।

४- वही, पृ० २९९ ।

५- वही, पृ० ३[illegible] ।

द्रव, वाष्प, ताप, विद्युत, क्षार, अम्ल, लवण आदि की व्याख्या करते हैं और उनकी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं । अपने ज्ञान-प्रदर्शन के दर्प में शास्त्री जी भूल जाते हैं कि यह विज्ञान की पुस्तक नहीं, ऐतिहासिक उपन्यास है । वैज्ञानिक शाम्बव्य काश्यप की अनुसंधानशाला भी किसी आधुनिक कालेज की प्रयोगशाला जैसी लगती है जहाँ "बहुत से मृतक पशु-पक्षियों के शरीर लटक रहे थे, अनेक जड़ी-बूटियां थैलियों में भरी हुई थीं । बहुत सी पिटक, भाण्ड और कांच की शीशियों में रासायन-द्रव्य रखे थे[1] ।" और, एक स्थल पर तो ऐतिहासिक पात्र सिंह सेनापति आधुनिक इतिहास-दार्शनिकों की तरह इतिहास की व्याख्या भी करता है और कहता है-"भन्ते गण, मैं इस बात पर विचार करता हूँ कि मनुष्य शरीर की भांति राजवंश का भी काल है, राजवंशों का तारुण्य अधिक भयानक होता है । वृद्धावस्था उतनी ही । तीन-चार पीढ़ियों में राजवंश का तारुण्य आता है । फिर उसका वार्धक्य आता है । तब कोई नया राजवंश तारुण्य लेकर आता है[2] ।" इस प्रकार की अनेक काल-विरुद्ध बातें उपन्यास में भरी पड़ी हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि "वैशाली की नगर वधू" में इतिहास-का प्रयोग उसके मर्यादित रूप में नहीं हुआ है और कथा के संगठन तथा वाता-वरण के निर्माण के लिए लेखक ने नितान्त स्वतंत्र कल्पना का आश्रय ग्रहण किया है जो ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन के लिए अनुपयुक्त होती है । लेखक की दृष्टि घटनाओं द्वारा काल-चित्रण की ओर नहीं रही है, वरन् वह घटनाओं की विचित्रता और रोचकता में ही उलझ गयी है । परिणाम यह हुआ है कि वह ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं के साथ न्याय नहीं कर सका है और पूरा उपन्यास एक टूटे दर्पण की तरह खण्ड-खण्ड बनकर रह गया है । "वैशाली की नगर वधू" के संबंध में डा० प्रभाकर माचवे का यह कथन कि "ऐतिहासिक उपन्यास क्या नहीं होना चाहिये, इसका परम उदाहरण यह ८०० पृष्ठों का

१- वैशाली की नगर वधू, पूर्वार्द्ध, पृ० ८३ ।

२- वही, उत्तरार्द्ध, पृ० ७११ ।

"बुद्धकालीन इतिहास-रस का मौलिक उपन्यास" है " कतिपय अर्थों में सही ही है । रोचक, लोकप्रिय एवं अभिनव प्रयोग होने के बावजूद भी "वैशाली की नगर वधू" इतिहास-प्रयोग तथा शिल्प-कला की दृष्टि से एककमज़ोर रचना है ।

(१९) <u>शतरंज के मोहरे</u>

अमृतलाल नागर कृत "शतरंज के मोहरे"(१९५९) ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की एक ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसे सही अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है और जिसमें इतिहास अपने यथार्थ रूप में उपन्यस्त होकर सजीव और प्रभावशाली हो उठा है । कला की दृष्टि से यह उपन्यास नागर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है । इतिहास-प्रयोग, कथा-शिल्प, चरित्रांकन, देश-काल चित्रण आदि सभी दृष्टियों से यह उपन्यास एक अद्वितीय रचना है ।

इस उपन्यास में नागर जी ने १९वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के लखनऊ की राजनीति और जन-जीवन को अपनी विवेचना का विषय बनाया है । १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम के लगभग तीन दशाब्दी पूर्व यद्यपि लखनऊ की नवाबी अस्त-व्यस्त स्थिति में थी और लखनऊ नवाब के अधीनस्थ अन्य छोटे-छोटे नवाब और जमींदार अपने को संकट-ग्रस्त और असुरक्षित पाते जा रहे थे, अवध की जनता का जीवन भी असुरक्षित, कठोर और अशांतिपूर्ण हो गया था । पूरे अवध में चोरी, बटमारी, तथा डा[illegible] सामान्य बात हो गयी थी ।शासन-व्यवस्था के ढीलेपन तथा राजकर्मचारियों की लूट-खसोट तथा मनमाने व्यवहार के कारण नवाब की आर्थिक स्थिति जहां कमजोर होती जा रही थी,वहां उसका शाही दबदबा भी बहुत कुछ कम होने लगा था । ईस्ट इण्डिया [illegible] के अधिकारी अपनी कूटनीति और धोखाधड़ी का जाल फैलाकर अवध के नवाब और जनता को अपने शिकंजे में कसते जा रहे थे और ऋण के बहाने करोड़ों रुपये नवाब से ऐंठकर अपनी झोली भर रहे थे। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कुछ देशी रजवाड़े और जमींदार भी देशभक्ति को तिलांजलि दे [illegible]" को इस काम में सहायता दे रहे थे । विला[illegible], ईर्ष्या, कपट, स्वार्थपरता आदि के कारण

नवाबी महल भाड़ुओं और जासूसियों का प्रदर्शनगृह बना हुआ था । राजाओं और नवाबों के टुकड़ों पर पलने वाले नमकहराम वैभवभोगी सरदार भी जासूसी का काम करते थे । यह वह समय था जब चन्द चांदी के टुकड़ों के लिए खबरें बेची जाती थीं और खरीदने वाले होते थे अंगरेज जिन्हें पाकर वे देशी नवाबों और राजाओं को पदच्युत करने का कानूनी स्वांग भरते थे । ऐसी स्थिति में राजकर्मचारियों की दो-दो सरकारें और प्रजा के तीन-तीन शासक थे तथा जनता अनेक प्रकार के करों, दबावों, अत्याचारों, लूट-खसोट आदि से पिसती जा रही थी ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक लखनऊ की पतनोन्मुख नवाबी के दो नवाबों-गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके विलासी शाहजादे नसीरुद्दीन हैदर से संबंधित है । कथाकाल है सन् १८१४ से १८३७ तक । अपने पिता वजीर सआदत अली की मृत्यु के पश्चात सन् १८१४ में नवाब गाजीउद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बैठा और अंगरेजों से उसकी एक नयी संधि की । कम्पनी को उन दिनों धन की अत्यधिक आवश्यकता थी और वह दो करोड़ रुपयों के लिए नवाब वजीर गाजीउद्दीन हैदर पर जोर डाल रही थी । नवाब ने पहले एक करोड़, फिर पचास हजार देने का वादा किया, किंतु कम्पनी ने दो करोड़ रुपया ऋण के रूप में लेकर ही उसका दम छोड़ा । नवाब की इस उदारता से कम्पनी ने सन् १८१८ में उसे अवध का स्वतंत्र बादशाह घोषित कर दिया । आग़ामीर अवध का प्रधान मंत्री बना और गाज़ीउद्दीन उसे बहुत मानने लगे । नवाब सआदत अली खां जिस ज़माने में अपने युवराज गाजीउद्दीन हैदर के आचरण से अप्रसन्न रहते, उन दिनों आग़ामीर युवराज का ख़ानसामा था । आग़ामीर की मंत्रणा ने गाजीउद्दीन को बड़ा बल प्रदान किया था । बादशाह होने पर वह उनका परम मंत्रदाता, विश्वासपात्र ख़ानसामा आगामीर राज्य का सबसे अधिक निरंकुश व्यक्ति बन गया । नवाब गाज़ीउद्दीन की पत्नी बादशाह बेगम अत्यन्त [illegible]ारिणी, जबरदस्त महिला और अपने पति को हर तरह से अपने अंकुश में रखना चाहती थी । नवाब गाजीउद्दीन हैदर और बादशाह बेगम—पति-पत्नी में प्रायः कम बनती थी । गाज़ीउद्दीन हैदर अपनी पत्नी

के आगे झुककर मामूली बात करने की भी हिम्मत नहीं रखते थे, उन्हें उनके गुस्से से डर लगता था । पिता सआदत अली खाँ के शासन काल में गाजीउद्दीन एक कन्या के पिता बने थे, जो दादा की लाडली होकर पोती बेगम कहलाई । उसके बाद बादशाह बेगम को कोई संतान नहीं हुई ।

नसीरुद्दीन, बादशाह बेगम की एक बाँदी से उत्पन्न गाजीउद्दीन हैदर का पुत्र था जिसे बादशाह बेगम ने उसकी माँ को मरवाकर अपनी निगरानी में ले लिया और उसके ऐसे लाड़ लड़ाये कि क्या कोई सगी माँ लड़ायेगी । युवराज को पूरी तरह अपने अधिकार में रखकर प्रचण्ड अहंकारिणी, अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी बादशाह बेगम अपने पति और उनके कुचक्री शक्तिशाली वज़ीर आगामीर से बराबर राजनीतिक मोर्चे लेती थी । नसीरुद्दीन किसी अभाव या असंतोष के कारण अपने पिता या वज़ीर के बहकावे में आकर, उसके कब्जे से कहीं छूट न जाय, इसलिये बादशाह बेगम ने खूबसूरत बाँदियों का हुजूम उसके पीछे लगा दिया और हुस्न तथा शृंगार के तिलस्म में उसे कैद कर दिया ।

१४सितम्बर १८२० के दिन बादशाह बेगम ने यह प्रचारित किया कि नसीरुद्दीन की बाँदी दुलहिन से उसके पोते की पैदाइश हुई है । बादशाह बेगम ने पोते मुन्नाजान को गोद में लेकर उसकी माँ को अफजल महल का खिताब बख्शा और मुन्ना जान की परवरिश बड़े लाड़-प्यार से करने लगी । किंतु बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि वह नसीरु-द्दीन की औलाद है । क्योंकि आगामीर द्वारा उसे सूचना मिली कि वह वास्तव में मुन्ना कोचिन का लड़का है जो महलों में लाई गयी थी और जब उसको लड़का हुआ तो उसे मार कर उसके लड़के को दुलहिन की बगल में लिटा दिया गया । गाज़ीउद्दीन और बादशाह बेगम में तो पहले से तनातनी चली ही आ रही थी, इस घटना को लेकर दोनों के बीच और भी मनोमालिन्य बढ़ गया और हर तरह से दोनों एक दूसरे को मात देने की कोशिश करने लगे । गाज़ीउद्दीन की ओर से, उनका वज़ीर आगामीर हर तरह की चाल का रहबर था । अंग्रेजों से भी उसने सांठ-गांठ कर रखी थी और वे भी बादशाह बेगम और नसीरुद्दीन के खिलाफ गाज़ीउद्दीन की मदद कर रहे थे । अन्त में आगा-मीर ने कई चालों से बादशाह बेगम के दो वज़ीरों- मीरफज़ल अली और

बीबी फखुन्निसा को गिरफ्तार कर करारी मात दे दी ।

बादशाह बेगम ने अपने पौत्र मुन्नाजान की देखभाल और पालन-पोषण के लिए परिस्थितियों को भारी किन्तु दरक करने में चतुर, बड़े-बड़े अरमानों वाली रुस्तमअली सईद की पत्नी दुलारी को अपने महल में रख लिया । दुलारी ऊपर से जितनी भोली, आकर्षक और मदमस्त बनानेवाली थी, भीतर से उतनी ही चतुर, कांइयाँ और होशियार थी। मुन्ना जान का पालन, पोषण करते-करते उसने बड़ी होशियारी से नसीरुद्दीन के दिल पर भी अधिकार कर लिया और उसके दिल की रानी बन बैठी । अब आगामीर के षड्यंत्र में वह भी शामिल हो गयी और नसीरुद्दीन को बादशाह बेगम से अलग करने में भी सफल हो गयी । वह अपने सगे पुत्र कैवांजाह को अवध की नवाबी का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी ।

सन् १८२७ में जब गाजीउद्दीन की मृत्यु हो गयी तो नसीरुद्दीन गद्दी पर बैठा और दुलारी को उसने अपना मलिकए जमानिया बनाया । दुलारी अब ठाट-बाटों से रहने लगी । अवध की राजनीति भी धीरे-धीरे जटिल से जटिलतर होती गयी । दुलारी, आगामीर, बादशाह बेगम, सेनापति राजा दर्शन सिंह गालिब जंग आदि ने अपनी अपनी गोटी बैठाने के लिये तथा अवध के बादशाह को अपने कब्जे में करने के लिए अनेक चालें चलनी शुरू कर दीं । अंगरेजों की चालें कुछ अलग ही थीं जो अवध के बादशाह और उसकी जनता को मित्रता का ढोंग रचकर तथा पूरी तरह से उन्हें गुलाम बनाकर उनकी धन-संपत्ति को हड़प जाना चाहती थी । रेजिडेंट मिस्टर और मिसेज रिकेट नवाब के मित्र बनकर उसके विलास और ऐशो-आराम को और बढ़ावा दे रहे थे । इंगलिस्तान का नाऊ डी रोज अपना अलग प्रभाव जमाने के चक्कर में था और नसीरुद्दीन को अपनी मुट्ठी में किये था। इसी बीच कुदसिया बेगम भी, जो दुलारी को अपदस्थ कर नसीरुद्दीन के दिलो-जां की मालिक बन बैठी थी, अपनी अलग चाल चलने लगी थी । [illegible]र के बाद हकीम मेंहदी अली और फिर नवाब रोशनुद्दौला अवध के वजीर हुए तो वे लोग भी अंगरेजों की आड़ लेकर नवाब को छलने लगे । और, इन सबके बीच अवध का नवाब शतरंज का मोहरा बना हुआ था । र[illegible] नाचों, षड्यंत्रों, [illegible] के कारनामों से नवाब रहता

परेशान और शक्की हो गया कि सब पर से उसका विश्वास उठ गया । और, एक दिन जब कुदसिया बेगम ने नवाब के अविश्वास को झुठलाने के लिए ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली तो जैसे वह पागल हो उठा । राजनीतिक उलझनें धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थीं और बादशाह नसीरुद्दीन का मन दुनिया के फरेब और जाल से मुक्त होने की कोशिश करके भी मुक्त नहीं हो रहा था । बादशाह बेगम चाहती थीं कि नसीरुद्दीन मुन्नाजान को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दें लेकिन नसीरुद्दीन ऐसा नहीं चाहता था । दोनों ओर से कशमकश चल ही रही थी कि एक दिन ८ जुलाई १८३७ को शाहे अवध नवाब नसीरुद्दीन इस दुनिया से कूच कर गया । उसकी मृत्यु के पश्चात् बादशाह बेगम ने मुन्ना जान को गद्दी पर बैठाया, किन्तु गवर्नर को यह मान्य न हुआ और चार घंटे का बादशाह मुन्नाजान अंग्रेजों द्वारा गद्दी से उतार दिया गया । गिरफ्तार होकर नंगे पैर, पांव पैदल, हथकड़ी पड़े हाथों से घसीट कर रेज़ीडेन्सी के तहखाने में उसे पहुंचाया गया और बादशाह बेगम अपना अन्त देखने के लिए शांत भाव से खामोश पड़ी रहीं ।

"शतरंज के मोहरे" का मुख्य कथाभाग यही है जो पूर्णतः ऐतिहासिक है और जिसे उपन्यासकार ने अपनी कारयित्री प्रतिभा और इतिहास-मूलक कल्पना द्वारा अत्यन्त कलात्मकता से उपस्थित किया है । मुख्य कथा के निर्माण में उपन्यासकार ने चार पुस्तकों-क्रमशः स्लीमैन कृत "ए जर्नी थ्रू द किंगडम आफ् अवध", "तारीखे-बादशाह बेगम", ई०डब्ल्यू०नायट कृत "प्राइवेट लाइफ आफ एन ईस्टर्न किंग", तथा "कैसरबाग-मुन्नाजान"[1] - का आधार ग्रहण किया है । उपन्यास में कुछ उपकथाएं भी हैं जो ऐतिहासिक-काल्पनिक दोनों तत्वों द्वारा निर्मित हैं । बुखारी के महल में आने के पूर्व की सभी घटनाएं काल्पनिक हैं । इसी प्रकार [illegible]दारा विजियाबन सिंह का व्यक्तित्व भी ऐतिहासिक है, किन्तु अपनी मुसलमान भटियारी कुल्सुम से रचाये उसका ब्याह तथा मुसलमानों के आक्रमण से बाद कुंवर सिंह की सहायता करना, निमक-हलाली प्रसंग, [illegible] से संबंधित घटनाएं, कुल्सुम हरण और अंग्रेजों के हाथ

१- श्री [illegible]लाल नागर ने बातचीत के दौरान इन पुस्तकों का नाम बताया था।

उठवा देना जाना, राजा रघुनंदन सिंह द्वारा बलपूर्वक दिग्विजय सिंह को मुसलमान नन्हाव के हाथ पकड़वा देना आदि प्रसंग काल्पनिक हैं । उपन्यासकार ने इन काल्पनिक प्रसंगों को तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण के संदर्भ में जिस यथार्थता और नाटकीयता से उपस्थित किया है वह अत्यन्त प्रभावशाली तथा तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों का सही सूचक है । दिग्विजय सिंह तथा उनसे संबंधित घटनाएं मुख्य कथा से अलग और एक तरह से स्वतंत्र हैं और एक बहुत क्षीण सूत्र द्वारा ही उससे जुड़ी हैं, किन्तु पूरे कथा के सन्दर्भ में इनका अपना एक विशिष्ट महत्व है । ये प्रसंग और घटनाएं उस काल की अन्धाधुन्धी, लूटखसोट, अंग्रेजों के अत्याचार, जमींदारों की स्थिति तथा उनके आतंक आदि का सही चित्र उपस्थित करती हैं और मुख्य कथा को सम्पुष्ट बनाकर उसकी तीव्रता और प्रभावाभिव्यक्ति को और संवर्द्धित कर देती हैं । कथा का ऐतिहासिक भाग हो अथवा काल्पनिक, उपन्यासकार ने अत्यन्त सूक्ष्मता और पैनेपन से उनका चित्रण किया है और कथा के मार्मिक तथा नाटकीय स्थलों को पहचान कर उन्हें सम्बद्धगत भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है ।

उपन्यास के प्रमुख पात्र नवाब गाजीउद्दीन हैदर, नसीरुद्दीन हैदर, बादशाह बेगम, वजीर आगामीर, मलिका जमानिया दुलारी, राजा दर्शन सिंह, कुदसिया बेगम, अंग्रेज नाजर डी रसेट उर्फ सर्फराज खां, मिस्टर और मिसेज रिकेट, हकीम मेहदी अली खां, वजीर रोशनउद्दौला ऐतिहासिक हैं और अपने इतिहास-सम्मत रूप में ही उपस्थित हुए हैं । ऐतिहासिक तथ्यों तथा तत्कालीन ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का विवेचन उपन्यासकार ने इतनी कुशलता एवं सूक्ष्मता से किया है कि इतिहास-ग्रन्थों में भी वैसा विवेचन नहीं मिल सकता । देश-काल के चित्रण में तो नागर जी को अभूतपूर्व सफलता मिली है । देश - काल का चित्रण इतना यथार्थ और प्रसंगानुकूल हुआ है कि डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की लखनवी संस्कृति जीवंत और मूर्तिमान हो उठी है । नवाबों की शान शौकत, नाच-गानों और वेश्याओं के प्रति उनकी आसक्ति, बांदियों से उनके नाजायज संबंध, विलासिता, पारस्परिक ईर्ष्या और कलह, षड़यंत्र, [illegible] आदि का वास्तविक चित्रण कर उपन्यासकार ने [illegible] हुई अवध की नवाबी का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है । ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति,

अंगरेजों के षड्यंत्र, जमींदारों के अत्याचार, जन-जीवन में व्याप्त असन्तोष आदि का विवरण प्रस्तुत कर नागर जी ने तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण को समग्रता से उपस्थित किया है। निश्चित रूप से इस जीवंत एवं यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण का श्रेय नागर जी की भाषा एवं शैली को है जो उनकी संस्कृति की ही उपज है।

इतिहास-प्रयोग, कथा-शिल्प, चरित्रांकन आदि सभी दृष्टियों से "शतरंज के मोहरे" एक सफल औपन्यासिक कृति है और ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

अध्याय ७

हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में कालक्रम-दोष

(क) कालक्रम-दोष और उसके कारण- कालक्रम-दोष की परिभाषा, कालक्रम-दोष के कारणः१- परिमित इतिहास का ज्ञान, २- ऐतिहासिक तथा औपन्यासिक तत्वों में परस्पर विरोध, ३- अतीत में वर्तमान समस्याओं का समाधान ।

(ख) कालक्रम-दोष के स्वरूप और उनके कुछ विशिष्ट उदाहरण-कालक्रम-दोष के स्वरूप, तिथि एवं घटना विषयक भूलें, वस्तु एवं रहन-सहन संबंधी भूलें, भाषा सम्बंधी भूलें, विचार सम्बंधी भूलें, भौगोलिक दोष ।

---o---

(क) कालक्रम-दोष और उसके कारण

कालक्रम-दोष की परिभाषा

पिछले अध्याय में विशिष्ट ऐतिहासिक उपन्यासों के विवेचन के सन्दर्भ में ऐतिहासिक असंगतियों और अनौचित्यों की चर्चा की गयी है । ये असंगतियां अथवा अनौचित्य किसी ऐतिहासिक घटना के काल-निरूपण अथवा उसके क्रम में या अन्य बातों में भी हो सकते हैं । पारिभाषिक शब्दावली में इन असंगतियों अथवा भूलों को काल-क्रम-दोष कहा जाता है । ऐतिहासिक नाटकों के सन्दर्भ में कूटे ने कालक्रमदोष की परिभाषा देते हुए लिखा है कि:-"तिथि क्रम संबंधी भ्रांति से उत्पन्न दोष को कालक्रम दोष कहते हैं । जब एक काल की वेशभूषा, रीति-रिवाज, और भाषा का किसी अन्य काल की वेशभूषा, रीति-रिवाज और भाषा पर आरोप किया जाय तो नाटककार कालक्रम दोष का अपराधी होता है । कविता एवं चित्रकला में वर्ण्य - विषय की प्रकृति विशेष अथवा उसके विशेष गुणों में कोई न्यूनता आ जाने से भी उक्त दोष माना जाता है । तिथिक्रम और वातावरण की सही-सही संयोजना, काल और स्थान के चित्रण इन दोनों का गहरा और अपरिहार्य संबंध है[1] ।" कूटे की यह परिभाषा ऐतिहासिक (उपन्यासों) के काल-क्रम-दोष पर भी शब्दशः लागू होती है ।

कालक्रम-दोष की उपर्युक्त परिभाषा से कतिपय बातें स्पष्ट हो जाती हैं । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि काल-क्रम-दोष केवल काल अथवा घटनाओं के व्यतिक्रम में ही नहीं होता, वरन् स्थान, वस्त्राभूषण, रहन-सहन, वातावरण, विचार-प्रणाली, भाषा आदि के व्यतिक्रम में भी हो सकता है । उक्त दोषों का कारण प्रायः उपन्यासकार का इतिहास विषयक अज्ञान

1- डा०जगदीशचन्द्र जोशी की पुस्तक"प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक"के पृष्ठ संख्या ५० से उद्धृत ।

अथवा भूल होता है। किन्तु कभी-कभी जानबूझ कर भी उपन्यासकार किसी उद्देश्य विशेष से कालक्रमदोष उपस्थित कर देता है। कभी कभी यह भी देखा जाता है कि किसी सुदूर ऐतिहासिक काल के वातावरण के चित्रण में उपन्यासकार के युग के वातावरण की छाया आ जाती है और ऐतिहासिक चरित्रों के व्यक्तित्व पर उपन्यासकार के युग के किसी महान व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशिष्टता की छाप पड़ सकती है। उदाहरणार्थ, महात्मा बुद्ध अथवा सम्राट अशोक के जीवन पर आधारित उपन्यास में उपन्यासकार के युग के महान व्यक्ति महात्मा गांधी के जीवन की छाप पड़ सकती है। इस प्रकार का दोष भी काल-क्रम-दोष के अन्तर्गत ही आता है। यदि बुद्ध-कालीन अथवा गुप्त कालीन ऐतिहासिक उपन्यास के वातावरण के चित्रण में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित आधुनिक संस्कृति के स्वरूप का आभास मिलने लगे तो इसे भी हम काल-क्रम-दोष ही कहेंगे। सामान्यतया काल और घटना के व्यतिक्रम दोष तथा भौगोलिक भूलें उपन्यासकार के इतिहास विषयक अज्ञान का परिणाम होती हैं। यदि उपन्यासकार इस ओर थोड़ा ध्यान दे और परिश्रम करे तो इन दोषों से वह अपनी रचना को मुक्त कर सकता है। किन्तु प्राचीन वातावरण रूढ़ि और चरित्रों में अपनी समसामयिकता अथवा युगबोध के आरोप के दोष से उपन्यासकार कठिनता से मुक्त हो सकता है, क्योंकि यह दोष उपन्यासकार के सजग मन से उद्भूत नहीं होता। इस प्रकार के दोष का कारण मनोवैज्ञानिक है। वस्तुतः प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने युग के वातावरण तथा विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्रों से इतना प्रभावित रहता है कि अनजाने में ही उसके युग और व्यक्ति विशेष की छाया उसके द्वारा चित्रित युग और चरित्र पर पड़ जाती है। राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास "सिंह सेनापति" तथा "जय यौधेय" एवं परदेशी के उपन्यास "महात्मा बुद्ध की आत्मकथा" में इस प्रकार के दोष स्पष्ट तथा लक्षित किये जा सकते हैं जिनके प्रमुख पात्र साम्यवादी सिद्धान्तों की घोषणा लेकर युग से कटे हुए ज्ञात होते हैं। चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त तथा किन्हीं अंशों में यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इस प्रकार के दोष लक्षित किये जा सकते हैं।

काल-क्रम-दोष के कारण

प्रश्न उठता है कि इस काल-क्रम-दोष का मूल कारण क्या है ? डा० जगदीश चन्द्र जोशी ने ऐतिहासिक नाटकों में कालक्रम-दोष पर विचार करते हुए इसके तीन कारणों की चर्चा की है -(१) परिमित इतिहास का ज्ञान, (२) नाटकीय तत्वों में परस्पर विरोध तथा (३) अतीत में वर्तमान समस्याओं का समाधान[1]। ऐतिहासिक उपन्यासों के सन्दर्भ में भी काल-क्रम-दोष के ये कारण महत्वपूर्ण और विचारणीय हैं।

(१) परिमित इतिहास का ज्ञान- कुछ लोगों का अनुमान है कि काल-क्रम-दोष का कारण मात्र ऐतिहासिक उपन्यासकार का परिमित ज्ञान होता है। यदि उपन्यासकार की रचना कसौटी हो तो इसे यों कह सकते हैं कि उपन्यासकार के युग में ऐतिहासिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का अभाव ही इसका कारण है। वस्तुतः दोनों बातें अपनी-अपनी जगह पर सही हैं और एक ही कारण के दो पक्षों की ओर संकेत करती हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार का अभाव जहाँ काल-क्रम दोष का मुख्य कारण था, वहाँ वर्तमान काल में, जबकि ऐतिहासिक ज्ञान का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार है, काल-क्रम-दोष का कारण परिमित ऐतिहासिक ज्ञान है। चन्द्रशेखर शास्त्री का "विम्बसार" तथा रघुवीर शरण मित्र के ऐतिहासिक उपन्यास "आग और पानी", "पहली हार" तथा "सोने की राख" इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं जिनमें प्राप्त कालक्रम-दोष का कारण प्रमुखतः उपन्यासकारों का ऐतिहासिक अज्ञान है। परन्तु ये दोनों ही कारण कालक्रम-दोष की नींव तक न पहुँच कर समस्या की ऊपरी सतह को ही छू पाते हैं। साधारणतया ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक ज्ञान और काल-क्रम-दोष में एक निश्चित अनुपात है अर्थात् जैसे-जैसे ऐतिहासिक ज्ञान विकसित होने लगता है, वैसे-वैसे काल-क्रम-दोष के होने की सम्भावना कम होती जाती है और

१- डा० जगदीश चन्द्र जोशी: प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृष्ठ ८८-८९।

उसके अभाव में अधिक । विश्व की किसी भी भाषा के ऐतिहासिक उपन्यासों के विकासक्रम पर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन-अध्यापन के युग में ही कलाकारों की प्रतिभा ने अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों को वर्तमान में ला खड़ा किया और अपनी सृजनात्मक कल्पना द्वारा मृत युगों को अमृत का दान देकर सर्वदा के लिए जीवित बना दिया । ऐसे युगों में उपन्यासकारों ने सदा इस बात का ध्यान रखा कि अपने औपन्यासिक चरित्रों को इतिहास के अनुकूल ही निर्मित किया जाय और उनके रहन-सहन, व्यवहार, वेशभूषा, सोचने-समझने के ढंग आदि में कोई ऐतिहासिक भूल न हो । वृन्दावनलाल वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृत लाल नागर, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, सत्यकेतु विद्यालंकार तथा रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास का अत्यन्त सहज ढंग से प्रयोग किया गया है और इतिहास की भावभूमि को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गयी है । इसके विपरीत, जिन कालों में ऐतिहासिक ज्ञान सीमित रहा उसमें रचित उपन्यास न तो चरित्र चित्रण की दृष्टि से और न काल-संयोजन (वातावरण) की दृष्टि से ही इतिहास के अनुकूल बन सके । किशोरीलाल गोस्वामी तथा उनके समकालीन उपन्यासकारों के सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में कालक्रम-दोष स्पष्टतया लक्षित किये जा सकते हैं ।

किन्तु, ऐतिहासिक ज्ञान का अभाव ही कालक्रम दोष का कारण नहीं कहा जा सकता, उपन्यासकार की असावधान भूलें अथवा असतर्कता भी काल-क्रम के साधारण दोषों के मूल में होती हैं । गुलदस्त के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐसी अनेकों भूलें हैं ।

(१) <u>ऐतिहासिक तथा औपन्यासिक तथ्यों में परस्पर विरोध</u>- काल-क्रम-दोष का यह कारण मनोवैज्ञानिक है और इसकी जड़ उपन्यासकार के मन में गहराई तक प्रविष्ट रहती है । इस [illegible] के मूल में इतिहास-ज्ञान की कमी अथवा असतर्कता नहीं होती । ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी कथा-संरचना के लिए [illegible] का आधार लेता तो है, किन्तु इस [illegible] से वह वस्तुतः इतिहास-

सत्य को नहीं, अपने अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति करता है । यदि इतिहास का सत्य, उसके अनुभूत सत्य के अनुकूल हुआ तो ठीक है अन्यथा अपने अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति के लिए उसे कभी-कभी इतिहास सत्य के विपरीत जाना पड़ता है और इस प्रकार ऐतिहासिक सत्य और औपन्यासिक सत्य में परस्पर विरोध सा प्रतीत होने लगता है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास "चारु-चन्द्र-लेख" में गहड़वाड़ वंशीय नरेश जयचन्द(सन् ११७०-११९४) को अत्यन्त वीर, पराक्रमी, तथा तेजस्वी चित्रित किया है जबकि इतिहास ग्रन्थों में उसे देशद्रोही, मुसलमानों को देश पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित करने वाला बताया गया है । चतुरसेन शास्त्री ने अपने चर्चित उपन्यास"वैशाली की नगर वधू" में अजातशत्रु कालीन कई घटनाओं को बिम्बसार के काल में घटित होते हुए दिखाया है तथा अनेक चरित्रों और घटनाओं में सोद्देश्य परिवर्तन कर दिया है । इस प्रकार के दोषों का कारण ऐतिहासिक सत्य और औपन्यासिक सत्यों में परस्पर विरोध ही है ।

(५) अतीत में वर्तमान समस्याओं का समाधान- [illegible] कारण मनोवैज्ञानिक होते हुए भी नहीं कहा जा सकता कि सर्वदा इसी कारण से ऐतिहासिक उपन्यासकार कालक्रम-दोषों का भागी होता है । क्योंकि उपन्यासकार ऐसा मार्ग खोज सकता है जिसके द्वारा औपन्यासिक सत्य(अनुभूत सत्य) और ऐतिहासिक सत्य में परस्पर सामन्जस्य स्थापित हो सके । अध्याय चार में इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याओं पर विचार करते हुये पीछे हमने देखा है कि उपन्यासकार कई कारणों से अतीत में प्रवेश करता है । उनमें से एक कारण अतीत के माध्यम से वर्तमान की आलोचना करना भी है । यही बात देश-प्रेम अथवा राष्ट्र-प्रेम के संबंध में भी कही जा सकती है । कतिपय समीक्षकों का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का जन्म किसी जाति अथवा राष्ट्र के अभ्युदय के काल में होता है । इसके विपरीत, कुछ लोग यह मानते हैं कि जाति अथवा देश की निर्बलता और उसके संघर्षों से पलायन की प्रवृत्ति ऐतिहासिक उपन्यासों को जन्म देती है । चाहे कारण कोई भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि जब कभी ऐति[illegible] उपन्यासकार के मन में वर्तमान की समस्याएं [illegible] हो जाती हैं और वर्तमान में उनका समाधान नहीं पाता तो वह

अतीत में उनका समाधान खोजने लगता है । इस प्रक्रिया में वर्तमान और ऐतिहासिक अतीत एक-दूसरे में घुलने-मिलने लगते हैं । अतीत और वर्तमान के मिलने का यह उपक्रम सहस्रों वर्षों के अन्तर को पाटने का प्रयास करता है और दो अलग-अलग ऐतिहासिक युगों के आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा, चरित्र तथा वातावरण परस्पर घुल मिल कर अनायास ही कालक्रम दोष की सृष्टि कर देते हैं । राहुल सांकृत्यायन तथा चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालक्रम-दोष का प्रधान कारण अतीत में वर्तमान समस्याओं का समाधान ही है । परदेशी के उपन्यास "भगवान बुद्ध की आत्मकथा" में भी कालक्रम-दोष के इस कारण को लक्षित किया जा सकता है ।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि यदि कोई उपन्यासकार अतीत में वर्तमान की समस्याओं का समाधान खोजने के उद्देश्य से नहीं, वरन् विशुद्ध ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक चित्रण के उद्देश्य से उपन्यास की रचना करता है तो क्या वह उक्त मनोवैज्ञानिक कालक्रम-दोष से बचा रह सकता है । उपन्यासकार अतीत के अन्तराल में किसी भी कारण से क्यों न प्रवेश करता हो, वह अपने आपको भुला नहीं सकता । उसके व्यक्तित्व की परिचित रेखाएं भले ही अतीत के रंगों में दिखाई न दें, उसका व्यक्तित्व तो उसमें रहता ही है । फिर अतीत के राजा-महाराजा, रानियां, नागरिक आदि और उनके वस्त्राभूषण, ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी प्रासाद और वैभव से परिपूर्ण राजधानी तथा नगर-वीथियां आदि उपन्यासकार की पलकों को चिरस्मृति से कितना ही बोझिल क्यों न बना दें, यह सम्भव नहीं कि उस चिरस्मृति में भी वह अपने युग के महापुरुषों, किशोर-किशोरियों, नागरिकों, नारी, वेशभूषा, रहन-सहन, आचार-विचार आदि को भूल जाय । उसकी कल्पना जब-जब अतीत के वैभव अथवा संघर्ष के आधारों पर नये-नये स्तम्भों का निर्माण करेगी, तब-तब वर्तमान का ईंट-पत्थर, चूना, उसके हाथों में स्वतः ही आ जायेगा[1]। इस प्रकार उक्त कालक्रम दोष ऐतिहासिक उपन्यास की प्रकृति में

१- डा० जगदीशचन्द्र जोशी: प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ६२-६३ ।

ही अन्तर्निहित है, कोई बाहर से थोपी हुई वस्तु नहीं । उसका विकास
प्राचीन हो सकता है किन्तु आत्मा उपन्यासकार के युग की ही होती है । अतः
इस मूल काल-क्रम-दोष से उपन्यासकार का बचना कठिन है । हाँ, यह अवश्य
है कि यदि उपन्यासकार विशिष्ट युग के इतिहास-बोध को अपने में आत्मसात
कर ले और तत्कालीन वेशभूषा, रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कृति आदि
का अध्ययन सूक्ष्मता से करे तो इस प्रकार के कालक्रम-दोष के होने की संभावना
न्यूनतम हो जाती है । काल-क्रम-दोष अथवा ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने
के लिए उपन्यासकार को छोटी-छोटी बातों में सावधान रहना चाहिये ।
सामान्य संबोधन, शिष्टाचार के लिए प्रयुक्त शब्द और तत्कालीन मान्यताओं
के विरुद्ध जाने वाले वाक्यांश भी रस-बोध में बाधक हो सकते हैं । अतः
ऐतिहासिक उपन्यासकार को इन सबके वर्णन में अत्यन्त सजग होना चाहिये,
तभी काल-क्रम-दोष न्यूनतम हो सकते हैं । वृंदावनलाल वर्मा, यशपाल,
हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव तथा अमृतलाल नागर के उपन्यासों में
कालक्रम-दोष न्यूनतम रूप में मिलते हैं ।

(ख) काल-क्रम-दोष के स्वरूप और उनके कुछ विशिष्ट उदाहरण

काल-क्रम-दोष के स्वरूप

उपर्युक्त विवेचन से काल-क्रम-दोष के दो प्रधान स्वरूप हो जाते
हैं । एक स्वरूप तो तिथियों, घटनाओं, वस्त्राभूषणों, भाषा, रहन-सहन
आदि के व्यतिक्रम से संबंध रखता है । इस प्रकार का दोष प्रायः अज्ञान,
भ्रांति अथवा प्रमाद के कारण इस स्वरूप उत्पन्न होता है और उपन्यासकार की
दुर्बलताओं का सूचक है । इसके अपराध से उपन्यासकार को कभी भी मुक्त
नहीं किया जा सकता । कभी-कभी उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाओं और
तिथियों में परिवर्तन किसी उद्देश्य विशेष से भी करता है जो निश्चय ही इसप्रकार
के कालक्रम दोष के ही अन्तर्गत है और उसकी कलात्मक अपरिपक्वता का
सूचक है । काल-क्रम-दोष का दूसरा स्वरूप है विशिष्ट ऐतिहासिक युग की

आत्मा और चरित्रों पर उपन्यासकार के युग की प्रवृत्तियों और नवीन चारित्रिक विशेषताओं का आरोप। काल-क्रम-दोष का यह स्वरूप स्वाभाविक है और एक अर्थ में अपरिहार्य भी । इस प्रकार का दोष एक सीमा तक सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में ढूंढा जा सकता है । यदि ऐतिहासिक उपन्यास मात्र इतिहास न होकर कलाकृति हो जिसमें उपन्यासकार की सृजनात्मक एवं चित्र-विधायिनी प्रतिभा ने प्राण डालकर भावोद्रेक अथवा रसोद्रेक करने की शक्ति भरी हो तो सम्भव है कि इस दोष की ओर हमारा ध्यान न जाय । किन्तु यदि कृति कलात्मक नहीं है तो यह दोष स्पष्ट ही दृष्टिगत हो जायेगा और रसोद्रेक में व्याघात उत्पन्न करेगा । अध्याय छह में प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के विवेचन के सन्दर्भ में यत्र-तत्र हमने कालक्रम दोष के अनेक उदाहरण प्रसंगानुकूल प्रस्तुत किये हैं, नीचे कुछ और उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

<u>तिथि एवं घटना विषयक भूलें</u>- तिथि एवं घटनाओं से संबंधित कालक्रम-दोष तो हिन्दी के सामान्य ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रायः मिल ही जाते हैं, उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासों तक में मिल जाते हैं । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "बाण भट्ट की आत्मकथा" में यवन सम्राट तुवर मिलिन्द और हर्ष को एक साथ ला बैठाया है और उससे हर्ष की मैत्री कराने का प्रयत्न किया है जो काल-विरुद्ध है । माना कि तुवर मिलिन्द का समय-निरूपण एक समस्या है, जैसा कि द्विवेदी जी ने "आत्मकथा" में स्वीकार किया है[1], पर उसे हर्ष के समकालीन होने की कल्पना किसी ने नहीं की । कतिपय इतिहासकारों के अनुसार तुवर मिलिन्द का काल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी है[2] जबकि हर्ष का समय सातवीं शताब्दी(ईसवी) पूर्वार्द्ध है । यद्यपि यह सत्य है कि द्विवेदी जी की इस कल्पना से रस-बोध में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं

१- बाणभट्ट की आत्मकथा, उपसंहार, पृ० ३८० ।

२- प्राचीन भारत का इतिहास(डा०रमाशंकर त्रिपाठी),पृ० १७ की पाद-

होता और कथा की वास्तविकता बेशक ही बनी रहती है, फिर भी इसमें काल-दोष तो है ही । चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास "वैशाली की नगर वधू" में अजातशत्रु से संबंधित घटना को उसके पिता बिम्बसार से सम्बद्ध कर घटना-व्यतिक्रम उपस्थित किया है । शास्त्री जी ने मगध और वैशाली के बीच भयंकर युद्ध और मगध-अमात्य वर्षकार के षड्यंत्र का वर्णन उपन्यास में किया है, वह वस्तुतः बिम्बसार के समय तथा उससे संबंधित न होकर उसके पुत्र अजातशत्रु से संबंधित है और उसी के राजत्व काल की है[1]। उपन्यास में कोसल-सम्राट प्रसेनजित की मृत्यु बिम्बसार के जीवन काल में दिखाई गयी है, जबकि उसकी मृत्यु बिम्बसार की मृत्यु के पश्चात् अजातशत्रु के राजत्व काल में हुई[2]। "वैशाली की नगर वधू" में घटनाओं और तिथियों से संबंधित और भी अनेक भूलें हैं जो इतिहास के आलोक में स्पष्ट देखी जा सकती हैं । गुरुदत्त ने अपने उपन्यास "बहती रेता" में महात्मा बुद्ध के सौ वर्ष बाद वैशाली, अयोध्या, वत्स आदि राज्यों की अवस्था का चित्रण काल्पनिक कथा के माध्यम से किया है । उपन्यासकार ने इस उपन्यास में वैशाली में गणराज्य की कल्पना की है जबकि वास्तविकता यह है कि वहां बुद्ध के १०० वर्ष पश्चात कोई गणराज्य नहीं था । बुद्ध के परिनिर्वाण (५४४ ई०पू०) के चार वर्ष पश्चात् ही अजातशत्रु ने वैशाली पर आक्रमण करके गणशासन का अन्त कर दिया और उसे मगध में ले लिया । फिर, वैशाली का गणराज्य पनप नहीं सका और मगध के अधिकार में ही रहा[3]। इस ऐतिहासिक तथ्य पर ध्यान न देकर लेखक ने बुद्ध के १०० वर्ष बाद वैशाली गणराज्य की कल्पना की है जो ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत है और कालक्रम-दोष के अन्तर्गत आता है ।

<u>वस्तु, रहन-सहन तथा आचार-विचार संबंधी दोष-</u> एक काल और देश की वस्तु, रहन-सहन, आचार-विचार आदि का वर्णन किसी कलात्मक

१- प्राचीन भारत का इतिहास(डा०रमाशंकर त्रिपाठी),पृ०७४-७५।भगवान बुद्ध (धर्मानन्द कौशाम्बी),पृ० १६८ ।

२- डा०रमाशंकर त्रिपाठी: प्राचीन भारत का इतिहास,पृ० ७२-७३ ।

३- डा०भगवत शरण उपाध्याय: प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०६ ।

उद्देश्य से किसी दूसरे काल और देश में करना बड़ा भारी दोष है । यह उपन्यासकार के अज्ञान का परिचायक है । रघुवीर शरण मित्र के उपन्यास "आग और पानी" में इस प्रकार की अनेक भूलें हैं । इसमें शकटार की पुत्री सुवासिनी और चाणक्य "शतरंज" खेलते हैं और अमात्य शकटार "घण्टा घंटी" का प्रयोग करते हैं । पुलिस चाणक्य को "हथकड़ी" पहनाती है । विजयी सेनापति चन्द्रगुप्त मौर्य के स्वागत में "अभय नगर कीर्तन" होता है और आधुनिक ढंग से जय नारे भी लगाये जाते हैं । चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में "शतरंज" के खेल, "घण्टा घण्टी" का प्रयोग, "हथकड़ी" पहनाना, "अभय नगर कीर्तन" कराना स्पष्ट ही दोष है, क्योंकि ये सब चीजें उस काल में नहीं थीं । हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने उपन्यास "प्रियदर्शी अशोक" में अशोक की राजसभा के सभासदों के सिरों पर "तुर्रा" लगवाया है । रणवीर जी वीर ने अपने उपन्यास "महामंत्री चाणक्य" में विस्फोटकों से पहाड़ उड़वाया है जबकि विस्फोटक परवर्ती काल की देन है । चतुरसेन शास्त्री ने "वैशाली की नगर वधू" में राजपथों पर "लालटेनें" जलाने और सेना के "परेड" का उल्लेख किया है । बुद्ध के समय में "लालटेनों" के होने तथा सेना के "परेड" की कल्पना निश्चय ही दोषपूर्ण है । इसी उपन्यास में शास्त्री जी ने "रथमुसल" और "महाशिलाकण्टक" नामक ऐसे महास्त्रों का वर्णन किया है जो आधुनिक टैंकों सदृश काम होते हैं और रणक्षेत्र में उसी प्रकार विध्वंस करते हैं जिस प्रकार आजकल के टैंक । यद्यपि प्राचीन साहित्य में इन अस्त्रों का उल्लेख है,[1] किन्तु आजकल के टैंकों सदृश ये रहे होंगे, यह सम्भव प्रतीत नहीं होता । ये सब बातें देश और काल के विरुद्ध हैं और उपन्यासकार के अज्ञान, कल्पना [illegible] और कलात्मक [illegible] अक्षमता की द्योतक हैं । ऐसी बातों एवं वर्णनों से रसविहार-रस में बाधा उत्पन्न होती है । वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास "गढ़ कुण्डार" में एक पात्र [illegible] को बैठे-बैठे पुस्तक पढ़ते हुए दिखाया गया है,[2] यह भी काल-विरुद्ध बात है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यास के

१- हिन्दू सभ्यता(राधा कुमुद मुकर्जी), पृ०१२८-१२८।

२- गढ़ कुण्डार, पृ० [illegible] ।

पठानकाल(१४वीं शताब्दी-पठानकाल) में छापे की कला के अभाव के कारण न तो आधुनिक ढंग के उपन्यास ही थे, न पुट्ठोंवाली पुस्तकें ही थीं और न बैठे बैठे पढ़ने की ही प्रथा थी । उन दिनों खुले पत्रों की पुस्तकों का ही प्रचलन अधिक था[1] । इसी प्रकार यशपाल ने अपने उपन्यास "दिव्या" में राजनर्तकी मल्लिका के प्रासाद में कुल-जन और कुल-नारियों के रास-नृत्य[2] का आयोजन किया है, जो काल-विरुद्ध है । आज की पाश्चात्य सभ्यता में जिस प्रकार स्त्री- और पुरुष मिल कर पर-पुरुष के साथ भी नृत्य करते पाये जाते हैं, "बाल-डांस" की ऐसी प्रथा भारत में कभी नहीं रही । यौन-स्वच्छन्दता का प्रमाण इतिहास में भले ही मिल जाय, किन्तु पति के सामने पत्नी और भाई के सामने बहन का हाथ पकड़ने वाले की गर्दन पर रक्तरंजित खड्ग होता था। भारतीय संस्कृति के अन्दर कभी भी ऐसी छूट नहीं थी, जैसी यशपाल ने दिखाई है[3]। इसी प्रकार, देश-विरुद्ध बातें भी खटकने वाली होती हैं और इतिहास-रस में बाधा उत्पन्न करती हैं ।

<u>भाषा संबंधी भूलें</u>- अध्याय ४ में इतिहास को उपन्यस्त करने की समस्याओं के अन्तर्गत यह संकेत किया गया है कि कतिपय शब्दों के साथ वातावरण अथवा देश-काल का एक घेरा परिवृत्त होता है जो उस काल और देश की संस्कृति को ध्वनित कर देता है और यदि उन्हें किसी दूसरे काल से सम्बद्ध कर दिया जाय तो कथा-रस में व्याघात उत्पन्न हो जाता है । भाषा सम्बंधी व्यतिक्रम के दोष भी हिन्दी के अनेकानेक ऐतिहासिक उपन्यासों में मिल जाते हैं । परदेशी के उपन्यास"भगवान बुद्ध की आत्मकथा" में पिता के लिये "पापा"शब्द का प्रयोग किया गया है जो हास्यास्पद -सा लगता है ।गुरुदत्त ने अपने बौद्ध कालीन उपन्यास"पहली रेखा" में "किशोरी", "भाभियें","पहचानी","रोटी बुखार", "पुर्नागमन", "संवत-भवन" आदि अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है

१- डा०हजारी प्रसाद द्विवेदी: साहित्य सहचर, पृ० ८९ ।

२- दिव्या, पृ० १८६ ।

३- डा०त्रिभुवन सिंह:हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद"तृतीय संस्करण,पृ०२०७।

जो काल-विरुद्ध है । राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास "जय यौधेय" का कथा-नायक एक स्थल पर कहता है -"रोकड़पाल का पार्ट मुझे लेना पड़ा।" गुप्त-कालीन इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास में "पार्ट"जैसे अंग्रेजी शब्द का प्रयोग रसोद्रेक में बाधक ही नहीं है, हास्यास्पद भी है । इस प्रकार भाषा और शब्दों के प्रयोग की छोटी सी गलती भी रस-बोध में बाधा उत्पन्न कर देती है ।

विचार संबंधी भूलें- इतिहास को उपस्थित करने की समस्याओं के अन्तर्गत पृष्ठ -----पर हमने उल्लेख किया है कि कभी-कभी उपन्यासकार, जिस कारण से भी हो, अतीत के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयत्न करता है । यदि नवीन समस्याओं और विचारों को प्राचीनता के साथ केवल छू-भर जाने? कर देता है तो वह यश का भागी होता है, किन्तु जब वह प्राचीनता पर अपने नवीन विचारों एवं व्यक्तिगत मन्तव्यों को बलात् थोपता है तो वे विचार और मन्तव्य उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हैं कि हम अलग हैं, दूर खड़े हैं । इस प्रकार के कालक्रम दोषों का कारण मनोवैज्ञानिक है । राहुल सांकृत्यायन के सभी ऐतिहासिक उपन्यासों -सिंह सेनापति, जय यौधेय, मधुर स्वप्न, विस्मृत यात्री- में इस प्रकार के दोष अंकित किये जा सकते हैं । राहुल जी अवसर मिलते ही आधुनिक साम्यवादी विचार-धारा और रूस की शासन-प्रणाली को प्राचीन काल पर थोपने लगते हैं । यह असंगति उतनी ही विचित्र लगती है जितनी की प्राचीनता का आभास देने के उद्देश्य से लाये गये प्रयुक्त शब्दों "यही"(यही?) आदि के बीच में "जय यौधेय" के कथानायक का यह कहना कि "रोकड़पाल का पार्ट मुझे लेनापड़ा।" "यही" और "पार्ट"के बीच जितनी दूरी है उससे कम व्यवधान "जय यौधेय" और यहूदी के आदर्शों के बीच नहीं है । ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अभाव का यह ज्वलन्त उदाहरण है जिससे ऐतिहासिक [illegible] प्रभावहीन बनी लगती है । परदेसी के उपन्यास "भगवान बुद्ध की आत्मकथा" में भी वर्ग-संघर्ष और मार्क्सवादी विचार-धारा का समावेश किया गया है जो काल-[illegible] है । उपन्यास का कथा नायक एक स्थल पर कहता है-मैं कहता हूँ, सिद्धार्थ कहता है, मन का सूरज उगने दो है अपनी [illegible] आकांक्षा । जिसके पेट खाली है और जिसके [illegible] जिन

गये हैं, उन सबको लेकर मैं भट्टारक के प्रासाद में प्रार्थी होऊँगा।------मैं तुम्हारे अभिजात्य वर्गों में वह आग लगाऊँगा जो शताब्दियों तक नहीं बुझ सकेगी। रोटी की आवाज करूँगा।"(पृ० १४)। पृ० ३१, ३८,४४,७२,७३,१४१, आदि पर भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं जो काल-विरुद्ध हैं। गुरुदत्त ने "बहती रेता" नामक अपने उपन्यास में "सन्तान निग्रह" (पृ०१५६-१६० तथा "सत्याग्रह"(पृष्ठ १९०,१९१) की समस्याओं को उठाया है जो स्पष्ट ही आधुनिक युग की देनें हैं। ४-५वीं शताब्दी ईसा पूर्व इस प्रकार की समस्याओं की चर्चा करना स्पष्ट ही कालक्रम दोष है।

<u>भौगोलिक दोष</u>- कतिपय ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में अपने भौगोलिक अज्ञान का भी परिचय दिया है। गुरुदत्त ने अपने उपन्यास "बहती रेता" में वैशाली की स्थिति को वर्तमान मिर्जापुर जिले में गंगा के दक्षिण तट से ५ कोस के अन्तर पर माना है जबकि प्राचीन वैशाली और आज का बसाढ़ गांव बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में है। लेखक के भौगोलिक अज्ञान का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

ऊपर ऐतिहासिक उपन्यासों से उपलब्ध कालक्रम दोष संबंधी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। यह मानते हुए भी कालक्रम दोष स्वाभाविक है और उसके मूल में मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ भी हैं, किसी भी ऐतिहासिक उपन्यासकार को उक्त दोष के अपराध से मुक्त नहीं किया जा सकता। उसके लिये यह आवश्यक है कि वह ऐतिहासिक काल और युग के साथ-साथ ऐतिहासिक चरित्रों एवं वातावरण की पूर्ण रक्षा करे। यदि वह ऐसा कर सकने में असमर्थ सिद्ध होता है तो उपन्यास के ऐतिहासिक स्वरूप की सफलता में व्याघात उत्पन्न होता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कालक्रम दोष से बचने के लिए उपन्यासकार को किन बातों से सतर्क रहना चाहिये।

(१) एक ही ऐतिहासिक चरित्र में प्राचीन और आधुनिक दोनों युगों का सम्मिश्रण नहीं होना चाहिये।

(२) यदि ऐतिहासिक चरित्र आधुनिक विचारों को अभिव्यक्त करे तो उन विचारों को स्थापना के सांचे में इस प्रकार ढाल देना चाहिए कि आधुनिक

(३) एक काल के सांस्कृतिक वातावरण में उससे प्राचीन काल का वातावरण लाया जा सकता है, किन्तु उन दोनों कालों के वातावरण में विशेष अन्तर न हो और संस्कृति की एक ही धारा थोड़े से परिवर्तनों के साथ दोनों कालों को जोड़ती हो । जिस काल का वातावरण चित्रित करना उपन्यासकार को अभीष्ट हो उससे पीछे का वातावरण ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

(४) सभ्य रीति-रिवाजों के साथ असभ्य प्रथाओं का चित्रण नहीं करना चाहिए, विशेषकर जब उनका संबंध समाज के एक पक्ष से हो ।

(५) दो भिन्न संस्कृतियों को भी एक में नहीं जोड़ना चाहिये ।

(६) कल के मूल्यों को आज के मानदण्ड से नहीं देखना चाहिये ।

(७) ऐतिहासिक सम्भाव्यता का कहीं भी अभाव नहीं होना चाहिये[1] ।

१- डा० जगदीश चन्द्र जोशी : प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ६४ ।

उपसंहार

उपन्यासों में इतिहास तत्व और उसके प्रयोग की विवेचना करते समय उनकी सम्प्रेषणीयता को प्रायः भुला दिया जाता है । यह सोच लेना कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास-तत्व पर ही अधिक ध्यान देना चाहिये, रूप और शिल्प पर कम अथवा इतिहास को सुरक्षित रखने मात्र से उपन्यास कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि का हो जाता है, भूल है । जब तक इतिहास के साथ औपन्यासिक कलात्मकता का सम्यक् नियोजन न होगा, उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास-कृति की उपलब्धि असम्भव है । दोनों पक्षों में से किसी एक को प्रमुखता देते हुए उपन्यास की संरचना की जाती है तो उस पर विचार तो किया जा सकता है, सम्भव है उस एकांगी दृष्टि से वह उत्कृष्ट भी हो, किन्तु जहाँ दोनों सन्दर्भों में युगपद् विचार करने की बात आयेगी, वहाँ वह निम्न श्रेणी की रचना सिद्ध होगी । हिन्दी में मिश्रबंधु के उपन्यास "चन्द्रगुप्त मौर्य" "पुष्यमित्र शुंग", तथा "चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य" तथा चतुरसेन शास्त्री के दो उपन्यासों -"आलमगीर" तथा "सोना और खून"- का मूल्यांकन इतिहास-तत्व की दृष्टि से किया जाय तो सम्भवतः समूचे ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य में इनकी बराबरी के उपन्यास नहीं मिलेंगे, क्योंकि आरम्भ से लेकर अंत तक इनमें ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों की भरमार है । इसके विपरीत उपन्यास कला की कसौटी पर ये रचनाएं एकदम असफल सिद्ध होती हैं । इसी भाँति यशपाल का "दिव्या" उपन्यास भ शिल्प एवं रूप की दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी इतिहास की दृष्टि से कच्चा ठहरता है, जिसमें इतिहास-तत्व है ही नहीं और मात्र वातावरण से इतिहास का आभास दिया गया है । ऐतिहासिक उपन्यास का यही परिप्रेक्ष्य कलात्मकता के साथ इतिहास के सम्पृक्त किये जाने की माँग करता है । ऐतिहासिक -रस के संश्लिष्ट प्रभाव की परिधि में जीवन-मूल्यों की खोज का आग्रह स्वयं आ जाता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार को प्रारम्भ से ही ऐसे धरातल को लेकर चलना पड़ता है जहाँ उसकी रचना प्रभावहीन न बने और मूल्यों को स्थापित करने का व्यवस्था-क्रम भी भंग न हो । उपन्यासकार में इतिहास के प्रति थोड़ी सम्भावना हुई और तथ्य के प्रस्तुतीकरण में उसने विवेक से काम लिया तो उसकी अभि-व्यंजना और रचना का स्तर निश्चय ही उच्च होगा और उसकी कृति सफल

कलात्मक कृतियों की कोटि में आयेगी ।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में श्री वृन्दावन लाल वर्मा प्रथम उपन्यासकार हैं जिनमें इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का लक्ष्य दृष्टिगत होता है । इतिहास-तत्व की सुरक्षा और कथ्य तथा शिल्प की जो सार्थकता इनके उपन्यासों में मिलती है, वह हिन्दी के इने-गिने उपन्यासकारों में मिलती है । उन्होंने सजग होकर एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के दायित्व को निबाहने का प्रयत्न किया है । इस आग्रह में कहीं-कहीं उनका इतिहासकार, उपन्यासकार की अपेक्षा प्रधान हो उठा है, जैसे "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" में । किन्तु शिल्प में कहीं कोई कमजोरी नहीं आने पाई है । इतिहास तत्व और कलात्मकता की दृष्टि से "गढ़ कुण्डार", "मृगनयनी" "माधव जी सिंधिया", "कचनार", "टूटे काँटे" वर्मा जी की अद्वितीय सफलता के परिचायक हैं और इन कृतियों में उनकी एक विशिष्ट मानसिक दृढ़ता और आस्था के दर्शन होते हैं । वातावरण की सजीव कल्पना के साथ ऐतिहय और औचित्य का जहाँ सहज सामञ्जस्य हो सका है, वहाँ वे बेजोड़ हैं । इतिहास -तत्व के साथ कथानक का निर्माण, चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व और उनकी क्रियाशीलता का चित्रण, संवादों की योजना और इन सबके साथ संक्रान्त भाव [illegible] मनःस्थितियों का स्पष्ट अंकन, भाषा का सौष्ठव पहली बार वर्मा जी के उपन्यासों में दृष्टिगत होता है । इनसे पूर्व जो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये, उनमें घटना एवं चरित्रों का निर्माण तो कर दिया गया है, लेकिन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किस तरह उन्हें विकसित किया जाय, संघर्षात्मक परिस्थितियों से प्रधान चरित्रों को किस प्रकार नियोजित किया जाय कि उनका प्रभाव पड़ सके, इन बातों का अभाव इनमें है । इनके चरित्र या तो अतिमानवीय बन गये हैं या मानवता के स्तर से गिरे हुए हैं । वर्मा जी रचनाओं के अतिरिक्त "बाण भट्ट की आत्म कथा"(हजारी प्रसाद द्विवेदी), "मुर्दों का टीला", "चीवर""राह न रुकी"(रांगेय राघव), 'सोमनाथ'(चतुरसेन शास्त्री), "बेकसी का मजार"(प्रताप नारायण श्रीवास्तव), "आचार्य चतुरसेन [illegible] चन्द्र"(सत्य केतु विद्यालंकार), "सहयाद्रि के जोहरे" ([illegible] नागर) में भी इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा शि

गत सौन्दर्य की बनाये रखने की सफल चेष्टा की गयी है । इसके विपरीत किशोरीलाल गोस्वामी, राहुल सांकृत्यायन, चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में शिल्पगत कमजोरी तो है ही, इतिहास को भी तोड़-मरोड़ कर गलत परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है जिससे उनकी रचनाएं प्रभावहीन हो गयी है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना की क्या उपयोगिता है और कल्पना का स्वरूप ऐतिहासिक उपन्यास में कैसा होना चाहिए, इस पर हमने पिछले अध्यायों में विचार किया है । हिन्दी के सभी ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने, चाहे वे किसी भी काल, किसी भी श्रेणी के रहे हों, ऐतिहासिक कथावस्तु के साथ काल्पनिक प्रसंगों की योजना अनिवार्यतः की है । कुछ ने तो इनका सार्थक और प्रसंगानुकूल प्रयोग कर उपन्यास के शिल्पगत सौन्दर्य की वृद्धि की है तथा कथानक को नया अर्थ दिया है और कुछ ऐसे भी रहे हैं जिन्होंने सुविधा के अभाव में इनके माध्यम से कथानक में अनावश्यक सम्बन्धों की सृष्टि कर दोष उत्पन्न कर दिया है । प्रथमोत्थान कालीन उपन्यासकारों -किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, व्रज-रामदास गुप्त आदि- की कल्पना बिल्कुल स्वतंत्र, उच्छृंखल और अमर्यादित है और ऐतिहासिक उपन्यासों के उपयुक्त इतिहासमूलक कल्पना के नितान्त विपरीत है । यही कारण है कि इनकी कृतियों में न तो इतिहास का कोई परिपुष्ट स्वरूप मिलता है और न कथावस्तु और चरित्रों का सफल संयोजन । कथा और पात्रों के प्रति पाठक के मन में विश्वसनीयता उत्पन्न करने के लिए जिस सम्भाव्य और यथार्थ कल्पना की अपेक्षा रहती है, उसका नितांत अभाव इन प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासकारों में मिलता है । इनकी कल्पना में न तो अतीत को अनावृत करने की शक्ति है और न वर्तमान को अतीत से जोड़ने की । यही कारण है कि इनकी कृतियों में न तो अतीत मुखरित हुआ है और न वर्तमान ही प्रतिबिम्बित हुआ है । मनमानी कल्पना के उपयोग के कारण ऐतिहासिक घटनाएं और पात्र भी व्यक्तित्वहीन कुण्ठित होते हैं । द्वितीयोत्थान काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों की रचनाओं-शालवीन(वृन्दावन सहाय);[illegible] ([illegible]), चन्द्रकिरण(गोविन्द वल्लभ पंत) आदि- में पहले की अपेक्षा किंचित्

कतिपय हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने किया है, वह अन्यत्र है । इस क्षेत्र में भी श्री वृंदावनलाल वर्मा हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिककार हैं । वर्मा जी के पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासकारों का ध्येय मात्र मनोरंजन था, उपन्यास के माध्यम से जीवन की किसी गूढ़ समस्या का उद्घाटन करना नहीं । इसीकारण उनके उपन्यासों में जीवन-मूल्यों तथा शाश्वत सत्यों की खोज का प्रयत्न नहीं मिलता, जो बाद के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में मिलता है । उनके चरित्र या तो आत्मविहीन हो गये हैं या मानवता के स्तर से गिरे हुए हैं । जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्मा जी प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिनमें मानवीय भावनाओं और जीवन-मूल्यों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिष्ठित करने का लक्ष्य दृष्टिगत होता है । "गढ़ कुण्डार", "विराटा की पद्मिनी", "मृगनयनी", "कचनार", और "टूटे काँटे" में प्रेम और वीरता की जैसी अभिव्यक्ति हुई, वह अन्यत्र दुर्लभ है । राष्ट्र-प्रेम और वीरता का अद्भुत संगम "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" और "माधव जी सिंधिया" में हमें मिल जाता है । ऐतिहासिक उपन्यासों में मनुष्य को मनुष्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रथम श्रेय वर्मा जी को ही है । वर्मा जी के अतिरिक्त राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, परदेशी, प्रताप नारायण श्रीवास्तव आदि उपन्यासकारों में भी मानव-मूल्यों और जीवन के सत्यों के प्रति एक तीव्र छटपटाहट है और जिसकी अभिव्यक्ति का प्रयत्न उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में किया है । द्विवेदी जी ने "बाण भट्ट की आत्म कथा" में युग-युग से पददलित और तिरस्कृत नारी-विभूति को जिस गुण-गौरव और महिमा से मण्डित किया है, वह उनकी शाश्वत करुणा और नारी-श्रद्धा का उज्ज्वलतम उदाहरण है । द्विवेदी जी के अन्तर का मानवीय पक्ष पूरे वेग से इस उपन्यास में अवतरित हुआ है । नारी के जिस आदर्श रूप की कल्पना द्विवेदी जी ने इस उपन्यास में की है, वह उनकी उदात्त मानवीय दृष्टि का परिचायक है । राहुल, यशपाल तथा रांगेय राघव की दृष्टि समाजवादी है और इन उपन्यासकारों ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में मनुष्य मात्र के अधिकारों को

सुरक्षित रखने, वर्गहीन समाज के निर्माण तथा धन के समान वितरण की समस्याओं को उठाया है । रांगेय राघव की दृष्टि राहुल एवं यशपाल की अपेक्षा अधिक संतुलित है और उनमें समाजवाद सम्बंधी वह दुराग्रह नहीं मिलता जो राहुल में मिलता है ।

---o---

सहायक ग्रंथ - सूची

ऐतिहासिक उपन्यास (हिन्दी)

(१) अठारह वर्ष बाद (१९५८ ई०) – – श्री गिरिजा शंकर पाण्डेय
(२) अठारह सौ सत्तावन (१९५७ ई०) – श्री गोविन्द सिंह
(३) अमिता (प्रथम संस्करण १९५६ ई०) – श्री यशपाल
(४) अमिताभ (प्र०सं०१९४६ ई०) – श्री गोविन्द वल्लभ पन्त
(५) अहिंत का शाप (१९५५ ई०) – श्री आन श्री हिन्द
(६) अवध की बेगम, दो भाग (प्र०सं०१९०५ ई०) – श्री गंगा प्रसाद गुप्त
(७) अहिल्याबाई (प्र०सं०१९५५ ई०) – श्री वृंदावनलाल वर्मा
(८) अँधेरे की भूख (प्र०सं०१९५५ ई०) – श्री रांगेय राघव
(९) अँधेरे के जुगनू (१९५३ ई०) – श्री रांगेय राघव
(१०) अम्बपाली (द्वि०सं०१९४५ ई०) – श्री रामरतन भटनागर
(११) आग और पानी (१९५४ ई०) – श्री रघुवीर शरण मित्र
(१२) आचार्य विष्णु गुप्त चाणक्य (प्र०सं० (१९५४ ई०) – श्री सत्यकेतु विद्यालंकार
(१३) आचार्य चाणक्य (सन् १९५९ ई०) – श्री यतीन्द्र
(१४) आजादी की राह में (अज्ञात) – श्री रमेशचन्द्र भ्रमर
(१५) आलमगीर (प्र०सं०१९५४ ई०) – श्री चतुरसेन शास्त्री
(१६) इरावती (चतुर्थ सं०सं० २०१३ वि०) – श्री जयशंकर प्रसाद
(१७) इंदुमती वा वनविहंगिनी (दूसरी बार १९१५ ई०) – श्री किशोरीलाल गोस्वामी
(१८) उदयदान (अज्ञात) – श्री बाल श्री हिन्द
(१९) उदयाचल (१९५६ ई०) – श्री यादवचन्द्र जैन
(२०) उदयन (सन् १९५२ ई०) – श्री मित्रबंधु
(२१) एक बूंद (प्र०सं०१९४६ ई०) – श्री गोविन्द वल्लभ पन्त
(२२) कचनार (पं० [illegible] १९४७ ई०) – श्री वृंदावनलाल वर्मा
(२३) [illegible] कला के साये (प्र०सं०१९५९ ई०) – श्री आनंद प्रकाश जैन
(२४) कनक कुसुम वा मस्तानी (दूसरी बार १९१४ ई०) – श्री किशोरीलाल गोस्वामी

(१४६) सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल, २भाग (दूसरी बार १९१५ई०) - श्री किशोरीलाल गोस्वामी

(१४७) सूर्यास्त (सन् १९२२ ई०) - श्री गोविन्द वल्लभ पंत

(१४८) सोना और खून, २ भाग(प्र०सं०१९५८-६०ई०) - श्री चतुरसेन शास्त्री

(१४९) सोना वा सुगंध वा पन्नाबाई(प्र०सं०१९०९ई०)- - श्री किशोरीलाल गोस्वामी

(१५०)सोने की राख(सन् १९५७ ई०) - श्री रघुवीरशरण मित्र

(१५१)सोमनाथ(सन् १९५४ई०) - श्री चतुरसेन शास्त्री

(१५२) सौन्दर्य कुसुम वा महाराष्ट्र उदय(१९१०ई०) - श्री बलभद्र सिंह

(१५३) हमीर (प्रथम बार १९०४ ई०) - श्री गंगा प्रसाद गुप्त

(१५४) हीराबाई वा बेहयाई का बोरका(दू०बार (१९१४ ई०) - श्री किशोरीलाल गोस्वामी

(१५५) हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी(दूसरी बार (१९१५ ई०) - श्री किशोरीलाल गोस्वामी

(१५६) हेमचन्द्र विक्रमादित्य(प्र०सं०१९६०) - श्री श्याम सुनामी

आलोचना एवं इतिहास ग्रंथ (हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला)

(१) अग्नि पुराण(१९०३ ई०) - अग्निपुराणकार, अनु० मन्मथनाथ दत्त

(२) अनुसंधान की प्रक्रिया(प्र०सं०१९६०ई०) - डा०सावित्री सिन्हा

(३) अनुसंधान का स्वरूप(प्र०सं०१९५४ई०) - डा०सावित्री सिन्हा

(४) अर्थशास्त्र - कौटिल्य

(५) अमय की खूह(प्र०सं०१९६६ ई०) - मेजर आर०डब्ल्यू०अर्ड, अनु०राजेन्द्र पाण्डेय

(६) आधुनिक साहित्य(प्र०सं०संवत् २००७वि०) - पं० नंद दुलारे वाजपेयी

(७) आधुनिक हिंदी साहित्य(तृ०सं०१९५४ई०) - डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

(८) आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास (तृ०सं०१९५९ई०) - डा० श्रीकृष्ण लाल

(९) आलोचना और आलोचना(प्र०सं०१९६१ ई०) - डा०देवीशंकर अवस्थी

(१०) अंग्रेजी उपन्यास साहित्य का विकास और उसकी रचना-पद्धति(प्र०सं०१९६१ ई०) - श्री श्रीनारायण मिश्र

(११) इतिहास(१९१५ ई०) - श्री विष्णुदत्त शास्त्री, अनु० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

(१२) इतिहास तिमिरनाशक, पहला हिस्सा (१८८६ ई०) - राजा शिव प्रसाद "सितारे हिंद"

(१३) इतिहास-दर्शन(१९६२ ई०) - डा० बुद्ध प्रकाश

(१४) उपन्यास -कला:एक विवेचन(१९६२ई०) - श्री आलादि विश्वमित्र

(१५) उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा(१९६०ई०) - डा० शशिभूषण सिंहल

(१६) उपन्यास के मूलतत्व(संवत् २०१०वि०) - श्री बच नारायण एम०ए०

(१७) उपन्यास:तत्व एवं रूपविधान(१९६२ई०) - श्री श्री नारायण अग्निहोत्री

(१८) ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार (१९५८ई०) - डा०गोपीनाथ तिवारी

(१९) ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की आत्मकथा(१९६१ ई०) - डा०त्रिभुवन सिंह

(२०) ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्व और कल्पना(१९५९ ई०) - श्री वी०एम०चिन्तामणि

(२१) कथा के तत्व(१९५७ ई०) - डा०देवराज उपाध्याय

(२२) कल्पना और छायावाद(१९५७ ई०) - श्री केदारनाथ सिंह

(२३) काव्यशास्त्र(१९५७ ई०) - डा०भगीरथ मिश्र

(२४) काव्य के रूप(तृ०सं०१९५४ ई०) - श्री गुलाब राय

(२५) काव्यादर्श(१९५८ ई०) - आचार्य दण्डी

(२६) काव्यालंकार(प्र०सं०१९५५ ई०) - आचार्यभामह, व्या०डा०सत्यदेव चौधरी

(२७) कुछ विचार(द्वि०सं०१९४२ ई०) - प्रेमचन्द

(२८) ग्वालियर (१९६०ई०) - प्रकाशक -सूचना विभाग, ग्वालियर

(२९) जोधपुर राज्य का इतिहास,प्रथम खण्ड चौथी जिल्द(संवत् १९९५वि०) - डा० गौरी शंकर हीराचंद ओझा

(३०) झांसी की रानी लक्ष्मी बाई(हिन्दी अनु०१९५४ ई०) - श्री दत्तात्रय बलवन्त पारसनीस

(३१) टॉड कृत राजस्थान का इतिहास (द्वि०सं० १९५९ ई०) - अनु०,केशव कुमार ठाकुर

(३२) दशरूपक(संवत् २०११ वि०) - धनंजय, अनु०भोलाशंकर व्यास

(३३) दारा शिकोह (सन् १९४८ ई०) - श्री काली रंजन कानूनगो

(३४) दिल्ली सल्तनत(प्र०सं०१९५४ ई०) - श्री रतिभान सिंह नाहर

(३५) दिल्ली सल्तनत (पंचम सं० १९६६ ई०) - डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

(३६) दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां(प्र०सं० १९४६ ई०) - डा० जगदीश चन्द्र जैन

(३७) नाट्य शास्त्र(१९५४ ई०) - आचार्य भरत, अनु०भोला नाथ शर्मा

(३८) नाथ-सम्प्रदाय(प्रथम सं०१९५० ई०) - डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी

(३९) नैषध -परिशीलन(प्र०सं०१९६० ई०) - डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल

(४०) पद्मावत सं० १९८७ वि०) - श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

(४१) पद्मचन्द्र कोश(सन् १९६५ ई०) - सम्पा०गणेशदत्त शास्त्री

(४२) पौराणिक व ऐतिहासिक कहानियां(प्र०सं० १९६४ ई०) - सम्पा० श्रीकृष्ण,मनमोहन सरल

(४३)प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक(प्र०सं०१९५९ई०)- डा०जगदीशचन्द्र जोशी

(४४) प्राकृत साहित्य का इतिहास(१९६१ई०) - डा० जगदीश चन्द्र जैन

(४५) प्राचीन भारत का इतिहास(पु०सं०१९६२ई०)- डा०रमाशंकर त्रिपाठी

(४६) प्राचीन भारत का इतिहास(द्वि०सं०१९५७ई०)-डा०भगवतशरण उपाध्याय

(४७) प्रेमचन्द -पूर्व हिन्दी उपन्यास(१९६२ई०) - डा०कैलाश प्रकाश

(४८) पुराणों की अमर कहानियां,भाग १ (पु०सं०१९५७ ई०) - श्री रामप्रताप त्रिपाठी

(४९) बंग साहित्येर उपन्यासेर धारा(सन् १९३९ई०)-श्री कुमार बन्द्योपाध्याय

(५०) बांगला साहित्येर कथा(१९५३ ई०) - श्री कुमार बन्द्योपाध्याय

(५१) बिहार:एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन (पु०सं० १९४० ई०) - श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

(५२) बिहार का गौरव (पु०सं० १९६० ई०) - श्री रामेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

(५३) बुन्देल खण्ड का संक्षिप्त इतिहास(पु०सं० १९३३ ई०) - श्री गोरेलाल तिवारी

(५४) भगवद्गीता - प्रका०गीताप्रेस,गोरखपुर

(५५) भगवान बुद्ध(पु०सं० १९५६ ई०) - श्री धर्मानंद कोसाम्बी

(५६) भारतीय नाट्य साहित्य(तिथि रहित) - संपा०डा० नगेन्द्र

(५७) भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास (१९५६ ई०) - लेखक मण्डल-श्री विरंचि कुमार बरुआ,देवी प्रसन्न पटनायक आदि

(५८) भोजपुरी लोक गाथा(पु०सं०१९५७ ई०) - डा० सत्यव्रत सिन्हा

(५९) भोजपुरी लोक साहित्य:एक अध्ययन (१९५८ ई०) - श्री हैवनाथ सिंह विनोद

(६०) भारतीय लोक साहित्य(पु०सं०१९५४ई०) - डा० श्याम परमार

(६१) मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास(१९५२ ई०) - डा० ईश्वरी प्रसाद

(६२) महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, भाग १७ - डा० सत्येन्द्र

(६३) [illegible] में कला और कृतित्व(पु०सं० १९५३ ई०) - डा० सत्येन्द्र

(६४) मेवाड़ का [illegible](चतुर्थ०१९३४ ई०) -डा०सुमंत सिंह रघुवंशी

(६५) राजपूताने का इतिहास, भाग १ (१९६६ ई०) - श्री जगदीशसिंह गहलौत
(६६) राजस्थान का इतिहास, भाग १, २ (सं० १९८२ वि०) - कर्नल टाड, अनु० बलदेव प्रसाद मिश्र
(६७) लोक साहित्य की भूमिका (१९५७ ई०) - श्री सत्यव्रत अवस्थी
(६८) विचार और विवेचन (१९४९ ई०) - डा० नगेन्द्र
(६९) विमर्श और निष्कर्ष (१९६२ ई०) - डा० सरनाम सिंह शर्मा
(७०) वृन्दावनलाल वर्मा: व्यक्तित्व और कृतित्व (१९५८ ई०) - श्री पद्मसिंह शर्मा "कमलेश"
(७१) वृन्दावनलाल वर्मा: उपन्यास और कला (१९५६ ई०) - श्री शिवकुमार मिश्र
(७२) वृन्दावनलाल वर्मा: साहित्य और समीक्षा (१९६० ई०) - श्री सियाराम शरण प्रसाद
(७३) समीक्षा के सिद्धांत (पुर्न० १९५२ ई०) - डा० सत्येन्द्र
(७४) साहित्य (पुर्न० १९४९ ई०) - श्री रवीन्द्र ठाकुर, अनु० वंशीधर विद्यालंकार
(७५) साहित्य का इतिहास-दर्शन (पुर्न० १९६० ई०) - श्री नलिन विलोचन शर्मा
(७६) साहित्यालोचन (आठवीं आवृत्ति सं० २००५ वि०) - श्री श्यामसुन्दर दास
(७७) साहित्य और साहित्यकार (पुर्न० १९६० ई०) - डा० देवराज उपाध्याय
(७८) साहित्य का मर्म (१९५२ ई०) - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
(७९) साहित्य का साथी (१९४९ ई०) - " " " "
(८०) साहित्य की मान्यताएं (सन् १९६२ ई०) - श्री भगवतीचरण वर्मा
(८१) साहित्य, संगीत और कला (१९६० ई०) - श्री कोमल कोठारी
(८२) साहित्य-सहचर (१९६५ ई०) - डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(८३) हिंदू सभ्यता (१९५५ ई०) - डा० सतीशचन्द्र काला
(८४) संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९६१ ई०) - डा० रामजी उपाध्याय

(८५) संस्कृत साहित्य का इतिहास(१९६० ई०) - ए०बी०कीथ, अनु०मंगलदेव
शास्त्री
(८६) संस्कृति के चार अध्याय(तृतीय संस्करण) - श्री रामधारी सिंह "दिनकर"
(८७) हर्षचरित:एक सांस्कृतिक अध्ययन(१९५३ई०)- डा०वासुदेव शरण अग्रवाल
(८८) हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन (१९६० ई०) - डा० वीणापाणि पाण्डेय
(८९) हिन्दी उपन्यास(संवत् २०१६ वि०) - श्री शिव नारायण श्रीवास्तव
(९०) हिन्दी उपन्यास (पु०सं०१९६१ ई०) - डा० सुषमा धवन
(९१) हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद(पु०सं० १९६१ ई०) - डा० त्रिभुवन सिंह
(९२) हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास(१९६९ ई०) - डा०प्रताप नारायण टण्डन
(९३) हिंदी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास(१९६४ ई०) - डा० ओम शुक्ला
(९४) हिन्दी उपन्यास-साहित्य(सं०२०१३वि०)- श्री ब्रजरत्न दास
(९५) हिंदी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन (पु०सं०१९६१) - श्री नारायण अग्निहोत्री
(९६) हिन्दी कथा साहित्य(१९५४ ई०) - श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
(९७) हिंदी कहानी(१९६० ई०) - श्री रामकुमार दीक्षित
(९८) हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन (१९५८ ई०) - डा० ब्रह्मदत्त शर्मा
(९९) हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन(अप्रकाशित शोध प्रबंध, नागपुर वि०वि०) - डा० गोविन्द प्रसाद शर्मा
(१००) हिन्दी शब्दानुशासन(सन् १९६१ ई०) - कामता भट्ट,अनु०गोविन्द [illegible]
(१०१) [illegible] और [illegible] - डा० दशरथ ओझा .

(१०२) हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन(१९५८ ई०) -डा०वेदपाल खन्ना

(१०३) हिन्दी मुक्तक साहित्य(१९४२ ई०) - डा० माता प्रसाद गुप्त

(१०४) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास (१९५६ ई०) - डा० शंभूनाथ सिंह

(१०५) हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड(१९५९ई०)- सम्पा०डा०धीरेन्द्र वर्मा

(१०६) हिन्दी साहित्य का आदिकाल(तृ०सं० १९६१ ई०) - डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी

(१०७) हिन्दी साहित्य का इतिहास(सं०२०१८वि०)-आचार्य रामचंद्र शुक्ल

(१०८) हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष(१९५४ई०) - श्री शिवदान सिंह चौहान

(१०९) हिन्दी साहित्य की भूमिका(चतुर्थ सं० १९५० ई०) - डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी

(११०) हिन्दी साहित्य कोश,प्रथम भाग (प्रथम संस्करण सं०२००१वि०) - प्र०सम्पा०डा०धीरेन्द्र वर्मा

(१११) हिन्दू सभ्यता(प्र०सं० १९५५ ई०) - डा० राधा कुमुद मुकर्जी, अनु०, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

अंग्रेजी ग्रंथ

1. An Advanced History of India (1950). — Majumdar, Raychoudhury and Dutta.
2. A Guide to the best Historical Novels and tales. — J.Nield
3. Ancient India (1956) — Dr.R.K.Mukerji
4. Ancient Indian Historical Tradition — Pargiter
5. An Introduction to the English Novel — Arnold Kettle.
6. An Introduction to the Study of Literature (1927) — Anthony X.Soares.

8. Aspects of Novel (Pelican Books, 1963)	E.M.Forster
9. A Study of History,part III,IV.	A.Toynbee
10. A Treatise on the Novel (1955)	Robert Liddell
11. Craft of Fiction	Percy Lubbock
12. Cultural History from the Vayu	D.R.Patil
13. Dictionary of English thought	Goldsmith
14. Encyclopoedia Britannica,VolXI	
15. Encyclopoedia of Social Sciences,part XIII	G.A.Borgese
16. English History in English Fiction	Sir John Marriott.
17. Foundation of English Prose	A.C.Ward-
18. Four Lectures on the handling of Historical Materials	L.F.Rushbrook Williams.
19. High Lights on Modern Literautre (1954)	Edited by Francis Browne
20. History of India	K.P.Jaiswal
21. History of Indian Philosophy	S.N.Dasgupta.
22. History of Shahjahan of Delhi	Dr.B.P.Saxena
23. Hours in Library	Leslie Stephen.
24. Introduction to the Philosophy of History	W.H.Walsh
25. Linguistic Survey of India,Vol. IX,Part I	Geogre Grierson
26. Meaning in History	Edited by H.P. Hickman.
27. Origins	Eric Patridge.
28. Pear's Cyclopaedia (1921)	Pear
29. Sanskrit Literature	Macdonell
30. Six Great Novelist (1955)	Walter Allen

31. Speculum Mentis — R.G.Collingwood.

32. The American Historical Novel — Ernest E.Leisy

33. The Art and Practice of Historical Fiction (1942) — A.T.Sheppard.

34. The Art of a Fiction — Henry James

35. The Art of Fiction — Marris Roberts.

36. The Cambridge History Of India, Vol.III,1928 — Edited by Sir Wolseley Haig

37. The Decline of the West — Oswald Spengler

38. The English Novel (Reprint 1960) — Walter Allen

39. The Historical Novel (1924) — H.Butterfield.

40. The Historycal Novel (1962 — George Lukacs

41. The History of English Novel (1924) — Mr E.A.Baker.

42. The Idea of History (Paperback Edition,1961) — R.G.Collingwood.

43. The Influence of English on Development of Hindi Fiction (Thesis unpublished) — Dr.Usha Saxena.

44. The Making of Literature — Scott James

45. The Meaning of Human History — Cohen.

46. The Novel and the People — Ralf Fox

47. The Philosophy of History in our time (1950) — Edited Hans Meyerhoff.

48. The Popular Novels in England (1932) — J.M.S.Tompkins

49. The Principles of Art (Paperback Ed.1963) — R.G.Collingwood.

50. The Province of Literary History — Edwin Green Law.

51. The short Oxford English Dictionary (Sec. edition)

52. The structure of Novel — Edwin Muir

53. The Tecknique of Modern English Novel (First edi.1959) — S. Chattopodhyay.

54. The use of History(Fourth Impression 1948) — A.L. Rowse.

55. The Varieties of History (1963) — Editor Fritz Stern

56. V.S. Apte's Sanskrit-English Distionary, Vol.I (1957) — V.S. Apte.

57. What is History (Pelican book, 1964) — E.H. Carr.

पत्र-पत्रिकाएं

(१) आलोचना: इतिहास विशेषांक १९५३ तथा उपन्यास विशेषांक अक्टूबर १९५४

(२) विनोद, मार्च १९५७

(३) नये पत्ते, जनवरी-फरवरी १९५३

(४) नवयुग, २२ मई १९५५

(५) योगी, दीपावली अंक, अक्टूबर, १९६०

(६) साहित्य सन्देश, उपन्यास विशेषांक, अक्टूबर-नवम्बर १९४० तथा ऐतिहासिक उपन्यास अंक, जनवरी-फरवरी १९५१

(७) साहित्यालोक, वर्ष १, अंक १

(८) हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च १९४४, जनवरी-मार्च १९५३